Impact Factor : 5.634

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Volume-13 | Special Issue-1 | (Sept.-2026) | ISSN : 2349-957

Global Path of Knowledge Creation:
Language, Teacher and Multidisciplinary Research



संरक्षक :
प्रो. (डॉ.) जीत सिंह

प्रधान संपादक :
डॉ. मन्जू चौहान

संपादक :
डॉ. सुलक्षणा अहलावत

प्रबंध संपादक :
डॉ. विकास शर्मा

प्रकाशक :
प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब
रोहतक (हरियाणा)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Volume-13	Special Issue-1	(Sept.-2026)	ISSN : 2349-9575

संरक्षक :
प्रो. (डॉ.) जीत सिंह

प्रधान संपादक :
डॉ. मन्जू चौहान

संपादक :
डॉ. सुलक्षणा अहलावत

प्रबंध संपादक :
डॉ. विकास शर्मा

1. **'शोध परिधि' का प्रबंधन और संपादन पूर्णतः अवैतनिक है।**
2. **'शोध परिधि' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखकों के अपने हैं। उनके प्रति वे स्वयं उत्तरदायी है।**
3. **पत्रिका से संबंधित प्रत्येक विवाद का न्याय क्षेत्र रोहतक (हरियाणा) न्यायालय ही मान्य होगा।**

मूल्य : 1350/-

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा) के लिए डॉ. विकास शर्मा द्वारा प्रकाशित तथा मनभावन प्रिंटर्स, भिवानी (हरियाणा) से मुद्रित।

संपादक मण्डल/विषय विशेषज्ञ/परामर्श समिति/ शोधपत्र निरीक्षण समिति/समीक्षक समिति

1. **डॉ. सत्यन्त कुमार**
आचार्य (शारीरिक शिक्षा विभाग)
श्री राममूर्ति गुप्ता राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छर्रा, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)

2. **प्रो. (डॉ.) स्वर्णलता कदम**
आचार्या (हिंदी विभाग)
श. म. पाण्डेय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, माधवपुरम, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

3. **डॉ. बबली अरूण**
सह आचार्य (संगीत विभाग)
कु. मा. रा. म. महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

4. **डॉ. संजीव कुमार**
विभागाध्यक्ष (शिक्षा संकाय)
कु. मा. रा. म. महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

5. **प्रो. (डॉ.) नीरज कुमार**
आचार्य हिंदी विभाग,
कु. मा. रा. म. महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

6. **प्रो. (डॉ.) हरेन्द्र कुमार**
विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र)
राजकीय महाविद्यालय, बी. बी. नगर, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)

7. **प्रो. (डॉ.) गीता शर्मा**
आचार्या (हिंदी विभाग)
एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

8. **प्रो. (डॉ.) अरविन्द कुमार यादव**
आचार्य (वाणिज्य विभाग)
मान्यवर कांशीराम राजकीय महाविद्यालय, नन्दग्राम, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

9. **प्रो. (डॉ.) संजीता वर्मा**
आचार्या (हिंदी विभाग)
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू (नेपाल)

10. **डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी**
सहायक आचार्या (हिंदी विभाग)
त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू (नेपाल)

11. **श्री डिल्लीराम शर्मा संग्रौला**
सहायक आचार्य (हिंदी विभाग)
पद्मकन्या बहुमुखी परिसर, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, काठमांडू (नेपाल)

12. **डॉ. ज्योतिरानी जायसवाल**
सहायक आचार्या (इतिहास विभाग)
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

13. **प्रो. (डॉ.) चंद्रशेखर सिंह**
आचार्य (समाज कार्य विभाग)
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

14. **डॉ. नरेश कुमार सिहाग**
वकील
जिला न्यायालय, भिवानी (हरियाणा)

15. **डॉ. पूनम कुमारी**
सहायक आचार्या (संस्कृत विभाग)
राजकीय महाविद्यालय, उच्चैन, भरतपुर (राजस्थान)

16. **डॉ. मनजीत**
सह आचार्या (हिंदी विभाग)
वैश्य आर्य कन्या महाविद्यालय, बहादुरगढ़ (हरियाणा)

17. **डॉ. उन्नति शर्मा**
सहायक आचार्या (समाजशास्त्र विभाग)
दयानंद महाविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

18. **डॉ. रामप्रवेश सिंह**
सहायक आचार्य (हिंदी विभाग)
जनता स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीपुर–मऊ (उत्तर प्रदेश)

19. **डॉ. सुनील कुमार सिंह**
अतिथि व्याख्याता (जनसंचार विभाग)
माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल (मध्य प्रदेश)

20. **श्री राहुल रमन**
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
वाई बी एन विश्वविद्यालय, रांची (झारखंड)

21. **डॉ. आकांक्षा पाल**
सहायक प्राध्यापिका (संगीत विभाग)
सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज (उत्तर प्रदेश)

22. **डॉ. गीता पंत**
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मानिला (उत्तराखंड)

23. **डॉ. सुनीता सारस्वत**
सह प्राध्यापिका (शिक्षा शास्त्र विभाग)
सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी (राजस्थान)

24. **डॉ. बी. मल्लिका**
अतिथि व्याख्याता (हिन्दी विभाग)
गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), दिंडीगुल (तमिलनाडु)

25. **मो. जिमी**
शोधार्थी (उर्दू विभाग)
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर (बिहार)

26. **डॉ. प्रवीण दिगंबर देशमुख**
प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
गुलाम नबी आजाद कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, बार्शीटाकली (महाराष्ट्र)

27. **डॉ. अनीता शर्मा**
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग)
रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एण्ड मैनेजमेंट, गुरुग्राम (हरियाणा)

28. **डॉ. सुप्रिया ई**
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग)
फाटिमा कॉलेज (स्वायत्तशासी), मदुरै (तमिलनाडु)

29. **डॉ. आरती सरोज**
सहायक आचार्या (संस्कृत)
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

30. **श्री नितिन सुभाषराव कुंभकर्ण**
सहायक आचार्य (हिन्दी विभाग)
यशवंत महाविद्यालय, सेलु (महाराष्ट्र)

31. **डॉ. बबीता**
सहायक प्राध्यापिका (शिक्षा शास्त्र विभाग)
लक्ष्मण सिंह महर कैम्पस, पिथौरागढ़ (उत्तराखंड)

32. **डॉ. प्रदीप जगन्नाथ औजेकर**
सहायक प्राध्यापक (मराठी विभाग)
किसान कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, पारोला (महाराष्ट्र)

33. **डॉ. दिलकुश झा**
भारतीय सेना।

34. **डॉ. संजीव कुमार के.**
सह आचार्य (हिन्दी विभाग)
एम.ई.एस. कल्लाडी कॉलेज, मन्नारक्काड (केरल)

35. **डॉ. मंजू**
सहायक प्राध्यापिका (शिक्षा शास्त्र)
आर एस एम कॉलेज ऑफ एजुकेशन, लाखु बुआना (हरियाणा)

36. **डॉ. दीप्ति लोदवाल**
ग्रन्थपाल
शासकीय विधि महाविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

37. **हेमलता पारस**
सहायक प्राध्यापिका (समाजशास्त्र)
पी.एम.सी.ओ.ई. शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर मालवा (मध्य प्रदेश)

38. **डॉ. अर्चना दुबे**
वरिष्ठ लाइब्रेरियन
संत अलॉयसियस महाविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)

सितम्बर 2026 – विशेषांक

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. विकास शर्मा	09–09
2.	ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान का समन्वय	डॉ. अफीफा फातिमा शेक	10–13
3.	खोरठा काव्य एवं लोकगीतों में संयोग श्रृंगार	डॉ० अहिल्या कुमारी	14–18
4.	भारतीय सांगीतिक परम्परा के वैश्वीकरण में भाषा एवं शिक्षक की बहुआयामी भूमिका	डॉ. आकांक्षा पाल	19–21
5.	21वीं सदी में शिक्षक की बदलती भूमिका और ज्ञान सृजन की नई दिशाएँ	डॉ. अंजना खेर	22–25
6.	कैंसर पीड़ित व्यक्ति के परिवार की गतिशीलता पर आधारित : एक अध्ययन	अन्तुला कुमारी	26–33
7.	**Library Education for Sustainable Development : Empowering Knowledge, Innovation, and Inclusive Growth**	**Dr. Archana Dubey**	**34-40**
8.	**Multilingual Knowledge Societies : Language Policy, Education, and Inclusion**	**Dr. Asha Sisodiya**	**41-45**
9.	महाकवि भारतीयार की कृतियों में बाल-शिक्षा	डॉ. बी. मल्लिका	46–50
10.	रोजी-रोटी का संघर्ष – अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद	51–54
11.	खोरठा शिष्ट साहित्य का वर्गीकरण एवं उसकी विविध विधाओं का विकासात्मक अनुशीलन	डॉ. भुनेश्वर महतो	55–60
12.	भारतीय उच्च शिक्षा में बहुविषयक अनुसंधान की संभावनाएं	डॉ. बीना गुप्त	61–63
13.	**Impact of Digital Literacy Programs Conducted by Libraries in Rural Areas**	**Deepika Raj**	**64-74**
14.	नागपुरी गीतों में साहित्यिक चेतना : ज्ञान-सृजन में योगदान	धरमेन्द्र गोप	75–80
15.	हाइब्रिड पुस्तकालय : साहित्य और कला का संगम	डॉ. दीप्ति लोदवाल	81–87
16.	भारतीय ज्ञान परंपरा एवं सामाजिक क्षेत्रक व्यय : वर्तमान प्रासंगिकता	डॉ. सोनम गुप्ता	88–92

17.	सीमा पार शराब तस्करी और आबकारी विभाग की भूमिका एवं चुनौतियाँ : राजस्थान-हरियाणा और गुजरात सीमाओं का तुलनात्मक अध्ययन	गणपत सिंह चौहान, डॉ. मीता चौधरी	93-95
18.	भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की अवधारणा : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ	डॉ. गीता परतेती	96-99
19.	ज्ञानचंद मर्मज्ञ के निबंधों में प्रकृति और मानवीय मूल्य : एक वैचारिक अध्ययन	हेमा डी. एम, डॉ. सुमन कौशिक	100-104
20.	ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान	डॉ. हेमलता	105-110
21.	लोकज्ञान से डिजिटल ज्ञान तक : भारतीय समाज में ज्ञान -निर्माण के बदलते आयामों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	हेमलता पारस	111-115
22.	कृषि और ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण	श्री जगदीश पावरा	116-120
23.	उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की भूमिका : चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ. जितेन्द्र कुमार	121-125
24.	ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : बहुविषयक दृष्टिकोण	डॉ. ज्योति पटेल	126-129
25.	प्रेमचन्द के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा : स्वरूप, विकास एवं समालोचनात्मक मूल्यांकन	कमलेश चौधरी	130-137
26.	**Knowledge is Power : A way to Achieve Progress and Conquer all Disparities**	**Dr. Krishna Rai Chouhan**	**138-142**
27.	ज्ञान अर्थव्यवस्था : विकसित भारत 2047 की आधारशिला	डॉ. कविता जोशी	143-146
28.	**Artificial Intelligence with a Human Touch : Redefining Emotional Learning in Education 5.0**	**Lalita Saini**	**147-154**
29.	रस और आनंद	डॉ. के. माधवी	155-159
30.	जैन पर्वों की प्रासंगिकता	मधु हिंगर, डॉ. रानी प्रभा सोलंकी	**160-165**
31.	हिंदी भाषा और वैश्विक ज्ञान-सृजन सम्भावनाएँ और चुनौतियां	कु. मनीता	166-170
32.	कुरमाली लोकगीतों में नारी अस्मिता एवं प्रतिरोध चेतना	डॉ. नीलू कुमारी	171-177
33.	हिंदी मंचित नाटकों में परंपरा, परिवर्तन और रंगमंचीय चेतना - एक अध्ययन	डॉ. निर्मलाबेन ईच्छुभाई पटेल, डॉ. महेश एम. पटेल	178-180

34.	**Artificial Intelligence and the Future of Language Education: Transforming the Role of Teachers in Global Knowledge Creation**	**Pooja Bisht**	**181-185**
35.	झारखंड की संस्कृति और पर्यावरण चेतना	प्रमोद कुमार महतो, लेक्टि० डॉ० अवध बिहारी महतो	186–188
36.	साइबर सुरक्षा और आपराधिक न्याय प्रशासन के लिए चुनौतियाँ	प्रीति कनाडिया	189–191
37.	**Factors Affecting Employee Retention Among Generation Z Employees in Startup**	**Dr. Priya Singh**	**192-198**
38.	कुँडुख़ निबंध साहित्य का सामान्य परिचय	राधिका उराँव	199–202
39.	शिक्षा और शोध में मातृभाषा तथा क्षेत्रीय बोलियों की उपयोगिता	राजीव कुमार	203–207
40.	भारतीय जनजातीय औषधीय चिकित्सा-पद्धति	डॉ. राम कुमार	208–212
41.	भारत-नेपाल संबंध : समकालीन परिप्रेक्ष्य में नेपाल की रणनीतिक भूमिका में परिवर्तनों का मूल्यांकन	**Raushan Kumar, Prof. Mohammad Arif**	**213-217**
42.	डिजिटल और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हिन्दी शिक्षण और शोध की नयी चुनौतियाँ	डॉ. रीजा. आर. एस	218–222
43.	किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका का अध्ययन (वैशाली जिले के विशेष संदर्भ में)	रेणु देवी	223–231
44.	हिंदी सिनेमा में नारी शोषण : 2000 से 2026 तक	रिशु सिंह, प्रो. एन. सत्यनारायण	232–234
45.	**From Governance Reform to Knowledge Transformation : Evaluating the Impact of the Modi Government's Education and Digital Policies on Multidisciplinary Research in India**	**Riya Saxena**	**235-242**
46.	**Pedagogical Practices and Knowledge Creation in Multidisciplinary Higher Education**	**Dr. Ruqqia Hashmi**	**243-247**
47.	वैश्विक ज्ञान-निर्माण, सतत शिक्षा एवं अकादमिक उत्कृष्टता हेतु भाषा, शिक्षक एवं अनुसंधान का समन्वित दृष्टिकोण	**Dr. Sadhana Ranchhod Tank**	**248-253**
48.	केरल की जनजातीय ज्ञान परंपरा	डॉ. संजीव कुमार. के	254–256

49.	प्रेमचंद युगीन कॉरपोरेट सस्कृति और पूंजीवाद का नवीनीकरण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	सरिता सिंघल	257–263
50.	**Effect of Art integration in science subject to Critical thinking, Creative thinking and Academic achievement of middle-staged students**	**Shivani Chandel, Dr. Raj Kumar**	**264-273**
51.	अष्टांग हृदय के द्वितीय अध्याय 'दिनचर्या' का आधुनिक जीवनशैली के संदर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन (भोडकी ग्राम के विशेष सन्दर्भ में)	**Dr. Shivkaran Nimal**	**274-278**
52.	भारत में स्थानीय स्वशासन की संवैधानिक संरचना एवं मध्य प्रदेश में उसका क्रियान्वयन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	शुभम ब्रह्मवंशी, डॉ. के. आर. कुमेकर	279–284
53.	भाषा से वैश्विक ज्ञान तक : शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान की बदलती भूमिका	सिंगराय मुण्डा	285–290
54.	जायसी के पदमावत महाकाव्य में हिन्दू त्यौहारों की झलक	सुनील कुमार, डॉ० शान्त कुमार चतुर्वेदी	291–293
55.	झारखंडी भाषा के विकास में आकाशवाणी राँची का योगदान	सुषमा मिंज	294–297
56.	**A Study on Operational Efficiency of Tamil Nadu Grama Bank : Challenges and Performances**	**Vaishnavi**	**298-308**
57.	पत्र-पत्रिका तथा पत्रकारिता का इतिहास एवं क्षेत्र	विकास उराँव	309–312
58.	**FUNCTIONAL AND STRUCTURAL CHANGES IN THE FAMILY SYSTEM: A SOCIOLOGICAL STUDY**	**Vishakha Gurjar, Dr. Rani Prabha Solanki**	**313-315**
59.	'नेपाल की वह बेटी' उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डिल्लीराम शर्मा संग्रौला	316–323

संपादक की कलम से...

ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान

आज का युग ज्ञान, नवाचार और वैश्विक संवाद का युग है। शिक्षा और अनुसंधान अब किसी एक विषय, भाषा अथवा भौगोलिक सीमा तक सीमित नहीं रहे। ज्ञान का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब विभिन्न विषयों, भाषाओं, संस्कृतियों और विचारधाराओं के बीच सार्थक संवाद स्थापित हो। इसी व्यापक दृष्टिकोण को केंद्र में रखते हुए "ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान" विषय पर आयोजित दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय सेमिनार ने समकालीन शिक्षा और शोध के महत्वपूर्ण पक्षों पर विचार–विमर्श का अवसर प्रदान किया।

भाषा मानव सभ्यता की ज्ञान–परंपरा की प्रमुख वाहक है। प्रत्येक भाषा अपने साथ एक विशिष्ट संस्कृति, इतिहास, साहित्य, अनुभव और ज्ञान–संपदा लेकर चलती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि भाषाओं को केवल संप्रेषण के माध्यम के रूप में न देखकर उन्हें ज्ञान–सृजन और सांस्कृतिक संवाद के महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जाए। भारतीय भाषाओं सहित विश्व की विभिन्न भाषाओं के बीच संवाद वैश्विक स्तर पर ज्ञान के नए आयाम खोल सकता है।

इस पूरी ज्ञान–यात्रा में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षक केवल पाठ्यक्रम का अध्यापक नहीं, बल्कि जिज्ञासा को दिशा देने वाला, चिंतन को विकसित करने वाला और नई पीढ़ी को ज्ञान की खोज के लिए प्रेरित करने वाला मार्गदर्शक है। बदलते तकनीकी और सामाजिक परिवेश में शिक्षक की भूमिका भी निरंतर विकसित हो रही है। आज शिक्षक को विषय–विशेषज्ञ होने के साथ–साथ अनुसंधान, तकनीक, नवाचार और बहुसांस्कृतिक संवाद की समझ भी विकसित करनी होगी।

इसी क्रम में बहुविषयक अनुसंधान वर्तमान समय की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बनकर सामने आया है। समाज की जटिल समस्याओं का समाधान किसी एक विषय के सीमित दृष्टिकोण से संभव नहीं है। शिक्षा, भाषा, साहित्य, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, पर्यावरण, अर्थव्यवस्था और मानविकी जैसे विभिन्न क्षेत्रों के पारस्परिक सहयोग से ही व्यापक और उपयोगी ज्ञान का निर्माण किया जा सकता है। बहुविषयक शोध न केवल नए प्रश्नों को जन्म देता है, बल्कि विभिन्न ज्ञान–परंपराओं को एक–दूसरे से जोड़ने का कार्य भी करता है।

इस अंतरराष्ट्रीय सेमिनार ने इसी भावना को आगे बढ़ाते हुए शिक्षकों, शोधकर्ताओं, विद्वानों और अकादमिक जगत से जुड़े प्रतिभागियों को विचारों के आदान–प्रदान का मंच प्रदान किया। ऐसे आयोजन केवल शोध–पत्र प्रस्तुत करने तक सीमित नहीं होते, बल्कि वे नए अकादमिक संबंधों, सहयोगात्मक अनुसंधान और ज्ञान की साझी संस्कृति के निर्माण का आधार भी बनते हैं।

आज आवश्यकता एक ऐसी शिक्षा–व्यवस्था की है जो भाषा को सम्मान दे, शिक्षक को सशक्त बनाए और अनुसंधान को विषयगत सीमाओं से आगे ले जाए। ज्ञान का भविष्य सहयोग, संवाद और समन्वय में निहित है। जब विभिन्न भाषाएँ, शिक्षक, शोधकर्ता और ज्ञान–विधाएँ एक साथ आगे बढ़ती हैं, तभी ज्ञान सृजन वास्तव में वैश्विक स्वरूप ग्रहण करता है।

इसी विश्वास के साथ यह सेमिनार ज्ञान, भाषा, शिक्षक और अनुसंधान के बीच एक सार्थक सेतु के रूप में स्मरणीय रहेगा और भविष्य में अधिक व्यापक अकादमिक एवं अंतरराष्ट्रीय सहयोग के लिए प्रेरणा प्रदान करेगा।

–डॉ. विकास शर्मा

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 10-11

ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान का समन्वय

डॉ. अफीफा फातिमा शेक
सहायक प्राध्यापक, भाषा विभाग–हिंदी
एम.ओ.पी. वैष्णव कॉलेज फॉर विमेन (स्वायत्त), चेन्नई, तमिलनाडु, भारत।

प्रस्तावना :

वर्तमान युग को ज्ञान, सूचना, नवाचार और वैश्विक संपर्क का युग कहा जाता है। इक्कीसवीं शताब्दी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। आज ज्ञान केवल पुस्तकों और कक्षाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि डिजिटल माध्यमों, वैश्विक नेटवर्कों और अनुसंधान संस्थानों के माध्यम से निरंतर विकसित हो रहा है। ज्ञान सृजन की यह प्रक्रिया अब किसी एक विषय, भाषा अथवा राष्ट्र तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह वैश्विक और बहुआयामी स्वरूप धारण कर चुकी है। इस परिवर्तित परिदृश्य में भाषा और शिक्षक दोनों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गई है क्योंकि भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा ज्ञान का निर्माण, संप्रेषण, संरक्षण और विस्तार संभव होता है। भाषा मानव विचारों, अनुभवों और अनुसंधान निष्कर्षों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। यदि भाषा न हो, तो ज्ञान का आदान–प्रदान और उसका विकास असंभव हो जाएगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा में भाषा और ज्ञान का संबंध अत्यंत गहरा माना गया है। उपनिषदों में ज्ञान को मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि बताया गया है। संस्कृत वचन **"सा विद्या या विमुक्तये"**[1] अर्थात् वही विद्या है जो मनुष्य को अज्ञान और बंधनों से मुक्त करे, ज्ञान के वास्तविक उद्देश्य को स्पष्ट करता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध शिक्षाविद् पाउलो फ्रेरे का कथन है– "**Education does not change the world; education changes people and people change the world.**"[2] अर्थात शिक्षा सीधे संसार को नहीं बदलती, बल्कि वह मनुष्य को बदलती है और बदला हुआ मनुष्य समाज तथा संसार को बदलता है। यह कथन ज्ञान सृजन में शिक्षा, भाषा तथा शिक्षक की केंद्रीय भूमिका को रेखांकित करता है।

ज्ञान सृजन की अवधारणा और उसका वैश्विक स्वरूप :

ज्ञान सृजन का आशय केवल नवीन जानकारी प्राप्त करना नहीं है, बल्कि नए विचारों, सिद्धांतों, अनुभवों और नवाचारों का निर्माण करना है। ज्ञान एक गतिशील प्रक्रिया है जो निरंतर विकसित होती रहती है। किसी भी समाज की प्रगति उसके ज्ञान संसाधनों और अनुसंधान क्षमता पर निर्भर करती है। प्राचीन काल में ज्ञान का संचय मुख्यतः मौखिक परंपराओं, पांडुलिपियों और गुरुकुलों के माध्यम से होता था, किंतु आज डिजिटल प्रौद्योगिकी ने ज्ञान के उत्पादन और प्रसार की प्रक्रिया को वैश्विक बना दिया है। इंटरनेट, ई–पुस्तकालय,

शोध डेटाबेस, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और ऑनलाइन शिक्षण मंचों ने ज्ञान तक पहुँच को सरल और व्यापक बना दिया है। अब एक देश में किया गया अनुसंधान कुछ ही क्षणों में दूसरे देश के शोधकर्ताओं तक पहुँच जाता है। इस प्रकार ज्ञान सृजन एक वैश्विक प्रक्रिया बन चुकी है जिसमें विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और विषयों के लोग मिलकर योगदान दे रहे हैं।

वैश्वीकरण ने ज्ञान को सीमाओं से मुक्त कर दिया है। आज शोध कार्य केवल स्थानीय समस्याओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वैश्विक चुनौतियों जैसे जलवायु परिवर्तन, सतत विकास, स्वास्थ्य संकट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और सामाजिक असमानताओं से भी जुड़ा हुआ है। इन जटिल समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों को एक साथ कार्य करना पड़ता है। यही कारण है कि बहुविषयक अनुसंधान आधुनिक ज्ञान सृजन का अनिवार्य अंग बन गया है।

शिक्षक की बदलती भूमिका :

पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक का मुख्य दायित्व भाषा, व्याकरण और साहित्य का अध्यापन था। किंतु वर्तमान समय में उसकी भूमिका कहीं अधिक व्यापक और बहुआयामी हो गई है। आज शिक्षक केवल पाठ्यपुस्तक का अध्यापक नहीं, बल्कि ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का सक्रिय सहभागी है। वह विद्यार्थियों में जिज्ञासा, रचनात्मकता और आलोचनात्मक चिंतन का विकास करता है। शिक्षक विद्यार्थियों को केवल भाषा का ज्ञान नहीं देता, बल्कि उन्हें अपने विचारों को तार्किक और प्रभावी ढंग से व्यक्त करना भी सिखाता है।

शिक्षक, विद्यार्थियों को अनुसंधान के लिए प्रेरित करता है और उन्हें अकादमिक लेखन, प्रस्तुतीकरण तथा संवाद कौशलों में दक्ष बनाता है। शोध के क्षेत्र में विचारों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने की क्षमता अत्यंत आवश्यक होती है, और यह क्षमता भाषा शिक्षण के माध्यम से विकसित होती है। आधुनिक शिक्षक डिजिटल संसाधनों का उपयोग करते हुए विद्यार्थियों को वैश्विक ज्ञान समुदाय से जोड़ता है। वह ई–सामग्री तैयार करता है, ऑनलाइन चर्चाओं का संचालन करता है और विद्यार्थियों को विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान स्रोतों तक पहुँचने में सहायता प्रदान करता है।

बहुविषयक अनुसंधान और उसकी आवश्यकता :

वर्तमान समय की अधिकांश समस्याएँ इतनी जटिल हैं कि उनका समाधान किसी एक विषय के माध्यम से संभव नहीं है। इसलिए बहुविषयक अनुसंधान की आवश्यकता बढ़ी है। बहुविषयक अनुसंधान वह प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न विषयों के ज्ञान, सिद्धांतों और पद्धतियों का उपयोग करके किसी समस्या का अध्ययन और समाधान किया जाता है। उदाहरण के लिए, जलवायु परिवर्तन का अध्ययन केवल पर्यावरण विज्ञान का विषय नहीं है, इसमें अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और भाषा अध्ययन की भी भूमिका होती है। इसी प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास में कंप्यूटर विज्ञान के साथ–साथ भाषाविज्ञान, दर्शनशास्त्र और संज्ञानात्मक विज्ञान का योगदान आवश्यक है। "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भी बहुविषयक शिक्षा और अनुसंधान को विशेष महत्त्व दिया है। नीति के अनुसार उच्च शिक्षा संस्थानों को ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जहाँ विभिन्न विषयों के विद्वान मिलकर अनुसंधान कर सकें। इस संदर्भ में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि वह विभिन्न विषयों के बीच संवाद स्थापित करने में सहायता करता है।"[3]

बहुविषयक अनुसंधान में शिक्षक का योगदान :

भाषा शिक्षक बहुविषयक अनुसंधान की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अनुसंधान का प्रत्येक

चरण भाषा से जुड़ा होता है। "शोध समस्या की पहचान, साहित्य समीक्षा, डेटा का विश्लेषण, निष्कर्षों की व्याख्या और शोध प्रतिवेदन का लेखनकृइन सभी प्रक्रियाओं में भाषा का प्रभाव दिखाई देता है। शिक्षक विद्यार्थियों और शोधार्थियों को अकादमिक लेखन की तकनीकों से परिचित कराता है तथा उन्हें शोध लेख, शोध प्रबंध और परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने में सक्षम बनाता है।"[4]

इसके अतिरिक्त भाषा शिक्षक अनुवाद और व्याख्या के माध्यम से ज्ञान के लोकतंत्रीकरण में योगदान देता है। विश्व के विभिन्न देशों में होने वाले शोध कार्य अनेक भाषाओं में प्रकाशित होते हैं। यदि इनका अनुवाद न किया जाए तो ज्ञान सीमित समुदाय तक ही रह जाएगा। भाषा शिक्षक विभिन्न भाषाओं के बीच सेतु का कार्य करते हुए ज्ञान को अधिक व्यापक और सुलभ बनाता है। वह स्थानीय ज्ञान, लोक साहित्य, सांस्कृतिक परंपराओं और क्षेत्रीय अनुभवों को वैश्विक विमर्श से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य भी करता है।

भाषा, संस्कृति और ज्ञान का अंतर्संबंध :

भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं है, बल्कि संस्कृति और ज्ञान की संवाहक भी है। प्रत्येक भाषा अपने साथ एक विशिष्ट सांस्कृतिक दृष्टिकोण और ज्ञान परंपरा को लेकर चलती है। भारतीय भाषाओं में निहित लोकज्ञान, पारंपरिक चिकित्सा, कृषि पद्धतियाँ, लोककथाएँ और सांस्कृतिक अनुभव ज्ञान के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। शिक्षक इन स्रोतों को पहचानने, संरक्षित करने और नई पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य करता है। प्रसिद्ध भाषाविद् नोम चॉम्स्की का कथन है– "**Language is a mirror of mind**."[5] अर्थात भाषा मानव मस्तिष्क और चिंतन का दर्पण है। यह कथन स्पष्ट करता है कि भाषा के माध्यम से ही मनुष्य अपने अनुभवों और विचारों को संरचित करता है। इसलिए ज्ञान सृजन की प्रक्रिया में भाषा की भूमिका अत्यंत केंद्रीय है।

डिजिटल युग में शिक्षक और ज्ञान सृजन :

डिजिटल युग ने शिक्षण और अनुसंधान के स्वरूप को व्यापक रूप से बदल दिया है। आज ऑनलाइन पुस्तकालय, डिजिटल अभिलेखागार, ओपन एक्सेस जर्नल, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित लेखन उपकरण और आभासी शिक्षण मंच ज्ञान सृजन की प्रक्रिया को नई दिशा दे रहे हैं। शिक्षक इन तकनीकों का उपयोग करके विद्यार्थियों को वैश्विक स्तर के ज्ञान संसाधनों से जोड़ सकता है। वह विद्यार्थियों को डिजिटल साक्षरता, सूचना मूल्यांकन और शोध नैतिकता का प्रशिक्षण देकर उन्हें जिम्मेदार शोधकर्ता बनने में सहायता करता है। हालाँकि डिजिटल युग अनेक अवसर प्रदान करता है, फिर भी इसके साथ कुछ चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। डिजिटल विभाजन, तकनीकी संसाधनों की कमी, भाषा संबंधी असमानताएँ और शोध प्रशिक्षण का अभाव अनेक शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। इन चुनौतियों का समाधान सतत प्रशिक्षण, संस्थागत सहयोग और तकनीकी सशक्तिकरण के माध्यम से किया जा सकता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य और भविष्य की संभावनाएँ :

भारत बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है जहाँ सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ प्रचलित हैं। यह विविधता भारत की ज्ञान–संपदा का महत्त्वपूर्ण आधार है। "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने मातृभाषा आधारित शिक्षा, भारतीय ज्ञान परंपरा और बहुभाषिकता को बढ़ावा देने पर विशेष बल दिया है। इससे भाषा शिक्षकों के लिए अनुसंधान और ज्ञान सृजन के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं। वे स्थानीय ज्ञान प्रणालियों का दस्तावेजीकरण कर सकते हैं, लोक साहित्य का संरक्षण कर सकते हैं तथा भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली शोध सामग्री विकसित कर सकते हैं।"[6] भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन अनुवाद, डिजिटल शिक्षा और अंतरराष्ट्रीय शोध सहयोग के कारण

शिक्षक की भूमिका और अधिक महत्त्वपूर्ण होने वाली है। वह स्थानीय और वैश्विक ज्ञान के बीच एक सशक्त सेतु के रूप में कार्य करेगा तथा ज्ञान आधारित समाज के निर्माण में योगदान देगा।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ शिक्षा और अनुसंधान के समन्वय से निर्मित होता है। शिक्षक इस प्रक्रिया का केंद्रीय घटक है क्योंकि वही विचारों को अभिव्यक्ति देता है, संवाद स्थापित करता है, अनुसंधान को दिशा प्रदान करता है और ज्ञान को समाज तक पहुँचाता है। बहुविषयक अनुसंधान के वर्तमान युग में शिक्षक की भूमिका केवल अध्यापन तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि वह शोधकर्ता, नवप्रवर्तक, अनुवादक, सांस्कृतिक सेतु और ज्ञान निर्माता के रूप में उभर रहा है। यदि शिक्षक आधुनिक तकनीकों, बहुविषयक दृष्टिकोण और अनुसंधान संस्कृति को अपनाता है, तो वह न केवल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार ला सकता है, बल्कि वैश्विक ज्ञान समाज के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। अतः भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान का प्रभावी समन्वय वैश्विक ज्ञान सृजन की आधारशिला है, जो ज्ञान–आधारित समाज के निर्माण तथा मानव सभ्यता के सतत विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

ग्रंथ सूची :

1. अग्रवाल, एस.पी. (2018), शिक्षा और वैश्वीकरण. नई दिल्ली : रावत पब्लिकेशन।
2. फ्रेरे, पाउलो (1970), Pedagogy of the Oppressed. New York : Continuum.
3. चॉम्स्की, नोम (2006), Language and Mind. Cambridge : Cambridge University Press.
4. https://www.bhagwatdarshan.com
5. https://ncert.nic.in/pdf/nep
6. https://www.drishtiias.com

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed
& Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 14-18

खोरठा काव्य एवं लोकगीतों में संयोग श्रृंगार

डॉ० अहिल्या कुमारी
सहायक प्राध्यापक, विभाग – खोरठा
राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, कोकर, राँची।
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

भूमिका :–

खोरठा भाषा झारखण्ड की प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं में से एक है। इसकी लोक परम्परा में लोकगीतों का विशेष महत्व हैं। खोरठा लोकगीतों में प्रकृति ग्रामीण जीवन प्रेम सामाजिक संबंध विरह, उत्सव और मानवीय भावनाओं का सवाभाविक चित्रण मिलता है। खोरठा लोकगीतों में श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति विशेष रूप से देखने को मिलती है। श्रृंगार रस को मुख्यता दो रूपों – संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार में देखा जाता है। इसमें संयोग श्रृंगार प्रेमी प्रेमिका के मिलन, प्रेम, आकर्षण, पारस्परिक अनुराग और हर्ष की भावनाओं को व्यक्त करता है।

संयोग श्रृंगार का अर्थ –

श्रृंगार रस जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण रस है चाहे वह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हो या फिर मनोरंजन की। श्रृंगार रसों का राजा है राजा एक सामान श्रेष्ठ है श्रृंगार का स्थायी भाव रति सबसे अधिक व्यपक तथा प्रबल है। ओज, उत्साह, हास, शोक अदि सदा वर्तमान नही रहते सभी अवसर पर ही प्रकट होते हैं। किन्तु श्रृंगार और रति का भाव मानो मनुष्य में सदा वर्तमान रहता है। जब प्रेमी और प्रेमिका के बीच प्रेम की अनुभूति मिलन प्रसन्नता, सौन्दर्यबोध, निकटता और पारस्परिक आकर्षण के माध्यम से अभिव्यक्त होती है, तब उसे संयोग श्रृंगार कहा जाता है। यहां मिलन की खुशी, प्रेमपूर्ण बातचीत, प्रिय के सौन्दर्य का वर्णन तथा साथ रहने की इच्छा जैसी भावनाएँ प्रमुख रूप से होती है।

खोरठा काव्य एवं लोकगीतों में संयोग श्रृंगार –

खोरठा लोक गीतो में संयोग श्रृंगार बहुत ही सहजता एवं लोकजीवन से जुडा हुआ दिखाई देता है। इसमें दिखावापन के स्थान पर सामान्य जीवन की अनुभूतियाँ और ग्रामीण परिवेश प्रमुख रहती है। एक दूसरे के प्रति आकर्षण, श्रृंगार, प्रेमी प्रेमिका के संवाद मिलन की प्रसन्नता और साथ बिताएं हुए पलों का चित्रण लोकगीतों को भावपूर्ण बनाता है। इसे एक खोरठा महाकव्य में प्रस्तुत संयोग श्रृंगार के कुछ अंश से अवलोकन कर सकते है :–

बात सिराइल परें परासरे फुलेक गोछ
मइछगंधाक खोपें देलइ गोइज आर
धइर गाल गंधाके, लेल चूमा
लजाइ गेली गंधा लजउनी घास तरि

अंचरे मुंह लेल झांइप, आंइख लेल मुंइद
बेली फूलेक महके महइक गेली गंधा
केंट सरदारेक बेंटी बनली फूल गंधा
छिटइक तनी छंइद करली, चोकाइ गेली गंधा
मरदेक गरम हाथ पाइ, सिहइर गेली गंधा।[1]

खोरठा गीतों में प्रकृति भी प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। जंगल, नदी, फूल, वर्षा, वसंत तथा हरियाली जैसे प्राकृतिक तत्व प्रेम और मिलन के वातावरण को और अधिक सुन्दर बनाते है। और इस प्रकार प्रकृति तथा मानवीय प्रेम एक–दूसरे से जुड़ जाते है। उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है :–

छाना छिका बदरी मिलल, घटा घनघोर,
सरंची- केतुक ऑइख मिललइ,
ढरके लागलइ लोर।
मारू बाजा बंद भेल, बोनेक भीतरे,
हेमाल पानी बइरसे लागल, आनन्देक लहरे।[2]

इसमें नायक–नायिका के मिलन को दर्शाया गया है। तथा दर्शाने के साथ ही इन पंक्तियों में झारखण्ड की वर्षा ऋतु का अत्यंत सजीव और मनोहारी चित्रण देखने को मिलता है। आकाश में घने बादलों के छा जाने से प्रकृति में उत्पन्न होने वाले मनोहारी परिवर्तन को अत्यंत भावपूर्ण ढ़ग से चित्रित किया है। बादलों को देखकर प्रकृति मानो भावविभोर हो उठती है और आनंद के आंसू बन कर वर्षा की बूंदे धरती पर बरसने लगती है वर्षा के अगमन के साथ ही जंगल का वातावरण भी शांत और उल्लासपूर्ण हो जाता है। घनघोर वर्षा से धरती तृप्त होती है। और चारो और हरियाली तथा नवजीवन का संचार होने लगता है। इस प्रकार इन पंक्तियों में वर्षा केवल प्राकृतिक घटना न हो कर धरती और प्रकृति के मिलन, नवजीवन तथा अनंद की प्रतिक बन कर उभरी है।

इसका और एक उदाहरण देखे–

आँकुर ले फुनगी फूटल
परेमेक कुसुम बोने,
जेठेक आँधी झइरेक परें
सरइक पोहा जनमें।[3]

यह काव्य संयोग श्रृंगार का बहुत ही अच्छा उदाहरण है।

सौन्दर्य चित्रण –

खोरठा लोकगीतों में संयोग श्रृंगार से जुडे प्रिय के रूप–सौन्दर्य का वर्णन भी मिलता है। वेशभूषा, आभूषणों, बालो, आँखो, और मुस्कान के माध्यम से प्रिय के आकर्षण को व्यक्त किया जाता हैं। यह सौन्दर्य वर्णन सिर्फ बाहरी रूप तक सीमित नहीं रहता, बल्कि प्रिय के व्यवहार और भावनाओं को भी सुन्दरता का हिस्सा बनाता है। इसे भी एक लोकगीत द्वारा समझा जा सकता है–

ककर हाथे सोना रूपा अंगठी हो
हथवा चमकी गेलइ।

अरे हो, रसिकाक हाथे सोना, रूपा
अंगठी गो हथवा चमकी गेलइ।
साँवरो के मुंडे बहुरा फूल गो
खोपवा धमकी गेल। [4]

इस गीत में नायक एवं नायिका दोनो ही एक दूसरे के पहनावा ओढावा देखकर आकर्षित हो रहे है।

नायक के हाथों में सोना रूपा की अँगुठी नायिका को खींच रहा है तथा नायिका के बालों में लगे फूलों की महक नायक को आकर्षित कर रहा है। जिससे संयोग श्रृंगार की स्पष्टतः प्रतिति हो रही है।

लोकपर्व और संयोग श्रृंगार –

खोरठा लोकगीतों में अनेक अवसरों पर प्रेम और संयोग की भावनाएं लोकपर्वो तथा सामाजिक उत्सवों के साथ जुड़ती है। सामूहिक नृत्य, गीत–संगीत तथा उत्सव का वातावरण प्रेम की अभिवयक्ति के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करता है। ऐसे गीतों में प्रेम के साथ–साथ सामुदायिक जीवन की उमंग भी दिखलाई पडती है।

इसे एक गीत में देख सकते है–

मांदइर बाजे रे, बांसी बाजे रे
अखरे गहदम झुमंइर लागे रे
जखन आवइ करम चाहे सोहराय
टुसु के रंग भइया कहलो न जाय
डोहा के सुरे झुमे बंउडी पोरोब
सरहुल आबइत्थी गोटे झारखंड मताय
मांदइर बाजे रे – बाँसी बाजे रे
अखरे.....। [5]

इस गीत का अर्थ है– करम या सोहराय पर्व आते ही अखरा झूम उठता हैं तथा टुसु के रंग का कहना ही क्या, डोहा के सुर में बँवडी पर्व झूमने लगता है और सरहुल आते ही पूरा झारखण्ड नाच उठता है। इसे और स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि करम या सौहराय पर्व आते ही अखड़ा झुम उठता है। टूसू के रंग और डोहा के सुरों में लोकजीवन उल्लास से भर जाता है। और बाँवडी पर्व की उमंग में जनमानस झुमने लगता है। वही, सरहूल के अगमन पर मानों पूरा झारखण्ड नृत्यमय हो उठता है। इन पर्वों के माध्यम से झारखण्ड की लोक संस्कृति, समुदायिक एकता और उत्सवधर्मिता की सजीव अभिव्यक्ति होती है।

प्रकृति और प्रेम का संबंध –

प्रकृति और प्रेम का बहुत ही गहरा संबंध है जब प्रकृति में वर्षा का आगमन होता है हरियाली छा जाती है, फूल खिलते हैं तब गीतों में प्रेम और मिलन की भावनाएँ भी मुखर हो जाती है। और प्रकृति प्रेमी मन की भावनाओं को व्यक्त करने से अपने आप को रोक ही नहीं पाते और स्वतः मन में प्रस्फुटित हो उठती है। जिसे खोरठा काव्य में देखा जा सकता है–

झारखण्डेक बोन–झार सोहान लागे रे
सिविर–सिविर नाला बोहे झर–झर झरना

पानी भितर चिकन लागे सेवाल पखना।
सोर मांगुर, गरइ माछे टान मारे रे
झारखण्डेक बोन झार सोहान लागे रे।[6]

इस कव्य में झारखण्ड के जंगल–झाड और प्राकृतिक परिवेश की मनोहारी छटा का अत्यंत सुंदर वर्णन किया गया है। नदियों तथा झरनों के झर–झर बहते निर्मल जल, पानी के भीतर स्पष्ट दिखाई देते पत्थरों और शैवालों के साथ जल में विचरन करते जलीय जीव प्राकृति की सुंदरता को और अधिक आकर्षक बना देते हैं। इन सभी प्राकृतिक दृष्यो का मनोहारी चित्रण झारखण्ड के जंगल झार एवं प्राकृतिक सौंदर्य को अत्यंत सोहावना और रमणीय बना देता हैं।

इसी प्रकार खोरठा लोकगीत में भी संयोग श्रृंगार को चित्रित किया गया है–

बेरिया हो डूबी गेल, झींगा फूल फूटी गेल
गांथे दादा झींगा फूल, खोपवें लगइबइ गो।
खोपें गोंजल झींगा फूल जावा खेलेक हुलुस्थुल
जावा जगाइब भइया, काने गोंजि जावा फूल
जावा जनमलइ भाइ हरियरे पंडरिया दादा
लिकी पिकी पोंग झलके, देखि हुलसे पंडरिया दादा।
बेरिया हो डुबी गेल.....।[7]

इस लोकगीत में लोकजीवन के आनंद, रिझ, रंग एवं उल्लास का बखूबी वर्णन किया गया है। करम पर्व से जुड़े इस लोकगीत के माध्यम से भाई–बहन के अटूट प्रेम, अत्मीयता और स्नेह को अत्यंत हर्षोउल्लास एवं भावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

सांस्कृतिक महत्व –

संयोग श्रृंगार केवल प्रेम को ही नहीं दर्शाता है, बल्कि यह झारखण्ड के लोकजीवन और सांस्कृतिक परंपरा को भी सामने लाता है। इन काव्यो एवं गीतों के माध्यम से स्थानीय भाषा, वहाँ के रीति–रिवाज, पहनावा, उत्सव, प्रकृति और सामाजिक जीवन की झलक स्पष्टतः देखने को मिलती है। इसलिए संयोग श्रृंगार खोंरठा लोकगीतों की भाव संपदा के साथ–साथ उनकी सांस्कृतिक पहचान को भी समृद्ध करता है। खोरठा कव्य मे श्रृंगार के विविध रूपो का सजीव और मनोहारी चित्रण देखने को मिलता है। कही मधुर ध्वनि वातावरण को भावमय बना देती है। कही फूलो की सुगंध मन को आकर्षित करती है। तो कहीं पलाश के फूलो के गुच्छे प्रकृति के सौंदर्य मे रंग भर देते है। इस प्रकार प्रकृति के विविध उपादानों और मनवीय भावनओं के माध्यम से खोरठा काव्य में संयोग श्रृंगार की व्यापकता, महता और सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

निष्कर्ष –

खोरठा काव्य एवं लोकगीतों में ग्रामीण जीवन की सरलता प्रकृति की सुन्दरता और मानवीय भावनाओं का समन्वय दिखाई देता है। संयोग श्रृंगार में प्रेम मिलन और आनंद की बहुत ही सहज अभिव्यक्ति है।

प्रेमी–प्रेमिका के संबंधो के माध्यम से व्यक्त संयोग की अनुभूति लोकगीतों को भावपूर्ण और जीवंत बना देती है। इस दृष्टि से खोरठा काव्य एवं लोकगीतों में संयोग श्रृंगार केवल साहित्यिक रस नही, बल्कि

लोकजीवन, प्रेम और संस्कृति का जीवंत प्रस्तुति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. शिवनाथ प्रमाणिक, "मइछगंधा", खोरठा साहित्य संस्कृति परिषद्, बोकारो, प्रथम संस्करण–2012, पृ–62–63
2. शिवनाथ प्रमाणिक "दामुदरेक कोराञ्" छोटानागपुर खोरठा विकास केन्द्र, बोकारो, 1987, पृ –26
3. वही – पृ –30
4. डॉ० बी. एन. ओहदार", खोरठा भाषा एवं साहित्य" (उद्भव एवं विकास), खोरठा भाषा साहित्य अकादमी, रामगढ़, प्रथम संस्करण – 2007, पृ – 120
5. शिवनाथ प्रमाणिक, "सेवांति", खोरठा भाषा विकास समिति, भेण्डरा, बोकारो, प्रथम संस्करण– 2000, पृ –47
6. पंचम महतो, "ककर नामे लिखब गीत" बालीडीह, खोरठा कमिटी, बोकारो, प्रथम संस्करण–2012, पृ – 47
7. डॉ० ए. के. झा, श्री निवास पानुरी एवं अन्य, "एक टोंकी फूल", खोरठा ढाकी छेतर कमिटी कोठार, रामगढ, प्रथम संस्करण– 1986, पृ–20

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 19-21

भारतीय सांगीतिक परम्परा के वैश्वीकरण में भाषा एवं शिक्षक की बहुआयामी भूमिका

डॉ. आकांक्षा पाल
अतिथि सहायक प्राध्यापिका (गायन)
संगीत विभाग, सी0एम0पी0 डिग्री कालेज, प्रयागराज।

सारांश :

देखा जाए तो भारतीय संगीत हमारी सांस्कृतिक परम्परा एवं आध्यात्मिक चेतना का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अंग हैं। यह सांस्कृतिक विविधता के कारण सम्पूर्ण विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। चाहे हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति हो या दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति, लोक संगीत हो, भक्ति संगीत हो, सूफी संगीत हो, शास्त्रीय संगीत हो या फिर समकालीन संगीत सभी ने वैश्विक संगीत जगत को प्रभावित किया है।

यदि बात की जाए भारतीय संगीत के वैश्वीकरण की तो चाहे तकनीकी माध्यम हो, डिजिटल प्लेटफार्म हो या फिर सांस्कृतिक आदान–प्रदान सबकी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी प्रकार भाषा एवं शिक्षक भी दो ऐसे प्रमुख माध्यम है जो संगीत की ज्ञान–परम्परा को एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति तक पहुंचाने का कार्य करते हैं क्योंकि शिक्षक केवल संगीत की तकनीकी शिक्षा प्रदान करने वाला माध्यम ही नहीं है अपितु परम्परा, संस्कृति, सौन्दर्यबोध तथा मूल्यों का संवाहक भी रहा है।

अतः इन्हीं सब महत्वपूर्ण बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध प्रपत्र का पल्लवन हुआ जिस पर विस्तारपूर्वक चर्चा मेरे मुख्य शोध प्रपत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

बीज शब्द – भाषा, वैश्वीकरण, शिक्षक, भारतीय सांगीतिक परम्परा, शिक्षा, सांस्कृतिक प्रभाव शक्ति।

यदि देखा जाए तो हमारी भारतीय संस्कृति अपनी अमूल्य अनिर्वचनीय एवं अवर्णनीय विशेषताओं के कारण सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हैं। यह अपनी जीवन्त परम्पराओं शाश्वत मूल्यों और अपरिवर्तनीय विशेषताओं के कारण सर्वत्र सराहनीय एवं अनुकरणीय रही है। अब यदि बात की जाए भारतीय सांगीतिक परम्परा की तो यह विश्व की सबसे पुरातन संगीत परम्परा है जिसके अन्तर्गत प्राचीन काल से ही संगीत–शिक्षण का उल्लेख प्राप्त होता है।

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में भारतीय संगीत ने भौगोलिक सीमाओं को लगभग समाप्त करके विश्व के विभिन्न देशों में अपनी पहचान बना रहा है। किन्तु किसी सांस्कृतिक या सांगीतिक परम्परा का वैश्वीकरण केवल उसके भौगोलिक विस्तार का नाम नहीं है अपितु उसके साथ जुड़े अर्थ, भाव, भाषा, दर्शन एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों का संप्रेषण भी अति आवश्यक है।

भारतीय संगीत के वैश्वीकरण में भाषा का महत्व

बन्दिश एवं गीत के भाव पक्ष की व्याख्या :

भारतीय संगीत में बन्दिशों का विशेष महत्व रहा है क्योंकि यदि कोई विद्यार्थी केवल स्वर एवं ताल सीखता है लेकिन बन्दिश के शब्दों का अर्थ नहीं समझता तो उसके गायन में भावात्मक पक्ष का अभाव देखा जा सकता है।

भारतीय भाषाओं का वैश्विक प्रसार :

जब विदेशी विद्यार्थी हिन्दी, संस्कृत, ब्रजभाषा, अवधी, या अन्य भारतीय भाषाओं में रचित गीत या बंदिश गाते हैं या सीखते है तो वे भारतीय भाषाई एवं सांस्कृतिक एवं सांगीतिक परम्परा से परिचित होते हैं।

अनुवाद एवं लिप्यंतरण के द्वारा :

भारतीय संगीत की बन्दिशों, गीतों एवं संगीत शास्त्रीय ग्रन्थों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद भारतीय संगीत की अवधारणाओं को वैश्विक पटल तक पहुंचाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

डिजिटल माध्यम एवं भाषा का महत्व :

देखा जाए तो भारतीय भाषाओं के संगीत को वैश्विक कला रसिकों तक पहुंचाने में YouTube, Spotify, Instagram आदि अन्य डिजिटल माध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और साथ ही Subtitles, Lyrics translation एवं Multilingual Content ने भी भाषा सम्बन्धी बाधा को कम किया है।

फ्यूजन संगीत में भाषा का प्रयोग एवं महत्व :

भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत के मेल से भारतीय भाषाओं का प्रयोग विशेष आकर्षण का केंद्र बनता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप नवीन वैश्विक संगीत शैलियाँ विकसित हो रही है।

भारतीय लोक भाषाओं का वैश्विक प्रसार :

हमारी लोक परम्पराएं अपनी विशिष्ट भाषिक पहचान के साथ भारतीय सांस्कृतिक विविधता को विश्व पटल पर प्रस्तुत करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि कजरी, चैती, आल्हा, भांगड़ा, लावणी, बाउल, बिरहा आदि लोकगीतों में उस क्षेत्र की सांस्कृतिक परम्परा, जीवन पद्धति और सामाजिक स्मृतियाँ संचित रहती है।

वैश्विक संगीत जगत में रोज़गार के अवसर :

यदि देखा जाए तो भारतीय भाषाओं के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगीत की बढ़ती लोकप्रियता ने संगीत कलाकारों, शिक्षकों, संगीतकारों, आदि के लिए रोजगार के नवीन अवसर भी उपलब्ध कराए हैं।

भारतीय संगीत के वैश्वीकरण में शिक्षकों का महत्व :

भारतीय सांगीतिक परम्परा एवं आधुनिकता का समन्वय :

देखा जाए तो वर्तमान समय में शिक्षक परम्परागत ज्ञान को आधुनिक तकनीक जैसे – Online Classes, Audio-Video resources आदि के माध्यम से भारतीय संगीत को वैश्विक विद्याथियों, कलारसिको तक पहुंचा रहे हैं।

सांस्कृतिक परम्परा के संवाहक के रूप में शिक्षक :

एक योग्य संगीत शिक्षक अपनी सांगीतिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को भावी पीढ़ियों को हस्तांतरित करने के साथ ही भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत परम्पराओं के मध्य संवाद भी स्थापित कर सकते हैं।

गुरू से ग्लोबल मेन्टर (Global Mentor) की भूमिका :

देखा जाए तो वर्तमान संगीत शिक्षक भारतीय सांगीतिक परम्परा को आधुनिक तकनीक, वैश्विक मंच एवं नई पीढ़ी की आवश्यकताओं से जोड़ रहे हैं।

भारतीय संगीत की सांस्कृतिक प्रभाव शक्ति को दृढ़ करना :

भारत की सांस्कृतिक छवि को संगीत शिक्षक विदेशों में भी भारतीय संगीत के प्रसार के माध्यम से मजबूत कर रहे हैं।

भारतीय सांगीतिक परम्पराओं का विदेशी विद्यार्थियों को प्रशिक्षण :

चाहे शास्त्रीय हो, उपशास्त्रीय हो, लोक हो या फिर सुगम संगीत हो विदेशी सभ्यता उसे आत्मसात् कर रही है और साथ ही भारतीय संगीत के सौन्दर्यशास्त्र एवं दर्शन से भी परिचित हो रही है जिसका माध्यम है संगीत शिक्षक।

संगीत के क्षेत्र में शोध एवं ज्ञान सृजन को प्रवर्धित करना :

कहा जाता है कि संगीत शिक्षक मात्र ज्ञान का संप्रेषक ही नहीं अपितु ज्ञान सृजन की प्रक्रिया का सक्रिय सूत्रधार होते हैं क्योंकि शिक्षक के निर्देशन में विद्यार्थी केवल परम्परा को ही नहीं बल्कि उसके अंतनिर्हित तत्वों का विश्लेषण, पुर्नव्याख्या एवं नवीन सन्दर्भों में पुनः नव सृजन कर सकते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत के वैश्वीकरण में भाषा एवं शिक्षक दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं क्योंकि भाषा, संगीत की अवधारणाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करती है जबकि शिक्षक उन अवधारणाओं को विद्यार्थियों तक हस्तान्तरित करतें हैं। अतः भारतीय संगीत की मौलिकता एवं सांस्कृतिक आत्मा को यदि सुरक्षित रखते हुए आधुनिक तकनीक तथा बहुभाषिक शिक्षण का समुचित उपयोग किया जाए तो निश्चित ही हमारा भारतीय संगीत विश्व सांस्कृतिक संवाद में और अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है।

सन्दर्भ सूची :

- भारद्वाज डॉ0 प्रभा, ''संगीत का सांस्कृतिक व सामाजिक पक्ष'', (प्रकाशन – साहित्यकार जयपुर, प्रथम संस्करण – 2016)
- डॉ0 आकांक्षी, ''पं0 विष्णुनारायण भातखण्डे एवं पं0 ओंकारनाथ ठाकुर का सांगीतिक चिंतन (प्रकाशन – मनीष प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण – 2009)
- ऋृषितोष, डॉ0 कुमार, ''संगीत शिक्षण के विविध आयाम'' (प्रकाशन – कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2010)
- मित्तल, अंजलि, 'भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं संगीत का इतिहास'' (प्रकाशन – विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण – 2010)
- विद्वतजनों से साक्षात्कार एवं भेंटवार्ता के माध्यम से प्राप्त उनके मंतव्य।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 22-25

21वीं सदी में शिक्षक की बदलती भूमिका और ज्ञान सृजन की नई दिशाएँ

डॉ. अंजना खेर
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शासकीय माधव महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

प्रस्तावना :–

शिक्षा असल में लोगों के विकास का जरिया है। कोई समाज सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक रूप से कितना आगे बढ़ता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका शिक्षा सिस्टम कितना अच्छा है। जैसे–जैसे हमारे आस–पास की चीजें बदलती हैं, वैसे–वैसे शिक्षा के लक्ष्य, पढ़ाने का तरीका, इस्तेमाल होने वाले प्रणाली और पढ़ाने के साधन भी बदलते रहते हैं। अब, 21वीं सदी में, इन्फॉर्मेशन और कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी के तेजी से आगे बढ़ने के कारण सब कुछ बदल गया है।

सवाल : तो शिक्षक की जरूरत क्यों?

जवाब : भूमिका खत्म नहीं, बदली है।

पहले, एक आम क्लासरूम में शिक्षक ही ज्ञान का मुख्य स्रोत होता था। शिक्षक पढ़ाते थे और छात्र सुनकर, लिखकर और याद करके सीखते थे। आज के समाज के लिए, जो पूरी तरह से ज्ञान पर आधारित है, वह मॉडल काफी नहीं है। छात्र अब सिर्फ शिक्षक से ही नहीं, बल्कि कई जगहों से ज्ञान हासिल कर सकते हैं। इंटरनेट और डिजिटल चीजों ने ज्ञान को बहुत आसानी से उपलब्ध करा दिया है। इसलिए, शिक्षक की भूमिका कम नहीं हुई है, बल्कि यह और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई है। शिक्षक को छात्र की यह समझने में मदद करनी चाहिए कि उपलब्ध जानकारी में से कौन सी जानकारी भरोसेमंद है, उसे कैसे समझा जाए और उसका क्रिएटिव तरीके से कैसे इस्तेमाल किया जाए।

अब, शिक्षक सिर्फ जानकारी नहीं देते, वे छात्रों को अपना ज्ञान खुद बनाने में मदद करते हैं। पहले शिक्षक पारंपरिक तरीके से कार्य करते थे और उन्हें ज्ञान का सबसे बड़ा और एकमात्र स्रोत माना जाता था। उनका मुख्य कार्य छात्रों को विषय का ज्ञान देना था। उस समय, सब कुछ टेक्स्टबुक पूरा करने, अनुशासन बनाए रखने, ग्रेडिंग करने, सिलेबस का पालन करने और यह देखने पर केंद्रित था कि बच्चे क्या कर सकते शिक्षक मुख्य रूप से व्याख्याता होते थे और छात्र सिर्फ नोट्स लेते थे। छात्रों से यह उम्मीद की जाती थी कि वे शिक्षक द्वारा दी गई जानकारी को समझें और परीक्षा में उसे दोहराएँ।

शोध के उद्देश्य :–

21वीं सदी न केवल सतत विकास के लिए जानी जाती है बल्कि सभी क्षेत्रों में निरंतर प्रगति का भी

प्रतीक है। ज्ञान का सृजन इस प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा है। पारंपरिक और आधुनिक ज्ञान सृजन विधियों के बीच के अंतर को समझना, उनके बीच सामंजस्य स्तापित करना तथा और आधुनिक डिजिटल प्रौद्योगिकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग करके शिक्षकों की प्रासंगिकता को अधिक प्रभावी बनाना, शिक्षकों की परम्परिक और रूढ़िवादी छबि से नई भूमिका में स्तापित करना। ज्ञान अर्जित करने के बिभिन्न माध्यमो से ज्ञान के अपार भंडार कों सार्थक और उपयोगी रूप में छात्रों तक पहुँचाना।

शिक्षक की बदलती भूमिकाएं :-

सूचनादाता–मार्गदर्शक, आजकल शिक्षक सीधे तौर पर जानकारी देने का कार्य कम करते हैं। इसके बजाय, वे बच्चों को यह समझाने में मदद करते हैं कि जानकारी का क्या मतलब है और उसका इस्तेमाल कैसे किया जाए।

तकनीकी सहायक, पठन पाठन के नए तरीके, नई टेक्नोलॉजी और अपने विषय के बारे में और अधिक जानना एक प्रोफेशनल के तौर पर आगे बढ़ने के लिए जरूरी है। आजकल के शिक्षकों को टेक्नोलॉजी में माहिर होना जरूरी है। ऑनलाइन क्लास टूल्स, डिजिटल चीजों, प्रेजेंटेशन सॉफ्टवेयर, वर्चुअल रूम और ऑनलाइन ग्रेडिंग का इस्तेमाल करना उनके काम का हिस्सा है।

सह–शिक्षार्थी, शिक्षक अब छात्र को खुद सीखने के मौके देते हैं। शिक्षक सवाल पूछते हैं, छात्रों को अपने सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और फिर जवाब खोजने में उनकी मदद करते, तथा खुद भी सीखते हैं। एक शिक्षक को लगातार सीखते रहना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक सहयोगी, छात्र छात्राओं को विभिन्न भावनात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसलिए, शिक्षकों को न सिर्फ अपने विषय की जानकारी होनी चाहिए, बल्कि यह भी समझना चाहिए कि छात्र भावनात्मक रूप से किन चीजों से गुजर रहे हैं और उन्हें सही मार्गदर्शन देना चाहिए।

वैश्विक सोच विकसित करना, 21वीं सदी में ज्ञान बनाने का तरीका भी बहुत बदल गया है। ज्ञान अब स्कूलों या पुराने जमाने के विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं है। वे प्रोजेक्ट वर्क, समस्याओं को गहराई से समझना, मिलकर काम करना, प्रैक्टिकल काम और ऑनलाइन व आमने–सामने की पढ़ाई का मिला–जुला तरीका अपना रहे हैं। आजकल के शिक्षक सिर्फ पुराने पढ़ाने के तरीकों पर निर्भर नहीं रह सकते। इंटरनेट ने किसी के लिए भी अपनी जानकारी बनाना और उसे साझा करना बहुत आसान बना दिया है। शिक्षक छात्र कई तरह की ऑनलाइन जगहों से जानकारी जुटा सकते हैं और नए विचार ला सकते हैं।

ज्ञान-सृजन की नई दिशाएँ :-

नया ज्ञान बनाना अब सिर्फ अकेले करने वाला काम नहीं है, लोग मिलकर ऐसा कर रहे हैं। शिक्षक, छात्र, रिसर्चर, कंपनियाँ – ये सभी मिलकर ज्ञान बना सकते हैं। 'ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज' ने छात्रों और शिक्षकों को बहुत सारा मुफ्त एजुकेशनल मटीरियल उपलब्ध कराया है। इससे सीखना बहुत आसान और लचीला हो गया है।

AI हमारे पढ़ाने और सीखने के तरीकों में नए रास्ते खोल रहा है। AI टूल्स छात्रों को नए विचार सोचने, जानकारी को समझने, अपनी गति से सीखने और तेजी से फीडबैक पाने में मदद कर सकते हैं। लेकिन इनका इस्तेमाल करते समय फेक न्यूज, काम के ओरिजिनल होने, प्राइवेसी और सामान्य नैतिकता का ध्यान रखना बहुत जरूरी है।

आधुनिक शिक्षा सिर्फ किताबी ज्ञान के बजाय असल जिंदगी की समस्याओं से सीखने पर जोर दे रही है। प्रैक्टिकल प्रोजेक्ट, चीजों को देखने के लिए बाहर जाना, एक्सपेरिमेंट करना, इंटर्नशिप और समुदाय के साथ मिलकर काम करना अब ज्ञान अर्जित करने के तरीके बन गए हैं।

21वीं सदी में शिक्षकों और छात्रों के बीच बातचीत का तरीका ज्यादा बराबरी वाला और मिलकर काम करने वाला हो गया है। शिक्षक अब सिर्फ निर्देश नहीं देते। वे छात्रों से बात करते हैं, उनकी जिज्ञासा का सम्मान करते हैं और उन्हें स्वतंत्र रूप से सोचने के मौके देते हैं। यहाँ, छात्र सिर्फ बैठकर चीजें सीखते नहीं हैं, वे सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल होते हैं और ज्ञान बनाने में मदद करते हैं।

आजकल के शिक्षकों में कुछ खास स्किल्स का होना बहुत जरूरी है। इसका मतलब है अपने विषय की अच्छी जानकारी होना, टेक्नोलॉजी की समझ होना, अच्छी तरह बातचीत करना, सोच–समझकर फैसले लेना, क्रिएटिव होना, समस्याओं को हल करना, रिसर्च करना, टीम में काम करना, लोगों की भावनाओं को समझना, सही और पेशेवर तरीके से काम करना और हमेशा कुछ नया सीखने की इच्छा रखना।

सुझाव :

- शिक्षकों के लिए नियमित डिजिटल एवं तकनीकी प्रशिक्षण आयोजित किए जाएँ।
- शिक्षक शिक्षा में AI और डिजिटल साक्षरता को उचित स्थान दें।
- विद्यालयों में शोध एवं नवाचार की संस्कृति विकसित की जाए।
- विद्यार्थियों को ज्ञान–सृजन की गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल किया जाए।
- डिजिटल विभाजन को कम करने के लिए समान तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।
- AI के नैतिक और जिम्मेदार उपयोग के लिए स्पष्ट दिशा–निर्देश विकसित किए जाएँ।
- शिक्षक के सतत व्यावसायिक विकास को शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाए।
- स्थानीय ज्ञान और वैश्विक ज्ञान के बीच समन्वय स्थापित किया जाए।

निष्कर्ष :-

भारत में, नई नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 2020 का मकसद शिक्षा को ज्यादा बेहतर और सर्वांगीण बनाना है। इसमें अलग–अलग विषयों को शामिल किया गया है, स्किल्स पर ध्यान दिया गया है और छात्रों को सबसे ज्यादा अहमियत दी गई है। इस व्यवस्था में, शिक्षकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे समझें कि सभी छात्र अलग–अलग होते हैं और उनकी जरूरतें भी अलग–अलग होती हैं, और वे उन्हें स्थानीय परिस्थितियों के हिसाब से पढ़ाएँ। छात्रों का कक्षा में आने का रुझान घटा है. अब शिक्षक के सामने चुनौती यह है कि वह एआई और तकनीक का उपयोग करके विद्यार्थियों को क्लासरूम में आकर्षित करें, उनका ज्ञान के प्रति रुचि बढ़ाएं। तकनीक चाहे जितनी विकसित हो जाए, शिक्षक ही शिक्षा की आत्मा हैं।

संदर्भ सूची :

1. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020।
2. UNESCO — Education 2030 : Incheon Declaration and Framework for Action.
3. UNESCO — Guidance for Generative AI in Education and Research.
4. NCERT — National Curriculum Framework for School Education.

5. Government of India — National Digital Education Architecture (NDEAR).
6. Dewey, J. — Experience and Education.
7. Freire, P. — Pedagogy of the Oppressed.
8. Vygotsky, L. S. — Mind in Society.
9. Mishra, P. & Koehler, M. J. — Technological Pedagogical Content Knowledge (TPACK).
10. संबंधित राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध–पत्र, शैक्षिक रिपोर्ट तथा डिजिटल शिक्षा संबंधी अध्ययन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 26-32

कैंसर पीड़ित व्यक्ति के परिवार की गतिशीलता पर आधारित : एक अध्ययन

अन्तुला कुमारी

पीएच.डी. शोधार्थी, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

सारांश :

कैंसर केवल एक शारीरिक बीमारी नहीं है, बल्कि यह रोगी के साथ–साथ उसके पूरे परिवार के जीवन को गहराई से प्रभावित करने वाली एक गंभीर स्वास्थ्य एवं सामाजिक समस्या है। रोग के निदान के पश्चात् परिवार के सदस्यों की भूमिकाओं, उत्तरदायित्वों, भावनात्मक संबंधों तथा आर्थिक स्थिति में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते हैं। कुछ परिवार इन परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए अपने पारिवारिक जीवन में आवश्यक समायोजन कर लेते हैं, जबकि कुछ परिवारों में तनाव, चिंता, असुरक्षा, आर्थिक कठिनाइयों तथा पारिवारिक संबंधों में दूरी जैसी समस्याएँ उत्पन्न होने लगती हैं। विश्व स्तर पर कैंसर के बढ़ते प्रभाव को उपलब्ध आँकड़ों से भी समझा जा सकता है। अंतरराष्ट्रीय कैंसर अनुसंधान एजेंसी के वर्ष 2022 के अनुमानों के अनुसार, विश्व में लगभग 2 करोड़ नए कैंसर मामले सामने आए तथा लगभग 97 लाख लोगों की कैंसर के कारण मृत्यु हुई। इसी अवधि में लगभग 5.35 करोड़ लोग ऐसे थे जो कैंसर के निदान के बाद पाँच वर्ष के भीतर जीवित थे। ये आँकड़े कैंसर के व्यापक सामाजिक एवं स्वास्थ्य प्रभाव को दर्शाते हैं। इसी संदर्भ में प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उपलब्ध पूर्व प्रकाशित साहित्य एवं द्वितीयक आँकड़ों के आधार पर कैंसर पीड़ित व्यक्तियों के परिवारों की गतिशीलता का विश्लेषण करना है।

अध्ययन में कैंसर के कारण परिवार के भीतर होने वाले सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक परिवर्तनों को समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही, यह विश्लेषण किया गया है कि कैंसर रोग का प्रभाव परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों, निर्णय लेने की प्रक्रिया, देखभाल संबंधी उत्तरदायित्वों तथा पारिवारिक जीवन की गुणवत्ता पर किस प्रकार पड़ता है। उपलब्ध साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि कैंसर की स्थिति में परिवार के सदस्यों को रोगी की देखभाल, उपचार की व्यवस्था, आर्थिक संसाधनों के प्रबंधन तथा भावनात्मक सहयोग जैसी अनेक जिम्मेदारियों का निर्वहन करना पड़ता है। इन अतिरिक्त उत्तरदायित्वों के कारण परिवार की दैनिक दिनचर्या, भूमिकाओं का विभाजन तथा पारस्परिक संबंध प्रभावित हो सकते हैं। इसके साथ ही, लंबे समय तक चलने वाला उपचार, चिकित्सा व्यय, आय में कमी, कार्य–दिवसों की हानि, यात्रा एवं देखभाल संबंधी अप्रत्यक्ष व्यय परिवार पर अतिरिक्त आर्थिक दबाव उत्पन्न कर सकते हैं। साहित्य अवलोकन से यह भी जानकारी मिलती है कि परिवार एवं सामाजिक समर्थन कैंसर से उत्पन्न कठिन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रभावी पारिवारिक संवाद, भावनात्मक सहयोग तथा पर्याप्त सामाजिक

समर्थन रोगी एवं देखभालकर्ता दोनों के मनोसामाजिक समायोजन में सहायक हो सकते हैं। इसके विपरीत, लंबे समय तक बना रहने वाला तनाव, आर्थिक कठिनाइयाँ तथा देखभाल संबंधी उत्तरदायित्वों का असमान वितरण पारिवारिक संबंधों में तनाव उत्पन्न कर सकता है। अतः यह अध्ययन कैंसर को केवल एक चिकित्सकीय समस्या के रूप में न देखकर परिवार–स्तरीय सामाजिक समस्या के रूप में समझने का प्रयास करता है। उपलब्ध साहित्य एवं द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष कैंसर पीड़ित व्यक्तियों एवं उनके परिवारों की सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक समस्याओं को समझने के लिए उपयोगी आधार प्रदान कर सकते हैं।

मुख्य शब्द : कैंसर, परिवार की गतिशीलता, पारिवारिक संबंध, देखभालकर्ता, सामाजिक समर्थन, आर्थिक बोझ।

1. परिचय :

कैंसर वर्तमान समय की प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्याओं में से एक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा अंतरराष्ट्रीय कैंसर अनुसंधान एजेंसी द्वारा प्रस्तुत वैश्विक अनुमानों के अनुसार, वर्ष 2022 में विश्व स्तर पर लगभग 2 करोड़ नए कैंसर मामले तथा लगभग 97 लाख कैंसर से संबंधित मौतें हुईं। इसी वर्ष लगभग 5.35 करोड़ लोग कैंसर के निदान के पश्चात पाँच वर्ष के भीतर जीवित थे। लगभग प्रत्येक पाँच व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को अपने जीवनकाल में कैंसर होने का अनुमान व्यक्त किया गया है। ये आँकड़े कैंसर के वैश्विक स्तर पर बढ़ते स्वास्थ्य बोझ को स्पष्ट करते हैं। कैंसर का प्रभाव केवल रोगी के शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके परिवार के सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक जीवन को भी प्रभावित करता है। जब किसी व्यक्ति को कैंसर होने की जानकारी प्राप्त होती है, तब उसका प्रभाव केवल उस व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि परिवार के सदस्य भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस परिस्थिति से प्रभावित होते हैं।

भारतीय समाज में परिवार व्यक्ति की देखभाल, भावनात्मक सहयोग तथा सामाजिक सुरक्षा का महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। कैंसर जैसी गंभीर एवं दीर्घकालिक बीमारी के दौरान परिवार के सदस्य उपचार की व्यवस्था करने, आर्थिक संसाधनों का प्रबंधन करने, रोगी की दैनिक देखभाल करने तथा उसे मानसिक संबल प्रदान करने जैसी अनेक जिम्मेदारियाँ निभाते हैं। इन अतिरिक्त जिम्मेदारियों के कारण परिवार की दैनिक दिनचर्या, भूमिकाओं का विभाजन, पारिवारिक संबंध तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिल सकते हैं। भारत में कैंसर के आर्थिक प्रभाव को समझने के लिए उपलब्ध राष्ट्रीय स्तर के अध्ययनों के आँकड़े विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। एक राष्ट्रीय प्रतिनिधि घरेलू सर्वेक्षण पर आधारित अध्ययन में कैंसर से प्रभावित परिवारों में अस्पताल में भर्ती उपचार के लिए स्वयं वहन किए गए स्वास्थ्य व्यय को सामान्य परिवारों की तुलना में काफी अधिक पाया गया। अध्ययन में यह भी पाया गया कि कैंसर से प्रभावित परिवारों में उपचार के लिए उधार लेने तथा संपत्ति बेचने की प्रवृत्ति अधिक थी। ऐसे परिवारों में अस्पताल–आधारित उपचार के लिए अतिरिक्त स्वयं वहन किया गया व्यय परिवार के सामान्य वार्षिक व्यय का लगभग 36 से 44 प्रतिशत तक था।

भारत में 2014 के राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वेक्षण पर आधारित एक अध्ययन में 65,932 परिवारों तथा 3,35,499 व्यक्तियों से संबंधित आँकड़ों का विश्लेषण किया गया। अध्ययन में पाया गया कि कैंसर के उपचार के लिए निजी स्वास्थ्य संस्थानों में होने वाला औसत कुल व्यय लगभग 84,320 रुपये था, जबकि सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थानों में यह लगभग 29,066 रुपये था। अध्ययन में यह भी पाया गया कि कैंसर से संबंधित अस्पताल में भर्ती होने वाले लगभग 40 प्रतिशत मामलों के उपचार का वित्तपोषण मुख्य रूप से उधार, संपत्ति की बिक्री अथवा मित्रों

एवं रिश्तेदारों के आर्थिक योगदान से किया जाता था (Rajpal, Kumar & Kumar, 2018)। इसके अतिरिक्त, निजी क्षेत्र में उपचार लेने वाले 60 प्रतिशत से अधिक परिवारों के स्वयं वहन किए गए व्यय ने उनके वार्षिक प्रति व्यक्ति घरेलू व्यय के 20 प्रतिशत से अधिक हिस्से को प्रभावित किया। इस प्रकार उपलब्ध आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि कैंसर परिवार की आर्थिक स्थिरता को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। चिकित्सा व्यय के साथ–साथ यात्रा, भोजन, आवास, देखभालकर्ता की कार्य–अनुपस्थिति तथा आय में कमी जैसे अप्रत्यक्ष खर्च भी परिवार की आर्थिक स्थिति पर अतिरिक्त दबाव डालते हैं। कई बार लंबे समय तक चलने वाला उपचार, बढ़ता हुआ चिकित्सा व्यय तथा भविष्य की अनिश्चितता परिवार को अत्यधिक तनाव, चिंता, मनोवैज्ञानिक दबाव एवं आर्थिक संकट की स्थिति में पहुँचा देते हैं। विशेष रूप से आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों में उपचार संबंधी व्यय के कारण बचत समाप्त होने, उधार लेने अथवा संपत्ति बेचने जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, रोगी या उसके देखभालकर्ता की कार्य–अनुपस्थिति तथा आय में कमी भी परिवार के आर्थिक संकट को बढ़ा सकती है। कैंसर का प्रभाव परिवार के भीतर संचार एवं पारस्परिक संबंधों पर भी पड़ता है। रोगी और देखभालकर्ता की मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ एक–दूसरे से जुड़ी होती हैं। यदि परिवार के सदस्य रोगी को पर्याप्त भावनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं तथा परिवार में प्रभावी संवाद बना रहता है, तो बीमारी से उत्पन्न कठिन परिस्थितियों के साथ अनुकूलन करने की क्षमता बढ़ सकती है। इसके विपरीत, लंबे समय तक बना रहने वाला तनाव, आर्थिक कठिनाइयाँ तथा देखभाल संबंधी जिम्मेदारियों का असमान वितरण पारिवारिक संबंधों में तनाव उत्पन्न कर सकता है। कैंसर से संबंधित उपलब्ध अध्ययनों में इसके चिकित्सकीय, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं पर पर्याप्त चर्चा की गई है। अनेक अध्ययनों में रोगी एवं देखभालकर्ता के पारस्परिक संबंध, देखभालकर्ता के बोझ, जीवन की गुणवत्ता, मनोवैज्ञानिक तनाव तथा कैंसर उपचार से उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों का अध्ययन किया गया है। इसके बावजूद परिवार की समग्र गतिशीलता को एक व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण से समझने की आवश्यकता बनी हुई है। परिवार की गतिशीलता को केवल रोगी अथवा देखभालकर्ता की व्यक्तिगत समस्या के रूप में न देखकर परिवार के भीतर होने वाले भूमिकागत परिवर्तन, पारस्परिक संबंध, निर्णय लेने की प्रक्रिया, आर्थिक समायोजन, सामाजिक समर्थन, भावनात्मक अनुभव तथा अनुकूलन की प्रक्रियाओं के समग्र संदर्भ में समझना आवश्यक है।

इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन "कैंसर पीड़ित व्यक्ति के परिवार की गतिशीलता पर आधारित : एक अध्ययन" विषय पर केंद्रित है। यह अध्ययन उपलब्ध शोध–पत्रों, प्रकाशित अध्ययनों तथा अन्य प्रासंगिक द्वितीयक स्रोतों के आधार पर कैंसर से प्रभावित परिवारों की सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक परिस्थितियों का विश्लेषण करता है।

2. साहित्य समीक्षा :

कैंसर और परिवार की गतिशीलता से संबधित साहित्य की समीक्षा मे कुछ प्रमुख अंतरराष्ट्रीय एंव राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित किए गए शोध पत्रों एवं प्रतिवेदन का अध्ययन किया गया है।

- **ली, क्यू., एवं लोक, ए. वाई.** (2014) ने कैंसर रोगी एवं उसके जीवनसाथी–देखभालकर्ता के बीच पारस्परिक प्रभाव से संबंधित उपलब्ध साहित्य की समीक्षा की। अध्ययन में संचार, पारस्परिक प्रभाव तथा रोगी और देखभालकर्ता के बीच समानता एवं असमानता को महत्वपूर्ण आयामों के रूप में प्रस्तुत किया गया। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि कैंसर की स्थिति में रोगी और देखभालकर्ता की समस्याओं को अलग–अलग देखने के

बजाय दोनों के पारस्परिक संबंधों एवं एक–दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव को समझना आवश्यक है।

- **बद्र, एच., बख्शाई, जे., एवं छाबड़िया, के. (2019)** ने कैंसर से उबर चुके व्यक्तियों तथा उनके देखभालकर्ताओं के संदर्भ में द्विपक्षीय हस्तक्षेपों की समीक्षा की। लेखकों ने इस बात पर बल दिया कि कैंसर से संबंधित स्वास्थ्य सेवाओं में केवल रोगी की आवश्यकताओं पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं है, बल्कि देखभालकर्ता तथा रोगी के आपसी संबंधों और दोनों की मनोसामाजिक आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।
- **स्ट्रेक, बी. पी., वार्डेल, डी. डब्ल्यू एंव अन्य (2020)** ने कैंसर रोगियों तथा परिवार के देखभालकर्ताओं में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं के पारस्परिक संबंधों की समीक्षा की। अध्ययन से यह संकेत मिला कि रोगी और देखभालकर्ता की मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार कैंसर से उत्पन्न तनाव एवं उसके प्रभावों को समझने के लिए रोगी एवं परिवार दोनों को अध्ययन की महत्वपूर्ण इकाई के रूप में देखना उपयोगी है।
- **टीटे, जे., एवं पोर्टर, एल. एस. (2022)** ने अपने अध्ययन डायडिक साइकोसोशल इंटरवेंशन्स फॉर पेशेंट्स विद कैंसर एंड देयर केयरगिवर्स : एन अपडेट मे कैंसर रोगियों एवं उनके देखभालकर्ताओं के लिए द्विपक्षीय मनोसामाजिक हस्तक्षेपों का अध्ययन किया। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि रोगी और देखभालकर्ता दोनों को एक साथ संबोधित करने वाले हस्तक्षेप मनोवैज्ञानिक अनुकूलन, पारिवारिक समायोजन तथा देखभालकर्ता के अनुभव को बेहतर बनाने में सहायक हो सकते हैं।
- **चेन, डी., लियू, क्यू., झांग, एल., एवं कियान, एच. (2025)** ने द्विपक्षीय मनोशैक्षिक हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता पर व्यवस्थित समीक्षा एवं मेटा–विश्लेषण किया। अध्ययन में पाया गया कि रोगी और देखभालकर्ता दोनों को सम्मिलित करने वाले हस्तक्षेप अवसाद के लक्षणों को कम करने तथा देखभालकर्ता के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में उपयोगी हो सकते हैं।

साहित्य के समीक्षात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कैंसर रोगी, देखभालकर्ता का बोझ, मनोवैज्ञानिक तनाव, जीवन की गुणवत्ता तथा आर्थिक बोझ जैसे विभिन्न आयामों पर पर्याप्त शोध उपलब्ध है। इसके बावजूद परिवार की समग्र गतिशीलता को एक समेकित दृष्टिकोण से समझने की आवश्यकता बनी हुई है। विशेष रूप से ऐसे अध्ययनों की आवश्यकता है, जिनमें कैंसर के कारण पारिवारिक संबंधों, भूमिकाओं के पुनर्वितरण, निर्णय लेने की प्रक्रिया, आर्थिक समायोजन, सामाजिक समर्थन, भावनात्मक परिवर्तनों तथा अनुकूलन की रणनीतियों को एक साथ समझने का प्रयास किया गया हो।

उपलब्ध साहित्य का एक महत्वपूर्ण भाग रोगी अथवा देखभालकर्ता के किसी एक विशिष्ट आयाम, जैसे मनोवैज्ञानिक तनाव, देखभालकर्ता का बोझ, जीवन की गुणवत्ता अथवा आर्थिक कठिनाई पर केंद्रित है। परिवार की आंतरिक संरचना तथा कैंसर के कारण उसमें होने वाले व्यापक सामाजिक एवं व्यवहारिक परिवर्तनों को समग्र रूप से समझने की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है। विशेष रूप से उपलब्ध आँकड़ों को परिवार की गतिशीलता के सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक आयामों के साथ समेकित करके देखने की आवश्यकता है। इसी शोध–अंतर को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन पूर्व प्रकाशित साहित्य एवं उपलब्ध द्वितीयक आँकड़ों के विश्लेषण के माध्यम से कैंसर पीड़ित व्यक्ति के परिवार की गतिशीलता को समग्र संदर्भ में समझने का प्रयास करता है।

3. शोध के उद्देश्य :

- कैंसर पीड़ित व्यक्तियों के परिवारों में कैंसर रोग के कारण उत्पन्न होने वाले पारिवारिक गतिशीलता का अध्ययन करना।
- कैंसर से उत्पन्न परिस्थितियों के अनुकूलन में परिवार द्वारा प्राप्त सामाजिक समर्थन, पारिवारिक संसाधनों एवं अनुकूलन रणनीतियों तथा उनके पारिवारिक जीवन एवं संबंधों पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

4. चर्चा एंव विश्लेषण :

कैंसर का प्रभाव केवल रोगी के शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहता, बल्कि परिवार के सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक जीवन में भी व्यापक परिवर्तन उत्पन्न करता है। कैंसर के निदान के बाद परिवार में भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों का पुनर्वितरण एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के रूप में सामने आता है। रोगी की देखभाल, अस्पताल में उसके साथ जाना, दवाओं एवं उपचार की व्यवस्था करना तथा दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी प्रायः परिवार के एक या कुछ सदस्यों पर अधिक केंद्रित हो जाती है। इससे देखभालकर्ता पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न हो सकता है तथा उसकी व्यक्तिगत, सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिविधियाँ प्रभावित हो सकती हैं। कैंसर परिवार के भीतर संचार और पारस्परिक संबंधों को भी प्रभावित करता है। रोग की गंभीरता, उपचार की अनिश्चितता, भविष्य की चिंता तथा आर्थिक समस्याएँ परिवार के सदस्यों के बीच तनाव उत्पन्न कर सकती हैं। दूसरी ओर, परिवार में प्रभावी संवाद, भावनात्मक सहयोग एवं आपसी विश्वास कठिन परिस्थितियों से सामना करने तथा बीमारी के साथ अनुकूलन करने की क्षमता को मजबूत कर सकते हैं।

उपलब्ध आर्थिक आँकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि कैंसर परिवार की आर्थिक संरचना को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण बीमारी है। भारत में राष्ट्रीय स्तर के अध्ययनों में कैंसर उपचार से संबंधित स्वयं वहन किए गए स्वास्थ्य व्यय को पर्याप्त रूप से अधिक पाया गया है। एक अध्ययन में कैंसर से प्रभावित परिवारों के अस्पताल–आधारित उपचार पर अतिरिक्त स्वयं वहन किए गए व्यय को सामान्य परिवारों के वार्षिक घरेलू व्यय के लगभग 36 से 44 प्रतिशत के बराबर पाया गया। इससे संकेत मिलता है कि कैंसर का उपचार परिवार के अन्य आवश्यक उपभोग व्ययों को भी प्रभावित कर सकता है। सामाजिक समर्थन परिवार की अनुकूलन क्षमता को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार, रिश्तेदार, मित्र, समुदाय तथा स्वास्थ्य सेवाओं से प्राप्त सहयोग रोगी और देखभालकर्ता दोनों को मानसिक एवं सामाजिक संबल प्रदान कर सकता है। पर्याप्त सामाजिक समर्थन उपलब्ध होने पर परिवार बीमारी से उत्पन्न तनाव तथा कठिनाइयों का अपेक्षाकृत बेहतर ढंग से सामना कर सकता है।

उपलब्ध शोध यह भी संकेत करता है कि रोगी एवं देखभालकर्ता को एक साथ संबोधित करने वाले परिवार–केंद्रित तथा द्विपक्षीय हस्तक्षेप रोगी एवं देखभालकर्ता दोनों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने और मनोवैज्ञानिक तनाव को कम करने में उपयोगी हो सकते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि कैंसर की देखभाल में रोगी के साथ–साथ उसके परिवार की आवश्यकताओं को भी समान महत्व दिया जाना चाहिए। सामाजिक कार्य के दृष्टिकोण से कैंसर से प्रभावित परिवारों के लिए मनोसामाजिक परामर्श, पारिवारिक परामर्श, देखभालकर्ता सहायता, आर्थिक एवं सरकारी सहायता योजनाओं की जानकारी, सामुदायिक संसाधनों से जोड़ना तथा पुनर्वास सेवाएँ महत्वपूर्ण हो सकती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की

पहचान करने, उपलब्ध संसाधनों तक पहुँच सुनिश्चित करने तथा रोगी एवं परिवार के बीच प्रभावी संवाद को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस प्रकार उपलब्ध द्वितीयक साहित्य एवं आँकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि कैंसर से प्रभावित परिवार की गतिशीलता को समझने के लिए केवल रोगी की बीमारी पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं है, बल्कि परिवार की संरचना, भूमिकाएँ, पारस्परिक संबंध, आर्थिक स्थिति, सामाजिक समर्थन, भावनात्मक अनुभव तथा अनुकूलन की रणनीतियों को एक साथ समझना आवश्यक है।

5. निष्कर्ष एंव सुझाव :

कैंसर एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या होने के साथ–साथ एक महत्वपूर्ण पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या भी है। इसका प्रभाव रोगी के शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहता, बल्कि परिवार की संरचना, आर्थिक स्थिति, भावनात्मक संबंधों, दैनिक जीवन तथा पारिवारिक भूमिकाओं को भी प्रभावित करता है। कैंसर के उपचार एवं देखभाल के दौरान परिवार के सदस्यों को अनेक नई जिम्मेदारियाँ स्वीकार करनी पड़ती हैं। देखभालकर्ता पर बढ़ती जिम्मेदारियाँ, उपचार का आर्थिक बोझ, भविष्य की अनिश्चितता तथा मनोवैज्ञानिक तनाव पारिवारिक संबंधों एवं जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। वहीं मजबूत पारिवारिक संबंध, प्रभावी संचार, सामाजिक समर्थन तथा सकारात्मक अनुकूलन रणनीतियाँ परिवार को इन कठिन परिस्थितियों से सामना करने तथा बीमारी के साथ समायोजन करने में सहायता कर सकती हैं। भारत में उपलब्ध आर्थिक आँकड़े कैंसर के पारिवारिक प्रभाव की गंभीरता को स्पष्ट करते हैं। उपचार पर होने वाला स्वयं वहन किया गया व्यय, उधार लेना, संपत्ति की बिक्री तथा आय में कमी जैसी परिस्थितियाँ परिवार की आर्थिक सुरक्षा को प्रभावित कर सकती हैं। इस प्रकार कैंसर को केवल चिकित्सा संबंधी व्यय के संदर्भ में देखना पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसके व्यापक पारिवारिक एवं सामाजिक–आर्थिक प्रभावों को भी समझना आवश्यक है। अतः कैंसर के उपचार में केवल रोगी की चिकित्सकीय आवश्यकताओं पर ध्यान देना पर्याप्त नहीं है। रोगी के साथ उसके परिवार को भी देखभाल की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में माना जाना चाहिए। परिवार–केंद्रित स्वास्थ्य सेवाएँ, मनोसामाजिक परामर्श, देखभालकर्ता सहायता तथा सामाजिक एवं आर्थिक सहयोग कैंसर से प्रभावित परिवारों की जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कैंसर प्रभावित परिवारों की समस्याओं को समझने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण आवश्यक है। सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक आयाम एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा इनमें होने वाला परिवर्तन परिवार की समग्र गतिशीलता को प्रभावित करता है। अतः कैंसर की देखभाल एवं उपचार की प्रक्रिया में परिवार को केवल रोगी के सहायक के रूप में नहीं, बल्कि देखभाल प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में देखना आवश्यक है। परिवार–केंद्रित स्वास्थ्य सेवाओं, सामाजिक कार्य हस्तक्षेपों, परामर्श सेवाओं, देखभालकर्ता सहायता तथा सामाजिक–आर्थिक सहायता को मजबूत करके कैंसर से प्रभावित परिवारों की कठिनाइयों को कम किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

- Akhtar, M. A., Roy Chowdhury, I., & Taneja, B. (2025).Healthcare utilisation and economic burden of cancer on Indian households. Scientific Reports, 15, Article 16780. https://doi.org/10.1038/s41598-025-01279-6

- Badr, H., Bakhshaie, J., & Chhabria, K. (2019).Dyadic interventions for cancer survivors and caregivers: State of the science and new directions. Seminars in Oncology Nursing, 35(4), 337–341. https://doi.org/10.1016/j.soncn.2019.06.004
- Chen, S., Liu, J., Xu, L., & Zhang, Z. (2022). Caregiver burden, family functioning, and adaptation among families of cancer patients. Cancer Nursing, Wolters Kluwer Health, China. Vol. 45. (4), 987–995.
- Chen, D., Liu, Q., Zhang, L., & Qian, H. (2025). Effectiveness of dyadic psychoeducational intervention on cancer patients and their caregivers: A systematic review and meta-analysis. Cancer Nursing, 48(4), 316–326. https://doi.org/10.1097/NCC.0000000000001307
- International Agency for Research on Cancer. (2020). Global cancer observatory: Cancer today (GLOBOCAN 2020). World Health Organization, Geneva.
- Li, L., Zhu, C., Yan, Q., Li, J., Chen, Y., & Hu, X. (2025). Effectiveness of dyadic interventions on quality of life for cancer patients and family caregivers: A systematic review and meta-analysis of randomised controlled trials. Journal of Clinical Nursing, 34(8), 3383–3405. https://doi.org/10.1111/jocn.17700
- Li, Q., & Loke, A. Y. (2014). A literature review on the mutual impact of the spousal caregiver–cancer patients dyads: "Communication," "reciprocal influence," and "caregiver–patient congruence." European Journal of Oncology Nursing, 18(1), 58–65. https://doi.org/10.1016/j.ejon.2013.09.003
- Prinja, S., Dixit, J., Gupta, N., Dhankhar, A., Kataki, A. C., Roy, P. S., Mehra, N., Kumar, L., Singh, A., Malhotra, P., Goyal, A., Rajsekar, K., Krishnamurthy, M. N., & Gupta, S. (2023). Financial toxicity of cancer treatment in India: Towards closing the cancer care gap. Frontiers in Public Health, 11, Article 1065737. https://doi.org/10.3389/fpubh.2023.1065737
- Rajpal, S., Kumar, A., & Joe, W. (2018). Economic burden of cancer in India: Evidence from cross-sectional nationally representative household survey, 2014. PLoS ONE, 13(2), Article e0193320. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0193320
- Streck, B. P., Wardell, D. W., LoBiondo-Wood, G., & Beauchamp, J. E. S. (2020). Interdependence of physical and psychological morbidity among patients with cancer and family caregivers: Review of the literature. Psycho-Oncology, 29(6), 974–989. https://doi.org/10.1002/pon.5382
- Tiete, J., & Porter, L. S. (2022). Dyadic psychosocial interventions for patients with cancer and their caregivers: An update. Current Opinion in Oncology, 34(4), 304–312. https://doi.org/10.1097/CCO.0000000000000835
- Wang, X., Zang, L., Hui, X., Meng, X., Qiao, S., Fan, L., & Meng, Q. (2025). Dyadic interventions

for cancer patient-caregiver dyads: A systematic review and network meta-analysis. International Journal of Nursing Studies, 161, Article 104948. https://doi.org/10.1016/j.ijnurstu.2024.104948

- World Health Organization. (2026, July 3). Cancer. Retrieved September 5, 2026, from https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/cancer
- Yadav, J., Menon, G. R., & John, D. (2021). Disease-specific out-of-pocket payments, catastrophic health expenditure and impoverishment effects in India: An analysis of National Health Survey data. Applied Health Economics and Health Policy, 19(5), 769–782. https://doi.org/10.1007/s40258-021-00641-9

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 34-40

Library Education for Sustainable Development : Empowering Knowledge, Innovation, and Inclusive Growth

Dr. Archana Dubey
St. Aloysius College, Jabalpur.

Abstract :

"Libraries are not a luxury but one of the necessities of life."
— Henry Ward Beecher

Sustainable development depends on equitable access to knowledge, quality education, digital inclusion, and lifelong learning. Libraries play a vital role in achieving these goals by providing reliable information, supporting research, promoting digital literacy, and preserving knowledge. Library and Information Science (LIS) education prepares future professionals with competencies in digital librarianship, information literacy, open science, research support, and emerging technologies such as artificial intelligence.

By integrating sustainability principles into LIS education, librarians become key contributors to the **United Nations Sustainable Development Goals (SDGs)** through community engagement, innovation, and equitable access to information. This paper examines the role of library education in promoting sustainable development, highlights emerging trends and challenges, and emphasizes the need for a future-oriented LIS curriculum to build inclusive, resilient, and knowledge-based societies.

Keywords : Sustainable Development, Library Education, SDGs, Information Literacy, Digital Libraries, Green Libraries, Open Access.

Library Education for Sustainable Development

1. Introduction :

The concept of sustainable development was formally introduced in the **Brundtland Report (1987)** as "development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs." The **United Nations' 2030 Agenda for Sustainable Development**, consisting of **17 Sustainable Development Goals (SDGs)**, highlights the importance of education, innovation, equality, environmental conservation, and inclusive societies.

Libraries have evolved from traditional repositories of books into dynamic learning and information centers. Library and Information Science (LIS) education has similarly transformed to prepare professionals capable of managing digital information, supporting research, promoting digital inclusion, and serving diverse communities. Library education therefore contributes significantly to sustainable development by creating skilled information professionals who facilitate equitable access to knowledge and lifelong learning.

2. Understanding Sustainable Development :

Sustainable development seeks a balance among three interconnected dimensions :

- **Environmental Sustainability:** Conservation of natural resources, climate action, and ecological balance.
- **Social Sustainability:** Education, equity, social justice, health, and inclusive communities.
- **Economic Sustainability:** Innovation, employment, responsible consumption, and long-term economic growth.

Libraries support all these dimensions by ensuring universal access to knowledge, promoting education, preserving cultural heritage, and reducing the digital divide.

3. Concept of Library Education :

Library education refers to the academic and professional training provided through Library and Information Science (LIS) programs. It prepares professionals to organize, manage, preserve, retrieve, and disseminate information effectively using both traditional and digital technologies.

Objectives of Library Education :

- Develop professional competencies in information organization.
- Promote information and digital literacy.
- Train professionals in emerging information technologies.
- Support research and innovation.
- Encourage ethical use of information.
- Foster lifelong learning.
- Promote inclusive access to information.

4. Role of Library Education in Sustainable Development

4.1 Promoting Quality Education (SDG 4) :

Library education develops professionals who support teaching, learning, and research through:

- Information literacy instruction
- Research support services
- Digital learning resources
- Open educational resources (OER)

- Academic integrity and plagiarism awareness

Libraries enhance equitable learning opportunities for all sections of society.

4.2 Supporting Digital Inclusion :

Modern library education emphasizes digital competencies, including :

- Digital libraries
- Institutional repositories
- Cloud-based library services
- Artificial Intelligence applications
- Data management
- Digital preservation

These competencies reduce the digital divide and ensure equitable access to information.

4.3 Promoting Open Access and Knowledge Sharing :

Library professionals advocate :

- Open Access publishing
- Institutional repositories
- Open Educational Resources
- Research data management
- Open science initiatives

Open access democratizes knowledge and supports sustainable academic growth.

4.4 Information Literacy for Sustainable Communities :

Information literacy enables individuals to :

- Locate authentic information
- Evaluate information critically
- Avoid misinformation
- Make informed decisions
- Participate effectively in democratic societies

Library education trains librarians to deliver effective information literacy programmes.

4.5 Supporting Research and Innovation :

Libraries facilitate :

- Literature searching
- Citation management
- Bibliometric analysis
- Research impact assessment
- Research data services

- Academic publishing support

These services strengthen research ecosystems and innovation.

4.6 Preserving Cultural Heritage :

Library education emphasizes preservation through :

- Digitization
- Digital archives
- Manuscript preservation
- Institutional memory
- Indigenous knowledge documentation

Preserving cultural heritage contributes to sustainable societies.

4.7 Environmental Sustainability and Green Libraries :

Library education increasingly incorporates environmental awareness by promoting :

- Paperless library services
- Energy-efficient buildings
- Green library practices
- Recycling initiatives
- Sustainable collection development

Libraries themselves become models of environmental responsibility.

5. Library Education and the Sustainable Development Goals (SDGs) :

SDG	**Contribution of Library Education**
SDG 4 – Quality Education	Information literacy, lifelong learning
SDG 5 – Gender Equality	Equal access to information
SDG 8 – Decent Work	Professional skill development
SDG 9 – Innovation	Digital technologies and research support
SDG 10 – Reduced Inequalities	Inclusive library services
SDG 11 – Sustainable Communities	Cultural heritage preservation
SDG 13 – Climate Action	Green library initiatives
SDG 16 – Peace and Justice	Access to reliable information
SDG 17 – Partnerships	Institutional collaboration

6. Emerging Technologies in Library Education :

Modern LIS education integrates emerging technologies such as :

- Artificial Intelligence (AI)
- Machine Learning
- Internet of Things (IoT)

- Blockchain
- Big Data Analytics
- Cloud Computing
- Digital Repositories
- Research Analytics
- Virtual and Augmented Reality
- Chatbots for library services

These technologies improve information access and enhance service delivery.

7. Competencies Required for Sustainable Library Professionals :

Future librarians require competencies in :

- Digital literacy
- Information management
- Research support
- Data curation
- Communication skills
- Leadership
- Project management
- Ethical information practices
- Community engagement
- Environmental awareness

Continuous professional development is essential to maintain these competencies

8. Challenges :

Despite significant progress, library education faces several challenges :

- Rapid technological changes
- Digital divide
- Limited funding
- Curriculum gaps
- Inadequate ICT infrastructure
- Copyright and licensing issues
- Shortage of trained faculty
- Cybersecurity concerns
- Resistance to change

Addressing these challenges requires coordinated institutional and governmental efforts.

9. Strategies for Strengthening Library Education -

To enhance the contribution of library education toward sustainable development :

- Revise LIS curricula based on SDGs.
- Integrate AI, data science, and digital humanities.
- Promote experiential and project-based learning.
- Strengthen industry-academia collaboration.
- Encourage interdisciplinary education.
- Expand online and blended learning opportunities.
- Promote international collaborations.
- Enhance research culture in LIS institutions.
- Support continuous professional development.
- Develop green library policies.

10. Future Directions :

Future library education should focus on :

- Sustainable information ecosystems
- Open science
- Artificial Intelligence in libraries
- Research data management
- Digital scholarship
- Smart libraries
- Community resilience
- Inclusive digital education
- Climate literacy
- Global knowledge partnerships

Library schools should prepare graduates capable of responding to future societal challenges through innovation and ethical information management.

11. Conclusion :

"Knowledge is power. Information is liberating." — *Kofi Annan*

Library education is a key driver of sustainable development, empowering information professionals to promote knowledge, innovation, digital inclusion, and lifelong learning. By integrating sustainability, emerging technologies, and ethical information practices into Library and Information Science (LIS) education, librarians become active contributors to achieving the **United Nations Sustainable Development Goals (SDGs)**.

As libraries evolve into digital knowledge hubs, LIS education must continuously adapt to

equip professionals with the skills needed to meet future challenges. Investing in library education is, therefore, an investment in sustainable communities, informed citizens, and a knowledge-based society.

"Libraries will get you through times of no money better than money will get you through times of no libraries." — *Anne Herbert*

A sustainable future begins with informed minds, and informed minds begin with libraries.

References (APA 7th Edition)

- International Federation of Library Associations and Institutions. (2015). *Libraries and the implementation of the United Nations 2030 Agenda*. The Hague: IFLA.
- United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development.*
- UNESCO. (2017). *Education for Sustainable Development Goals: Learning Objectives.*
- World Commission on Environment and Development. (1987). *Our Common Future*. Oxford University Press.
- Association of College and Research Libraries. (2016). *Framework for Information Literacy for Higher Education.*
- American Library Association. (2020). *Core Competences of Librarianship.*
- Corrall, S., Kennan, M. A., & Afzal, W. (2013). Bibliometrics and research data management: Emerging trends in library education. *Journal of Education for Library and Information Science*, 54(4), 257–270.
- Kumar, K. (2018). *Library Administration and Management*. Vikas Publishing House.
- Ranganathan, S. R. (1963). *The Five Laws of Library Science*. Asia Publishing House.
- Rubin, R. E. (2020). *Foundations of Library and Information Science* (5th ed.). ALA Editions.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 41-45

Multilingual Knowledge Societies : Language Policy, Education, and Inclusion

Dr. Asha Sisodiya
Professor, Department of Political Science,
PMCOE Government Nehru PG College, Agar Malwa.

Abstract :

Language plays a fundamental role in shaping how knowledge is created, shared, and accessed within contemporary knowledge societies. As globalization and technological advancement increase interactions across linguistic and cultural boundaries, education systems face the challenge of balancing national language policies with the need for inclusive and equitable learning environments. The paper examines the relationship between language policy, multilingual education, teacher agency, and inclusive knowledge creation through a qualitative comparative review of existing literature, international policy documents, and educational frameworks. The paper analyses multilingual education policies with particular emphasis on India and selected Sub-Saharan African countries to understand how language influences educational access, cognitive development, and social inclusion.

It further investigates the role of teachers in implementing multilingual pedagogies through classroom practices such as translanguaging and culturally responsive instruction. The findings indicate that multilingual education enhances educational participation, promotes deeper conceptual understanding, and supports multidisciplinary knowledge creation when supported by inclusive language policies and effective teacher preparation. However, challenges including the dominance of global languages, inadequate teacher training, and unequal policy implementation continue to limit the realization of equitable multilingual education. The paper argues that language diversity should be viewed not as a barrier but as an intellectual resource capable of enriching research, innovation, and social development. It concludes that strengthening multilingual education requires coordinated policy reforms, sustained investment in teacher professional development, and institutional recognition of linguistic diversity as an essential component of inclusive knowledge societies.

Keywords : Multilingual Education, Language Policy, Knowledge Creation, Teacher Agency, Social Inclusion.

1. Introduction :

The emergence of knowledge societies has transformed education into a primary driver of economic development, innovation, and social progress. Within these societies, language serves not only as a medium of communication but also as a fundamental mechanism through which knowledge is created, shared, and validated. As globalization and technological advancement increase linguistic diversity, educational systems must balance national language policies with equitable access to learning. However, the continued dominance of national and global languages often limits educational opportunities for minority language speakers, reducing both inclusion and the diversity of perspectives that contribute to knowledge creation.

The paper examines the relationship between language policy, multilingual education, teacher agency, and inclusive knowledge creation. Using a qualitative comparative analysis of India and selected Sub-Saharan African countries, it explores how multilingual education influences educational equity and multidisciplinary knowledge production while identifying strategies for strengthening multilingual knowledge societies.

Accordingly, the paper pursues four objectives. It examines the relationship between language policy and knowledge creation, analyses multilingual education, compares policies in India and Sub-Saharan Africa, and recommends strategies for strengthening multilingual knowledge societies. To achieve these objectives, the paper addresses three research questions: How do language policies influence knowledge creation? How does multilingual education promote educational inclusion? What role do teachers play in implementing multilingual education?

2. Research Methodology :

This paper adopts a qualitative comparative literature review based exclusively on secondary sources. Relevant peer-reviewed articles, books, UNESCO publications, and national policy documents were systematically reviewed to compare multilingual education policies in India and selected Sub-Saharan African countries. The analysis focuses on three dimensions: language policy orientation, teacher preparedness, and educational inclusion. As the paper relies solely on published literature and policy documents, its findings are interpretative rather than empirically generalizable.

3. Language Policy and Knowledge Creation :

Language policy determines the medium of instruction and significantly influences access to education, learning outcomes, and knowledge production. According to Spolsky (2004) and Tollefson and Tsui (2004), language policies reflect broader political, social, and economic priorities rather than purely linguistic decisions.

Research indicates that instruction in learners' mother tongue improves literacy, cognitive development, and classroom participation (UNESCO, 2003; Mohanty, 2019). In contrast, dependence

on dominant languages can marginalize minority communities and restrict indigenous knowledge systems. UNESCO therefore advocates mother tongue-based multilingual education as a means of promoting equitable and inclusive learning (UNESCO, 2003).

Beyond improving educational outcomes, multilingual instruction encourages intercultural understanding, collaborative learning, and intellectual diversity, thereby enriching multidisciplinary research and innovation (García & Wei, 2014). Effective language policies should therefore recognize linguistic diversity as an educational resource that supports both inclusive education and sustainable knowledge development.

4. Comparative Perspectives on Multilingual Education

4.1 India's Multilingual Education Policy :

India's multilingual education policy is guided by the Three-Language Formula and reinforced through the National Education Policy (NEP) 2020, which recommends mother tongue or regional language instruction at least until Grade 5 wherever possible (Government of India, 2020). These initiatives seek to balance regional languages, national integration, and global competitiveness while maintaining English as a global link language.

Despite policy support, implementation varies across states. The growing preference for English-medium education and limited institutional support for minority languages continue to create educational disparities (Mohanty, 2019). Nevertheless, India's multilingual framework reflects a strong commitment to linguistic diversity and inclusive education.

4.2 Multilingual Education in Sub-Saharan Africa :

Many Sub-Saharan African countries continue to rely on colonial languages as the primary medium of instruction. According to Ng?g? wa Thiong'o (1986), this limits learners' connection with indigenous knowledge systems and local cultures.

Consequently, several governments, including Kenya and South Africa, have introduced multilingual education reforms that encourage indigenous language instruction during the early years of schooling. However, implementation remains constrained by limited resources, inadequate teacher preparation, and socioeconomic inequalities (UNESCO, 2003).

The experiences of India and Sub-Saharan Africa demonstrate that successful multilingual education depends on coherent policy implementation, adequate resources, and sustained investment in teacher capacity.

5. Teacher Agency in Multilingual Classrooms :

Teachers serve as the primary implementers of language policy by translating institutional frameworks into classroom practice. Their instructional decisions directly influence learner participation, inclusion, and academic achievement.

One effective multilingual strategy is translanguaging, which enables learners to use their complete linguistic repertoire to strengthen understanding and collaborative learning (García & Wei, 2014). Such practices promote inclusive classrooms where linguistic diversity is recognized as an educational asset rather than a barrier.

Successful implementation requires continuous professional development in multilingual pedagogy, culturally responsive teaching, and assessment practices suitable for linguistically diverse classrooms. Strengthening teacher capacity is therefore essential for building equitable and inclusive knowledge societies (García & Wei, 2014).

6. Discussion and Key Findings :

The review identifies four major findings. First, language policy directly influences learners' access to quality education by determining the language of instruction. Second, mother tongue-based instruction improves literacy, comprehension, and long-term academic achievement. Third, teachers are central to implementing multilingual policies through inclusive classroom practices such as translanguaging. Finally, effective multilingual education depends on supportive policies, institutional commitment, and continuous professional development.

These findings suggest that multilingual education succeeds only when policy design, institutional support, and classroom practice function together. Policy reforms alone are insufficient unless teachers possess the skills and resources required to implement multilingual pedagogies effectively. Likewise, teacher preparedness cannot compensate for restrictive language policies that marginalize minority languages. Consequently, educational systems should integrate language planning, teacher development, and curriculum design to create genuinely inclusive knowledge societies capable of supporting innovation, cultural diversity, and multidisciplinary scholarship.

7. Conclusion :

This paper demonstrates that language policy, multilingual education, and teacher agency collectively influence inclusive knowledge societies. The analysis indicates that language policies determine equitable access to learning, multilingual instruction enhances cognitive and academic development, and teachers play a pivotal role in translating policy into effective classroom practice.

Although countries such as India and South Africa have strengthened multilingual education policies, challenges including unequal implementation, English-language dominance, and limited teacher preparation continue to affect educational outcomes. Addressing these challenges requires stronger policy implementation, sustained investment in teacher education, and greater recognition of linguistic diversity as an educational resource. By integrating inclusive language policies with effective classroom practices, education systems can strengthen social inclusion, promote innovation, and contribute to sustainable knowledge development.

References :

- García, O., & Wei, L. (2014). Translanguaging: Language, Bilingualism and Education. London: Palgrave Macmillan.
- Government of India. (2020). National Education Policy 2020. New Delhi: Ministry of Education.
- Mohanty, A. K. (2019). The Multilingual Reality: Living with Languages. Bristol: Multilingual Matters.
- Spolsky, B. (2004). Language Policy. Cambridge: Cambridge University Press.
- Tollefson, J. W., & Tsui, A. B. (2004). Medium of Instruction Policies: Which Agenda? Whose Agenda? Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum Associates.
- UNESCO. (2003). Education in a Multilingual World. Paris: UNESCO.
- wa Thiong'o, N. (1986). Decolonising the Mind: The Politics of Language in African Literature. London: James Currey.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 10-1

महाकवि भारतीयार की कृतियों में बाल–शिक्षा

डॉ. बी. मल्लिका
एम.ए., पी.जी.डी.टी., पीएच.डी.,
अतिथि शिक्षिका, हिंदी विभाग,
गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान (मानित विश्व विद्यालय), गांधीग्राम, तमिलनाडु।

बीज शब्द :–

सभी के लिए शिक्षा, बालिकाओं की शिक्षा, स्वतंत्र चिंतन, ज्ञान के साथ साहस–समानता, आधारित शिक्षा, नैतिक शिक्षा, देशभक्ति की शिक्षा, प्रमुख रचनाएँ, निष्कर्ष।

प्रस्तावना :–

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती (11 दिसम्बर 1882 – 11 सितम्बर 1921) तमिल भाषा के एक महान कवि, स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक और पत्रकार थे, जिन्हें 'महाकवि भारतीयार' के नाम से भी जाना जाता है। उन्हें आधुनिक तमिल कविता का अग्रदूत और भारत का पहला राष्ट्रवादी कवि माना जाता है। उनका जन्म तमिलनाडु के एट्टयपुरम में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाल्यकाल में ही उनकी प्रतिभा को पहचान कर एट्टयपुरम के राजा ने उन्हें 'भारती' (विद्या की देवी सरस्वती का वरदान) की उपाधि दी। किशोरावस्था में माता–पिता के निधन के बाद, उच्च शिक्षा के लिए वे काशी (वाराणसी) गए। वहाँ उनका परिचय हिंदू अध्यात्म और राष्ट्रवाद से हुआ, और उन्होंने हिंदी, संस्कृत, बंगाली, अंग्रेजी और फ्रेंच सहित कई भाषाओं में दक्षता हासिल की। बनारस प्रवास के दौरान वे राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गए और कांग्रेस की सभाओं में भाग लेने लगे। भगिनी निवेदिता और अरविंद घोष के विचारों ने उन्हें गहराई से प्रभावित किया। वे 'स्वदेशमित्रण' (तमिल दैनिक), 'इंडिया' (तमिल साप्ताहिक) और 'बाला भारतम' (अंग्रेजी साप्ताहिक) जैसे समाचार पत्रों के संपादन से जुड़े थे। वे उत्तर और दक्षिण भारत के बीच एकता के सेतु थे। उनकी प्रसिद्ध कविता 'यह है भारत देश हमारा' में उन्होंने पूरे देश के गौरव का वर्णन करते हुए एकता का संदेश दिया। वे जाति–भेद, बाल–विवाह और स्त्री–शोषण जैसी कुरीतियों के घोर विरोधी थे। उन्होंने महिला सशक्तिकरण और समानता की वकालत की, और नारी शक्ति को राष्ट्रीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया। महाकवि भारतीयार ने बच्चों की शिक्षा को अत्यंत महत्व दिया है। उनकी दृष्टि में शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान अर्जित करना मात्र नहीं है, बल्कि ज्ञान, चिंतन, साहस, नैतिकता, आत्मसम्मान, समानता और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना है। वे चाहते थे कि बच्चे बचपन से ही उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त करें और स्वतंत्र रूप से चिंतन करने में सक्षम बनें। इस लेख में मैंने सुब्रमण्यम भारती और बाल शिक्षा पर एक अध्ययन किया है।

1. सभी के लिए शिक्षा :–

भारतीयार की रचनाओं में यह भावना मिलती है कि बच्चों को शिक्षा प्राप्त करना उनका मौलिक अधिकार

है। उन्होंने जाति, आर्थिक स्थिति, लिंग आदि भेदों के आधार पर शिक्षा से वंचित करने का विरोध किया।

''अन्नसत्रम् आयिरम् वैत्तल्,
आलयम् पदिनायिरम् नाट्टल्,
अन्न याविनुम् पुण्णियम् कोडि,
आङ्गो ऐक्कु एत्तरिवित्तल्।''

'हजार अन्नदानशालाएँ बनाना और दस हजार मंदिर बनाना' इन सब पुण्य कार्यों से भी करोड़ गुना अधिक पुण्य है किसी गरीब व्यक्ति को शिक्षा देना। यह भारती के "सभी के लिए शिक्षा" संबंधी विचार को बहुत स्पष्ट रूप से व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ हैं। उन्होंने अपनी कई कविताओं में कहा है कि शिक्षा समाज में प्रचलित अंधविश्वासों, जातिवाद और भेदभाव को जड़ से उखाड़ने का आधार है।

2. बालिकाओं की शिक्षा :-

भारतीयार मानते थे कि सामाजिक प्रगति के लिए बालिकाओं की शिक्षा अनिवार्य है। उन्होंने प्रगतिशील विचार रखा कि बालिकाएँ भी बालकों के समान शिक्षा ग्रहण करें तथा ज्ञान और कौशल में आगे बढ़ें।

- **'पूट्टै तिरप्पधु कैयाले'** – ताला खोलने के लिए बस हाथ का कौशल चाहिए। यह एक साधारण, शारीरिक क्रिया है।
- **'मंदिरै तिरप्पधु मदियाले'** – किसी अच्छी सभा या मंच का उद्घाटन करने के लिए बुद्धि, विवेक और योजना की आवश्यकता होती है। यह उस सरल कार्य से कहीं अधिक गहन है।
- **'पाट्टै तिरप्पधु पण्णाले'** – गीत को गाने/प्रस्तुत करने के लिए संगीत का ज्ञान, सुर और लय आवश्यक है – यह कला और कौशल माँगता है।
- **'इन्ब वीट्टै तिरप्पधु पेण्णाले'** – आनंद, प्रेम, कृपा, करुणा, संस्कार, और घर के सुख–शांति का द्वार खोलने का काम स्त्री (नारी) के पास है।

यहाँ 'is.' (स्त्री) को केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि शक्ति, ममता, सौम्यता, और जीवन के सारे आनंद का स्रोत बताया गया है। भारतीयार इस कविता के माध्यम से स्त्री की महिमा का गुणगान करते हैं। वे कहते हैं – 'हाथ ताला खोल सकता है, बुद्धि सभा खोल सकती है, स्वर गीत खोल सकता है, परंतु जीवन का वास्तविक आनंद, सुख–शांति और घर की गर्माहट' यह सब नारी के द्वारा ही संभव है। यह पंक्ति नारी को जीवन के सबसे उच्चतम आनंद का द्वार मानती है।

3. स्वतंत्र चिंतन :-

भारतीयार चाहते थे कि शिक्षा के माध्यम से बच्चे स्वयं सोचना, प्रश्न पूछना और सत्य को जानना सीखें। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को अंधविश्वासों का पालन न करके तर्कसंगत जीवन जीने योग्य बनाना है। यह भी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की एक प्रसिद्ध कविता है, जिसमें किसी महान व्यक्ति (संभवतः देश के नेता या किसी आदर्श व्यक्ति) का आह्वान किया गया है।

''एंगुम् सुतंतिरम् एन्बदे पेच्चु – नाम्
एल्लोरूम् सममेन्बदु उरूतियाच्चुय
संगु कोंडे वेन्रि ऊदु वोमे – इदैत्
तरणिक्केल्ल लामोडुत्तु ओदुवोमे!''

हर जगह स्वतंत्रता की ही चर्चा है –

हम सभी के समान होने की बात निश्चित (पक्की) हो गई है।

आइए, शंख (नाद) के साथ विजय की घोषणा करें –

इसे पूरी दुनिया (पृथ्वी) तक पहुँचाकर (प्रचारित करके) सुनाएँ!

भारतीयार ने अपनी कविताओं में 'हम आजाद होने से पहले ही आजाद थे' जैसे शब्दों के माध्यम से हमारी आजादी के सपने को साकार किया है।

4. ज्ञान के साथ साहस :-

शिक्षित बच्चे निडर होकर कार्य करें – यह भारतीयार की मान्यता थी। उनके अनुसार ज्ञान और साहस का संगम ही एक सशक्त व्यक्तित्व का निर्माण करता है। उनकी प्रसिद्ध पंक्तियाँ :

'अच्चमिल्लई अच्चमिल्लई/अच्चमेन्पधु इल्लैये' 'भय नहीं, भय नहीं 'भय नाम की कोई चीज ही नहीं।' यह बच्चों के व्यक्तित्व–निर्माण में साहस का महत्व बताती हैं। यह भी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की एक प्रसिद्ध कविता है,

''लि पडैत्त कण्णिनाय् वा वा वा
उरूति कण्ड नेंजिनाय् वा वा वा
कळि पडैत्त मोर्घियिनाय् वा वा वा
कडुमै कण्ड तोळिनाय् वा वा वा
तेळिवु पऱ मतियिनाय् वा वा वा''

इस कविता में कवि एक ऐसे नायक का आह्वान कर रहे हैं जिसमें सभी गुण हों – जिसकी आँखों में तेज हो, दिल में दृढ़ संकल्प हो, वाणी में आनंद (उत्साह) हो, कंधे शक्तिशाली हों (यानी मेहनत करने की क्षमता हो) और बुद्धि निर्मल तथा स्पष्ट हो। कवि बार–बार कहते हैं कि ऐसे गुणों वाले व्यक्ति आओ, आओ, आओ (हमारी सहायता करो और इस देश का नेतृत्व करो)।

5. समानता-आधारित शिक्षा :-

भारतीयार बचपन से ही बच्चों में जातिगत भेदभाव रहित समानता की भावना विकसित करने पर बल देते हैं –

'सादिगल इल्लैयडि पाप्पाय / कुलत्थाच्चि उयर्च्चि सोल्लल पावम्'

इस कविता की अर्थ : **'हे बच्चे, जातियाँ नहीं हैं, ऊँच-नीच कहना पाप है।'**

"सब एक ही कुल (वंश) के हैं, सब एक ही जाति (प्रजाति) के हैं,

सब भारतीय लोग हैं! सबका एक ही मूल्य (गरिमा) है, सबकी एक ही कीमत है।

इस देश के सब राजा (स्वामी) हैं – हम।" ये पंक्तियाँ शिक्षा के उच्चतम उद्देश्य 'सामाजिक समानता' को दर्शाती हैं। यह कविता भारतीय एकता और समानता का संदेश देती है। इसमें कहा गया है कि जाति, धर्म या वर्ग का भेदभाव किए बिना सभी भारतीय एक हैं। सभी का सम्मान और अधिकार एक समान है, और इस देश के असली मालिक हम सभी लोग हैं।

6. नैतिक शिक्षा :-

'पाप्पा पाट्टु', 'पुधिया आत्तिचूड़ि' जैसी रचनाओं में बच्चों के लिए नैतिक शिक्षा प्रचुर मात्रा में मिलती है।

प्रेम, सत्य, परिश्रम, परोपकार और जीवों के प्रति दया जैसे सद्‌गुण बच्चों को सिखाने पर उन्होंने जोर दिया।

"वयिट्टुक्कुच् सोरूण्डु कण्डीर – इंगु
वाछ्म मनिडरघ्ल् लोर्क्कुमय
पयिट्रि उळुतुण्डु वाङ्वीर – पिर
ंपंगैत् तिरूडुतल् वेण्डाम्!"

यह भी महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की ही एक प्रसिद्ध कविता है, जो कर्म और आत्मनिर्भरता पर आधारित है। इस कविता में कहा गया है कि संसार में किसी को भूखा नहीं रहना पड़ेगा, क्योंकि सबके लिए भोजन पर्याप्त मात्रा में मौजूद है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि हम आलस्य करें। हमें स्वयं मेहनत करके (कृषि करके) अपनी रोटी कमानी चाहिए। दूसरों के अधिकारों को छीनना या उनकी मेहनत की कमाई चुराना पाप है।

7. देशभक्ति की शिक्षा :–

भारतीयार चाहते थे कि बच्चे अपने देश का इतिहास, संस्कृति और सामाजिक उत्तरदायित्व जानकर बड़े हों। शिक्षित युवा पीढ़ी राष्ट्र की प्रगति के लिए समर्पित हो – यह उनकी अपेक्षा थी।

"भारत समुदायम् वा्कवे! – वा्क वा्क!
भारत समुदायम् वा्कवे! – जय जय जय!
मुप्पदु कोडि जनंगळिन् संगम् – मुमैक्कुम् पोदु उडैमै
ओप्पि लाद समुदायम् – उलगत् तुक्कोरु पुदुमै – वा्क!" इस कविता में कहा गया है कि
भारत समाज जीवित रहे (अमर रहे)! – जीवित रहे, जीवित रहे!
भारत समाज जीवित रहे! – जय जय जय!
तीस करोड़ लोगों का समूह (संघ)
संपूर्णता के लिए साझी (सामूहिक) संपत्ति –बेजोड़ (अद्वितीय) समाज
दुनिया के लिए एक नई चीज (नवीनता) – जीवित रहे (अमर रहे)!
वैसे भारती के और एक स्वतंत्रता पूर्ण कविता है –

"तायिन मणिक्कोडि पारीर
तालंदु पणिन्दु पुगलंदिड वारीर
ओंगी वलर्धदोर कम्बम – अदन
उच्चियिन मेल वन्दे मातरम एन्रे"।

यह भी भारती की प्रसिद्ध देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना कविता है।

कवि भारती कहते हैं कि सब लोग तिरंगे झंडे को देखो और उसका अभिवादन करो। वह झंडा ऊँचे मस्तूल पर फहराया गया है जिस पर 'वंदे मातरम्' लिखा है, और वह अपनी रोशनी बिखेरता हुआ लहरा रहा है।

प्रमुख रचनाएँ :–

बाल–शिक्षा संबंधी भारतीयार के विचारों के अध्ययन के लिए निम्नलिखित कृतियाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं –

- पाप्पा पाट्टु (बाल–गीत)
- बाल–कविताएँ

- स्वदेशी गीत
- पुधिया आत्तिचूड़ि (नई आत्तिचूड़ि – नैतिक सूक्तियाँ)
- स्त्री–स्वातंर्त्य संबंधी कविताएँ।

निष्कर्ष :-

भारतीयार की शिक्षा–संबंधी चिंतन में बच्चा केवल ज्ञानार्जन करने वाला छात्र नहीं है, बल्कि एक स्वतंत्र रूप से सोचने वाला, निडर, समानता का सम्मान करने वाला, सदाचारी और भावी समाज का सशक्त नागरिक बनने योग्य है। इस प्रकार, बच्चे के बौद्धिक विकास के साथ–साथ उसके शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक चेतना एवं व्यक्तित्व विकास को समग्रता में देखना ही भारतीयार की शिक्षा–चिंतन की विशिष्टता है। भारथियार बच्चों को भारत के भविष्य के स्तंभ मानते थे और उन्हें विश्वास था कि उनमें अच्छी आदतें और विचार विकसित करके भारत के लिए एक बेहतर भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। इसीलिए भरथियार ने अपने गीतों के माध्यम से महिलाओं की शिक्षा, गरीबों की शिक्षा, मुक्त भारत की शिक्षा, सर्वश्रेष्ठ छात्रों की शिक्षा, अनुशासित समाज की शिक्षा और देशभक्ति पर आधारित बच्चों की शिक्षा के महत्व के बारे में बात की। इसलिए, इस बात को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने कई अच्छी कविताओं को प्रेरित किया है। उनकी कविता को सपनों का स्मारक बनाने में बच्चों की भूमिका आज भी पूरी तरह से मौजूद है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीयर कवितैगल – विकटन पब्लिकेशन, चेन्नई।
2. भारती कुंतै इलक्कियम – न्यू सेंचुरी बुक हाउस, चेन्नई।
3. महाकवि भारतीयर कवितैगल – श्री सेन्भग पतिपगम चेन्नई।
4. महाकवि भारतीयर कवितैगल कविता पब्लिकेशन चेन्नई।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 51-54

रोजी–रोटी का संघर्ष – अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद

हिन्दी प्राध्यापक, एस.आर.आर–सी.वी.आर शासकीय महाविद्यालय (स्वा), विजयवाडा।

अर्थ की असमानता मानव समाज के क्रियाकलाप, खान–पान, रहन–सहन को अस्त–व्यस्त कर देती है। भारतीय समाज के विकास की प्रारंभिक अवस्था में सम्पत्ति पर धनिक वर्ग का पूर्ण अधिकार था तथा वे उसका उपभोग भी अपनी आवश्यकतानुसार स्वतंत्र रूप से करते थे। इससे उसकी आर्थिक स्थिति सदृढ़ थी जबकि अन्य लोग उन पर आश्रित होने के कारण हीनतर होते चले गये थे। उस समय आर्थिक असमानता का मूल कारण धनिक वर्ग द्वारा वैयक्तिक धन संचय तथा अन्य लोगों का दिन–प्रतिदिन हीनतर होना ही था, जिसने समाज में आर्थिक संघर्ष का बीजरोपण किया। इसी से पूंजीवाद का जन्म भी हुआ। उस के बाद ज्यों–ज्यों समाज विभिन्न जातियों, उप जातियों मे विभक्त होता रहा त्यों–त्यों सामन्तों तथा धनाढ्य श्रेणियों के पास शक्ति तथा धन पूंजीभूत होता गया। धीरे–धीरे पूँजीवाद ने अपने आश्रयदाता सामन्तवाद का भक्षण किया तथा पूंजी के साथ एक प्रकार से शक्ति का भी एकाधिकार कर लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य की अपेक्षा समाज में धन को अधिक महत्व दिया जाने लगा तथा उसी समाजिक स्थिति भी आर्थिक स्थिति से निश्चित हो गई। भिन्न–भिन्न आर्थिक स्थिति से समूहों में वेश–भूषा, खान–पान, रहन–सहन तथा सोच–विचार में अंतर होने के कारण सामाजिक दूरियाँ भी बढ़ती जा रही हैं। जिस कारण समाज में भिन्न–भिन्न वर्गों के लोगों में संघर्ष उत्पन्न होता जा रहा है। यह संघर्ष आज संपूर्ण विश्व के शोषक तथा शोषितों में, अमीरों तथा गरीबों में, मालिक तथा श्रामिकों में दृष्टिगोचर होता है।

आज के युग में रोजी–रोटी का प्रश्न बहुत ही भयंकर समस्या बन गया है। यह संघर्ष विशेषतः ग्रामीण प्रांतों में अधिक दिख पड़ रही है। आर्थिक असमानता से जो व्यक्ति गरीब है वह दिन–ब–दिन और भी गरीब होता जा रहा है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों में रोजी–रोटी का संघर्ष केवल मजदूर या निम्न वर्ग में ही नहीं पायी जाती। अन्य वर्गों में भी ये संघर्ष पर्याप्त मात्रा में दिखाई हैं। रोजी–रोटी के लिए विभिन्न हुनरों के द्वारा गरीब लोग अपना पेट भरते हैं। 'विदूषक' कहानी में सफूल उर्फ शरफुल हसन को अपना पेट भरने के लिए अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। "सफूल बासी–कूसी खा–पीकर जोंकोंवाली हाँड़ी उठाकर दूर–दूर के गाँवों की ओर निकल जाता। जिस्म में कैसी भी बड़ा से बड़ा फोड़ा हो, सफूल उसे टीक करने का दावा करता था। रोगी घबराता हुआ उसके पास आता, हाँड़ी में रेंगते हुए मोटे–मोटे काले–भूरे जोंकों को देखकर डरता, पर सफूल उसे सांत्वना देता, गाना सुनाकर रिझाता और दूसरी ओर देखने का आदेश देकर फोंडे पर जोंक चिपका देता।"[1]

इस प्रकार सफूल अपना जीविका चला रहे थे। फिर भी उसका धंधा देन–ब–दिन चौपट होता गया। क्योंकि अब गाँवों में भी लोग डॉक्टरों से दवा ले रहे थे। "अतः वह जोंकों वाला धंधा छोड़ कर भाटों का धंधा अपना लिया। किसी के यहाँ शादी पड़ती, बच्चा पैदा होता या मरनी करनी होती तो अब वह बिना बुलाए वहाँ पहुँच जाता और अपने हास्यास्पद क्रियाकलापों से रुपया दो रुपया पा जाता।"[2] अब वह विदूषक बनकर अपनी जीविका चला रहे थे। मन में कितना भी दुःख क्यों न हो बाहर हँसी दिखाकर सभी को हँसाने का काम रहे थे। अपने बच्चे का इलाज करने के लिए पैसे कमाने चाहा। कर्मनाशा के किनारे बाढ़ को देखने के लिए गाँव के लोग छाता लगाए किनारे खड़े थे। वहाँ किसी ने कहा कि –

"सफूल, जरा मजा लगाओ।
.....दो रुपया मिलेगा सफूल अगर तुम इसमें कूद जाओ।
कूद जाओ सफूल रुपया मत छोड़ो।
आज देखें सफूल के पास कितने करतब हैं।
तरह–तरह की आवाजें आ रही थीं और सफूल का मस्तिष्क तेजी से घूम रहा था।
... सफूल ने एक बार जल की विषम लहरों को देखा और एक बार भीड़ की ओर।

वाह सफूल, तुम्हारे वास्ते क्या है अरे यार थोड़ा मजा लगा दो न। कूदकर निकल आना फिर। हम पार जाने को थोड़े कह रहे हैं।
या मालिक तेरी शान।

वातावरण में एक चीखती हुई आवाज गूँज गई और छपाक् के साथ सफूल का शरीर कर्मनाशा की लहरों में गिर पड़ा।

लोग बहुत देर तक किसी चमत्कार की आस में कर्मनाशा की लहरों को देखते रहे, फिर निकल आओ सफूल अब निकल आओ जैसे वाक्य हवा में उभरने लगे।"[3] पर सफूल बाहर न आया। अपनी रोजी रोटी के लिए उसे अपना प्राण अर्पण करना पड़ा।

'कितने–कितने सवाल' कहानी संग्रह की 'मुर्दे चेहरों के लिए' कहानी में बब्बू जिस जगह काम करता है वहाँ इतने कष्टों का सामना करना पड़ता है कि–"छुट्टियों में ही नहीं साहब, रात में सोते हुए से जगाकर यहाँ काम लिया जाता है। जो आदमी छुट्टी लेता है, उसकी तनख्वाब काट ली जाती है। कोई आदमी परमानेंट नहीं किया जाता। जब जिसको चाहा निकाल दिया। बीमार पड़ने पर भी तनख्वाह कट जाती है। राष्ट्रीय त्योहारों के दिन भी छुट्टी नहीं होती।"[4] इस प्रकार मजदूर तथा श्रमिकों को अपनी रोजी रोटी के लिए अनेक संघर्ष सामना करना पड़ता है।

'टूटा हुआ पंख' कहानी संग्रह की 'शीरमल का टुकड़ा' कहानी में एक छोटी बच्ची महरून की हृदय वेदना का चित्रण किया गया। उसे तथा उसकी माँ को अपनी जीविका चलाने के लिए एक शादी वाले घर में काम करने लगे। महरून अपनी अम्माँ के साथ नल पर बैठी बर्तन धो रही है और बड़े आदमियों के चोचलों पर गौर कर रही है।

"भला बताओ कितने निर्दयी हैं ये लोग, वह सोचती है, खुद तो सुबह चाय पी, फिर जमकर नाश्ता किया और न उसे कुछ दिया गया न उसकी अम्माँ को। और वे दोनों मिलकर कितनी मेहनत करती हैं। शादी वाले दिन के तीन दिन पहले से वे काम में जुटी हुई हैं। उसकी अम्माँ कितना काम करती हैं। बर्तन माँजना, मसाला

पीसना, चावल बीनना..न जाने कितने–कितने काम .....अरी कमक्त तुझे खयाल क्यों रहेगा भला ...सुनती है नसीबन, मसाला पीसकर जरा परात में आटा लेकर भिगो डाल..।"[5] इस प्रकार महरून तथा उसकी माँ को अपनी रोजी–रोटी के लिए अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। "महरून की भूख तीव्र हो गई और वह वहीं बैठ गई। ..वह बिलकुल नमाज पढ़ने के अन्दाज में बैठ गई और नमाज पढ़ने की नकल करने लगी। बार–बार वह सजदे में जाती और उठकर दोनों हाथ फैलाकर दुआ माँगती। और इस दौरा वह थोड़ा–सा आगे खिसक जाती। इस प्रकार वह शीरमाल के एक टुकड़े तक पहुँच गई। वह सजदे में गई तो उसका हाथ शीरमाल के टुकड़े पर पड़ गया। उसने खूब मजबूती से टुकड़े को पकड़ लिया और सजदे से उठकर अपना दुपट्टा ठीक करने के बहाने उसने एक नजर प्लेट में पड़े शोरबे की ओर देखा और कुछ सोचकर उठ गई। तभी शायद उसे लगा कि शीलमाल का टुकड़ा बड़ा है, या उसने सोचा हो कि कहीं लोग यह न सोचें कि यहाँ पड़ा टुकड़ा क्या हुआ।. . दुपट्टे के नीचे ही छिपाकर उसने उस टुकड़े को दो टुकड़ों में विभाजित किया और उसी तरह सजदे में जाकर एक टुकड़ा पूर्ववत् रख दिया। अब वह इत्मीनान से उठी और शीरमाल का शेष भाग दुपट्टे में छिपाए बाहर चली गई।"[6] इस प्रकार मेहरून अपनी भूख मिटाने के लिए एक शीरमाल का टुकडे के लिए संघर्षों का सामना करती तथा शीरमाल का टुकड़ा लेकर भूख से लड़ने की चेतना दिखाई।

'अतिथि देवोभव' कहानी संग्रह की 'खाल खींचनेवाले' कहानी का नायक भुनेसर की रोजी–रोटी संघर्ष का चित्रण किया गया।

भुनेसर एक खाल खींचने वाला है। वह अपने घर को जब घर में रहते हुए देखता है, तो लगता है कि संसार में यह गर ही एक मात्र उसकी शरणस्थली है। उसकी पारिवारिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। घर में मेहनत करके कमाने वाला सिर्फ वही है। "मेहरारू बुढ़िया हो गई है, काम करने में सर्वथा अशक्त। लड़का लफंगा निकल गया है। बसंतिया के घर वालों ने उसे निकाल दिया है और वह भुनेसर के सिर पर पड़ी हुई है, पेट में बच्चा लिए।"[7] वह कड़ी मेहनत करके बैल का खाल खींच लेता है। "खाल को चौपरत कर सिर पर उठाया और चल पड़ा। हालाँकि भूख और थकान से उसकी आँखें निकली जा रही थीं, लेकिन उस घड़ी की कल्पना करके–जिसमें उसकी हथेली पर हरे–हरे नोट होंगे, वह अतिरिक्त उत्साह से भर उठा। पच्चीस से कम तो नहीं मिलना चाहिए, उसने मन–ही–मन सोचा और अपने हिसाब में व्यस्त हो गया। पाँच रुपिया तो मालिक का हक हो जाएगा, बीस रुपिया में बसंती के लिए सोंठ–गुड़ और घर के लिए आटा–दाल। खपड़े का इंतजाम फिर बाद में होगा।"[8] ऐसा सोचते–सोचते वह बाजार पहुँचा। उसने खाल का दाम तीस रुपया बताया। एक पढ़े–लिखे नौजवान बीस देने के लिए तैयार हो जाता। इतने में बड़े मियाँ वहाँ पहुँचता। उसे देखकर वह व्यापारी नौ दो ग्यारह हो गये। बड़े मियाँ भुनेसर को बुलाया तथा मुनासिब दाम देने की वादा किया। पर शाम तक चमड़ों पर नमक लगाने का काम करवाकर सिर्फ पंद्रह रुपया हाथ में रख लेता। इस प्रकार समाज में मजदूर तथा श्रमिक बड़े मियाँ जैसे पूँजीवादी के लोगों के हाथों में धोखा खा रहे थे। भुनेसर मुँह खोलकर कुछ कहना चाहता, पर कह न सका। उसकी संघर्ष–चेतना आंतरिक ही रह गयी। वह मन में सोचता कि– "हम लोग मुर्दा जानवरों की खाल उतारते, लेकिन इस दुनिया में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो जिंदा आदमियों की खाल खींचते हैं और उन्हें दर्द तो दूल, घिन भी नहीं लगती।"[9]

समाज में केवल नौ जवान ही नहीं बूढ़े लोगों को भी अपनी रोजी–रोटी के लिए संघर्ष करना पड़ता है। पारिश्रामीकरण तथा बाजारीकरण के कारण मानवों में मूल्यों का ह्रास हो रहा था। बच्चे अपने माँ–बाप को बोझ

समझ रहे हैं। जिसने उसका जन्म दिया, पाला–पोसा तथा पढ़ा–लिखा कर बढ़ा कर दिया उनके प्रति जो कर्त्तव्य है उसे निभाने के बिना आज के संतान अपने माँ–बाप को घर से बाहर करके, उन्हें मुसीबतों में डाल रहे हैं। इस कारण वृद्धावस्था में माँ–बाप को अपनी रोजी–रोटी के लिए संघर्षों का सामना करना पड़ता है। इसका वर्णन अब्दुल बिस्मिल्लाह ने 'चमगादड़' कहानी में चित्रण किया।

करीम बूढ़े के तीन जवान लड़के थे। उन में एक लड़का खेती–बाड़ी में लग गया तथा बाकी दोनों पास के बाजार में छोटी–मोटी दुकानें खोल लीं। अब वह आराम से अपना जीवन व्यतीत करना चाहा। पर बेटों ने उसे बे–घर कर दिया। पहले वह चिंतित हो गया, बाद में यह सोचकर उत्साहित हो उठा कि – "कोई मुश्किल नहीं, जिसने मुँह चीरा है वह उस में दाने भी डालेगा, वह मन–ही–मन बुदबुदाया। फिर उसने अपना सामान समेटना शुरू कर दिया जो वहाँ इस प्रकार तितर–बितर पड़ा था, जैसे मुर्गे–मुर्गियों ने बिखेरा है।"[10]

संदर्भ-सूची –

1. ताकि सनद रहे, रैनबसेरा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 27
2. ताकि सनद रहे, रैनबसेरा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 28
3. ताकि सनद रहे, रैनबसेरा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 29
4. ताकि सनद रहे, कितने–कितने सवाल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 139
5. ताकि सनद रहे, टूटा हुआ पंख, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 194
6. ताकि सनद रहे, टूटा हुआ पंख, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 196
7. अतिथि देवोभव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 56
8. अतिथि देवोभव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 60
9. अतिथि देवोभव, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 62, 63
10. रफ रफ मेल, अब्दुल बिस्मिल्लाह, पृ. 25

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 55-60

खोरठा शिष्ट साहित्य का वर्गीकरण एवं उसकी विविध विधाओं का विकासात्मक अनुशीलन

डॉ. भुनेश्वर महतो
सहायक प्राध्यापक, खोरठा विभाग,
राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, कोकर, राँची
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

1. भूमिका एवं खोरठा शिष्ट साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारतीय वाङ्मय एवं लोक–संस्कृतियों के इतिहास में तेत्रीय जनभाषाओं का योगदान सदैव से अत्यंत समृद्ध और अप्रतिम रहा है। झारखण्ड की पावन धराए जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य और जनजातीय समृद्ध मूलवासी सांस्कृतिक चेतना का अप्रतिम संगम देखने को मिलता है, वहाँ खोरठा भाषा जनमानस के सुख–दुख, आशा–आकांक्षा और संघर्षों को वाणी देने वाली प्रमुख संपर्क भाषा रही है। किसी भी जीवंत भाषा के साहित्य का अनुशीलन करने पर हमें उसके दो मौलिक रूप दृष्टिगोचर होते हैं–प्रथम लोक साहित्य तथा द्वितीय शिष्ट साहित्य।

खोरठा लोक साहित्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन, अगाध और अजस्र है, जो सदियों से मौखिक रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रवाहित होती रही है। किंतु अन्य विकसित एवं समृद्ध भाषाओं की भाँति खोरठा साहित्य की विभिन्न लिखित एवं मुद्रित विधाओं का बहुआयामी विकास मुख्य रूप से आधुनिक काल में ही संभव हो पाया। मानव सभ्यता के शैशव काल में मनुष्य की अभिव्यक्ति इतनी व्यवस्थित और लिपिबद्ध नहीं थी कि वह गध्य अथवा जटिल विधाओं में उतर सके। यही कारण है कि सभ्यता के आरंभ में मानव ने अपने अंतर्मन के सूक्ष्म भावों, प्राकृतिक उल्लासों और भय–विस्मय को गीतों तथा पद्य के रूप में प्रकट किया।

सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ–साथ जब सामाजिक संरचना सुदृढ़ हुई, ज्ञान–विज्ञान का विस्तार हुआ और लिपि का व्यावहारिक प्रयोग प्रारंभ हुआ, तब व्यवस्थित साहित्य लेखन की परंपरा का विधिवत सूत्रपात हुआ। जिस साहित्य की अपनी परिष्कृत भाषा, लिपि, सुनिश्चित व्याकरणिक ढाँचा तथा मुद्रित रूप में प्रस्तुतीकरण उपलब्ध होता है, उसे ही शिष्ट साहित्य की संज्ञा दी जाती है। शिष्ट साहित्य में रचनाकार का नाम, उसका कालखंड, वैचारिक दृष्टिकोण तथा शिल्पगत चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। खोरठा शिष्ट साहित्य इसी क्रमिक विकास की एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी उपलब्धि है।

1.1 झारखण्ड की भाषाई संरचना में खोरठा का स्थान :

झारखण्ड एक बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक प्रदेश है जहाँ तीन प्रमुख भाषा परिवार – ऑस्ट्रो–एशियाटिक (मुंडारी, संताली, हो, खड़िया), द्रविड़ (कुडुख, माल्टो) तथा इंडो–आर्यन (खोरठा, नागपुरिया,

कुरमाली, पंचपरगनिया) सदियों से सह–अस्तित्व की भावना के साथ विद्यमान हैं। इन चारों आर्य भाषाओं को सामूहिक रूप से "सदानी" कहा जाता है।

खोरठा भाषा उत्तरी छोटानागपुर, पलामू, तथा संताल परगना प्रमंडल के लगभग 16 जिलों (गिरिडीह, बोकारो, धनबाद, कोडरमा, चतरा, हजारीबाग, रामगढ़, देवघर, दुमका, गोड्डा, साहेबगंज, पाकुड़, जामताड़ा, पलामू, गढ़वा तथा लातेहार) में विस्तृत रूप से बोली जाने वाली बहुसंख्यक आबादी की मातृभाषा एवं सशक्त संपर्क भाषा है। यह भाषा सदानों और जनजातीय समुदायों के मध्य परस्पर आत्मीय संवाद का सबसे सुगम सेतु है। इसी व्यापक जनभाषा ने आधुनिक काल में अपने लोक–रूप से आगे बढ़कर एक अत्यंत समृद्ध, परिमार्जित और वैविध्यपूर्ण 'शिष्ट साहित्य' का निर्माण किया है।

2. खोरठा शिष्ट साहित्य का मौलिक वर्गीकरण :

साहित्यशास्त्रियों, आलोचकों एवं भाषाविदों ने अध्ययन की सुगमता, रूपगत भिन्नता तथा अभिव्यक्ति के माध्यम के आधार पर शिष्ट साहित्य को मुख्य रूप से दो प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया है–

1.. खोरठा पद्य साहित्य (काव्य, कविता, गीत, प्रगीत, प्रबंध काव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य आदि)

2.. खोरठा गद्य साहित्य (नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्मरण, आत्मकथा, यात्रा–वृत्तांत, शब्दचित्र आदि)

उपरोक्त दोनों शाखाओं ने खोरठा वांग्मय को समृद्ध करने में युगांतरकारी भूमिका निभाई है। पद्य साहित्य जहाँ खोरठा जनमानस की रागात्मक और भावात्मक अनुभूति का प्रामाणिक दस्तावेज है, वहीं गद्य साहित्य समाज के बौद्धिक विमर्श, सामाजिक यथार्थ, यथार्थपरक संघर्ष और आधुनिक चेतना का सशक्त संवाहक बनकर उभरा है।

3. खोरठा पद्य साहित्य परिचय, परिभाषा एवं शास्त्रीय वर्गीकरण :

शिष्ट साहित्य की विधाओं में पद्य साहित्य का स्थान सर्वोपरि और कालक्रमानुसार सबसे प्राचीन है। "काव्य" शब्द की व्युत्पत्ति "कवि" शब्द से हुई है और कवि के स्वाभाविक कर्म को ही काव्य कहा जाता है।

साहित्य में पद्य को काव्य, कविता, गीत, पद्य–रचना आदि विविध नामों से अभिहित किया जाता है। भारतीय साहित्यशास्त्र में काव्य को आत्मा की गहनतम अनुभूति और परमानंद की प्राप्ति का साधन माना गया है।

संस्कृत के मूर्धन्य आचार्यों ने काव्य और कविता के स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु अनेक कालजयी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं, जिनका प्रभाव भारतीय भाषाओं के पद्य साहित्य पर स्पष्ट देखा जा सकता है :

''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम'' – आचार्य भामह।

आदि आचार्य भामह के अनुसार शब्द और अर्थ का परस्पर सामंजस्यपूर्ण एवं हितकारी भाव ही काव्य है। विद्वानों ने इसकी व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि शब्द और अर्थ का ऐसा सुंदर संयोजन जो लोक–कल्याण और प्राणी–मात्र का हित करे, वही सच्ची कविता है।

''शरीरं तावदिष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली'' – आचार्य दंडी।

आचार्य दंडी ने काव्य के बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूप को रेखांकित करते हुए कहा है कि अभीष्ट अर्थ से युक्त पदावली ही काव्य का शरीर है। दंडी ने काव्य में अलंकार, रमणीयता और पद–सौंदर्य को विशेष महत्व प्रदान किया। इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भाषा के माध्यम से सौंदर्यानुभूतिमयी और रागात्मक

अभिव्यक्ति ही काव्य है। काव्य को मुख्य रूप से दो भेदों में बाँटा जाता है–

क. ***श्रव्य काव्य*** – वह काव्य जिसका रसास्वादन पढ़कर या सुनकर किया जाता है। इसके अंतर्गत "प्रबंध काव्य" (महाकाव्य एवं खंडकाव्य) तथा "मुक्तक काव्य" समाहित होते हैं।

ख. ***दृश्य काव्य*** – वह काव्य जिसका आनंद रंगमंच पर अभिनय के माध्यम से देखकर और सुनकर लिया जाता है, जैसे – नाटक, रूपक और एकांकी।

इसके अतिरिक्त पद्य साहित्य में "गीति काव्य" (प्रगीत) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। गीतात्मकतापरक, वैयक्तिक भाव–प्रधान तथा गेय पदों से युक्त कविता को गीति काव्य कहा जाता है। लोककथाओं और वीर गाथाओं के माध्यम से आज भी भगवान बिरसा मुंडा, सिदो–कान्हू, तिलका मांझी जैसे अमर शहीदों की गाथाएँ छोटानागपुर के पठारी अंचलों में गूँज रही हैं।

3.1 खोरठा पद्य साहित्य का ऐतिहासिक विकास एवं राजदरबारी परंपरा :

खोरठा भाषा में परिनिष्ठित एवं लिपिबद्ध काव्य लेखन की सुदीर्घ और गौरवशाली परंपरा रही है। खोरठा परिनिष्ठित साहित्य लिखने की परंपरा का विधिवत आरंभ रामगढ़ राज्य के प्रतापी राजा दलेल सिंह (दलसाह) से माना जाता है। राजा दलेल सिंह ने सत्रहवीं–अठारहवीं शताब्दी में श्शिव–सागरश नामक अप्रतिम महाकाव्य की रचना की। यह महाकाव्य लगभग 700 पृष्ठों का एक वृहदाकार ग्रंथ है जिसमें 1200 दोहा और चौपाइयाँ निबद्ध हैं।

तत्पश्चात रामगढ़ राजा दलशाह के राज्याश्रित कवि पद्मदास ने प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ "हितोपदेश" के पदों का खोरठाध्काव्य रूप में अनुवाद किया और साथ ही "काव्य मंजरी" नामक ग्रंथ की रचना की।

राजा दलशाह के सुपुत्र रुद्र सिंह ने भी राज–पाट त्यागकर भक्ति, कविता और साहित्य साधना की ओर अपना जीवन समर्पित किया। रुद्र सिंह द्वारा रचित "ज्ञानसुधाकर" खोरठा एवं क्षेत्रीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इस प्रकार खोरठा काव्य रचना राजपरिवारों और विद्वानों के आश्रय से होती हुई जन–जन तक प्रसारित हुई।

आधुनिक काल में पद्य साहित्य को जन–आंदोलनों और जन–संवेदना से जोड़ने का श्रेय भुनेश्वर दत्त शर्मा "व्याकुल", श्रीनिवास पानुरी, डॉ० ए० के० झा, शिवनाथ प्रमाणिक, विश्वनाथ दसौंधी "राज", शांति भारत, अतुल चन्द्र मुखर्जी, सुकुमार आदि कालजयी कवियों को जाता है, जिन्होंने "दामोदरेक कोराँय", "रुसल पुटुस", "बाल किरण", "अखड़ाक पझरा" जैसी कृतियों से खोरठा पद्य को राष्ट्रीय फलक पर प्रतिष्ठित किया।

4. खोरठा गद्य साहित्य : उद्भव, विकास एवं प्रमुख विधाएँ :

खोरठा भाषा में गद्य लेखन की परंपरा का विधिवत विकास पद्य की तुलना में अपेक्षाकृत विलंब से हुआ। बीसवीं सदी के पाँचवें दशक (लगभग 1940–1950 के आसपास) से खोरठा में आधुनिक गद्य लेखन की सुगबुगाहट प्रारंभ हुई। नवयुग के राष्ट्रीय चेतना संपन्न कवि भुनेश्वर दत्त शर्मा 'व्याकुल' ने गद्य लेखन की पृष्ठभूमि तैयार की। किंतु खोरठा भाषा में आधुनिक गद्य को एक सुदृढ़ संरचनात्मक आधार देने का वास्तविक श्रेय खोरठा के भीष्म पितामह कहे जाने वाले श्रीनिवास पानुरी जी को जाता है।

पानुरी जी के अप्रतिम नाटकों 'उद्भासल कर्ण' तथा 'चाभी–काठी' से खोरठा गद्य साहित्य का स्वर्णिम युग आरंभ होता है। पानुरी जी के समय में गाँवों में पर्व–त्योहारों, मेलों और उल्लास के विशेष अवसरों पर नाटकों का मंचन करने की जीवंत परंपरा थी। इसी जन–मांग ने खोरठा गद्य को विकसित होने का ऐतिहासिक अवसर दिया। साठोत्तरी दशक (1960 के बाद) में खोरठा गद्य साहित्य ने अपनी गति तीव्र की और गद्य की सभी

आधुनिक विधाओं में विपुल साहित्य रचा गया।

4.1 खोरठा नाटक विधा : मंचन, परंपरा और सामाजिक चेतना :

खोरठा भाषा में नाटक लिखने की परंपरा का सीधा संबंध रंगमंचीय प्रदर्शन और जन–संवाद से रहा है। ग्रामीण अंचलों में सामाजिक चेतना के प्रसार और पर्व–त्योहारों पर मनोरंजन हेतु स्थानीय बोली में नाटकों की अत्यधिक मांग थी। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नाटककारों ने खोरठा में सशक्त नाटकों का सृजन किया :

1. **उद्भासल कर्ण (श्रीनिवास पानुरी) :** यह खोरठा भाषा का प्रथम ऐतिहासिक/पौराणिक नाटक माना जाता है। इसकी कथावस्तु महाभारत के उपेक्षित एवं दानवीर पात्र 'कर्ण' के जीवन संघर्ष, त्याग और अंर्तद्वंद्व पर आधारित है।
2. **चाभी–काठी (श्रीनिवास पानुरी) :** यह पानुरी जी द्वारा रचित एक अत्यंत लोकप्रिय सामाजिक नाटक है। इसका केंद्र बिंदु ग्रामीण परिवेश में उत्पन्न आर्थिक विषमता, गरीबी, बेरोजगारी और शोषण की समस्या को उजागर करना है।
3. **मेकामेकी ना मेटमाट (डॉ० अजीत कुमार झा) :** प्रगतिशील रचनाकार डॉ० ए० के० झा द्वारा रचित यह नाटक अंग्रेजी शासनकाल के समय ग्रामीण किसानों की दुर्दशा और सामाजिक विद्रूपताओं को चित्रित करता है। यह नाटक नाट्य–तत्वों की दृष्टि से अत्यंत परिपूर्ण एवं आज भी समसामयिक है।
4. **अजगर (विश्वनाथ दसौंधी 'राज') :** सामाजिक शोषण और भ्रष्टाचार के विरुद्ध लिखा गया यह एक अत्यंत क्रांतिकारी नाटक है। इसमें समाज के परजीवी शोषकों 'महाजन, भ्रष्ट थानेदार और पाखंडी पुजारी' के त्रिकोण को "अजगर" के रूप में रूपायित किया गया है, जो सीधे–सादे ग्रामीणों का रक्त चूसते हैं। नाटक में नारी जागरण, जाति–पाँति के उन्मूलन और शोषण के विरुद्ध विद्रोह का ओजस्वी स्वर मुखरित हुआ है।
5. **डाह (सुकुमार) :** सुकुमार जी द्वारा रचित "डाह" एक अत्यंत चर्चित सामाजिक नाटक है। इसमें समाज में व्याप्त ईर्ष्या, द्वेष (डाह) की संहारक प्रवृत्ति को केंद्रीय विषय बनाकर मानवीय संबंधों के बिखराव को मार्मिक ढंग से उकेरा गया है।

4.2 खोरठा उपन्यास विधा : यथार्थवादी दृष्टि एवं सामाजिक सरोकार :

खोरठा भाषा में उपन्यास लेखन की नींव श्रीनिवास पानुरी जी के अप्रकाशित उपन्यास 'रकतें रांगल पांखा' से मानी जाती है। साठोत्तरी दशक में विश्वनाथ दसौंधी "राज" द्वारा "तेतरी" और विश्वनाथ प्रसाद नागर द्वारा "महुआ" शीर्षक से उपन्यास लिखे गए, जो तत्कालीन जमींदारी प्रथा के क्रूर शोषण और सामंती अन्याय के विरुद्ध जन–आक्रोश को व्यक्त करते हैं। खोरठा उपन्यास साहित्य के प्रमुख प्रकाशित मील के पत्थर निम्नलिखित हैं–

- **जिनगीक टोह (चितरंजन महतो 'चित्रा') :** वर्ष 1987 में प्रकाशित यह उपन्यास खोरठा साहित्य का प्रथम प्रकाशित सामाजिक उपन्यास माना जाता है। इसमें नायक राजेश, सबिता और सीता के त्रिकोणीय जीवन संघर्ष के माध्यम से विशुद्ध प्रेम, बेरोजगारी और पारिवारिक विषमताओं का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है।
- **भगजोगनी (विश्वनाथ दसौंधी 'राज') :** वर्ष 2004 में प्रकाशित यह उपन्यास जमींदारी प्रथा, सामंती लोलुपता और शोषित ग्रामीण नारी के संघर्ष की अमर गाथा प्रस्तुत करता है।

- **लाल कोठी (महेंद्र नाथ गोस्वामी 'सुधाकर') :** यह उपन्यास ग्रामीण आदिवासी–सदान समाज में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास और आर्थिक शोषण से मुक्ति के जन–जागरण का आख्यान रचता है।
- **सइर सगरठ (डॉ० ए० के० झा) एवं पारसनाथ (इम्तियाज गदर) :** ये उपन्यास खोरठा भाषा के व्याकरणिक ठेठपन एवं आंचलिक संघर्षों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

4.3 खोरठा कहानी विधा : पत्र–पत्रिकाओं का योगदान एवं आधुनिक विकास :

खोरठा में कहानी कहने और सुनने की वाचिक परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। लोककथाओं में राजा–रानी, सियार–भालू, चिरय–चुनगुनी, बाभन–भूत आदि पात्रों के माध्यम से जीवन मूल्यों का संप्रेषण होता रहा है। किंतु शिष्ट कहानी का उदय 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ।

वर्ष 1970 में श्रीनिवास पानुरी द्वारा संपादित मासिक पत्रिका "मातृभाषा" तथा विश्वनाथ दसौंधी "राज" द्वारा संपादित "तितकी" पत्रिका के प्रकाशन से खोरठा कहानी विधा को युगांतरकारी गति मिली। विश्वनाथ दसौंधी 'राज' की "महुआ", वर्ष 1977 में डॉ० विनोद कुमार तिवारी की "घर जवाइक घेंचक ढोल", गौरीशंकर प्रभास की "ढोलनाक बोसी" और "पोड़ल–मोढ़िक आंगरा" जैसी कहानियों ने समाज के कटु यथार्थ को उजागर किया।

वर्ष 1988 में डॉ० गजाधर महतो "प्रभाकर" का ऐतिहासिक कहानी संग्रह "पुटूस फूल" प्रकाशित हुआ, जिसमें कुल छह यथार्थवादी कहानियाँ संकलित हैं। 1998–1999 में देवघर से "प्रभारश्मि" और "इंजोर" जैसी पत्रिकाओं ने 21वीं सदी के खोरठा कथा–साहित्य को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया, जिसमें डॉ० बी० एन० ओहदार, चितरंजन महतो "चित्रा" (छाँइहर संग्रह) और पंचम महतो के योगदान अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

4.4 खोरठा की अन्य गद्य विधाएँ : निबंध, संस्मरण, आत्मकथा एवं यात्रा–वृत्तांत :

आधुनिक काल में खोरठा गद्य ने पारंपरिक विधाओं से आगे बढ़कर वैचारिक और आत्मकथ्यपरक विधाओं में भी अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है :

- **निबंध साहित्य :** खोरठा में निबंध लेखन का आरंभ पत्र–पत्रिकाओं से हुआ। डॉ० बी० एन० ओहदार द्वारा रचित 'खोरठा निबंध' संग्रह खोरठा गद्य का मानक ग्रंथ है, जिसमें समसामयिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और दार्शनिक विषयों पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया गया है।
- **संस्मरण विधा :** खोरठा गद्य में संस्मरण लेखन का औपचारिक प्रारंभ 1990 के दशक से माना जाता है। साहित्यकारों ने अपने समकालीनों, आंदोलनों और अतीत की मधुर स्मृतियों को आत्मीय भाषा में निबद्ध किया है। शांति भारत का 'बरवाअड्डाक अखड़ा बोर' (श्रीनिवास पानुरी पर संस्मरण) इस विधा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।
- **आत्मकथा विधा :** खोरठा शिष्ट साहित्य में आत्मकथा एक नवोदित विधा के रूप में उभर रही है। यद्यपि पूर्ण आकार की आत्मकथाओं की संख्या अभी सीमित है, किंतु इस विधा में गंभीर रचनाकारों द्वारा अपार संभावनाओं के साथ कार्य किया जा रहा है।
- **यात्रा–वृत्तांत विधा :** यात्रा–वृत्तांत खोरठा की अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्धक विधा है। पंचम महतो कृत "गंगा सागर" एवं "अंडमान", शिवनाथ प्रमाणिक कृत "संकरी नदिक कछार", श्रीनिवास पानुरी कृत "खोजे तीन दिन", प्रदीप कुमार "दीपक" एवं डॉ० चतुर्भुज साहु कृत "दार्जिलिंग आर गंगटोक जातरा" तथा डॉ० बी० एन० ओहदार कृत "छोटानागपुर, नैनीताल एवं नेतरहाट जातरा वृत्तांत" विशेष रूप से उल्लेखनीय

हैं। इन रचनाओं में प्राकृतिक सौंदर्य, भौगोलिक अनुसंधान, सांस्कृतिक अवलोकन और दार्शनिक चिंतन का अनूठा समन्वय मिलता है।

5. खोरठा शिष्ट साहित्य का समग्र मूल्यांकन एवं संभावनाएँ :

खोरठा शिष्ट साहित्य के विकास–क्रम का समग्र अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि सीमित प्रकाशकीय सुविधाओं, संस्थागत उपेक्षाओं और आर्थिक चुनौतियों के बावजूद खोरठा के विद्वान रचनाकारों ने अपनी मातृभाषा को ज्ञान और साहित्य की समृद्ध भाषा बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

पद्य साहित्य जहाँ अपनी शास्त्रीय गहराई और राजदरबारी वैभव (शिव–सागर महाकाव्य) से शुरू होकर जन–मुक्ति के गीतों तक विस्तृत हुआ, वहीं गद्य साहित्य ने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, संस्मरण और यात्रा–वृत्तांत के माध्यम से झारखण्ड के शोषित, उपेक्षित जनमानस को आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय की नई चेतना प्रदान की। आज 21वीं सदी के तीसरे दशक में खोरठा शिष्ट साहित्य अकादमिक पाठ्यक्रमों (विश्वविद्यालयी शिक्षा), शोध अनुसंधानों और प्रतियोगी परीक्षाओं का एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठापरक माध्यम बन चुका है।

6 निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह प्रतिपादित किया जा सकता है कि खोरठा शिष्ट साहित्य अपनी विषयगत विविधता, जन–सरोकार, शास्त्रीय मर्यादा और आधुनिक शिल्प विधान की दृष्टि से भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं के समतुल्य एक अत्यंत सशक्त साहित्य है। राजा दलेल सिंह के पद्य–सृजन से लेकर श्रीनिवास पानुरी, डॉ० ए० के० झा, विश्वनाथ दसौंधी 'राज' और समकालीन रचनाकारों तक की यह साहित्यिक यात्रा खोरठा संस्कृति की अदम्य जिजीविषा और सृजनशीलता का जीवंत प्रमाण है। आवश्यकता इस बात की है कि खोरठा की नवोदित गद्य विधाओं के संरक्षण, संकलन और मानक प्रकाशन को और अधिक प्रोत्साहित किया जाए ताकि यह समृद्ध साहित्य वैश्विक पटल पर अपनी अमिट पहचान स्थापित कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1.. खोरठा भाषा एवं साहित्य का उद्‌भव और विकास, डॉ० गजाधर महतो "प्रभाकर", झारखण्ड झरोखा, राँची।

2.. खोरठा गद्य–पद्य संग्रह, खोरठा साहित्य संस्कृति परिषद, बोकारो, प्रथम संस्करण।

3.. शिव–सागर (महाकाव्य), राजा दलेल सिंह (दलसाह), संपादन एवं समीक्षा।

4.. उद्‌भासल कर्ण एवं चाभी–काठी (नाटक), श्रीनिवास पानुरी, खोरठा साहित्य कुटीर, बरवाअड्डा, धनबाद।

5.. अजगर (नाटक), विश्वनाथ दसौंधी "राज", बालीडीह खोरठा कमेटी, बोकारो।

6.. जिनगीक टोह (उपन्यास), चितरंजन महतो "चित्रा", खोरठा साहित्य संस्कृति परिषद, रामगढ़।

7.. पुटुस फूल (कहानी संग्रह), डॉ० गजाधर महतो "प्रभाकर", झारखण्ड झरोखा, राँची।

8.. खोरठा निबंध, डॉ० बी० एन० ओहदार, झारखण्ड झरोखा, राँची, तृतीय संस्करण।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 61-63

भारतीय उच्च शिक्षा में बहुविषयक अनुसंधान की संभावनाएं

डॉ. बीना गुप्त
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शासकीय मा. वि. टीकमगढ़ (म.प्र.)

सारांश :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 भारतीय उच्च शिक्षा में बहुविषयक शिक्षण और शोध को केंद्रीय स्थान देती है। यह शोध पत्र नीति के इस पहलू का विश्लेषण करते हुए बहुविषयक शोध की आवश्यकता, इसके लाभ, चुनौतियों तथा क्षेत्रीय विविधता के आधार पर संभावनाओं की पड़ताल करता है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों 'नीति दस्तावेज, शैक्षिक साहित्य तथा विद्वानों के विचारों' पर आधारित है। निष्कर्ष यह दर्शाता है कि विषयगत संकीर्णता को समाप्त कर अंतर–अनुशासनात्मक दृष्टिकोण अपनाने से ही भारतीय उच्च शिक्षा वैश्विक ज्ञान–अर्थव्यवस्था की चुनौतियों का सामना कर सकती है।

मुख्य शब्द : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, बहुविषयक शिक्षा, उच्च शिक्षा, अनुसंधान, राष्ट्रीय शोध फाउंडेशन।

1. प्रस्तावना :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक पूरी व्यवस्था में गुणवत्ता, समानता और अखंडता स्थापित करना है। अनुसंधान और नवाचार किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं, क्योंकि ये विनिर्माण, सेवा क्षेत्र और बैंकिंग सहित सभी क्षेत्रों को प्रभावित करते हैं। इसी दृष्टि से नीति रचनात्मक क्षमता, कौशल और विश्लेषणात्मक चिंतन विकसित करने पर बल देती है, जो वैश्विक रोजगार बाजार की आवश्यकता है। नीति प्रत्येक छात्र की विशिष्ट क्षमता को पहचानने तथा शिक्षकों और अभिभावकों को शैक्षणिक व गैर–शैक्षणिक दोनों क्षेत्रों में उत्प्रेरक की भूमिका निभाने हेतु प्रेरित करती है।

अनुसंधान को गति देने के लिए नीति में राष्ट्रीय शोध फाउंडेशन की स्थापना का प्रावधान है, जो संसद के अधिनियम द्वारा गठित एक स्वतंत्र निकाय होगा। यह निकाय शोध की प्रासंगिकता और गुणवत्ता, वित्तीय आवश्यकताओं तथा शोधकर्ताओं, सरकार व उद्योगों के मध्य समन्वय सुनिश्चित करेगा। भारत में शोध पर सार्वजनिक व्यय सकल घरेलू उत्पाद के एक प्रतिशत से भी कम है, जो अनेक छोटे देशों की तुलना में भी न्यून है। धन की इस कमी ने विश्वविद्यालयों में शोध–संस्कृति को कमजोर किया है, विशेषकर ग्रामीण और छोटे संस्थानों में यह स्थिति अधिक चिंताजनक है। स्वतंत्रता के बाद पहली बार किसी नीति में उच्च शिक्षण संस्थानों में शोध को इस स्तर की प्राथमिकता दी गई है, जो इस तथ्य की स्वीकृति है कि किसी भी ज्ञान–समाज में अकादमिक शोध उच्च शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग होता है और समय–समय पर हुआ शोध शिक्षण को भी समृद्ध करता है।

2. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारतीय उच्च शिक्षा का इतिहास तीन कालखंडों में देखा जा सकता है। प्राचीन काल को इसका स्वर्ण युग कहा जाता है, जब गुरुकुल–आश्रम पद्धति के साथ नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला जैसे विश्वविख्यात केंद्र स्थापित हुए, जहाँ विदेशी छात्र भी अध्ययन हेतु आते थे। औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बना और आधुनिक शिक्षा की नींव पड़ी, किंतु यह सुविधा समाज के उच्च वर्ग तक सीमित रही। स्वतंत्रता के पश्चात तीसरे चरण में सरकार ने विस्तार, गुणवत्ता और शोध पर ध्यान केंद्रित करते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसी नियामक संस्थाओं की स्थापना की। पिछले तीन दशकों में उच्च शिक्षा का परिमाणात्मक विस्तार तो हुआ, किंतु गुणवत्ता के अनुरूप वृद्धि नहीं हो सकी और शोध की सुविधा मुख्यतः बड़े संस्थानों तक ही सीमित रह गई।

3. बहुविषयक शिक्षा : संकल्पना और नीतिगत दृष्टि :

एनईपी 2020 में 2030 तक प्रत्येक जिले में अथवा उसके निकट एक बड़े बहुविषयक उच्च शिक्षा संस्थान की परिकल्पना की गई है, जिसमें विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और चिकित्सा के साथ–साथ उदार कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान को भी समान महत्व दिया जाएगा। स्नातक कार्यक्रम को तीन वर्ष के बाद दो वर्षीय स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम से जोड़ा गया है, जिसमें दूसरा वर्ष पूर्णतः शोध हेतु समर्पित होगा, जबकि पीएचडी में प्रवेश शोध–सहित स्नातकोत्तर या चार वर्षीय स्नातक उपाधि से ही संभव होगा। राष्ट्रीय शोध फाउंडेशन सभी विषयों में योग्यता–आधारित किंतु समान सहकर्मी–समीक्षित निधि प्रदान कर पारदर्शी चयन प्रक्रिया सुनिश्चित करेगा, जिससे नए शोधकर्ता तैयार होंगे।

बहुविषयक शिक्षा की सार्थकता के लिए अंतर्विषयी, ट्रांस–डिसिप्लिनरी और उदार अनुशासन जैसी संकल्पनाओं की समझ आवश्यक है, ताकि छात्र विभिन्न विषयों के पारस्परिक संबंधों का अनुभव कर सकें। इसके लिए शिक्षकों को भी एक विभाग से दूसरे विभाग में अस्थायी रूप से कार्य करने का अवसर मिलना चाहिए, क्योंकि सामान्यतः शिक्षक अपने ही विभाग तक सीमित रहते हैं, जिससे अन्य विषयों के ज्ञान का अभाव बना रहता है। यह विशेषज्ञता रातोंरात अर्जित नहीं होती– इसके लिए उच्च–प्रशिक्षित शिक्षकों तथा दो या अधिक विषयों को संश्लेषित करने में सक्षम विद्यार्थियों की आवश्यकता होती है, जो अंततः महत्वपूर्ण हस्तांतरणीय कौशल विकसित करने में सहायक होती है।

4. बहुविषयक शिक्षण-शोध के लाभ :

बहुविषयक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व विकास, कला और विज्ञान के मध्य समन्वय, नवाचारी सोच, कौशल विकास तथा करियर विकल्पों में विविधता जैसे अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। समन्वित एवं अंतर–अनुशासनात्मक कार्यक्रमों, नई शैक्षिक तकनीकों तथा संस्थागत स्वायत्तता के माध्यम से भारतीय उच्च शिक्षा को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाया जा सकता है, जिससे छात्र अंतरराष्ट्रीय मंच पर भी सक्षम सिद्ध होंगे।

5. क्षेत्रीय विविधता और तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य :

भारत के विभिन्न राज्यों में शिक्षा एवं शोध की प्रकृति भिन्न–भिन्न है– गुजरात में व्यावसायिक उद्यमिता, दक्षिणी राज्यों (तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश) में तकनीकी व कंप्यूटर नवाचार, उत्तर भारत में कृषि तथा पंजाब–हरियाणा में खेल–संबंधी शिक्षा व शोध की विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है। यह विविधता ही भारत की शक्ति है, क्योंकि सभी विश्वविद्यालय, कॉलेज अथवा विद्यार्थी एक समान नहीं हो सकते। नोबेल पुरस्कार विजेता

अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन अपनी कृति 'द आर्ग्युमेंटेटिव इंडियन' में इस ओर संकेत करते हैं कि भारतीय समाज नई सोच को सरलता से स्वीकार नहीं करता, अतः नवाचार व नई पद्धतियों को शीघ्रता से अपनाने की आवश्यकता है। तुलनात्मक दृष्टि से, जहाँ भारत में शोध–प्रबंध प्रायः 250 से 350 पृष्ठों में तैयार किया जाता है, वहीं चीन में पृष्ठ–संख्या के स्थान पर शोध के व्यावहारिक निष्कर्ष 'जैसे पेटेंट अथवा प्रोटोटाइप' को महत्व दिया जाता है, जिनका प्रत्यक्ष उपयोग उद्योग व समाज के लिए संभव हो।

6. शोध प्रविधि :

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है तथा पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिनमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का दस्तावेज, संबंधित शैक्षिक साहित्य तथा विद्वानों के प्रकाशित विचार सम्मिलित हैं। इन स्रोतों के विश्लेषण के आधार पर बहुविषयक शिक्षा की वर्तमान स्थिति, संभावनाओं और चुनौतियों को समझने का प्रयास किया गया है।

7. सुझाव :

बहुविषयक शोध को सुदृढ़ करने हेतु आवश्यक है कि शिक्षकों की अंतर–विभागीय भागीदारी बढ़े, शोध निधि का न्यायसंगत वितरण हो और क्षेत्रीय विशेषज्ञता के अनुरूप संस्थानों को प्रोत्साहित किया जाए। साथ ही मूल्यांकन प्रणाली को पृष्ठ–संख्या के स्थान पर शोध की व्यावहारिक व सामाजिक उपयोगिता से जोड़ा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, विषयों के बीच स्थानांतरण को सुगम बनाने वाली लचीली प्रशासनिक व्यवस्था, अंतर–विश्वविद्यालय सहयोग और उद्योग–जगत के साथ साझेदारी को भी नीति–क्रियान्वयन का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाना चाहिए, ताकि बहुविषयक शोध केवल दस्तावेजों तक सीमित न रहकर वास्तविक शैक्षणिक व्यवहार में परिणित हो सके।

8. निष्कर्ष :

उच्च शिक्षा में बहुविषयक शिक्षण व शोध राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयाम है, जिसका उद्देश्य विषयों की संकीर्ण सीमाओं को समाप्त करना है। भारत के प्राचीन इतिहास में भी ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ एक ही व्यक्ति ने युद्धकला, वादन और चित्रकला जैसे विविध क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त की। बहुविषयक दृष्टिकोण अपनाकर हम कला, विज्ञान, वाणिज्य और मानविकी की सीमाओं से परे सोचने की क्षमता विकसित कर सकते हैं। यद्यपि इससे विषय–विशेषज्ञता में कुछ कमी की आशंका रहती है, तकनीकी दक्षता और प्रभावी संचार के माध्यम से इसे संतुलित किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण आत्मनिर्भर भारत में युवाओं के लिए रोजगार एवं औद्योगिक चुनौतियों से निपटने में सहायक सिद्ध होगा तथा ज्ञान–आधारित वैश्विक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में भारतीय उच्च शिक्षा को सक्षम बनाएगा।

संदर्भ सूची :

1. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.
2. सेन, अमर्त्य. द आर्ग्युमेंटेटिव इंडियन. पेंगुइन बुक्स।
3. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) संबंधित दस्तावेज एवं परिपत्र।
4. http://www-education.nic.in
5. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf
6. https://aishe.gov.in/aishe/getAboutMHRDPage

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 64-74

Impact of Digital Literacy Programs Conducted by Libraries in Rural Areas

Deepika Raj
Research Scholar, YBN UNIVERSITY, Ranchi.

Abstract :

In an increasingly digitized world, the ability to navigate and utilize digital technologies has become fundamental to full participation in economic, social, and civic life. However, rural communities globally face persistent barriers to digital inclusion, including limited infrastructure, affordability constraints, and lack of relevant training opportunities. This paper examines the transformative impact of digital literacy programs conducted by libraries in rural areas, positioning these institutions as critical intermediaries in bridging the digital divide. Through analysis of case studies from India, Africa, and North America, the research demonstrates that library-led digital literacy initiatives yield multidimensional outcomes: enhanced educational engagement and employability, improved access to e-governance and healthcare services, preservation of indigenous knowledge, and strengthened community resilience. The findings reveal that rural libraries' unique position as trusted, accessible community spaces enables them to deliver culturally relevant digital skills training that reaches marginalized populations, including women, elderly residents, and indigenous communities. However, significant challenges persist, including inadequate infrastructure, limited funding, and insufficient trained personnel. The paper concludes with recommendations for multi-stakeholder partnerships, sustainable resource allocation, and policy frameworks that recognize rural libraries as essential infrastructure for digital equity and sustainable development.

Keywords : Digital literacy, rural libraries, digital divide, community empowerment, inclusive development.

1. Introduction :

The digital revolution has transformed how individuals access information, pursue education, engage with government services, and participate in economic opportunities. Yet this transformation has been unevenly distributed, with rural communities consistently lagging behind their urban counterparts in digital access, skills, and meaningful usage. This persistent disparitycommonly termed the digital dividethreatens to exacerbate existing inequalities and limit rural communities' capacity

to participate fully in contemporary society.

Libraries have long served as pillars of community education and information access. In rural areas, where other institutions may be sparse, libraries often function as the sole public space offering free access to knowledge resources. As digital technologies have become integral to information access, rural libraries have increasingly evolved from traditional book-lending institutions into community technology hubs. This evolution positions them uniquely to address digital literacy gaps through targeted programs tailored to local needs and contexts.

The concept of digital literacy extends beyond basic operational skills to encompass the ability to find, evaluate, create, and communicate information using digital technologiesskills essential for lifelong learning, employment, civic participation, and personal empowerment. For rural populations, acquiring these skills can unlock opportunities previously beyond reach: online education, remote employment, telemedicine, e-governance services, and digital entrepreneurship.

This paper investigates the impact of digital literacy programs conducted by libraries in rural areas, addressing three primary research objectives :

(1) To identify the digital literacy programs are rural libraries implementing, and what populations do they serve,

(2) To find out the impacts do these programs generate for individuals and communities.

(3) To know about the challenges and enabling factors shape the effectiveness of library-led digital literacy initiatives.

By synthesizing evidence from diverse geographical contexts, the paper aims to inform practice, policy, and future research in this critical area of community development.

Research Problem :

In the contemporary digital age, access to information and communication technologies has become essential for social, educational, and economic development. However, a significant gap still exists between urban and rural populations in terms of access to digital resources, technological infrastructure, and the ability to effectively use digital tools. This disparity is commonly referred to as the **digital divide**, which limits the opportunities available to individuals living in rural areas. Lack of digital skills often restricts rural populations from accessing online educational resources, government services, financial platforms, and employment opportunities.

Libraries, particularly public and community libraries, have increasingly emerged as important institutions for addressing this digital divide. In many rural areas, libraries serve not only as centers for reading and learning but also as hubs for digital access and training. To enhance digital inclusion, libraries have started conducting **digital literacy programs** that aim to teach community members basic computer skills, internet usage, online communication, and access to digital government services.

These programs are designed to empower individuals with the knowledge and confidence required to participate in the digital society.

2. Literature Review :

2.1 Conceptualizing Digital Literacy in Rural Contexts :

Digital literacy encompasses a spectrum of competencies, from basic operational skills (using devices and software) to higher-order abilities such as information evaluation, content creation, and critical engagement with digital environments. The American Library Association defines a digitally literate person as one who possesses "the ability to use information and communication technologies to find, evaluate, create, and communicate information, requiring both cognitive and technical skills". In rural contexts, digital literacy takes on additional dimensions. Rural populations often face distinct challenges including limited connectivity infrastructure, lower device ownership, and fewer opportunities for informal digital learning through workplace or social networks. Consequently, digital literacy programs in these settings must address foundational skills while simultaneously building awareness of digital possibilities and applications relevant to rural livelihoodsagriculture, small business development, healthcare access, and maintaining connections with dispersed family members.

2.2 The Digital Divide in Rural Areas :

Despite global progress in internet penetration, significant disparities persist between urban and rural areas. Research from diverse geographical settings documents persistent gaps in broadband access, device availability, affordability, and digital skills development. A study of rural libraries in South Africa's Vhembe district found that "limited internet connectivity, outdated digital equipment, insufficient funding, and low digital literacy" continue to constrain digital inclusion efforts.

In the United States, research on tribal communities reveals that in some rural areas, "more than a quarter of residents without home internet and nearly 10 percent without a computing device" rely on libraries as their primary access point for technology and connectivity. Similarly, in India, despite national initiatives like Digital India aimed at extending connectivity to rural areas, "a huge gap in internet access, skills, and literacy between the urban and rural communities" persists.

These disparities carry significant consequences. Without digital access and skills, rural residents face barriers to education, employment opportunities, government services, healthcare information, and social participationeffectively excluding them from benefits that urban populations take for granted.

2.3 Libraries as Agents of Digital Inclusion :

Libraries possess unique characteristics that position them as effective agents of digital inclusion in rural communities. As institutions grounded in principles of free and equitable access, libraries offer non-commercial, trusted spaces where community members can explore digital

technologies without pressure or judgment. Research on rural libraries in Iran found that they "emerged as trusted and underutilized spaces for bridging this digital divide".

The library's role extends beyond merely providing access to technology. Librarians bring pedagogical expertise and deep understanding of community information needs, enabling them to design programs that are both technically sound and culturally appropriate. A study of Indian libraries' contributions to sustainable development notes that "libraries serve as inclusive learning spaces, community empowerment sites, and information access points, ensuring that marginalized groups are not left behind".

Furthermore, libraries' physical presence in communitiesoften sustained over decadesbuilds relationships and trust that commercial providers or government agencies may struggle to establish. As one study of tribal libraries observed, "libraries in tribal settings are not just service providers; they are community conveners".

2.4 Theoretical Framework :

This study draws upon two complementary theoretical perspectives. First, Amartya Sen's capabilities approach provides a framework for understanding digital literacy not merely as skill acquisition but as expansion of individuals' freedoms to achieve functioning they value. From this perspective, digital literacy programs are valuable insofar as they enhance people's capabilities to participate in education, employment, civic life, and cultural expression.

Second, community informatics theory emphasizes the importance of embedding technology initiatives within existing community structures and social networks. This perspective suggests that effective digital literacy programs must be participatory, culturally grounded, and responsive to locally-defined needs and prioritiescharacteristics that align well with library-based approaches.

3. Impact of Library-Led Digital Literacy Programs :

3.1 Educational Outcomes and Youth Engagement :

One of the most documented impacts of rural library digital literacy programs is enhanced educational engagement among children and youth. Libraries provide access to digital learning resources that may be unavailable in under-resourced rural schools, while also offering supportive environments for skill development.

The Mobile Library Programme in Haryana, India, exemplifies this impact. Operating in communities where "not many people... had seen a computer or a laptop," the program equipped a mobile van with tablets, e-readers, and educational content to reach underserved villages. Evaluation findings revealed dramatic improvements: teachers reported "on average more than a 70 percent increase in school attendance" following program implementation, with new student enrollments and reduced absenteeism.

Students themselves reported transformed attitudes toward learning. As one child participant expressed, "We're not afraid, now it is fun to study!". This affective dimensionbuilding confidence and positive associations with learningmay be as important as skill acquisition in supporting long-term educational trajectories.

In South Africa, the Ethembalethu Modular Library's Computer Skills 101 program introduced learners from disadvantaged communities to essential computer skills including mouse control, navigation, file management, and typing. For many participants, this marked "their first formal exposure to computers." The program's recognition in a national digital literacy competition demonstrated that "children from deep rural and disadvantaged areas" could "compete and succeed at national level, regardless of background or access to resources".

3.2 Economic Empowerment and Livelihood Enhancement :

Digital literacy programs in rural libraries increasingly focus on economic applications, equipping community members with skills relevant to employment, entrepreneurship, and income generation. These initiatives recognize that digital skills have become prerequisite for participation in modern economies, even in traditionally non-digital sectors.

In Namibia, the Communications Regulatory Authority's donation of computers and upgraded internet connectivity to rural libraries aimed to empower "learners, youth, and entire communities" with "digital skills that are essential for education, innovation, future employment and participation in digital transformation." Local librarians reported that enhanced digital access would enable users to "draft CVs, apply for jobs online, or even explore digital business opportunities".

Research on rural date farmers in Iran revealed potential for digital literacy to support agricultural livelihoods. While farmers possessed rich traditional knowledge, they lacked skills to access market information, weather data, or extension services online. Researchers proposed that library-led digital literacy programs could help farmers "access digital knowledge repositories" combining traditional agricultural expertise with contemporary data -1-2.

In India, libraries hosting Common Service Centres (CSCs) offer "livelihood skills training, health information, and e-governance services" to rural populations. These integrated service models recognize that digital literacy is not an end in itself but a pathway to concrete improvements in livelihood outcomes.

3.3 Women's Empowerment and Gender Equity :

Digital literacy programs in rural libraries have demonstrated particular significance for women's empowerment, addressing gender gaps in technology access and skills while creating safe, supportive learning environments.

In Rajasthan, India, "internet access facility programs for women" conducted through libraries

serve as "examples of how libraries are supporting gender equality and bridging the digital gender divide". These programs recognize that women in rural areas often face compounded barriers to digital inclusionlimited mobility, household responsibilities, social norms, and lower rates of device ownership.

Libraries offer women accessible, non-threatening spaces for skill development. Unlike commercial internet cafes or formal training centers, libraries provide environments where women can learn at their own pace, often alongside other women from their communities. Research from Iran emphasizes the importance of "gender-sensitive outreach strategies" in reaching female populations.

The impact of women's digital literacy extends beyond individual skill acquisition. Digitally literate women are better equipped to access health information, support children's education, engage with government services, and explore income-generating opportunitiesbenefits that ripple through families and communities.

3.4 Indigenous Knowledge Preservation and Cultural Continuity :

An emerging area of impact involves libraries' role in using digital technologies to preserve and share indigenous knowledge, supporting cultural continuity while bridging traditional and modern systems.

Research with rural date farmers in Iran documented how digital literacy programs can support "indigenous knowledge preservation" by helping communities document traditional practices and make them accessible alongside contemporary information. This approach recognizes that digital inclusion need not mean cultural displacement; rather, digital tools can be harnessed to "support cultural continuity, community resilience, and sustainable rural development".

The Ignacio Community Library on the Southern Ute Indian Tribe Reservation in Colorado exemplifies this potential. The library hosts "programs to preserve and share cultural heritage, including digital storytelling, oral history projects and access to genealogy resources." By providing tools and training for digital documentation, the library enables community members to actively participate in preserving and transmitting cultural knowledge.

3.5 Civic Engagement and Access to Services :

Digital literacy programs increasingly address libraries' role in facilitating access to e-governance services, telehealth, and civic participationapplications with particular relevance for rural populations who may face distance barriers to in-person services.

At the Ignacio library, technology training enables residents to access "telehealth, virtual legal aid and e-commerce, helping residents navigate services that increasingly require high-speed internet." The library also hosts "forums with local and state officials and political candidates to encourage

informed voting and participation in civic life," as well as "community discussions on pressing issues such as water rights, public health and suicide prevention".

This civic dimension reflects libraries' broader role as infrastructure for democratic participation. When rural residents lack digital skills, they are effectively excluded from increasingly digitized government services and civic processes. Library programs that build digital literacy simultaneously build capacity for meaningful citizenship.

4. Challenges and Barriers :

Despite documented impacts, library-led digital literacy programs in rural areas face persistent challenges that limit their reach and effectiveness.

4.1 Infrastructure Deficits :

Limited internet connectivity remains a fundamental constraint in many rural areas. Research from South Africa's Vhembe district identified "limited internet connectivity" as a primary barrier, alongside "outdated digital equipment" that undermines user experience and limits what programs can accomplish -3.

Even where connectivity exists, bandwidth may be insufficient for contemporary applications. The Namibia case described upgrading library internet "to 50 Megabits per second (Mbps)" as transformative, yet this speed remains below what urban users typically expect -5. Libraries serving multiple users simultaneously require robust infrastructure that many rural areas lack.

4.2 Funding and Resource Constraints :

Inadequate and unstable funding represents a chronic challenge for rural libraries. Many operate on minimal budgets that cannot accommodate technology purchase, maintenance, and upgrade costs. The Vhembe district study documented "insufficient funding" as a key constraint limiting libraries' capacity to function as "inclusive knowledge hubs".

Technology investments are particularly challenging because they require ongoing rather than one-time expenditure. Hardware must be replaced as it ages; software requires updates; connectivity entails recurring costs. Libraries operating year-to-year on uncertain budgets struggle to sustain digital services.

4.3 Staff Capacity and Training :

Effective digital literacy programs require staff with both technical skills and teaching abilities. Yet rural libraries often employ limited staff who may lack confidence or expertise in digital technologies. The Cameroon mobile library initiative noted that libraries had been "abandoned to the hands of school teachers who know little or nothing about managing and coordinating the activities of a library".

Even where librarians possess technical skills, facilitating digital learning requires pedagogical

approaches distinct from traditional library services. Staff need training in adult learning principles, patience with novice users, and ability to adapt instruction to diverse needs and learning styles.

4.4 Policy and Coordination Gaps :

Fragmented policy support limits rural libraries' ability to fulfill their digital inclusion potential. The Indian study noted "inadequate internet access, limited funding, and fragmented policy support" as challenges requiring attention "to strengthen the role of Libraries in advancing the SDG agenda".

Libraries often fall between policy domainseducation, information technology, rural development, social welfarewith no single ministry or department taking comprehensive responsibility for their digital capacity. This fragmentation complicates efforts to secure sustainable funding and coordinated support.

5. Enabling Factors and Best Practices :

Analysis of successful programs reveals factors that enable effective library-led digital literacy initiatives.

5.1 Multi-Stakeholder Partnerships :

Partnerships extending beyond the library sector emerge as critical enablers. The South African study emphasized "the importance of partnerships with NGOs, universities, and private-sector organisations" in enhancing library digital capacity.

The Namibia case illustrates this principle: a national regulatory authority provided computers and connectivity upgrades, recognizing libraries as strategic partners in advancing digital inclusion goals. Similarly, the Haryana mobile library program resulted from collaboration between a university, a foundation, and a digital reading organizationeach contributing distinct expertise and resources.

Effective partnerships align partner motivations with library needs. Telecommunications regulators may support libraries to demonstrate commitment to universal service. Universities may engage to extend outreach and research impact. NGOs may bring specialized content or pedagogical approaches. Libraries benefit by leveraging external resources while maintaining community-rooted identity and relationships.

5.2 Community Engagement and Cultural Relevance :

Programs that actively engage communities in design and implementation achieve greater relevance and uptake. The Ignacio library's success reflects deep integration with community priorities, including partnerships with "the Tribal Council, schools and nonprofits" and responsiveness to locally-identified needs.

Cultural relevance extends to content and delivery methods. Research on Iranian farmers emphasized the importance of programs "rooted in cultural context" that respect existing knowledge systems while introducing digital tools. The Cameroon mobile library incorporates "storytelling"

and culturally familiar approaches alongside digital resources.

5.3 Flexible, Learner-Centered Approaches :

Effective digital literacy programs accommodate diverse starting points, learning styles, and goals. The Ethembalethu library's Computer Skills 101 program structured learning progressively from basic mouse control through file management, enabling participants to build confidence incrementally.

The Ignacio library offers "one-on-one technology training and drop-in digital skills sessions for everything from basic computer use to advanced design software," recognizing that learners need different levels of support at different times. This flexibility contrasts with rigid, curriculum-bound approaches that may overwhelm novice learners or fail to challenge advanced users.

5.4 Integration with Valued Applications :

Programs that connect digital skills to applications learners already value achieve stronger engagement and retention. The Haryana mobile library linked digital access to children's learning through "storytelling" and play-based approaches that made technology meaningful rather than abstract.

For adults, connections to livelihood applications are particularly powerful. When farmers see how digital skills can provide market information, or when job-seekers recognize that online applications are now standard, motivation to persist through learning challenges strengthens.

6. Recommendations :

6.1 For Library Practitioners :

Rural libraries seeking to develop or strengthen digital literacy programs should consider :

- **Conduct community needs assessments** to understand local priorities, existing skills, barriers, and preferred learning formats. Programs designed around community-identified needs achieve stronger engagement and relevance.
- **Develop partnership strategies** identifying potential collaborators across government, education, business, and civil society sectors. Partnerships can extend resources, expertise, and reach beyond what any single library can achieve independently.
- **Invest in staff development** ensuring librarians have both technical skills and facilitation abilities. Peer learning networks, online resources, and formal training opportunities can build staff capacity.
- **Start with achievable goals** and scale gradually. Successful programs often begin with focused initiatives that demonstrate value before expanding scope.

6.2 For Policymakers :

Government at all levels can support rural library digital literacy through :

- **Recognizing libraries as essential digital infrastructure** in policy frameworks and funding

allocations. This recognition should carry concrete resource commitments comparable to support for schools, health facilities, and other community institutions.

- **Supporting connectivity and technology investments** through dedicated programs that address both initial setup and ongoing operational costs. Universal service funds, often focused on household connectivity, should also support community access points including libraries.
- **Integrating libraries into broader digital inclusion strategies**, ensuring coordination across education, information technology, rural development, and social welfare portfolios.
- **Supporting research and evaluation** to build evidence base on effective approaches and document libraries' contributions to development outcomes.

6.3 For Researchers :

Future research should address :

- **Longitudinal studies** tracking outcomes of library digital literacy programs over extended periods to understand sustained impacts and factors influencing long-term success.
- **Comparative research** across diverse contexts to identify which program features transfer across settings and which require local adaptation.
- **Economic analysis** documenting returns on investment in library digital literacy, including benefits in employment, education, health, and civic participation.
- **Participatory action research** engaging communities as co-researchers in understanding and strengthening digital literacy initiatives.

7. Conclusion :

Digital literacy has become essential for full participation in contemporary economic, social, and civic life. Yet rural communities globally face persistent barriers to digital inclusion, threatening to deepen existing inequalities and limit opportunities for rural populations. This paper has examined the impact of digital literacy programs conducted by libraries in rural areas, drawing on evidence from diverse geographical contexts to illuminate both achievements and challenges.

The findings demonstrate that rural libraries, as trusted community institutions with deep local roots, are uniquely positioned to deliver digital literacy programs that reach marginalized populations and generate meaningful outcomes. Evidence documents enhanced educational engagement among youth, improved economic opportunities, women's empowerment, indigenous knowledge preservation, and strengthened civic participation. These impacts reflect libraries' capacity to combine technical skill-building with culturally relevant, learner-centered approaches that respect community contexts and priorities.

However, realization of this potential requires addressing persistent challenges. Infrastructure deficits, inadequate funding, limited staff capacity, and fragmented policy support constrain libraries'

ability to fulfill their digital inclusion mission. Addressing these barriers demands coordinated action from multiple stakeholderslibrarians, policymakers, researchers, and community membersworking together to strengthen libraries as essential infrastructure for digital equity.

As digital technologies continue to transform societies, ensuring that rural populations are not left behind becomes increasingly urgent. Libraries, with their history of adapting to changing information landscapes while maintaining commitment to equitable access, offer a proven platform for addressing this challenge. Investing in rural libraries' digital capacity is not merely investment in institutions but investment in the capabilities, opportunities, and futures of rural communities themselves.

References :

1. L., & Yousefi, N. (2025). From palm to platform: Addressing the digital literacy needs of rural date farmers in Sistan and Baluchistan. International Federation of Library Associations and Institutions.
2. Seifi, L., & Yousefi, N. (2025). From palm to platform: Addressing the digital literacy needs of rural date farmers in Sistan and Baluchistan. IFLA Repository. -2
3. Bridging the digital divide: Empowering rural libraries as inclusive knowledge hubs for community development. (2026). International Journal of Studies in Inclusive Education, 1(1).
4. Mechieo, K., Nath, K., & Purkayastha, N. (2025). Libraries as community service platforms for digital literacy: A comparative framework for rural and urban India in the vision of Viksit Bharat 2047. Proceedings of the International Conference on Smart Systems and Social Management. Atlantis Press.
5. Communications Regulatory Authority of Namibia. (2025). CRAN boosts digital literacy in Gochas and Ko?s.
6. Community-based mobile library reading program. (2025). HundrED.org.
7. Yadagiri, S., &Ramshirish, M. (2025). Libraries, digital inclusion and sustainable development: The Indian experience. *14th International CALIBER 2025*. INFLIBNET Centre.
8. Ethembalethu Modular Library recognised for digital excellence. (2025). Mogale City. -8
9. Mobile library increases rural students' engagement by providing access to technology and learning resources. (2026). IFLA Library Map of the World. -9
10. University at Albany. (2025). Study highlights how tribal libraries bridge the digital divide.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 75-80

नागपुरी गीतों में साहित्यिक चेतना : ज्ञान–सृजन में योगदान

धरमेन्द्र गोप

शोधार्थी, स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड।

सारांश :

नागपुरी गीत झारखण्ड के लोकजीवन, प्रकृति, समाज, संस्कृति और मानवीय अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। इनमें केवल संगीतात्मकता और मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन के विविध पक्षों के प्रति सजग साहित्यिक दृष्टि भी विद्यमान है। प्रस्तुत आलेख में चयनित नागपुरी गीतों के आधार पर प्रकृति–बोध, मानवीय संवेदना, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना तथा जीवन–दृष्टि के माध्यम से साहित्यिक चेतना के स्वरूप का अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नागपुरी गीत लोकजीवन के अनुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति देकर उन्हें सामूहिक स्मृति और लोकज्ञान का रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार नागपुरी गीत साहित्यिक चेतना के माध्यम से ज्ञान के संरक्षण, संप्रेषण और पुनर्सृजन में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

मुख्य शब्द : नागपुरी गीत, साहित्यिक चेतना, ज्ञान–सृजन, लोकज्ञान, लोकसंस्कृति।

भूमिका :

झारखण्ड की लोक–संस्कृति संगीत, नृत्य और सामुदायिक जीवन से गहरे रूप में जुड़ी हुई है। यहाँ गीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि जीवन की सहज अभिव्यक्ति है। झारखण्डी जीवन की इसी सांस्कृतिक विशेषता को प्रसिद्ध लोककथन –

"गेन गे सुसुन काजि गे दुरंग।"[1]

में व्यक्त किया गया है, जिसका भावार्थ है–चलना ही नृत्य है और बोलना ही संगीत है।[1]

इसी प्रकार –

"जेके गीत से प्रीत नइ,
सेकर बातक कोनो थीत नइ।"[2]

लोकजीवन में गीत–संगीत के महत्त्व को रेखांकित करता है। जन्म, विवाह, पर्व–त्योहार, कृषि, श्रम, प्रेम और विरह–जीवन के लगभग प्रत्येक अवसर पर गीतों की उपस्थिति नागपुरी समाज की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा का परिचायक है।

नागपुरी गीतों में प्रकृति, मानवीय संबंध, सामाजिक समस्याएँ, संस्कार तथा जीवन के सुख–दुःख विविध रूपों में व्यक्त हुए हैं। इन अनुभवों को जिस संवेदनात्मक और कलात्मक रूप में अभिव्यक्ति मिलती है, वही इन गीतों की साहित्यिक चेतना है। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि नागपुरी गीतों की साहित्यिक चेतना किस प्रकार लोकज्ञान और ज्ञान–सृजन में योगदान देती है।

साहित्यिक चेतना : अवधारणा :

साहित्यिक चेतना को व्यापक अर्थ में उस संवेदनात्मक एवं वैचारिक दृष्टि के रूप में समझा जा सकता है, जिसके माध्यम से रचनाकार जीवन, समाज, प्रकृति, संस्कृति और मानवीय अनुभवों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस दृष्टि से साहित्यिक चेतना केवल किसी विषय के उल्लेख तक सीमित नहीं होती, बल्कि उस विषय के प्रति रचनाकार की संवेदना, दृष्टि और कलात्मक अभिव्यक्ति में प्रकट होती है।[3]

संक्षेप में – जीवनानुभव + संवेदना + दृष्टि + कलात्मक अभिव्यक्ति = साहित्यिक चेतना।

नागपुरी गीतों में प्रकृति–बोध, मानवीय संवेदना, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना और जीवन–दृष्टि साहित्यिक चेतना के प्रमुख आयामों के रूप में दिखाई देते हैं।

नागपुरी गीतों में साहित्यिक चेतना के प्रमुख आयाम :

1. **प्रकृति–बोध :** झारखण्ड का वन, पर्वत, नदी, झरना और ऋतु–परिवर्तन नागपुरी गीतों की संवेदना से गहरे रूप में जुड़े हैं। **मधु मंसुरी 'हँसमुख' के 'नागपुर कर कोरा' गीता में :–**

''नदी नाला, टाका टुकू बन रे,
पतरा भइर ले खोंसा, काँसी फूल...''[4]

के माध्यम से क्षेत्र की प्राकृतिक छवि प्रस्तुत होती है।

इसी प्रकार लाल रणविजय नाथ शाहदेव के 'हीरानागपुर' नागपुरी गीत में –

''बन पहार तरे, धरती सिंगार करे,
पवन पुकारे जय जय हीरानागपुरे।''[5]

प्रकृति के साथ क्षेत्रीय आत्मीयता और गौरव का भाव जुड़ जाता है।

क्षितिज कुमार राय के नागपुरी गीत में –

''सीतल सरद गेल पराय,
बिहँसत रितु वसंत आय।''[6]

ऋतु–परिवर्तन के साथ नवजीवन और आनंद का भाव व्यक्त होता है।

वर्षा–विरह गीत में–

''गरजत मेघ करत सोर,
बरसत जल करत जोर।''[7]

प्रकृति मानवीय भावना से जुड़ जाती है।

इस प्रकार नागपुरी गीतों में प्रकृति केवल दृश्य नहीं, बल्कि लोकजीवन की सहभागी है। इनके माध्यम से प्राकृतिक परिवेश और ऋतु–चक्र का पर्यावरणीय लोकज्ञान संरक्षित होता है।

2. **मानवीय संवेदना :**

प्रेम, विरह, करुणा और प्रतीक्षा नागपुरी गीतों में मानवीय संवेदना के प्रमुख रूप हैं।

वियोग नागपुरी गीत में–

''अम्बा मंजरे मधु मातलय रे तइसने पिया मातल जाए रे।''[8]

प्रिय की स्मृति और वियोग की पीड़ा अत्यंत मार्मिक रूप में व्यक्त होती है।

इसी प्रकार करुणा गीत –

"ओ दे ओ दे रे रसल भँवरा,

भँवरा आइझ भँवरा कहाँ तो लोभाले रे?"[9]

प्रतीक्षा और भावात्मक व्याकुलता को व्यक्त करता है।

ये गीत बताते हैं कि नागपुरी लोकजीवन में व्यक्तिगत अनुभूति भी सामूहिक अनुभव बन जाती है। इस प्रकार गीत मानवीय संबंधों और भावनाओं से संबंधित भावात्मक लोकज्ञान का निर्माण करते हैं।

3. सामाजिक चेतना :

नागपुरी गीत समाज की समस्याओं के प्रति भी सजग हैं। मुकुन्द नायक के 'नशाखोरी' गीत में कहा गया है–

"हायरे हायरे हो मति करू नशाखोरी,

नशाखोरी हेके महामारी।"[10]

गीत नशाखोरी को सामाजिक संकट के रूप में प्रस्तुत कर समाज को उसके विरुद्ध जागरूक करता है।

इसी प्रकार 'चला चला रे' में –

"गाँव सहरे जाए जन के जगाए,

झारखण्ड के सुखद बनाए चला चला रे।"

जन–जागरण और सामूहिक विकास का आह्वान किया गया है।

मधु मंसुरी 'हँसमुख' के गीत में –

"साहित मशाल धरू,

सिंह लखे गरइज परू... ।"[11]

मशाल जागरण और गरजना संघर्ष एवं साहस का प्रतीक बनते हैं।

इस प्रकार नागपुरी गीत सामाजिक समस्याओं की पहचान कर चेतना, जागरूकता और सामूहिक उत्तरदायित्व का ज्ञान प्रदान करते हैं।

4. सांस्कृतिक चेतना :

नागपुरी विवाह–गीत समाज की सांस्कृतिक स्मृति के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

लोकगीत–

"केकर लगिन आयो गे,

झालइर मड़ोवा केकर लगिन आयो, रूदन लगावइ।"[12]

विवाह–संस्कार और बेटी की विदाई से जुड़े भावों को अभिव्यक्त करता है।

डमकच एकहरिया में –

"कोन बटे आहे नीरे जाम झुरी छहियाँ,

कोन बटे आहे रे नवाँ ससुराइर।"[13]

विवाह के बाद नए सामाजिक परिवेश में प्रवेश करने वाली स्त्री के अनुभव का चित्र मिलता है। इन गीतों के माध्यम से विवाह, मड़वा, विदाई, ससुराल और पारिवारिक संबंधों की परंपराएँ पीढ़ियों तक पहुँचती हैं। अतः

नागपुरी गीत सांस्कृतिक स्मृति और संस्कारगत ज्ञान के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5. जीवन–दृष्टि :

नागपुरी गीतों में जीवन के प्रति लोकसमाज की चिंतनशील दृष्टि भी दिखाई देती है।

गीत– ''चाईर दिनक मेला रे,

चाईर दिनक खेला रे,

सेकर लगिन का ले झमेला।''

जीवन की क्षणभंगुरता और संसार की अस्थिरता का बोध कराता है।

दूसरे गीत में –

''एक तो मन लागे रे दुबारा जन्म होई की नहीं बतीयाले

दिल के बतिया, रे मन के बतिया ले

सोना दिल के बतिया, रे मन के बतिया ले।''[14]

वर्तमान जीवन और मानवीय संबंधों के महत्त्व को व्यक्त किया गया है।

इसी प्रकार 'रूपू' में–

''छव महिना दिन सेथी बिती जाय,

आसा टूइट गेलक रे रूपू...।''[15]

समय, प्रतीक्षा और आशा के टूटने का मानवीय अनुभव व्यक्त होता है।

इन गीतों में जीवन, समय, परिवर्तन और आशा–निराशा के प्रति लोकसमाज की दृष्टि दिखाई देती है। यही लोकदृष्टि जीवनानुभव से उत्पन्न ज्ञान का रूप ग्रहण करती है।

साहित्यिक चेतना के माध्यम से ज्ञान–सृजन :

उपर्युक्त गीत नागपुरी गीत–साहित्य की विशाल परंपरा के केवल कुछ प्रतिनिधि उदाहरण हैं। इन उदाहरणों के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि नागपुरी गीतों में साहित्यिक चेतना किस प्रकार कार्य करती है।

नागपुरी गीतों में ज्ञान किसी औपचारिक पाठ्यपुस्तक की तरह नहीं दिया जाता। लोकजीवन का अनुभव पहले संवेदना बनता है, फिर गीतात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त करता है और सामूहिक गायन के माध्यम से पीढ़ियों तक पहुँचता है।

इस प्रक्रिया को इस प्रकार समझा जा सकता है –

- लोकजीवन का अनुभव।
- संवेदना और साहित्यिक चेतना।
- गीतात्मक अभिव्यक्ति।
- सामूहिक स्मृति और परंपरा।
- पीढ़ियों में संप्रेषण।।
- ज्ञान–सृजन और पुनर्सृजन।।

जब गीतों में प्रकृति आती है, तो प्राकृतिक परिवेश का ज्ञान संरक्षित होता है; प्रेम–विरह के माध्यम से

मानवीय संवेदना का ज्ञान विकसित होता है; सामाजिक गीत जन–जागरण पैदा करते हैं; विवाह–गीत सांस्कृतिक परंपराओं को सुरक्षित रखते हैं; और जीवन–दृष्टि से जुड़े गीत जीवन के अनुभवों को समझने की दृष्टि प्रदान करते हैं।

अतः साहित्यिक चेतना के माध्यम से नागपुरी गीत लोकजीवन के अनुभवों को ज्ञान, स्मृति और सांस्कृतिक विरासत में रूपांतरित करते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नागपुरी गीत झारखण्डी लोकजीवन की केवल संगीतात्मक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि अनुभव, संवेदना, विचार और ज्ञान की एक सशक्त लोकपरंपरा हैं।

प्रस्तुत गीतों के उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि प्रकृति–बोध, मानवीय संवेदना, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना और जीवन–दृष्टि नागपुरी गीतों में साहित्यिक चेतना के प्रमुख आयाम हैं। ये उदाहरण नागपुरी गीतों की व्यापक परंपरा की केवल एक झलक प्रस्तुत करते हैं, किंतु इनके माध्यम से यह समझा जा सकता है कि लोकगीत जीवन के विविध अनुभवों को किस प्रकार साहित्यिक रूप प्रदान करते हैं।

नागपुरी गीत लोकजीवन के अनुभवों को सामूहिक स्मृति में सुरक्षित रखते हैं, उन्हें पीढ़ियों तक पहुँचाते हैं और प्रत्येक पीढ़ी को अपने जीवन तथा समाज को समझने की दृष्टि प्रदान करते हैं। इसलिए इन गीतों में ज्ञान केवल संरक्षित नहीं होता, बल्कि निरंतर पुनर्सृजित भी होता है।

अतः कहा जा सकता है –

''नागपुरी गीत लोकजीवन के अनुभवों को साहित्यिक चेतना के माध्यम से ज्ञान में रूपांतरित करते हैं।'' यही ज्ञान–सृजन में नागपुरी गीतों का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ–सूची :

1. गौंझू, गिरिधारी राम 'गिरिराज'। (2019). झारखण्ड का लोकसंगीत। झारखण्ड झरोखा।
2. गौंझू, गिरिधारी राम 'गिरिराज'। (2019). झारखण्ड का लोकसंगीत। झारखण्ड झरोखा। पृष्ठ 45
3. दास, डॉ. श्यामसुन्दर। साहित्यालोचन : साहित्य के अंगों और उपांगों का विवेचन और निरूपण। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017। पृष्ठ 25
4. हँसमुख' मधु मंसुरी झारखण्ड जागरण गीत–नगीत (नागपुरी खंड प्रथम)। संपा.–डॉ. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', शकुन्तला मिश्र, अंजुलता कुमारी एवं ज्ञानोत्तम विधि। झारखण्ड झरोखा, राँची, 2015, पृष्ठ 85
5. शाहदेव, लाल रण विजय नाथ। झारखण्ड जागरण गीत–नगीत (नागपुरी खंड प्रथम)। संपा.–डॉ. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', शकुन्तला मिश्र, अंजुलता कुमारी एवं ज्ञानोत्तम विधि। झारखण्ड झरोखा, राँची, 2015। पृष्ठ 74
6. राय, क्षितिश कुमार। रूपु : नागपुरी गीत और कविता। झारखण्ड झरोखा, राँची, पृष्ठ 57
7. गौंझू, डॉ. गिरिधारी राम 'गिरिराज' (संपा.)। (2019). नागपुरी लोकगीत। झारखण्ड झरोखा। पृष्ठ 61
8. गौंझू, डॉ. गिरिधारी राम 'गिरिराज' (संपा.)। (2019). नागपुरी लोकगीत। झारखण्ड झरोखा। पृष्ठ 61
9. गौंझू, डॉ. गिरिधारी राम 'गिरिराज' (संपा.)। (2019). नागपुरी लोकगीत। झारखण्ड झरोखा। पृष्ठ 62

10. नायक मुकुन्द झारखण्ड जागरण गीत–नगीत (नागपुरी खंड प्रथम)। संपा.–डॉ. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', शकुन्तला मिश्र, अंजुलता कुमारी एवं ज्ञानोत्तम विधि। झारखण्ड झरोखा, राँची, 2015। पृष्ठ 85
11. हँसमुख' मधु मंसुरी झारखण्ड जागरण गीत–नगीत (नागपुरी खंड प्रथम)। संपा.–डॉ. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज', शकुन्तला मिश्र, अंजुलता कुमारी एवं ज्ञानोत्तम विधि। झारखण्ड झरोखा, राँची, 2015। पृष्ठ 84
12. नागपुरी लोकगीत।
13. नायक, मनपूरन। नागपुरी लोकगीत और मांदर के ताल। राँचीः झारखण्ड झरोखा, 2016। पृष्ठ 35
14. अंसारी अजाद (नागपुरी लोकगायक), पांडुलिपि।
15. राय, क्षितिश कुमार। रूपु : नागपुरी गीत और कविता। झारखण्ड झरोखा, राँची।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 81-87

हाइब्रिड पुस्तकालय : साहित्य और कला का संगम

डॉ. दीप्ति लोदवाल
ग्रंथपाल, शासकीय विधि महाविद्यालय, उज्जैन।

सारांश :

वर्तमान डिजिटल युग में पुस्तकालय केवल पुस्तकों के संग्रह तक सीमित नहीं रह गए हैं, बल्कि वे ज्ञान, सूचना, साहित्य, कला एवं संस्कृति के समन्वित केंद्र के रूप में विकसित हो रहे हैं। इसी परिवर्तनशील परिदृश्य में हाइब्रिड पुस्तकालय (Hybrid Library) की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण बन गई है। हाइब्रिड पुस्तकालय वह पुस्तकालय है जिसमें पारंपरिक मुद्रित संसाधनों के साथ ही आधुनिक डिजिटल संसाधनों का प्रभावी समन्वय होता है। यह मॉडल उपयोगकर्ताओं को भौतिक एवं आभासी दोनों प्रकार की सेवाएँ प्रदान करता है, जिससे ज्ञान तक पहुँच अधिक व्यापक, सुविधाजनक एवं समावेशी बनती है।

वर्तमान शोध-पत्र का उद्देश्य हाइब्रिड पुस्तकालय की अवधारणा को साहित्य एवं कला के संदर्भ में विश्लेषित करना है। शोध में यह स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक पुस्तकालय केवल अध्ययन-अध्यापन के केंद्र नहीं हैं, बल्कि साहित्यिक गतिविधियों, कला प्रदर्शनियों, सांस्कृतिक आयोजनों, डिजिटल अभिलेखन तथा रचनात्मक अभिव्यक्ति के सशक्त मंच के रूप में भी विकसित हो रहे हैं। हाइब्रिड पुस्तकालय साहित्यकारों, कलाकारों, शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों के मध्य संवाद स्थापित कर ज्ञान-सृजन को प्रोत्साहित करती है।

शब्दकुंजी (Keywords):

हाइब्रिड पुस्तकालय, साहित्य, कला, डिजिटल पुस्तकालय, सूचना प्रौद्योगिकी, सांस्कृतिक विरासत, (AI) कृत्रिम बुद्धिमत्ता।

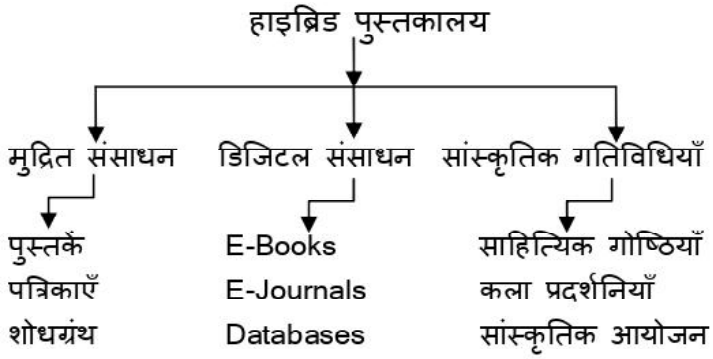
1. प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास में पुस्तकालयों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। प्राचीन काल में वे पांडुलिपियों, धार्मिक ग्रंथों एवं ऐतिहासिक अभिलेखों के संरक्षण और प्रसार के प्रमुख केंद्र

थे। आधुनिक युग में ICT, इंटरनेट, क्लाउड कंप्यूटिंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं डिजिटल संसाधनों ने पुस्तकालयों के स्वरूप को बदल दिया है।

हाइब्रिड पुस्तकालय मुद्रित एवं डिजिटल संसाधनों को एकीकृत कर उपयोगकर्ताओं को सरल, तीव्र एवं प्रभावी सूचना उपलब्ध कराते हैं। वर्तमान में साहित्य और कला भी डिजिटल माध्यमों से जुड़ चुके हैं, जैसे ई-पुस्तकें, ऑनलाइन प्रदर्शनियाँ, कविता-पाठ एवं डिजिटल कला। उच्च शिक्षा संस्थानों में हाइब्रिड पुस्तकालय साहित्य, कला, शिक्षा एवं अनुसंधान के लिए साझा मंच प्रदान कर विद्यार्थियों की रचनात्मकता को बढ़ावा देते हैं। NEP 2020 के बहुविषयक एवं डिजिटल शिक्षा के दृष्टिकोण से हाइब्रिड पुस्तकालय समृद्ध अधिगम वातावरण के महत्वपूर्ण केंद्र बन रहे हैं।

चित्र 1: हाइब्रिड पुस्तकालय की अवधारणा





2. अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान समय में ज्ञान का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। उपयोगकर्ता अब केवल मुद्रित पुस्तकों पर निर्भर नहीं है, बल्कि वह ई-पुस्तकों, ऑनलाइन डेटाबेस, डिजिटल अभिलेखों तथा मल्टीमीडिया संसाधनों का भी उपयोग करता है। इसके साथ-साथ साहित्य और कला के संरक्षण एवं प्रसार के लिए भी डिजिटल मंचों का महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

हाइब्रिड पुस्तकालय इस आवश्यकता को पूरा करने वाला एक प्रभावी मॉडल है क्योंकि यह पारंपरिक एवं आधुनिक दोनों प्रकार के संसाधनों को एकीकृत रूप से उपलब्ध कराती है। साथ ही यह सांस्कृतिक विरासत, लोक साहित्य, चित्रकला, संगीत एवं अन्य कला रूपों के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

इस अध्ययन की आवश्यकता इसलिए भी है क्योंकि भारत में अधिकांश महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय पुस्तकालय अभी संक्रमण की अवस्था में हैं, जहाँ पारंपरिक एवं डिजिटल सेवाओं का समन्वय क्रमशः विकसित हो रहा है। ऐसे में हाइब्रिड पुस्तकालय की भूमिका, संभावनाओं एवं चुनौतियों का अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक है।

3. साहित्य समीक्षा

हाइब्रिड पुस्तकालय की अवधारणा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास के साथ विकसित हुई। Rusbridge (1998) ने इसे मुद्रित एवं इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों के एकीकृत

प्रबंधन की व्यवस्था बताया। Oppenheim एवं Smithson (1999) के अनुसार यह विभिन्न सूचना प्रारूपों का संयोजन है, जबकि Brophy (2007) ने मुद्रित एवं डिजिटल संसाधनों के संतुलित समन्वय को भविष्य के पुस्तकालय का प्रभावी मॉडल माना।

डॉ. एस. आर. रंगनाथन के पाँचवें सूत्र **"पुस्तकालय एक वर्धनशील संस्था है"** के अनुरूप हाइब्रिड पुस्तकालय निरंतर बदलती आवश्यकताओं के अनुसार विकसित होता है। Gorman (2000) ने पुस्तकालय को सूचना के साथ-साथ साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता के संरक्षण का केंद्र माना है। UNESCO ने भी पुस्तकालयों को सांस्कृतिक विरासत संरक्षण एवं ज्ञान के लोकतंत्रीकरण का महत्वपूर्ण माध्यम माना है।

वर्तमान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल मानविकी, वर्चुअल वास्तविकता एवं डिजिटल अभिलेखागार ने पुस्तकालय सेवाओं को नया स्वरूप दिया है। डिजिटल कला संग्रह, ई-पांडुलिपियाँ, वर्चुअल प्रदर्शनियाँ एवं ऑनलाइन साहित्यिक मंच इसके प्रमुख उदाहरण हैं। उपलब्ध अध्ययनों में हाइब्रिड पुस्तकालय पर पर्याप्त कार्य हुआ है, किंतु साहित्य एवं कला के समन्वित दृष्टिकोण से अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है। यही वर्तमान अध्ययन का प्रमुख शोधान्तर है।

4. शोध की समस्या

वर्तमान में अधिकांश शैक्षणिक संस्थानों में मुद्रित एवं डिजिटल दोनों संसाधन उपलब्ध हैं, किन्तु साहित्यिक एवं कलात्मक गतिविधियों के साथ उनका समन्वित उपयोग अपेक्षित स्तर तक नहीं हो पाया है। इसी संदर्भ में यह अध्ययन निम्न प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास करता है–

- क्या हाइब्रिड पुस्तकालय साहित्य एवं कला के विकास में प्रभावी भूमिका निभाती है?
- डिजिटल माध्यम साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को अधिक व्यापक बना रहे हैं?
- भविष्य में हाइब्रिड पुस्तकालय का स्वरूप कैसा होगा?
-

5. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

किसी भी कार्य को प्रारंभ करने के पीछे उसके कुछ उद्देश्य होते हैं इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. हाइब्रिड पुस्तकालय की अवधारणा का अध्ययन करना।
2. पारंपरिक एवं डिजिटल संसाधनों के समन्वय का मूल्यांकन करना।
3. शैक्षणिक संस्थानों में हाइब्रिड पुस्तकालय की उपयोगिता का अध्ययन करना।
4. साहित्य एवं कला के संरक्षण में हाइब्रिड पुस्तकालय की भूमिका का विश्लेषण करना।
5. भविष्य की पुस्तकालय सेवाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं डिजिटल तकनीकों की भूमिका का विश्लेषण करना।
6. पुस्तकालयों को सांस्कृतिक एवं रचनात्मक केंद्र के रूप में विकसित करने के सुझाव प्रस्तुत करना।

6. परिकल्पनाएँ

H_0 (शून्य परिकल्पना):

हाइब्रिड पुस्तकालय का साहित्य एवं कला के विकास पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता।

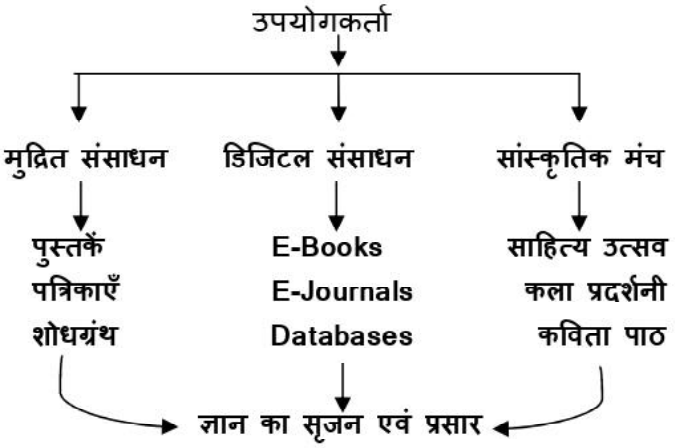
H_1 (वैकल्पिक परिकल्पना):

हाइब्रिड पुस्तकालय साहित्य एवं कला के संरक्षण, संवर्धन तथा प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

7. शोध पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में हाइब्रिड पुस्तकालय में उपलब्ध मुद्रित एवं डिजिटल संसाधनों तथा साहित्य एवं कला से संबंधित सेवाओं का अध्ययन किया गया है। इसके लिए उपलब्ध पुस्तकों, शोध-पत्रों, ऑनलाइन स्रोतों एवं संबंधित साहित्य का अध्ययन कर तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य हाइब्रिड पुस्तकालय की साहित्य एवं कला के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार में भूमिका का विश्लेषण करना है।

8.हाइब्रिड पुस्तकालय का वैचारिक मॉडल



चित्र 2: हाइब्रिड पुस्तकालय वैचारिक मॉडल



9. हाइब्रिड पुस्तकालय एवं साहित्य का संबंध

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। किसी भी समाज की सांस्कृतिक चेतना उसके साहित्य में प्रतिबिंबित होती है। आधुनिक समय में साहित्य केवल मुद्रित पुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि ई-पुस्तकों, डिजिटल अभिलेखों, ब्लॉग, ऑडियोबुक, पॉडकास्ट तथा ऑनलाइन साहित्यिक मंचों के रूप में भी उपलब्ध है। हाइब्रिड पुस्तकालय इन सभी माध्यमों को एकीकृत कर पाठकों, शोधार्थियों तथा साहित्यकारों के लिए एक समृद्ध ज्ञान वातावरण तैयार करती है। यह न केवल साहित्य के संरक्षण का माध्यम है, बल्कि उसके व्यापक प्रसार और नई पीढ़ी तक पहुँच का भी प्रभावी साधन है।

इसके अतिरिक्त, हाइब्रिड पुस्तकालय साहित्यिक गोष्ठियों, लेखक संवाद, पुस्तक विमोचन, ई-संगोष्ठियों तथा ऑनलाइन पाठक समुदायों के आयोजन द्वारा साहित्यिक संस्कृति को सशक्त बनाती है।

10. हाइब्रिड पुस्तकालय एवं कला का संबंध

हाइब्रिड पुस्तकालय मुद्रित एवं डिजिटल संसाधनों के साथ कला एवं संस्कृति के संरक्षण और प्रसार का भी महत्वपूर्ण केंद्र बन रहे हैं। चित्रकला, संगीत, नृत्य, लोककला तथा डिजिटल कला को डिजिटल गैलरी, वर्चुअल प्रदर्शनी, मल्टीमीडिया अभिलेख एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से व्यापक उपयोगकर्ता वर्ग तक पहुँचाया जा सकता है। इससे पुस्तकालय एक जीवंत ज्ञान एवं सांस्कृतिक केंद्र के रूप में विकसित होता है।

11. भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

भारत में **डिजिटल इंडिया एवं NEP 2020** के प्रभाव से पुस्तकालयों में मुद्रित एवं डिजिटल संसाधनों का समन्वय बढ़ा है। ई-पुस्तकें, ई-जर्नल, डिजिटल थीसिस, संस्थागत रिपॉजिटरी तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ हाइब्रिड मॉडल को मजबूत कर रही हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रमुख पुस्तकालयों ने डिजिटल संग्रह, वर्चुअल सेवाओं एवं सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के माध्यम से इस मॉडल को प्रभावी बनाया है।

12 . हाइब्रिड पुस्तकालय के लाभ

हाइब्रिड पुस्तकालय विद्यार्थियों को अध्ययन सामग्री, शोधार्थियों को डिजिटल डेटाबेस एवं ओपन एक्सेस संसाधन, साहित्यकारों को ई-पब्लिशिंग एवं ऑनलाइन मंच तथा कलाकारों को डिजिटल प्रदर्शनी एवं अभिलेखन की सुविधाएँ प्रदान करता है। इस प्रकार यह शिक्षा, अनुसंधान, साहित्य, कला एवं संस्कृति के विकास का समग्र ज्ञान-केंद्र बनता है।

तालिका 1 : पारंपरिक एवं हाइब्रिड पुस्तकालय की तुलना

क्र.	आधार	पारंपरिक पुस्तकालय	हाइब्रिड पुस्तकालय
01	संग्रह	केवल मुद्रित सामग्री	मुद्रित + डिजिटल
02	पहुँच	पुस्तकालय परिसर तक	कहीं भी, कभी भी
03	सेवाएँ	सीमित	ऑनलाइन एवं ऑफलाइन
04	उपयोगकर्ता	स्थानीय	वैश्विक
05	कला गतिविधियाँ	सीमित	भौतिक एवं वर्चुअल
06	साहित्यिक कार्यक्रम	ऑफलाइन	हाइब्रिड मोड

13. हाइब्रिड पुस्तकालय की चुनौतियाँ

हाइब्रिड पुस्तकालयों के सामने वित्तीय संसाधनों की कमी, डिजिटल अवसंरचना, इंटरनेट कनेक्टिविटी, प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव, साइबर सुरक्षा, कॉपीराइट, डिजिटल विभाजन तथा सूचना साक्षरता जैसी प्रमुख चुनौतियाँ हैं।

14. भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य के हाइब्रिड पुस्तकालय कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), चैटबॉट (Chatbot), वर्चुअल रियलिटी (VR), ऑगमेंटेड रियलिटी (AR), क्लाउड कंप्यूटिंग (Cloud Computing), बिग डेटा (Big Data), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT) और डिजिटल आर्काइव (Digital Archive) जैसी आधुनिक तकनीकों से और अधिक स्मार्ट, आसान और उपयोगकर्ता-केंद्रित बनेंगे। इन तकनीकों से उपयोगकर्ताओं को तेज़ और व्यक्तिगत सूचना सेवाएँ, डिजिटल ज्ञान-संसाधन तथा बेहतर सीखने का अनुभव मिलेगा।

15. सुझाव

हाइब्रिड पुस्तकालयों में मुद्रित एवं डिजिटल संसाधनों का संतुलित विकास, आधुनिक तकनीक एवं AI का उपयोग, कर्मचारियों का नियमित प्रशिक्षण, स्थानीय साहित्य एवं कला का डिजिटलीकरण तथा डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

17. निष्कर्ष

हाइब्रिड पुस्तकालय पारंपरिक एवं डिजिटल संसाधनों के बीच एक सशक्त सेतु का कार्य करते हुए साहित्य, कला, संस्कृति, शिक्षा एवं अनुसंधान के बहुआयामी केंद्र के रूप में विकसित हो रहे हैं। इनमें मुद्रित पुस्तकों, पत्रिकाओं और शोध-सामग्री के साथ ई-पुस्तकें, ई-जर्नल, डिजिटल अभिलेख, ऑनलाइन डेटाबेस तथा वर्चुअल संसाधन उपलब्ध होते हैं। इससे विद्यार्थियों, शोधार्थियों, साहित्यकारों और कलाकारों को ज्ञान एवं सांस्कृतिक सामग्री तक सरल, त्वरित और व्यापक पहुँच प्राप्त होती है।

आधुनिक तकनीकों, जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल अभिलेखागार, वर्चुअल प्रदर्शनी और ऑनलाइन साहित्यिक मंचों के समन्वय से हाइब्रिड पुस्तकालय साहित्य एवं कला के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यदि इन पुस्तकालयों में पर्याप्त डिजिटल अवसंरचना, प्रशिक्षित कर्मचारी और प्रभावी सेवाएँ विकसित की जाएँ, तो वे भविष्य में ज्ञान, नवाचार एवं सांस्कृतिक विकास के और अधिक प्रभावी माध्यम बन सकते हैं।

18. संदर्भ सूची

1. Brophy, P. (2007). *The Library in the Twenty-First Century*. Facet Publishing.
2. Gorman, M. (2000). *Our Enduring Values*. ALA.
3. Oppenheim, C., & Smithson, D. (1999). What is the hybrid library? *Journal of Information Science*.
4. Rusbridge, C. (1998). Towards the Hybrid Library. *D-Lib Magazine*.
5. Ranganathan, S. R. (1963). *The Five Laws of Library Science*. Asia Publishing House.
6. IFLA. (2022). *IFLA Trend Report*.

7. UNESCO. (2021). *Libraries and Cultural Heritage*.
8. Ministry of Education, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*.
9. Jain, P. (2018). *Digital Libraries*. ESS ESS Publications.
10. Singh, S. P. (2019). *Library Automation and Networking*. Ess Ess Publications.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 88-92

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं सामाजिक क्षेत्रक व्यय : वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. सोनम गुप्ता
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज।

सारांश :

भारतीय ज्ञान परम्परा विविध बौद्विक समरसता एवं सास्कृतिक परम्पराओं के द्वारा मानव के सम्पूर्ण विकास, सामाजिक कल्याण, नैतिकता, ज्ञान के सृजन, पर्यावरण एवं मानव के मध्य सकारात्मक संबन्धो पर महिला एवं बाल विकास, स्वच्छता, गरीबी उन्मूलन, परिवार नियोजन, दलित जातियों के विकास, ग्रामीण विकास, और सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण को केन्द्र में रखते हुए समावेशी विकास की ओर ध्यान केन्द्रित करता है। यह शोध पत्र अर्थशास्त्रीय दृष्टि से भारतीय ज्ञान परम्परा एवं सामाजिक क्षेत्रक व्यय के मध्य अवधारणात्मक सम्बन्धो का विश्लेषण प्रस्तुत करता हैं। यह अध्ययन द्वितीयक शोध स्त्रोतो पर आधारित है तथा इसमें वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है। भारतीय ज्ञान परम्परा से जुड़ी सामाजिक कल्याण की अवधारणाओं का आर्थिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है, कि भारतीय ज्ञान परम्परा, वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों में प्रमुखता से परिलक्षित होती है अर्थात् नैतिक एवं मानक रूप में, न कि प्रत्यक्ष नीतिगत प्रारूप में। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा को वर्तमान प्रासंगिक नीतियो का प्रमाण नही, वैचारिक स्त्रोत माना जा सकता है।

प्रस्तावना :–

भारत दुनिया की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक है, जिसकी विशिष्ट पहचान, समृद्ध ज्ञान परम्परा तथा सामाजिक न्याय एवं कल्याण को केन्द्र में रखने वाले सामाजिक व्यय की अवधारणाओं से निर्मित होती है। भारतीय ज्ञान प्रणाली ज्ञान संग्रह का ढ़ाचा नहीं बल्कि, उच्च गुणवत्ता पूर्ण जीवन शैली है, जिसमें जीवन, समाज, अर्थव्यवस्था, चिकित्सा, पर्यावरण और दैनिक आचरण का सर्वांगीण दर्शन है। दूसरी ओर सामाजिक क्षेत्रक व्यय में शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, महिला एवं बाल विकास, स्वच्छता, गरीबी उन्मूलन, परिवार नियोजन, दलित जातियों के विकास, ग्रामीण विकास, और सामाजिक सुरक्षा जैसे क्षेत्रो में सरकार द्वारा किया गया निवेश शामिल है जो किसी भी राष्ट्र के मानवीय पूंजी के विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। अतः भारतीय ज्ञान परम्परा तथा सामाजिक क्षेंत्रक व्यय एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं, क्योंकि दोनों का केन्द्र बिन्दु समाज कल्याण ही है।

भारतीय ज्ञान परम्परा की अवधारणा :–

भारतीय ज्ञान परम्परा, भारत की एक प्राचीन समृद्ध और विविध ज्ञान प्रणाली है, जो वेद, उपनिषद, पुराण और शास्त्रों से शुरू होकर साहित्य के माध्यम से जनसाधारण के मध्य पहुँचती है। वह परम्परा केवल सिद्धान्त एवं आदर्शों तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में (शिक्षा स्वास्थ्य, महिला एवं दलित जातियों के उत्थान, दण्डनीति कर–प्रणाली, समाजिक समरसता, प्रशासनिक प्रणाली, पर्यावरण संरक्षण, समाजिक समानता, भेदभाव, अर्थात शारीरिक मानसिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक समग्र दृष्टिकोण अपनाया गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्व :–

भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्व हमारी सांस्कृतिक पहचान, आध्यात्मिक विकास, वैज्ञानिक प्रगति और नैतिक मूल्यों के लिए अमूल्य है, जो दर्शन, गणित (शून्य की खोज), चिकित्सा (आयुर्वेद), खगोल विज्ञान, योग और कला जैसे क्षेत्रों में व्यावहारिक और सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करती है, जिससे चरित्र निर्माण, आत्मविश्वास में वृद्धि और आधुनिक चुनौतियों का समाधान होता है, और यह विश्वभर में प्रासंगिक बनी हुई है।

- **सांस्कृतिक और आध्यात्मिक नींव :–** यह परंपरा हमारी समृद्ध विरासत है, जो हमें जड़ों से जोड़ती है और आध्यात्मिकता (योग, ध्यान, दर्शन) के माध्यम से आंतरिक शांति और मानसिक स्वास्थ्य देती है, जैसा कि वेदों, उपनिषदों और गीता में है।
- **वैज्ञानिक और व्यावहारिक ज्ञान :–** इसमें आयुर्वेद, गणित (शून्य, दशमलव प्रणाली), खगोल विज्ञान और वास्तुकला (मंदिर निर्माण) जैसे क्षेत्रों में गहन ज्ञान है, जो आज भी प्रासंगिक है और आधुनिक विज्ञान के लिए आधार बना है।
- **चरित्र निर्माण और शिक्षा :–** यह नैतिक मूल्यों, गुरु–शिष्य परंपरा और सामाजिक सद्भाव पर जोर देती है, जो छात्रों में आत्मविश्वास और चरित्र निर्माण करती है, तथा नई शिक्षा नीति (NEP) का भी हिस्सा है।
- **पर्यावरण संरक्षण :–** प्राचीन कृषि पद्धतियाँ, जल प्रबंधन और प्राकृतिक संसाधनों के बुद्धिमानी से उपयोग की शिक्षा देती है, जो जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का समाधान करती है।
- **वैश्विक प्रासंगिकता :–** योग, आयुर्वेद, गणितीय अवधारणाएँ (जैसे दशमलव), और वास्तुकला जैसी भारतीय योगदान को विश्व स्वीकार कर चुका है, और यह मानवता के लिए मार्गदर्शन का स्रोत है।

सामाजिक क्षेत्रक व्यय की अवधारणा :–

सामाजिक क्षेत्रक व्यय का तात्पर्य उन सरकारी व्ययो अर्थात खर्चों से है, जो नागरिको की जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, स्वच्छ पेयजल, महिला एवं बाल विकास कल्याण, ग्रामीण विकास आदि पर खर्च किए जाते है। जो कि मानव विकास सूचकांक, बहुआयामी गरीबी सूचकांक, जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचकांक, जेन्डर डेवलपमेंट सूचकांक, लैगिक सशक्तिकरण माप (GEM) आदि को प्रभावित करता है।

सामाजिक क्षेत्रक व्यय के लिए राजस्व की व्यवस्था :–

सामाजिक क्षेत्रक व्यय के लिए कोषो की आवश्यकता होती है, कौटिल्य अर्थशास्त्र में राज्य के सप्तांगों की चर्चा है, जिसमे से कोष भी एक अंग है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार कोष, राज्य के वृक्ष की जड़ है। वाचस्पति गैरोला के कौटिलीय अर्थशास्त्रम् के अनुसार पांचवे अधिकरण मे राजकर की चर्चा मिलती है, जिसमे उन्होने कोष भरने का प्रमुख साधन कर ग्रहण को बताया है। कर–ग्रहण का सिद्धान्त था, कि राजा मनमाने तरीके

से कर नहीं लगा सकता है, यह कर की मात्रा, वस्तुओं के मूल्य तथा समय पर निर्भर थी, 'अर्थशास्त्र' का कथन था, कि राजा अनुर्वर भूमि पर कर नही लगा सकता था, साथ ही विपत्ति काल में राजा को एक से अधिक बार कर नही लगाना चाहिए। प्रचुर अनाज उत्पाद क्षेत्रों की प्रजा से, सहमति के आधार पर राजा उनसे अधिक कर प्राप्त कर सकता है। राज्य की आय के प्रमुख रूप से तथा सतत् रुप से चलने वाले 3 साधन थे – उपज पर राजा का भाग, चुंगी एवं दंड से प्राप्त धन (नारदस्मृति (18। 48) तथा शुक्रनीति सार (1। 188) में राजकर की सुव्यवस्था की चर्चा हैं)।

डॉ. सीरवी, प्रकाश (2023) के अनुसार जहाँ राजस्व सम्बन्धी विचार की चर्चा करते हुए बताया कि कौटिल्य ने एक ओर राजकीय आय के स्त्रोतों का उल्लेख किया है, वही दूसरी ओर सार्वजनिक व्यय का भी उल्लेख किया है। कौटिल्य ने सार्वजनिक व्यय में विशेष रुप से प्रशासनिक, सैन्य व कल्याणकारी व्यय(सामाजिक क्षेत्रक व्यय की संकल्पना) को शामिल किया है। अतः राज्य की आय–व्यय के सम्बन्ध में राज्य की सत्ता के संरक्षण के सिद्धान्त का पालन किया जाता था।

भारतीय ज्ञान प्रणाली और सामाजिक क्षेत्रक व्यय का परस्पर सम्बन्ध :–

भारतीय ज्ञान परम्परा की मूल अवधारणाएँ सर्वे भवन्तु सुखिनः, लोकसंग्रह, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, न्याय, स्वास्थ्य और समानता पर आधारित है, जो सामाजिक क्षेत्रक व्यय की नीतियों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कौटिल्य (चाणक्य) का अर्थशास्त्र सामाजिक व्यय का प्राचीनतम् वैज्ञानिक दस्तावेज है, जिसमे राजा के कार्यों का वर्णन है। अर्थात राजा प्रजाओ का पालन–पोषण करने वाला होना चाहिए। अन्न, स्वास्थ्य और सुरक्षा राज्य की प्रथम जिम्मेदारी है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21, 21ए, 47, व 39, भारतीय ज्ञान परम्परा से प्रेरित है, जो सामाजिक व्यय को राज्य की जिम्मेदारी बताते हैं।

- **शिक्षा :–** वैदिक गुरूकुल व्यवस्था से लेकर तक्षशिला और नालन्दा विश्वविद्यालय, शिक्षा पर राजकीय एवं सामुदायिक व्यय के प्रमाण प्रस्तुत करते है, राज्य द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्तियाँ, भोजन और आवास की निःशुल्क व्यवस्था, आधुनिक सार्वजनिक शिक्षा व्यय का ऐतिहासिक आधार है। भारतीय संविधान के कई प्रावधान अनुच्छेद–21ए, शिक्षा का अधिकार, निःशुल्क शिक्षा आदि।
- **स्वास्थ्य :–** आयुर्वेद, चरक संहिता और योगसूत्र में, सन्तुलित आहार सार्वजनिक स्वास्थ्य, रोग निवारण, मानसिक स्वास्थ्य आदि पर बल दिया गया हैं, जो कि आयुष्मान भारत योजन, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, योग दिवस, आयुष मंत्रालय आदि भारतीय ज्ञान परपंरा के सिद्धान्तो का अनुकरण है।
- **पोषण :–** तैत्तिरीय उपनिषद में, भोजन, पोषण और कल्याण की व्यवस्था करना राज्य और व्यक्तियों का कर्तव्य माना गया है। अन्न दान एवं अन्नपूर्णा परपंरा के अन्तर्गत ही, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), मध्याहन भोजन योजना (MDM), समन्वित बाल विकास कार्यक्रम (ICDS), पोषण अभियान, टीकाकरण, पर सरकार भारी मात्रा मे व्यय करती है।
- **सामाजिक कल्याण, न्याय व सुरक्षा :–** मनुस्मृति, महाभारत और अर्थशास्त्र मे विकलांग, वृद्ध, गरीब और असहाय नागरिकों की रक्षा को राज्य का कर्तव्य बताया गया है। वृद्धावस्था पेंशन योजना, दिव्यांग पेंशन, विधवा सहायता, अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) तथा अन्य पिछड़ी जातियों (OBC) के कल्याण सम्बन्धी योजनाएं भारतीय ज्ञान परंपरा की समभाव और धर्म की अवधारणा पर आधारित है।
- **स्वच्छता तथा पेयजल :–** ऋग्वेद और अर्थशास्त्र में जल संरक्षण, तथा यज्ञ की परम्परा में जल वृष्टि से

सम्बन्धित प्रावधान है, झील, तालाब, बावड़ी, कुण्ड भारतीय जल प्रबंधन की श्रेष्ठ योजना है। जल जीवन मिशन, नदी संरक्षण, पारंपरिक जल संचयन, जलवायु अनुकूल कृषि, स्वच्छ भारत मिशन आदि।

- **ग्रामीण विकास :–** महात्मा गाँधी की ग्राम स्वराज की अवधारणा–वैदिक परंपरा से ली गयी है, वर्तमान के पंचायत राज व्यवस्था, ग्राम सड़क योजना, ग्रामीण आवास योजना, मनरेगा, डिजिटल गाँव, भारतीय सामुदायिक परंपरा को आगे बढ़ाती है।
- **महिला सशक्तिकरण :–** ऋग्वेद में कहा गया है, कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ समृद्धि और दिव्यता विद्यमान रहती है। उपनिषदों मे गार्गी और मैत्रेयी के संवाद, जो स्त्री–बौद्धिक स्वतन्त्रता का प्रमाण है, मनुस्मृति तथा अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने स्त्रियों की आर्थिक भागीदारी, संपत्ति के अधिकार और सुरक्षा पर चर्चा की है। वर्तमान में महिला सशक्तिकरण की नीतियाँ– बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना, संपत्ति अधिकार, रोजगार आदि भारतीय ज्ञान परम्परा की नींव को मजबूती प्रदान करती है।

निष्कर्ष :–

भारतीय ज्ञान परम्परा, भारतीय संस्कृति की गहरी जड़ो और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की एक उच्चतम् व्यवस्था है। मानव जीवन, संतुलित जीवन, प्रकृति के संरक्षण और सामाजिक समानता एवं एकता पर आधारित है। दूसरी और सामाजिक क्षेत्रक व्यय किसी भी देश के लिए एक आवश्यक तत्व है, जिसे अनदेखा नही किया जा सकता क्योंकि यह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, एक स्वस्थ्य समाज, महिला एवं दलित जातियों के विकास, सामाजिक समानता और आर्थिक प्रगति मे सहायक आधार के रूप को कार्य करता है।

अतः जब भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों को सामाजिक क्षेत्रक व्यय से सम्बन्धित नीतियों से जोड़ा जाता है, अर्थात आत्मसात किया जाता है, तो विकास केवल आर्थिक नहीं रह जाता बल्कि यह, समग्र सतत् और समावेशी विकास बन जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत का हिस्सा नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक है, जो व्यक्ति, समाज और पर्यावरण के समग्र विकास में सहायक है।

भारतीय ज्ञान परम्परा से जुड़ी सामाजिक कल्याण की अवधारणाओं का आर्थिक दृष्टि से विष्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है, कि भारतीय ज्ञान परम्परा, वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों में प्रमुखता से परिलक्षित होती है अर्थात् नैतिक एवं मानक रूप में, न कि प्रत्यक्ष नीतिगत प्रारूप में। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा को वर्तमान प्रासंगिक नीतियो का प्रमाण नही, वैचारिक स्त्रोत माना जा सकता है।

सन्दर्भ :

- प्रकाश, सीरवी. (सितम्बर 2023). कौटिल्य के आर्थिक विचारो की वर्तमान युग में प्रासंगिकता, International journal of creative research thoughts.
- कुमार, अशोक. (जुलाई 2025). अर्थशास्त्र विषय की ज्ञान परम्परा में प्राचीन भारत का योगदान, Idealistic journal of advance research in progressive spectrums, Vol.4, pp. 35-43.
- Sharma, Niharika and at al.(2025), From traditional to transform : SDGs and role of Indian Knowledge System in India's growth through ESS (Environmental, Social and Economic) factors, Discover Sustainability.
- मिश्र, अनिल, कौटिल्य अर्थशास्त्र, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

- गैरोला, वाचस्पति. (2011). कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी।
- एलेक्स, एस. एम. (2008). भारतीय शिक्षा व्यवस्था का विकास, समस्या एवं समाधान. रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
- खलील, एस. टी. (2023). भारतीय ज्ञान प्रणाली : अर्थशास्त्र कौटिल्य द्वारा, नोशन प्रेस, चेन्नई।
- पचौरी, एम. (2011). भारत आधुनिक शिक्षा, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली।
- RBI. State Finances : A Study of Budgets. (2024-25).
- Singh, R.P. (2025). The role of Indian knowledge system in shaping modern economic thought, Research Gate.
- Indian knowledge system division, Ministry of Education, Govt. of India.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 93-95

सीमा पार शराब तस्करी और आबकारी विभाग की भूमिका एवं चुनौतियाँ : राजस्थान–हरियाणा और गुजरात सीमाओं का तुलनात्मक अध्ययन

गणपत सिंह चौहान, शोधार्थी, विधि विभाग
डॉ. मीता चौधरी, शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य
विधि महाविद्यालय, जनार्दन राय नगर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड टू बी विश्वविद्यालय) उदयपुर।

1. प्रस्तावना :

राजस्थान भौगोलिक दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जिसकी सीमाएँ पाँच राज्यों (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और गुजरात तथा पाकिस्तान के साथ अंतर्राष्ट्रीय सीमा से लगती है। भौगोलिक विविधताओं और पड़ोसी राज्यों की परस्पर विरोधी आबकारी नीतियों (Excise Policies) के कारण राजस्थान अवैध शराब की तस्करी का एक बड़ा केन्द्र बन गया है।

एक और जहाँ हरियाणा अपनी कम दरों और उदार कर नीतियों के कारण सस्ते ब्रांड्स की तस्करी का मुख्य स्त्रोत है वहीं दूसरी ओर गुजरात देश का एक स्थापित शुष्क (Dry) राज्य है जहाँ पूर्ण शराबबंदी लागू है। इस भौगोलिक त्रि–आयामी स्थिति (हरियाणा से आवक, राजस्थान में खपत/पारगमन, और गुजरात को जावक) के बीच राजस्थान आबकारी निरोधक दल (Excise Preventive Force) और आबकारी अधिकारियों की भूमिका अत्यंत चुनौतीपूर्ण और महत्वपूर्ण हो जाती है।

2. राजस्थान – हरियाणा सीमा : सस्ती मदिरा और तस्करी का गलियारा :

हरियाणा सरकार की आबकारी नीति का मुख्य केन्द्र बिंदु आबकारी शुल्क (Exsice Duty) को कम रखकर राजस्व को अधिकतम करना रहा है। इस नीति के परिणामस्वरुप हरियाणा निर्मित अंग्रेजी शराब (IMFL) और बीयर की कीमतें राजस्थान की तुलना में काफी कम होती है।

तस्करी के मुख्य मार्ग और तरीके :

- **प्रमुख जिले :** राजस्थान के सीमावर्ती जिले जैसे अलवर, झुंझुनूं, सीकर, चुरु, हनुमानगढ़ और भरतपुर इस तस्करी से सर्वाधिक प्रभावित हैं।
- **पारगमन (Transit) प्रणाली :** तस्कर हरियाणा की सीमा पर स्थित शराब ठेकों से भारी मात्रा में अवैध माल उठाते हैं और उन्हें ग्रामीण संपर्क मार्गो (चोर रास्तों) के चरिए राजस्थान में प्रवेश कराते हैं।
- **ब्रांड्स की री–लेबलिंग :** कई बार कम गुणवत्ता वाली हरियाणा निर्मित शराब पर राजस्थान या सेना के कोटे (CSD Canteen only) की जाली पर्चियां (Label) लगाकर ऊंचे दामों पर बेचा जाता है।

3. राजस्थान–गुजरात सीमा :

शुष्क राज्य में आपूर्ति का सिंडिकेट गुजरात में बोम्बे निषेध (गुजरात संशोधन) अधिनियम के तहत शराब की बिक्री और उपभोग पर पूर्ण प्रतिबंध है। शराबबंदी के कारण वहाँ अवैध शराब की मांग अत्यधिक है, जिसके कारण तस्करों को 300 प्रतिशत तक का मुनाफा होता है।

तस्करी की भौगोलिक चुनौतियों :

- **दुर्गम क्षेत्र :** उदयपुर, सिरोही, जालोर, डूंगरपुर और बांसवाडा जिलों की सीमाएं गुजरात से लगती है अरावली की पर्वत श्रृंखलाएँ और सघन वन क्षेत्र तस्करों को सुरक्षात्मक आवरण प्रदान करते है।
- **नया सुरक्षात्मक ढाँचा :** राष्ट्रीय राजमार्गो (जैसे दिल्ली–मुंबई एक्सप्रेस–वे, NH–48 और भारतमाला परियोजना के विस्तार से यातायात सुलभ हुआ है जिसका फायदा उठाकर तस्कर त्वरित गति से माल सीमा पार कर देते है।
- **डंपिंग यार्ड :** राजस्थान के सीमावर्ती ढाबो, कृषि फार्मों और सुनसान गोदामों को अस्थायी डंपिंग यार्ड बनाया जाता है जहाँ गुजरात पुलिस की पहुँच से दूर माल को स्टोर किया जाता हैं।

4. आबकारी विभाग की बहुआयामी भूमिका और रणनीतियां :–

सीमा पार तस्करी को रोकने के लिए राजस्थान आबकारी विभाग केवल प्रशासनिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सुरक्षात्मक मोर्च पर भी काम करता है :–

- **आबकारी निरोधक बल (Excise Preventive Force) की मुस्तैदी :** विभाग द्वारा सीमावर्ती संवेदनशील चौकियों पर अस्थायी और स्थायी 'आबकारी नाके' स्थापित किए जाते हैं।
- **इंटर–स्टेट इंटेलिजेंस विंग (Inter state Intelligence Wing)** पड़ोसी राज्यों के आबकारी और पुलिस अधिकारियों के साथ नियमित समन्वय बैठकें आयोजित की जाती है कि ताकि तस्करों के गिरोह के डेटा का आदान–प्रदान हो सके।
- **तकनीक का समावेश :** वर्तमान में संदिग्ध वाहनों की निगरानी के लिए क्यूआर कोड़ सत्यापन और बॉर्डर नाकों पर सीसीटीवी कैमरों तथा 'ट्रैक एंड टरे्स' सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जा रहा है।

5. प्रशासनिक एंव व्यावहारिक चुनौतियाँ :

आबकारी विभाग के कड़े प्रयासों के बावजूद तस्करी का जाल पूरी तरह से समाप्त नहीं हो पा रहा है। इसके मुख्य कारण निम्नलिखित है :

- **संसाधनों की तीव्र कमी :** राजस्थान पुलिस की तुलना में आबकारी निरोधक बल के पास मैनपावर की भारी कमी है। सुदूर पहाड़ो और सुनसान बॉर्डर रास्तों पर गश्त के लिए प्रर्याप्त वाहन उपलब्ध नहीं है।
- **हथियारों की सीमा :** तस्कर अक्सर स्वचालित या अर्ध–स्वचालित हथियारों और तेज रफ्तार वाहनों से लैस होते है, जबकि आबकारी प्रहरियों के पास बुनियादी सुरक्षा उपकरण ही होते है।
- **स्थायी समर्थन :** सीमावर्ती क्षेत्रों में गरीबी एवं बेरोजगारी के कारण स्थानीय ग्रामीण युवा अक्सर तस्करों के लिए 'कैरियर' (माल पहुंचाने वाले) या 'लोकेटर' (पुलिस की मुखबिरी करने वाले) का काम करने लगते है।

6. निष्कर्ष एवं भावी सुधार :–

सीमा पार शराब तस्कारी केवल राजस्व नुकसान (Revenue Loss) का मुद्दा नहीं है, बल्कि यह समानांतर

अवैध अर्थव्यवस्था और अपराध को जन्म देती है। तस्करी को रोकने के लिए राजस्थान आबकारी विभाग को आधुनिक सुरक्षा प्रणाली से लैंस करना होगा। सीमावर्ती क्षेत्रो में ड्रोन आधारित हवाई निगरानी, इंटेलिजेंस नेटवर्क का सुदृढ़ीकरण और पुलिस एवं आबकारी विभाग का एक एकीकृत कमांड सेंटर स्थापित करना समय की मांग है। इसके अलावा गुजरात, हरियाणा सरकारों के साथ मिलकर एक समान सीमा प्रबंधन नीति का निर्माण करना अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ सूची :

1. राजस्थान आबकारी विभाग (Excise Departement of Rajasthen) : वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट, राजस्थान सरकार उदयपुर मुख्यालय।
2. राजस्थान आबकारी अधिनियम, 1950 (The Rajasthan Excise Act, 1950) : अधिनियम संख्या 2, 1950 (समय–समय पर संशोधित नियमों के साथ)
3. भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) राजस्व क्षेत्र पर राजस्थान सरकार की रिपोर्ट, भारत सरकार विभिन्न वित्तीय वर्षों की रिपोर्ट, विशेष रूप से राज्य आबकारी राजस्व और कमीयों पर अध्याय)
4. गृह मंत्रालय, भारत सरकार (Ministry of Home Affairs) : सीमा सुरक्षा और अंतर राज्यीय अपराध रिपोर्ट, नई दिल्ली।

पुस्तकें एवं शोध पत्र :

5. शर्मा, पी.के. (2018) : भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था एवं राजस्व कानून, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर) इस पुस्तक में राजस्थान आबकारी बल की संरचना और कार्यप्रणाली का विस्तृत विवरण है।
6. चौधरी, आर.एल. (2021), अंतर–राज्यीय सीमा विवाद और अवैध तस्करी का नेटवर्क : 'राजस्थान के सीमावर्ती जिलों का एक भौगोलिक अध्ययन' जर्नल ऑफ सोशल एंड इकोनॉमिक स्टडीज, अंक 4, पृ. 125–142
7. सिंह, महिपाल (2022) : 'शराबबंदी और समानांतर अर्थव्यवस्था : गुजरात–राजस्थान सीमा पर अवैध शराब व्यापार का समाजशास्त्रीय अध्ययन, इंडियन सोशियोलॉजिकल बुलेटिन, खण्ड 12, अंक 2

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 96-99

भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की अवधारणा : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

डॉ. गीता परतेती
डॉ. बी. आर. अम्बेड़कर विश्वविद्यालय, महू (इंदौर)

सारांश –

भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली का उद्देश्य केवल अपराधियों को दंडित करना नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करना भी है। सामाजिक न्याय की अवधारणा का मूल उद्देश्य समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को न्याय दिलाना है, ताकि उनके साथ होने वाले भेदभाव और असमानता को कम किया जा सके। इस शोध पत्र में भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की स्थिति, इसके महत्व, और कार्यप्रणाली का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से पता चलता है कि न्याय प्रणाली में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इनमें लंबित मामलों की संख्या, कानूनी प्रक्रियाओं की जटिलता, भ्रष्टाचार, गरीब एवं वंचित वर्ग के लिए न्याय तक सीमित पहुँच, और सामाजिक पूर्वाग्रह प्रमुख हैं। इन समस्याओं के कारण न्याय प्रक्रिया धीमी हो जाती है और सामाजिक न्याय का वास्तविक उद्देश्य बाधित होता है।

साथ ही, यह शोध संभावनाओं पर भी प्रकाश डालता है। जैसे डिजिटल कोर्ट सिस्टम, कानूनी जागरूकता, विधिक सहायता योजनाएँ, पुलिस और न्यायपालिका में सुधार, तथा सामाजिक नीतियों का प्रभावी कार्यान्वयन सामाजिक न्याय को सुदृढ़ करने में सहायक हो सकते हैं। अध्ययन यह दर्शाता है कि यदि न्याय प्रणाली में समावेशी दृष्टिकोण अपनाया जाए और कमजोर वर्गों की पहुँच को सुनिश्चित किया जाए, तो सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रभावी रूप से लागू किया जा सकता है। अंततः, यह शोध भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार और न्याय की गारंटी के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करता है। यह निष्कर्ष निकालता है कि सामाजिक न्याय को केवल कानूनी ढांचे तक सीमित न रखा जाए, बल्कि उसे समाज के सभी वर्गों तक पहुँचाने के लिए व्यापक और समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है।

शब्द–कुँजी – सामाजिक न्याय, आपराधिक न्याय प्रणाली, विधिक सहायता, मानवाधिकार, न्यायपालिका, समानता, विधि का शासन, संवैधानिक मूल्य, अपराध नियंत्रण।

प्रस्तावना –

भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के संवैधानिक आदर्शों पर आधारित है। इनमें सामाजिक न्याय एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जिसका उद्देश्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति की परवाह किए बिना समान अवसर और न्याय प्रदान करना है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना तथा मौलिक अधिकार और राज्य के नीति–निर्देशक तत्व सामाजिक न्याय

की स्थापना के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। सामाजिक न्याय का वास्तविक स्वरूप तभी साकार हो सकता है जब न्याय व्यवस्था समाज के सभी वर्गों, विशेषकर कमजोर, वंचित और हाशिए पर स्थित समूहों के लिए समान रूप से सुलभ और प्रभावी हो। भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने, अपराधों की रोकथाम करने तथा अपराधियों को दंडित करने का प्रमुख माध्यम है। यह प्रणाली मुख्य रूप से पुलिस, अभियोजन, न्यायालय और कारागार प्रशासन जैसे संस्थानों पर आधारित है। इसका उद्देश्य केवल अपराधियों को दंड देना नहीं है, बल्कि पीड़ितों को न्याय प्रदान करना, मानवाधिकारों की रक्षा करना तथा समाज में विधि के शासन को स्थापित करना भी है। इस दृष्टि से सामाजिक न्याय और आपराधिक न्याय प्रणाली का संबंध अत्यंत घनिष्ठ है।

भारत जैसे बहुविविध समाज में जाति, वर्ग, लिंग, धर्म और आर्थिक असमानताओं का प्रभाव न्याय प्रणाली पर भी देखा जा सकता है। अनेक बार समाज के कमजोर वर्गों को न्याय प्राप्त करने में विभिन्न प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। आर्थिक संसाधनों की कमी, कानूनी जानकारी का अभाव, न्यायिक प्रक्रियाओं की जटिलता तथा लंबित मामलों की अधिक संख्या जैसी समस्याएँ सामाजिक न्याय की प्राप्ति में अवरोध उत्पन्न करती हैं। विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं, बच्चों तथा अन्य वंचित समूहों के लिए न्याय तक पहुँच एक महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है।

वर्तमान समय में भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली अनेक सुधारों के दौर से गुजर रही है। न्यायालयों के डिजिटलीकरण, निःशुल्क विधिक सहायता, वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्र तथा मानवाधिकारों के संरक्षण संबंधी नीतियों ने सामाजिक न्याय को मजबूत करने की दिशा में सकारात्मक प्रयास किए हैं। इसके बावजूद न्याय व्यवस्था में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और दक्षता बढ़ाने की आवश्यकता बनी हुई है। सामाजिक न्याय की अवधारणा तभी प्रभावी हो सकती है जब न्यायिक संस्थाएँ निष्पक्ष, सुलभ और संवेदनशील हों तथा प्रत्येक नागरिक को समान संरक्षण और अवसर उपलब्ध कराएँ।

इस शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की अवधारणा का विश्लेषण करना, इसके समक्ष उपस्थित प्रमुख चुनौतियों की पहचान करना तथा उन संभावनाओं का अध्ययन करना है जो न्याय व्यवस्था को अधिक समावेशी और जनोन्मुख बना सकती हैं। यह अध्ययन सामाजिक न्याय की स्थापना में आपराधिक न्याय प्रणाली की भूमिका को समझने और उसके सुदृढ़ीकरण के लिए आवश्यक सुधारों की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

महत्व –

भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की अवधारणा का अध्ययन वर्तमान समय में अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामाजिक न्याय किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला है, जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर, सुरक्षा और न्याय प्रदान करने पर बल देती है। भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में जाति, वर्ग, लिंग, धर्म और आर्थिक स्थिति के आधार पर असमानताएँ विद्यमान हैं, जिनका प्रभाव न्याय प्राप्ति की प्रक्रिया पर भी पड़ता है। ऐसी स्थिति में आपराधिक न्याय प्रणाली की भूमिका केवल अपराधों के नियंत्रण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह समाज के कमजोर एवं वंचित वर्गों के अधिकारों की रक्षा का भी माध्यम बनती है। इस अध्ययन का महत्व इसलिए भी है क्योंकि यह न्याय प्रणाली की वास्तविक स्थिति, उसकी चुनौतियों तथा सुधार की संभावनाओं को समझने का अवसर प्रदान करता है। यह शोध नीति–निर्माताओं, विधि विशेषज्ञों, न्यायिक

अधिकारियों तथा शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। साथ ही, यह अध्ययन सामाजिक न्याय को प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक सुधारों और उपायों की पहचान करने में भी सहायक है।

उद्देश्य –

1. भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की अवधारणा का अध्ययन करना।
2. सामाजिक न्याय के संवैधानिक एवं कानूनी आधारों का विश्लेषण करना।
3. न्याय प्रणाली में विद्यमान प्रमुख चुनौतियों एवं बाधाओं की पहचान करना।
4. कमजोर एवं वंचित वर्गों की न्याय तक पहुँच की स्थिति का मूल्यांकन करना।
5. सामाजिक न्याय को सुदृढ़ बनाने हेतु उपलब्ध संभावनाओं एवं सुधारात्मक उपायों का अध्ययन करना।
6. भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली को अधिक प्रभावी, समावेशी एवं न्यायोन्मुख बनाने के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

समस्याएँ –

भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की स्थापना के मार्ग में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। सबसे बड़ी समस्या न्यायालयों में लंबित मामलों की बढ़ती संख्या है, जिसके कारण न्याय मिलने में अत्यधिक विलंब होता है। विलंबित न्याय, न्याय से वंचित न्याय की स्थिति सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्रभावित करती है।

दूसरी प्रमुख समस्या न्यायिक प्रक्रियाओं की जटिलता एवं उच्च लागत है। आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्ति अक्सर सक्षम कानूनी सहायता प्राप्त नहीं कर पाते, जिससे उनके लिए न्याय तक पहुँच कठिन हो जाती है। इसके अतिरिक्त पुलिस व्यवस्था में संसाधनों की कमी, भ्रष्टाचार, राजनीतिक हस्तक्षेप तथा मानवाधिकार उल्लंघन जैसी समस्याएँ भी न्याय प्रणाली की प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं।

जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता तथा सामाजिक पूर्वाग्रह भी न्याय की निष्पक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। कई बार पीड़ितों और आरोपियों के साथ उनकी सामाजिक स्थिति के आधार पर भिन्न व्यवहार किए जाने की शिकायतें सामने आती हैं। कारागारों में भीड़भाड़, विचाराधीन कैदियों की अधिक संख्या तथा पुनर्वास कार्यक्रमों की कमी भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं।

सुझाव –

- न्यायालयों में रिक्त पदों की शीघ्र पूर्ति कर मामलों के त्वरित निपटारे की व्यवस्था की जाए।
- न्यायिक प्रक्रियाओं का अधिकाधिक डिजिटलीकरण कर न्याय तक पहुँच को सरल बनाया जाए।
- गरीब एवं वंचित वर्गों के लिए निःशुल्क विधिक सहायता योजनाओं को प्रभावी बनाया जाए।
- पुलिस सुधारों को लागू कर उनकी कार्यप्रणाली में पारदर्शिता एवं जवाबदेही सुनिश्चित की जाए।
- मानवाधिकारों एवं संवैधानिक मूल्यों के प्रति पुलिस एवं न्यायिक अधिकारियों को नियमित प्रशिक्षण दिया जाए।
- महिलाओं, बच्चों, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के मामलों के लिए विशेष सहायता तंत्र विकसित किया जाए।
- कारागार सुधारों के माध्यम से कैदियों के पुनर्वास एवं सामाजिक पुर्नस्थापन पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- कानूनी साक्षरता कार्यक्रमों के माध्यम से नागरिकों को उनके अधिकारों एवं कानूनी उपायों की जानकारी

प्रदान की जाए।

निष्कर्ष –

भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली सामाजिक न्याय की स्थापना का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसका उद्देश्य केवल अपराधियों को दंडित करना नहीं, बल्कि प्रत्येक नागरिक के अधिकारों की रक्षा करना तथा न्याय के समतामूलक वितरण को सुनिश्चित करना भी है। यद्यपि वर्तमान व्यवस्था में लंबित मामलों, न्याय तक सीमित पहुँच, सामाजिक असमानताओं, पुलिस सुधारों की आवश्यकता तथा कारागार संबंधी समस्याओं जैसी अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं, फिर भी सुधारों और नवाचारों के माध्यम से सामाजिक न्याय को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। डिजिटल तकनीक, विधिक सहायता, न्यायिक सुधार तथा मानवाधिकार आधारित दृष्टिकोण सामाजिक न्याय को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। आवश्यक है कि राज्य, न्यायपालिका, पुलिस प्रशासन तथा नागरिक समाज मिलकर ऐसी न्याय व्यवस्था का निर्माण करें जो निष्पक्ष, सुलभ, संवेदनशील और समावेशी हो। तभी संविधान में निहित सामाजिक न्याय के आदर्शों को वास्तविक रूप से प्राप्त किया जा सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- भारत सरकार, (1950) : भारतीय संविधान, नई दिल्ली : भारत सरकार प्रकाशन।
- जैन, मेनका पी, (2020) : भारतीय संवैधानिक विधि (8वाँ संस्करण), नई दिल्ली : लेक्सिसनेक्सिस इंडिया।
- बक्षी, उपेन्द्र, (2019) : भारतीय न्याय प्रणाली का संकट, नई दिल्ली : यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग।
- शुक्ला, वी. एन, (2021) : भारतीय संविधान का व्याख्यात्मक अध्ययन, नई दिल्ली : ईस्टर्न बुक कंपनी।
- भारत, विधि और न्याय मंत्रालय, (2022) : भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 2022, नई दिल्ली : भारत सरकार प्रेस।
- राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण, (2021) : वार्षिक रिपोर्ट एवं प्रकाशन 2022, नई दिल्ली : राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण।
- सिंह, रवि, और कुमार, प्रकाश, (2018) : भारत में आपराधिक न्याय : चुनौतियाँ और सुधार. नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, अमित, (2020) : "भारत में सामाजिक न्याय और आपराधिक कानून," इंडियन जर्नल ऑफ लीगल स्टडीज, खंड 12, अंक 3, पृष्ठ।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 100-104

ज्ञानचंद मर्मज्ञ के निबंधों में प्रकृति और मानवीय मूल्य : एक वैचारिक अध्ययन

हेमा डी. एम, शोधार्थी
डॉ. सुमन कौशिक, मार्गदर्शक
सी. एम्. आर. विश्वविद्यालय, बेंगलुरु, कर्नाटक।

शोध सारांश :

प्रस्तुत शोध ज्ञानचंद मर्मज्ञ के निबंध संग्रह में सहजता, संवेदनशीलता और प्रकृति के प्रति उदारता के ओर विशेष ध्यान आकर्षित करता है। इस निबंध में मुख्यतरू प्रकृति के संरक्षण को मनुष्य का नैतिक दायित्व मानते हुए भविष्य में उसका रक्षण करना और आगे की पीढी को भी इसके महत्त्व को समझाने का भार मनुष्य पर है। मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन एवं सह–अस्तित्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की भावना दिखाई देती है, लेकिन मनुष्य अपने अस्तित्व को बचाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है, चाहे कुछ भी हो जाए वह कभी भी हार नहीं मानता। इनके निबंध संग्रह 'खूँटी पर आकाश' एक विचारात्मक निबंधों का समूह है। इसके साथ–साथ पारिवारिक मूल्य, भारतीय संस्कृति, स्त्री संवेदना, बुजुर्गों पर दया इत्यादि। इनके निबंधो में संवेदना है, चाहे वह प्रकृति का कण हो या निर्बलों की असहायकता। निबंध की रचना पाठकों के मन को छू जाता है और अंत तक पढने की जिज्ञासा बनाए रखता है।

भूमिका :

हिन्दी साहित्य में निबंध विधा को गद्य की कसौटी कहा जाता है। निबंध मुख्यतः लेखक के विचारों की अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, बल्कि उसके माध्यम से सामजिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक चेतना, पारिवारिक समस्या और मुख्यतः प्राकृतिक संरक्षण का सामंजस्य उभरता है। ज्ञानचंद मर्मज्ञ मुख्यतरू अपने समय के सहज कवि और सरस गीतकार के रूप में परिचित हैं, किन्तु उनके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनके निबंधकार रूप में भी दिखाई देता है। उनके निबंधों में एक ऐसे लेखक का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है जो अपने आस–पास के सामाजिक परिवेश, मानवीय संबंधो, बदलती जीवन शैलियाँ और प्रकृति की सत्ता जैसे विषय पर भावनात्मक और वैचारिक रूप से जोड़ते है।

इनके निबंधो में अधिकतर प्रकृति का वर्णन किया है और उसका संरक्षण का भार मनुष्य पर है। इसके साथ–साथ पारिवारिक मूल्य, भारतीय संस्कृति, स्त्री संवेदना, उनके निबंधों में जीवन के प्रति सजग दृष्टी और समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना दिखाई देती है। उनके निबंधों में केवल प्रकृति की रक्षा करने की प्रेरणा ही नहीं देती बल्कि अचर वस्तुओं की संवेदना के बारे में भी व्यक्त की है। यही कारण है कि उनके निबंध विचार प्रधान होने के साथ–साथ पाठकीय स्तर पर भी प्रभावशाली बन जाते है।

बीज शब्द : कसौटी, अभिव्यक्ति, दृष्टिकोण, स्त्री संवेदना, भावानात्मक, परिवेश, पाठकीय स्तर, असहायता।

मूल शोध-पत्र :

प्राकृतिक सम्पदा पर मानव का अट्टहास :

प्रकृति सर्वशक्तिमान है। प्रकृति माँ स्वरूप है जो ऊपर निर्भर जीव–जंतु तथा मानव को अपनी सम्पदा देकर उसका उद्धार करती है। बिना प्रकृति का मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। हमारे पूर्वजो ने प्रकृति की पूजा करते थे ताकि समय–समय पर वर्षा हो और देश निश्चिंत रहे। इस वर्तमान युग में मानव नाकि पूर्वजों से सीख पाया और नाही प्रकृति का संरक्षण कर पाया। आधुनिकीकरण का नाम लेते हुए मनुष्य ने प्राणी–पक्षियों का निवास माना जाने वाला जंगल का विनाश करने लगा और प्रकृति का आग्रह का पात्र बन गया।

''प्रकृति रही दुर्जय पराजित हम जब थे भूले मद में,
भोले थे हाँ तिरते केवल, सब विलासिता के नद में।।''

कुबेरनाथ राय के निबंधों में 'पर्यावरण और मानव के पारस्परिक सम्बन्ध' को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनके साहित्य का मूल उद्देश्य मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर के बीच एक संतुलन एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना है। वे मानते हैं कि मनुष्य प्रकृति से अलग नहीं है, बल्कि उसका अस्तित्व प्रकृति के साथ गहराई से जुडा हुआ है। इसलिए प्रकृति के प्रति मनुष्य का व्यवहार संवेदनशील और जिम्मेदार होना चाहिए।

कुबेरनाथ राय के विचारों में 'महात्मा गांधी का प्रकृति और विकास' संबंधी दृष्टिकोण भी दिखाई देता है। गांधीजी के अनुसार विकास वही उचित है, जो विवेकपूर्ण ढंग से किया जाए और जिसमे प्रकृति तथा समाज दोनों के हित का ध्यान रखा जाए। आज का मनुष्य भौतिक विकास की दौड़ में प्रकृति द्वारा दिए गए अनमोल उपहारों को भूलता जा रहा है। पर्यारण का अर्थ केवल पेड़–पौधों, नदियों, पर्वतों और जीव–जंतुओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के पोषण और अस्तित्व का आधार भी है।

राय के निबंधों में प्रकृति के प्रति भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी दिखाई देता है। भारतीय परंपरा में प्रकृति को पूजनीय और जीवनदायिनी माना गया है। इसलिए मनुष्य को प्रकृति के साथ संघर्ष करने के बजाय उसके साथ सह–अस्तित्व और संतुलन–स्थापित करना चाहिए।

अतः कुबेरनाथ राय के निबंधों में पर्यावरण–चिंतन मनुष्य को संयम, विवेक, सह–अस्तित्व और प्रकृति–संरक्षण का सन्देश देता है। वे स्पष्ट कहते हैं कि मनुष्य प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका अभिन्न अंग है। प्रकृति की रक्षा करके ही मानव सभ्यता का भविष्य सुरक्षित किया जा सकता है।

ज्ञानचंद मर्मज्ञ का लिखा हुआ निबंध संग्रह 'खूँटी पर आकाश' के निबंधों में मनुष्य किस तरह प्रकृति को अपने अधिकार मानकर अपने इरादों पर उसका नाश करता है यह आँखों के सामने प्रत्यक्ष नजर आता है।

"पत्थरों के शहर में जब साँसें कम पड़ने लगी तो लोगों ने उजड़े हुए निर्वासित चौपाल को पार्क में बदल दियाद्य वर्षों से उपेक्षित बेंच को माँओं नया जीवन मिल गया। वर्षों पहले जब किसी ने अपनी सुविधा के लिए पेड़ के कुछ टूटे हुए मजबूत हिस्सों को चुनकर गाँव के चौपाल के कोने सलीके से जोड़कर इस बेंच का रूप दिया होगा।"

'बेंच की संवेदना' निबंध में मनुष्य पेड़ों को काटकर बेंचों को बनाया गया और उस प्रदेश को उद्यान का रूप दे दिया। बहुत लोग आकर उस आसन पर बैठकर अपनी आवेदना को मूक भाषा के रूप में बेंच से वार्तालाप किया होगा, यह केवल उस मौन आसन को ही पता है। ग्रामीण जीवन को नगरों में बदलने का कार्य आरम्भ

होते ही वहाँ के प्राकृतिक सम्पदा आँसू बहाने लगी। पेड़–पौधों को काटने लगे पंछियाँ अपनी घोसलों को छोड़कर दूर जाने लगे, बहती हुई नदी अकाल के कारण सूखने लगी, खेतों को सडकों में परिवर्तन किया गया, धरती माँ का कोख बंजर बन गया। घर के आँगन पर पडा हुआ लकड़ी का बेंच उदास होकर यह सब देखता रहा। धीरे–धीरे शहर ने गाँव को नैसर्गिकता से कृत्रिमता का बेश पहनाकर उसे नगर में बदल डाला और तब से लोग चौपाल के रास्ते भूल गए और बेंच उदास होकर वही रह गयी।

इसी तरह एक और निबंध 'चप्पल' में भी प्राणियों के चमड़ों से चप्पलों का आविष्कार कर मनुष्य अपने सुविधानुसार अपनाने लगा जिसमें चप्पल का जीवन दूसरों की समर्पण के लिए आविष्कार किया गया था, क्योंकि लोग चप्पल को अपने पैरों की सुरक्षा के लिए ही इस्तेमाल करते है और बार–बार कुचलना इसको आदत सा हो गया है। चप्पल का जीवन दूसरों की समर्पण के लिए आविष्कार किया गया था, क्योंकि लोग चप्पल को अपने पैरों की सुरक्षा के लिए ही इस्तेमाल करते है और बार–बार कुचलना इसको आदत सा हो गया है। पूर्व काल में नैसर्गिकता से लकड़ी से बनी पादुका को ऋषि गण पहना करते थे, शिष्य गण उनके चरण स्पर्श करते समय वह पादुका प्रकृति की चमक को उभरती थी। रामायण में भी श्री राम के चरण पादुका को उसके भाई भारत ने अपने शीश पर धारण कर 14 साल तक उसे सिंहासन पर प्रतिष्टित किया। इससे ज्ञात होता है कि पादुका बहुत महत्वपूर्ण है और पूज्य भी है।

"भारत में पर्यावरण संरक्षण और प्रकृति प्रेम की जड़े बहुत गहरी हैं, जिन्हें हम बराबर सींचते आए हैं। हमने धरती को 'माता' कह कर संबोधित किया और जीवनदायिनी नदियों को भी 'माँ' के ही समतुल्य माना। इसके पीछे धारणा यही थी कि हम इनका संरक्षण करें, ताकि ये मानव जीवन को सुखमय बनाए।"

सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदना :

लेखक के निबंधों में अगर सामाजिक यथार्थ के बारे में जानकारी पायेंगे तो सर्वप्रथम 'नारी' निबंध पर दृष्टि डालनी होगी क्योंकि निसर्ग ने एक स्त्री के रूप में सृष्टि कर उसमे अपने भूमंडल के सारी विशेषताओं को भरकर उसे परिपूर्ण किया। धरती जैसा सहनशील, सूर्य जैसा तेजस्वी, जल की तरह निर्मल, पुष्प की तरह कोमल इसके अलावा त्याग, करुना, वात्सल्य, वीरता जैसे रसों को भी जोड़कर उसे परिपूर्ण करने का श्रेय एक निसर्ग को ही प्राप्त होता है। इतने सारे गुणवती होकर भी नारी को किसी ने भी पूजा नहीं की बल्कि उसे केवल हवस की सामग्री समझकर उसे अपनाने लगे। लोगों ने स्त्री को दाम पर खरीद ने लगे। हर समय अपने बल और पराक्रम को नारी पर प्रदर्शन करना अपना हक समझने लगा। वही लोग घर और मंदिरों में माँ दुर्गा और काली को पूजा करते है और औरतों का अपमान करते है। किसी को भी यह सूजा नहीं कि उस पर क्या गुजरी होगी और कितनी बार इंसानियत रोया होगा। अगर हम में थोडा भी मानवता जीवित है तो हमें स्त्री का खोया हुआ सम्मान वापस लाना होगा।

लेखक अपने अनुपम निबंध 'खूँटी पर आकाश' में बताते है कि यहाँ खूँटी का अर्थ है हमारे परिश्रम, मेहनत और आकाश का अर्थ है हमारे सपने या लक्ष्य। सपनों को साकार करने के लिए मेहनत की आवश्यकता होती है लेकिन अगर चतुरता भी जुड़ जाए तब आसानी से कामयाब हो सकते है। आसमान को छूने के लिए जो सपने हम देखते है उसकी ऊंचाई से हम कई बार हार मानने लगते है लेकिन हम यह भूल जाते है बिना पृथ्वी के आसमान की मौजूदगी नहीं होती।

कील (खूँटी) और आसमान की कथा तब प्रारंभ होता है जब मानव स्वप्न देखना शुरू करता है। स्वप्न

में प्रवेश करते ही मनुष्य को वह पूछने लगा कि क्या देखना चाहते हो तब वह प्रकृति में स्थित झरने, सागर, नदी को देखकर खुश होता है। विचरती हुई पंछी के साथ वह भी आसमान में उड़ने लगती है। पंछी उड़ते–उड़ते थक जाती है लेकिन मनुष्य की इच्छायें नहीं थकती। वह रोज अपने स्वप्न में उड़ने लगता है और अपनी आसमान की सीमा को स्वयं तय करने लगता है। आसमान की सीमा तो तय कर लिया लेकिन उसे सँभालने वाला कील को तैयार करना कष्ट साध्य होने लगा। उसे यह पता नहीं की जब वह आसमान की परिधि को स्वयं तय कर सकता है तब वह कील को बना सकता है।

दूसरा है प्रवासी भारतीयों के बारे में जिन्होंने कई सालों से लोग जीवन निर्वाह के लिए एक देश से दूसरे देश जाना पैसा कमाना एक रूढि बन गया था। अनजान प्रदेश, तरह–तरह के लोग, विभिन्न प्रकार की भाषाए आदि, जहा हमारे भारतीय अपनी गरीबी को मिटाने के लिए अनेक प्रकार के मुश्किलों को सहकर वे काम करते थे। देश छोड़कर जाने का मतलब है अपनी माँ से दूर होना, यह हर किसी को मुमकिन नहीं है। स्थानांतरण की पीड़ा उन लोगों को अनुभव है जो कई सालों से अपने देश को वापस जाने का सपना देख रहे हो और जिस उम्मीद से वे अपना देश छोड़कर आए थे अब वापस जाने का उम्मीद भी छोड़ रहे हैं।

"विस्थापन के अनगिनत आयाम हैं तो अनगिनत कारण भी हैं परन्तु सबकी पीड़ा का रंग एक ही हैं। वह धूल जो पैरों से लिपटकर स्नेह और संवेदना को जन्म देती है, वह हवा जो ह्रदय की धमनियों को पुचकार कर कंठ में साँसों को भरती है और वो अपने लोग जिसके सानिध्य के सुखद आभास से स्वर्ग की अनुभूती होती है, उन सबकी स्मृतियाँ हर मौसम को उदास कर देती हैं।"

निष्कर्ष :

इस शोध के माध्यम से मर्मज्ञजी के निबंधों में अभिव्यक्त प्राकृतिक–संरक्षण और मानवीय संवेदन तथा जीवन मूल्य का विश्लेषण किया गया है। इनके निबंधों के अनुसार प्रकृति और मानव के बीच का गहरा सम्बन्ध को रेखांकित किया है। आधुनिकीकरण के कारण स्वयं मनुष्य ही प्रकृति का विनाश कर रहा है जिससे पर्यावरण प्रदूषण का शिकार खुद मानव ही नहीं बल्कि संसार के जीव–जन्तुओ पर भी असर पड़ रहा हैं। इनके निबंधों का दूसरा प्रमुख पक्ष मानवीय मूल्य और संवेदना है। इन निबंधों में लेखक ने प्रेम, करुणा, गया और सहानुभूति तथा त्याग का प्रतिरूप नारी का चित्रण किया है जिसकी तुलना धरती माँ से कर सकते हैं। इस दृष्टि से मनुष्यता को बचके रखने की सीख मिलती है ताकि वह आगे की पीढी को भी दूसरों का आदर–सम्मान करना सिखा सके। मर्मज्ञजी के साहित्य पाठक को केवल सोचने के लिए प्रेरित नहीं करता, बल्कि प्रकृति के प्रति उत्तरदायी और समाज के प्रति संवेदनशील मनुष्य बनने की प्रेरणा भी देती है।

सन्दर्भ सूची :–

1. ज्ञानचंद मर्मज्ञ (2018), निबंध संग्रह 'खूँटी पर आकाश', 'बेंच की संवेदना' (पृष्ठ 46–47), माता प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, बेंगलुरु–29.
2. इस्लाम मुहम्मद (5 मई 2025), वर्तमान में पर्यावरण संरक्षण के भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता (पृष्ठ 1) IJNRD.ORG.
3. ज्ञानचंद मर्मज्ञ (2018), निबंध संग्रह 'खूँटी पर आकाश', 'नारी' (पृष्ठ 68–72), माता प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, बेंगलुरु–29.

4. ज्ञानचंद मर्मज्ञ (2018), निबंध संग्रह 'खूँटी पर आकाश', 'प्रवासी भारतीय : विस्थापन की पीड़ा' (पृष्ठ 73–79), माता प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, बेंगलुरु–29.
5. ज्ञानचंद मर्मज्ञ (2018), निबंध संग्रह 'खूँटी पर आकाश', 'चप्पल' (पृष्ठ 54–55), माता प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, बेंगलुरु–29.
6. यादव, प्रमोद (2024), कुबेरनाथ के निबंधों में प्रकृति एवं मानवेतर जीवन : एक विश्लेषण (अध्याय–3, पृष्ठ–3) http://hdl.handle.net/10603/701059
7. ज्ञानचंद मर्मज्ञ (2018), निबंध संग्रह 'खूँटी पर आकाश', 'खूँटी पर आकाश' (पृष्ठ 43–45), माता प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, बेंगलुरु–29.
8. भारत राम की चरण पादुका लेकर अयोध्या लौटे (16 दिसंबर 2018), http://navbharattimes.indiatimes.com

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 105-110

ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान

डॉ. हेमलता
सहायक प्रोफेसर
राजकीय महाविद्यालय सुल्तानपुर, फर्रुखनगर।

वर्तमान वैश्विक युग में ज्ञान की प्रकृति स्थिर न रहकर निरंतर विकसित हो रही है। डिजिटल तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वैश्वीकरण तथा सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने ज्ञान के निर्माण, संचरण और उपयोग की प्रक्रियाओं को नया स्वरूप प्रदान किया है। अब ज्ञान किसी एक देश, भाषा, विषय अथवा संस्थागत व्यवस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि वैश्विक संवाद और सहयोग के माध्यम से निरंतर विस्तृत हो रहा है। इस परिवर्तित परिदृश्य में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। भाषा केवल विचारों को व्यक्त करने का साधन नहीं, बल्कि चिंतन, अनुभव, सांस्कृतिक चेतना और ज्ञान को संरक्षित करने का माध्यम भी है। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा और शोध को बढ़ावा देने से ज्ञान अधिक व्यापक और जनसुलभ बनाया जा सकता है।

भारतीय संदर्भ में भारतीय भाषाओं तथा ज्ञान–परंपरा का आधुनिक तकनीक के साथ समन्वय ज्ञान के लोकतंत्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। शिक्षक की भूमिका भी पारंपरिक ज्ञान–प्रदाता से आगे बढ़कर मार्गदर्शक, सह–अन्वेषक और ज्ञान–सृजन के सहभागी के रूप में विकसित हुई है। डिजिटल संसाधनों और नवीन शिक्षण पद्धतियों के माध्यम से शिक्षक विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता और शोध–दृष्टि विकसित कर सकते हैं। इसी प्रकार बहुविषयक अनुसंधान आज की जटिल समस्याओं के समाधान का प्रभावी माध्यम बन रहा है। जलवायु परिवर्तन, स्वास्थ्य, गरीबी, तकनीकी नैतिकता और सतत विकास जैसे प्रश्नों को किसी एक विषय के आधार पर पूर्णतः समझना संभव नहीं है। अतः विभिन्न विषयों के ज्ञान, पद्धतियों और दृष्टिकोणों के समन्वय की आवश्यकता है। इस प्रकार भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान मिलकर वैश्विक ज्ञान–सृजन को अधिक समावेशी, नवाचारी और मानवीय दिशा प्रदान कर रहे हैं।

''ज्ञान मानव सभ्यता के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार रहा है। मनुष्य ने अपने अनुभवों, निरीक्षणों, तर्कों और सामाजिक अंतःक्रियाओं के माध्यम से ज्ञान अर्जित किया और उसे भाषा, परंपरा, शिक्षा तथा संस्थाओं के माध्यम से अगली पीढ़ियों तक पहुँचाया। प्रारंभिक समाजों में ज्ञान मुख्यतः मौखिक परंपराओं के माध्यम से संरक्षित था, जबकि आधुनिक युग में पुस्तक, विश्वविद्यालय, प्रयोगशाला, डिजिटल माध्यम और वैश्विक शोध–संस्थाएँ ज्ञान के प्रमुख केंद्र बन गए हैं।''[1] इक्कीसवीं सदी में ज्ञान की प्रकृति पहले की अपेक्षा अधिक गतिशील और अंतर्संबंधित हो गई है। जलवायु परिवर्तन, महामारी, बेरोजगारी, डिजिटल असमानता, सामाजिक न्याय, खाद्य सुरक्षा और सतत विकास जैसी समस्याएँ किसी एक विषय की सीमाओं में रहकर हल नहीं की जा

सकतीं। इनके समाधान के लिए अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण अध्ययन, चिकित्सा, साहित्य, इतिहास और दर्शन जैसे विविध क्षेत्रों के बीच सहयोग आवश्यक है। इस परिवर्तित परिस्थिति में भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान ज्ञान–सृजन के तीन महत्त्वपूर्ण स्तंभ बनकर सामने आते हैं। भाषा ज्ञान को अभिव्यक्ति देती है, शिक्षक उसे आलोचनात्मक और रचनात्मक दिशा प्रदान करता है तथा बहुविषयक अनुसंधान ज्ञान को व्यापक सामाजिक संदर्भों से जोड़ता है। अतः वैश्विक ज्ञान–व्यवस्था का मूल्यांकन इन तीनों घटकों के पारस्परिक संबंधों के बिना पूर्ण नहीं हो सकता।

''परंपरागत शिक्षा व्यवस्था में ज्ञान को प्रायः एक निश्चित और स्थिर इकाई माना जाता था। शिक्षक ज्ञान का प्रमुख स्रोत होता था और विद्यार्थी उसका ग्रहणकर्ता। आधुनिक शिक्षा–दृष्टि ने इस संबंध को परिवर्तित कर दिया है। अब ज्ञान को निरंतर विकसित होने वाली प्रक्रिया माना जाता है, जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी दोनों सक्रिय सहभागी होते हैं।''[2] ज्ञान–सृजन केवल नई सूचनाओं की खोज नहीं है। इसमें प्रश्न उठाना, उपलब्ध तथ्यों की आलोचनात्मक जाँच करना, नए संबंध स्थापित करना, वैकल्पिक दृष्टिकोण विकसित करना और प्राप्त निष्कर्षों को सामाजिक उपयोगिता से जोड़ना शामिल है। इस दृष्टि से अनुसंधान ज्ञान–सृजन की केंद्रीय प्रक्रिया बन जाता है। वैश्वीकरण ने ज्ञान के इस स्वरूप को और अधिक व्यापक बनाया है। विभिन्न देशों के विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और वैज्ञानिक समुदायों के बीच सहयोग ने ज्ञान को राष्ट्रीय सीमाओं से परे पहुँचाया है। ऑनलाइन डेटाबेस, मुक्त शैक्षिक संसाधन, डिजिटल पुस्तकालय और आभासी सम्मेलन इस प्रक्रिया को गति प्रदान कर रहे हैं। परिणामतः आज ज्ञान–सृजन स्थानीय अनुभवों और वैश्विक विमर्श के बीच संवाद का रूप ले रहा है।

ज्ञान-सृजन में भाषा की भूमिका :

भाषा ज्ञान–सृजन की प्रक्रिया का केवल बाहरी माध्यम नहीं, बल्कि उसके चिंतनात्मक और वैचारिक विकास का मूल आधार है। मनुष्य अपने अनुभवों, संवेदनाओं और विचारों को भाषा के माध्यम से अर्थ देता है तथा उन्हें सामाजिक रूप से साझा करता है। किसी समुदाय की भाषा में उसकी ऐतिहासिक चेतना, सांस्कृतिक स्मृतियाँ, लोकपरंपराएँ, जीवनानुभव और पीढ़ियों से संचित ज्ञान संरक्षित रहता है। इस दृष्टि से भाषा और ज्ञान का संबंध अत्यंत गहरा और परस्पर पूरक है। वर्तमान वैश्विक शैक्षणिक व्यवस्था में अंग्रेजी का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है। विज्ञान, तकनीक, उच्च शिक्षा, शोध–पत्रिकाओं और अंतरराष्ट्रीय अकादमिक संवाद में अंग्रेजी व्यापक संपर्क–भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। इसके कारण विभिन्न देशों के शोधकर्ताओं के बीच विचारों और शोध–परिणामों का आदान–प्रदान अपेक्षाकृत सरल हुआ है। हालांकि, इसके साथ भाषाई असमानता की चुनौती भी जुड़ी हुई है। अनेक स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध महत्वपूर्ण ज्ञान अंतरराष्ट्रीय शोध–जगत तक सीमित मात्रा में पहुँच पाता है। परिणामतः ज्ञान की वैश्विक संरचना में कुछ भाषाओं का प्रतिनिधित्व अधिक और अनेक भाषाओं का प्रतिनिधित्व अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है।

भारतीय संदर्भ में भाषा का प्रश्न और भी व्यापक महत्त्व रखता है, क्योंकि ''भारत विविध भाषाओं और संस्कृतियों वाला देश है। हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्य, दर्शन, लोकविज्ञान, चिकित्सा, कृषि, पर्यावरण, कला, इतिहास और सामाजिक जीवन से संबंधित समृद्ध ज्ञान–संपदा उपलब्ध है। इस ज्ञान को आधुनिक शोध–पद्धतियों और डिजिटल माध्यमों से जोड़कर वैश्विक अकादमिक विमर्श में प्रभावी स्थान दिया जा सकता है। इससे भारतीय ज्ञान–परंपरा का संरक्षण होने के साथ–साथ उसके नए संदर्भों में पुनर्पाठ की

संभावनाएँ भी विकसित होंगी।''[3] मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा विद्यार्थियों को विषय–वस्तु को अधिक स्वाभाविक ढंग से समझने का अवसर देती है। जब विद्यार्थी अपनी परिचित भाषा में विचार व्यक्त करते हैं, तब उनमें प्रश्न करने, तर्क प्रस्तुत करने, विश्लेषण करने और नए विचार विकसित करने का आत्मविश्वास बढ़ सकता है। अतः ज्ञान की वैश्विक व्यवस्था का उद्देश्य किसी एक भाषा को सर्वोच्च बनाना नहीं, बल्कि विभिन्न भाषाओं के बीच संवाद और ज्ञान–विनिमय को सशक्त करना होना चाहिए। मातृभाषा की उपयोगिता ज्ञान की सृजना और अधिक समृद्ध करती है। बहुभाषिकता को स्वीकार करने वाली ऐसी व्यवस्था ही ज्ञान–सृजन को अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक और व्यापक बना सकती है।

शिक्षक की बदलती भूमिका :

डिजिटल तकनीक और बदलती शैक्षणिक आवश्यकताओं ने शिक्षक की पारंपरिक भूमिका को नए आयाम प्रदान किए हैं। पहले शिक्षक को ज्ञान और सूचना का प्रमुख स्रोत माना जाता था, जबकि आज इंटरनेट, डिजिटल पुस्तकालयों, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित साधनों के कारण विद्यार्थी अनेक स्रोतों से तत्काल जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक का कार्य केवल तथ्य और सूचनाएँ उपलब्ध कराना नहीं रह गया है। अब उसकी प्रमुख जिम्मेदारी विद्यार्थियों को उपलब्ध सूचनाओं की विश्वसनीयता पहचानने, उनका आलोचनात्मक परीक्षण करने और उन्हें व्यवस्थित ज्ञान में रूपांतरित करने की क्षमता प्रदान करना है। ''समकालीन शिक्षक को विद्यार्थियों में केवल पाठ्यक्रम संबंधी दक्षता विकसित करने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उनमें स्वतंत्र चिंतन और रचनात्मक दृष्टि का विकास भी करना चाहिए। विद्यार्थियों को किसी प्रश्न का तैयार उत्तर देने के स्थान पर उन्हें प्रश्न की प्रकृति समझने, उसके विभिन्न पक्षों पर विचार करने और प्रमाणों के आधार पर निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए प्रेरित करना आवश्यक है।''[4] इस प्रक्रिया में तर्कशीलता, विश्लेषणात्मक क्षमता, समस्या–समाधान कौशल और निर्णय लेने की योग्यता महत्वपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार शिक्षक विद्यार्थियों को ज्ञान का निष्क्रिय उपभोक्ता बनाने के बजाय सक्रिय अन्वेषक बनने के लिए तैयार करता है। तकनीकी परिवर्तन के साथ शिक्षक की स्वयं सीखते रहने की भूमिका भी अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। नई डिजिटल तकनीकों, ऑनलाइन शिक्षण मंचों, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल शोध–संसाधनों और आधुनिक अनुसंधान पद्धतियों का ज्ञान शिक्षक की व्यावसायिक क्षमता का आवश्यक हिस्सा बन रहा है। निरंतर बदलते ज्ञान–परिदृश्य में वही शिक्षक प्रभावी ढंग से शिक्षण कर सकता है जो स्वयं भी नए ज्ञान और तकनीकी परिवर्तनों के प्रति सजग तथा सीखने के लिए तत्पर रहे। इसलिए शिक्षक को आजीवन शिक्षार्थी के रूप में अपनी भूमिका स्वीकार करनी होगी।

शिक्षक–विद्यार्थी संबंध में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। ''पारंपरिक व्यवस्था में ज्ञान का प्रवाह मुख्यतः शिक्षक से विद्यार्थी की ओर होता था, जबकि आधुनिक शिक्षा सहयोगात्मक अधिगम पर अधिक बल देती है। इसमें शिक्षक मार्गदर्शक, सह–अन्वेषक और प्रेरक की भूमिका निभाता है तथा विद्यार्थी प्रश्न, अनुभव और प्रयोग के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी करता है।''[5] शोध–आधारित शिक्षण इस परिवर्तन को और सार्थक बनाता है। यदि शिक्षक अपने शोध–अनुभवों और अनुसंधान की प्रक्रियाओं को शिक्षण से जोड़ता है, तो विद्यार्थी वास्तविक ज्ञान–सृजन की प्रक्रिया को समझ पाते हैं। समस्या–निर्धारण, साहित्य–अध्ययन, तथ्य–संग्रह, विश्लेषण, तर्क–विकास और निष्कर्ष–निर्माण जैसी प्रक्रियाओं से उनका व्यावहारिक परिचय होता है। अतः वर्तमान शिक्षक ज्ञान देने वाला मात्र व्यक्ति नहीं, बल्कि जिज्ञासा को दिशा देने वाला, शोध–दृष्टि विकसित करने

वाला और विद्यार्थियों को स्वतंत्र ज्ञान–सृजन के लिए सक्षम बनाने वाला महत्वपूर्ण मार्गदर्शक है।

बहुविषयक अनुसंधान की आवश्यकता :

वर्तमान समय में मानव समाज जिन समस्याओं का सामना कर रहा है, उनका स्वरूप अत्यंत जटिल और परस्पर संबद्ध है। ऐसी परिस्थितियों में किसी एक विषय या ज्ञान–शाखा के सीमित दृष्टिकोण से समस्या का पूर्ण और प्रभावी समाधान संभव नहीं होता। जलवायु परिवर्तन इसका स्पष्ट उदाहरण है। इसे केवल पर्यावरणीय संकट मानना पर्याप्त नहीं है, क्योंकि इसके प्रभाव कृषि, स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था, रोजगार, प्रवासन, राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों तक विस्तृत हैं। इसी प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी आधुनिक तकनीक के प्रभावों को समझने के लिए विज्ञान और तकनीक के साथ–साथ दर्शन, नैतिकता, कानून, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, भाषा–विज्ञान तथा समाजशास्त्र की अंतर्दृष्टियों की भी आवश्यकता होती है। इन्हीं परिस्थितियों ने बहुविषयक अनुसंधान की आवश्यकता को अधिक प्रासंगिक बनाया है।

''बहुविषयक शोध में विभिन्न विषयों के सिद्धांतों, अवधारणाओं, शोध–पद्धतियों और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोणों का किसी साझा समस्या के अध्ययन में समन्वित उपयोग किया जाता है। इसका आशय यह नहीं है कि विभिन्न विषयों की अपनी स्वतंत्र पहचान समाप्त कर दी जाए। इसके विपरीत, इसका उद्देश्य विषयों की विशिष्टता को बनाए रखते हुए उनके बीच सार्थक संवाद और सहयोग स्थापित करना है।''[6] इस प्रकार अलग–अलग ज्ञान–क्षेत्र एक–दूसरे की सीमाओं को समझते हुए किसी समस्या के व्यापक स्वरूप को सामने लाने में योगदान देते हैं। बहुविषयक अनुसंधान का प्रमुख लाभ इसकी समग्र दृष्टि है। जब किसी समस्या का अध्ययन अलग–अलग विषयों के विशेषज्ञ मिलकर करते हैं, तो उसके अनेक ऐसे पक्ष सामने आ सकते हैं जो एकल विषय के अध्ययन में अनदेखे रह जाते हैं। विभिन्न शोध–पद्धतियों के मेल से तथ्यों की व्याख्या अधिक व्यापक बनती है और नए प्रश्नों तथा वैकल्पिक समाधानों के विकसित होने की संभावना बढ़ती है। इसके परिणामस्वरूप नवाचार को प्रोत्साहन मिलता है तथा शोध सामाजिक आवश्यकताओं के अधिक निकट पहुँचता है। उच्च शिक्षा संस्थानों की इसमें विशेष भूमिका है। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों को ऐसे अकादमिक वातावरण का निर्माण करना चाहिए जहाँ विभिन्न विभागों और ज्ञान–क्षेत्रों के बीच नियमित संवाद हो।

संयुक्त शोध परियोजनाएँ, अंतर्विषयी संगोष्ठियाँ, कार्यशालाएँ, शोध समूह और साझा प्रयोगशालाएँ इस दिशा में प्रभावी माध्यम बन सकते हैं। विद्यार्थियों को भी प्रारंभिक स्तर से विभिन्न विषयों के साथ संवाद करने के अवसर दिए जाने चाहिए, ताकि उनमें व्यापक दृष्टिकोण विकसित हो सके। बहुविषयक अनुसंधान वर्तमान ज्ञान–व्यवस्था की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। यह ज्ञान की अलग–अलग धाराओं को जोड़कर जटिल समस्याओं को समझने की क्षमता विकसित करता है और शोध को अधिक उपयोगी, नवाचारी तथा समाजोन्मुख बनाता है। वैश्विक स्तर पर सतत विकास और मानवीय कल्याण के लक्ष्यों की प्राप्ति में इसकी भूमिका निरंतर महत्वपूर्ण होती जा रही है।

भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान को अलग–अलग इकाइयों के रूप में देखने की बजाय इनके पारस्परिक संबंध को समझना अधिक उपयोगी है। शिक्षक विभिन्न विषयों के बीच संवाद स्थापित करने वाला माध्यम बन सकता है। वह विद्यार्थियों को यह समझा सकता है कि साहित्य का संबंध समाजशास्त्र से, इतिहास का संबंध राजनीति से और विज्ञान का संबंध नैतिकता तथा दर्शन से किस प्रकार जुड़ता है। भाषा इस अंतर्विषयक संवाद को संभव बनाती है। विभिन्न विषयों की अवधारणाओं के बीच अनुवाद और संवाद के लिए ऐसी भाषा आवश्यक

है जो एक ओर विषयगत सटीकता बनाए रखे और दूसरी ओर सामान्य पाठक के लिए भी बोधगम्य हो। यदि विश्वविद्यालयों में भाषा–कौशल, शोध–पद्धति और विषयगत ज्ञान को एकीकृत किया जाए तो विद्यार्थियों में अधिक व्यापक अनुसंधान क्षमता विकसित की जा सकती है। शोधार्थी को केवल अपने विषय की विशेषज्ञता तक सीमित न रखकर अन्य विषयों की मूलभूत अवधारणाओं से परिचित कराया जाना चाहिए।

ज्ञान–सृजन की वैश्विक प्रक्रिया के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। पहली चुनौती भाषाई असमानता की है। दूसरी चुनौती गुणवत्तापूर्ण शोध और त्वरित सूचना के बीच संतुलन स्थापित करने की है। तीसरी चुनौती शोध की मौलिकता और अकादमिक ईमानदारी से जुड़ी है। डिजिटल माध्यमों ने सामग्री की उपलब्धता बढ़ाई है, लेकिन इसी के साथ बिना उचित संदर्भ के सामग्री के उपयोग और बौद्धिक संपदा के उल्लंघन की संभावना भी बढ़ी है। बहुविषयक शोध में भी कठिनाइयाँ हैं। अलग–अलग विषयों की शब्दावली, पद्धति और शोध–दृष्टि भिन्न हो सकती है। इसलिए विभिन्न क्षेत्रों के शोधकर्ताओं के बीच प्रभावी संवाद के लिए समय, संस्थागत सहयोग और साझा शोध–भाषा की आवश्यकता होती है। शिक्षकों के सामने भी निरंतर प्रशिक्षण की चुनौती है। तकनीकी परिवर्तन इतनी तीव्र गति से हो रहे हैं कि पारंपरिक शिक्षक–प्रशिक्षण पर्याप्त नहीं रह गया है। शिक्षकों को नियमित रूप से शोध–पद्धति, डिजिटल तकनीक और नवीन शैक्षणिक उपकरणों का प्रशिक्षण मिलना चाहिए।

भविष्य का ज्ञान–सृजन अधिक सहयोगात्मक, डिजिटल, बहुभाषी और बहुविषयक होने की संभावना रखता है। विश्वविद्यालयों को ऐसे शैक्षणिक वातावरण का निर्माण करना होगा जिसमें विद्यार्थी प्रश्न पूछने, प्रयोग करने और नए विचार विकसित करने के लिए स्वतंत्र हों। भारतीय संदर्भ में भारतीय भाषाओं और ज्ञान–परंपरा को आधुनिक अनुसंधान से जोड़ना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो सकता है। उच्च गुणवत्ता वाले अनुवाद, डिजिटल अभिलेखीकरण, भारतीय भाषाओं में शोध–पत्रिकाओं का विकास और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय ज्ञान–संसाधनों की उपलब्धता इस दिशा में प्रभावी कदम होंगे। भविष्य का शिक्षक केवल विषय–विशेषज्ञ नहीं, बल्कि शोध–मार्गदर्शक, तकनीकी रूप से सक्षम और बहुविषयक संवाद का समर्थक होना चाहिए। इसी प्रकार विद्यार्थी को भी निष्क्रिय ज्ञान–ग्राही के स्थान पर सक्रिय ज्ञान–सृजक के रूप में विकसित करना आवश्यक है।

निष्कर्ष :

ज्ञान–सृजन का वैश्विक पथ बहुआयामी और निरंतर परिवर्तनशील है। इस यात्रा में भाषा ज्ञान को अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक आधार प्रदान करती है, शिक्षक ज्ञान को आलोचनात्मक तथा रचनात्मक दिशा देता है और बहुविषयक अनुसंधान जटिल समस्याओं के समग्र समाधान की संभावना उत्पन्न करता है। इन तीनों का समन्वय ज्ञान की गुणवत्ता, व्यापकता और सामाजिक उपयोगिता को बढ़ा सकता है। वैश्विक ज्ञान–व्यवस्था में भागीदारी का अर्थ अपनी भाषाओं और स्थानीय ज्ञान–परंपराओं को छोड़ना नहीं, बल्कि उन्हें विश्व के अन्य ज्ञान–स्रोतों के साथ संवाद में लाना है। भारतीय भाषाओं में उपलब्ध ज्ञान का आधुनिक शोध–पद्धतियों के माध्यम से पुनर्पाठ, डिजिटल माध्यमों द्वारा उसका प्रसार और बहुविषयक दृष्टि से उसका विश्लेषण ज्ञान–सृजन को अधिक समावेशी बना सकता है। अतः इक्कीसवीं सदी की ज्ञान–व्यवस्था का लक्ष्य केवल अधिक ज्ञान का निर्माण करना नहीं होना चाहिए, बल्कि ऐसा ज्ञान विकसित करना होना चाहिए जो मानवीय, समावेशी, आलोचनात्मक, नैतिक और समाजोपयोगी हो। जब भाषा विविधता को शक्ति के रूप में स्वीकार करेगी, शिक्षक ज्ञान–सहयात्री की भूमिका निभाएगा और अनुसंधान विषयगत सीमाओं से आगे बढ़कर सहयोग की संस्कृति विकसित करेगा, तभी ज्ञान–सृजन वास्तव में वैश्विक और लोकतांत्रिक स्वरूप प्राप्त कर सकेगा।

संदर्भ सूचि –

1. कपूर, कपिल, भारतीय ज्ञान परम्परा, पृ.–73 डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, म.प्र.–2008
2. राजीव, के.एन., भारतीय संस्कृति और आधुनिक विज्ञान, पृ.–37 राजकमल प्रकाशन–2016
3. शर्मा, अर्चना, भारतीय ज्ञान परंपरा और विज्ञान लेखन, पृ.–51 ज्ञानमंडल प्रकाशन, आगरा–2007
4. पाण्डेय, श्रृतिकांत, हिंदी भाषा और इसकी शिक्षण विधियाँ, पृ.–178 बोद्ध प्रकाशन, दिल्ली–2011
5. गौड़, सुनील कुमार, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, पृ.–344, एनसीईआरटी, नई दिल्ली–2005
6. शर्मा, डॉ. राखी, शैक्षिक अनुसंधान एवं शोध पद्धति, पृ.–206, वाणी प्रकाशन, दिल्ली–2010

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 111-115

लोकज्ञान से डिजिटल ज्ञान तक : भारतीय समाज में ज्ञान–निर्माण के बदलते आयामों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

हेमलता पारस

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र,

प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर मालवा, मध्य प्रदेश।

शोध सार :

ज्ञान किसी भी समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण आधार है। भारतीय समाज में ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया केवल औपचारिक शैक्षणिक संस्थाओं तक सीमित नहीं रही है, बल्कि लोकपरंपराओं, सामुदायिक अनुभवों, मौखिक परंपराओं, कृषि, लोकचिकित्सा, हस्तशिल्प, लोककला तथा पर्यावरणीय अनुभवों के माध्यम से भी ज्ञान का निर्माण एवं पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरण होता रहा है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के विकास ने ज्ञान को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया, जबकि वर्तमान डिजिटल युग ने ज्ञान के निर्माण, संरक्षण, प्रसार और उपयोग की प्रक्रिया में व्यापक परिवर्तन किया है। इंटरनेट, डिजिटल पुस्तकालय, ऑनलाइन शिक्षा, सोशल मीडिया तथा विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म ने ज्ञान तक पहुँच के नए अवसर उत्पन्न किए हैं।

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य भारतीय समाज में लोकज्ञान से डिजिटल ज्ञान तक ज्ञान–निर्माण की बदलती प्रक्रिया का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह समझने का प्रयास किया गया है कि डिजिटल तकनीक लोकज्ञान के संरक्षण और प्रसार में किस प्रकार सहायक हो सकती है तथा डिजिटल विभाजन, आर्थिक विषमता, भाषायी विविधता और डिजिटल साक्षरता की असमानता ज्ञान तक समान पहुँच को किस प्रकार प्रभावित करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परंपराओं, भारतीय भाषाओं और तकनीक के उपयोग पर भी बल देती है।

अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है। शोध का निष्कर्ष है कि डिजिटल ज्ञान–व्यवस्था को लोकज्ञान का विकल्प मानने के बजाय दोनों के बीच संवाद और समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। समावेशी ज्ञान–व्यवस्था के लिए भारतीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री, डिजिटल साक्षरता तथा वंचित समुदायों की ज्ञान–निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी को बढ़ावा देना आवश्यक है।

प्रमुख शब्द : लोकज्ञान, डिजिटल ज्ञान, ज्ञान–निर्माण, सामाजिक परिवर्तन, डिजिटल विभाजन।

1. प्रस्तावना :

ज्ञान को सामान्यतः तथ्यों, सूचनाओं और अनुभवों के व्यवस्थित स्वरूप के रूप में समझा जाता है, किंतु समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से ज्ञान केवल सूचना का संग्रह नहीं है। ज्ञान का निर्माण सामाजिक संबंधों, संस्कृति, संस्थाओं, अनुभवों और सत्ता–संरचनाओं के बीच होता है। प्रत्येक समाज अपने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक

अनुभवों के आधार पर ज्ञान की विशिष्ट प्रणालियाँ विकसित करता है।

भारतीय समाज में ज्ञान की परंपरा अत्यंत विविध रही है। कृषि, पशुपालन, जल–संरक्षण, लोकचिकित्सा, हस्तशिल्प, लोकगीत, लोककथाएँ, पर्यावरणीय अनुभव तथा स्थानीय जीवन–पद्धतियों से संबंधित ज्ञान लंबे समय तक समुदायों द्वारा संरक्षित किया गया। इस ज्ञान का प्रमुख आधार अनुभव और सामुदायिक स्मृति रहा है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली के विकास के साथ ज्ञान के औपचारिक एवं संस्थागत स्वरूप का विस्तार हुआ। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय और शोध संस्थान ज्ञान के प्रमुख केंद्र बने। वर्तमान में डिजिटल तकनीक ने ज्ञान की इस व्यवस्था में एक नया आयाम जोड़ा है। अब ज्ञान केवल पुस्तकों और संस्थानों तक सीमित नहीं हैय इंटरनेट और डिजिटल माध्यमों ने व्यक्ति को ज्ञान का उपभोक्ता होने के साथ–साथ निर्माता और प्रसारक भी बनाया है।

2. अध्ययन के उद्देश्य :

1. भारतीय समाज में लोकज्ञान की प्रकृति एवं सामाजिक महत्त्व को समझना।
2. लोकज्ञान से डिजिटल ज्ञान तक ज्ञान–निर्माण में हुए परिवर्तन का अध्ययन करना।
3. डिजिटल तकनीक द्वारा ज्ञान के निर्माण एवं प्रसार पर पड़ने वाले प्रभाव का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।
4. डिजिटल विभाजन एवं सामाजिक असमानता के बीच संबंध को समझना।
5. लोकज्ञान के संरक्षण और डिजिटल माध्यमों के बीच संभावित संबंधों का विश्लेषण करना।
6. समावेशी एवं लोकतांत्रिक ज्ञान–व्यवस्था के लिए आवश्यक उपायों को प्रस्तुत करना।

3. शोध-पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का द्वितीयक स्रोत आधारित अध्ययन है। इसके लिए पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी दस्तावेजों तथा UNESCO एवं अन्य विश्वसनीय संस्थाओं की प्रकाशित सामग्री का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से लोकज्ञान, संस्थागत ज्ञान, डिजिटल ज्ञान, सामाजिक असमानता और ज्ञान के लोकतंत्रीकरण के बीच संबंध का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में किसी प्रकार के प्राथमिक सर्वेक्षण या काल्पनिक आँकड़ों का प्रयोग नहीं किया गया है।

4. लोकज्ञान और भारतीय समाज :

लोकज्ञान किसी समुदाय के सामूहिक अनुभव और स्थानीय परिस्थितियों से विकसित ज्ञान है। यह औपचारिक पाठ्यक्रम या संस्थागत प्रमाणन पर आवश्यक रूप से निर्भर नहीं करता। परिवार, समुदाय और स्थानीय सामाजिक समूह इसके महत्वपूर्ण वाहक रहे हैं।

भारतीय ग्रामीण समाज में मौसम और कृषि का अनुभव, बीज संरक्षण, पारंपरिक जल–संरक्षण, स्थानीय वनस्पतियों की जानकारी, हस्तशिल्प और लोककलाएँ लोकज्ञान के उदाहरण हैं। महिलाओं की भूमिका भी लोकज्ञान के संरक्षण में महत्वपूर्ण रही है, विशेषकर खाद्य संरक्षण, घरेलू उपचार, पारंपरिक हस्तकला और पारिवारिक जीवन से संबंधित ज्ञान में।

इस प्रकार लोकज्ञान को केवल अतीत की परंपरा मानना उचित नहीं है। यह सामाजिक अनुभव और सामूहिक स्मृति का महत्वपूर्ण स्रोत है।

5. संस्थागत ज्ञान और लोकज्ञान :

आधुनिक शिक्षा के विकास के साथ ज्ञान का संस्थाकरण हुआ। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों ने ज्ञान के उत्पादन, प्रमाणीकरण और प्रसार की औपचारिक व्यवस्था विकसित की। इससे वैज्ञानिक एवं अकादमिक ज्ञान को व्यापक मान्यता मिली।

हालाँकि, संस्थागत ज्ञान और लोकज्ञान के बीच हमेशा समानता नहीं रही। अनेक स्थानीय ज्ञान–परंपराएँ औपचारिक शिक्षा की मुख्यधारा से बाहर रह गईं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपराओं, स्थानीय विशेषज्ञता और भारतीय भाषाओं को शिक्षा से जोड़ने पर विशेष जोर दिया गया है। इससे लोकज्ञान और संस्थागत ज्ञान के बीच नए संवाद की संभावनाएँ दिखाई देती हैं।

6. डिजिटल ज्ञान का उदय :

डिजिटल तकनीक ने ज्ञान के स्वरूप और प्रसार की प्रक्रिया को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इंटरनेट, ई–पुस्तकें, डिजिटल पुस्तकालय, ऑनलाइन पाठ्यक्रम, शैक्षणिक पोर्टल और सोशल मीडिया ज्ञान तक पहुँच के महत्वपूर्ण माध्यम बन गए हैं।

भारत में डिजिटल शिक्षा के लिए DIKSHA जैसे प्लेटफॉर्म विकसित किए गए हैं, जो अनेक भारतीय भाषाओं में शैक्षणिक सामग्री उपलब्ध कराते हैं। डिजिटल माध्यम का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें ज्ञान–निर्माण अधिक सहभागी हो सकता है। कोई स्थानीय कलाकार, किसान, शिक्षक या समुदाय अपने अनुभवों को डिजिटल माध्यम से व्यापक समाज तक पहुँचा सकता है। इस प्रकार स्थानीय ज्ञान का वैश्विक स्तर पर प्रसार संभव हुआ है।

7. लोकज्ञान से डिजिटल ज्ञान की ओर संक्रमण :

लोकज्ञान और डिजिटल ज्ञान को एक–दूसरे के विरोधी रूप में देखना उचित नहीं है। डिजिटल माध्यम लोकज्ञान के दस्तावेजीकरण, संरक्षण, पुनर्प्रस्तुतीकरण और प्रसार का साधन बन सकते हैं।

लोकगीतों की डिजिटल रिकॉर्डिंग, लोककथाओं का ऑनलाइन संग्रह, पारंपरिक कृषि पद्धतियों के वीडियो, स्थानीय हस्तशिल्प की डिजिटल प्रदर्शनी तथा स्थानीय औषधीय ज्ञान का दस्तावेजीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार डिजिटल तकनीक लोकज्ञान को समाप्त करने के बजाय कई परिस्थितियों में उसके संरक्षण और पुनर्जीवन का माध्यम बन सकती है।

8. डिजिटल ज्ञान और सामाजिक असमानता :

डिजिटल ज्ञान की उपलब्धता को समानता का पर्याय नहीं माना जा सकता। इंटरनेट और डिजिटल उपकरणों की उपलब्धता के साथ–साथ डिजिटल कौशल, भाषा, आर्थिक संसाधन और शिक्षा भी व्यक्ति की डिजिटल भागीदारी को प्रभावित करते हैं।

ग्रामीण–शहरी अंतर, आर्थिक वर्ग, लैंगिक असमानता और शिक्षा का स्तर डिजिटल संसाधनों के उपयोग को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए डिजिटल ज्ञान–व्यवस्था सामाजिक असमानताओं को कम करने का माध्यम बन सकती है, लेकिन यदि डिजिटल संसाधनों तक पहुँच असमान है तो वही व्यवस्था मौजूदा असमानताओं को नए रूप में पुनः उत्पन्न भी कर सकती है।

9. भाषा और ज्ञान-निर्माण :

भारतीय समाज की भाषायी विविधता ज्ञान–निर्माण की महत्वपूर्ण विशेषता है। भाषा केवल संचार का

माध्यम नहीं है, बल्कि संस्कृति, पहचान और सामूहिक स्मृति का भी आधार है।

यदि डिजिटल ज्ञान कुछ सीमित भाषाओं तक सीमित रहता है, तो भाषायी रूप से विविध समाज में ज्ञान तक पहुँच असमान हो सकती है। इसलिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली डिजिटल शैक्षणिक सामग्री का निर्माण आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुभाषिकता तथा भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण शिक्षण–अधिगम सामग्री के विकास पर बल दिया गया है। इस दृष्टि से भारतीय भाषाओं में डिजिटल ज्ञान का विस्तार ज्ञान के लोकतंत्रीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

10. ज्ञान का लोकतंत्रीकरण और शिक्षक की बदलती भूमिका :

डिजिटल युग में शिक्षक की भूमिका केवल सूचना प्रदान करने वाले व्यक्ति की नहीं रह गई है। इंटरनेट के माध्यम से विद्यार्थियों को बड़ी मात्रा में जानकारी उपलब्ध है। इसलिए शिक्षक की भूमिका ज्ञान के मार्गदर्शक, स्रोतों की विश्वसनीयता का मूल्यांकन करने वाले और आलोचनात्मक चिंतन विकसित करने वाले व्यक्ति के रूप में अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।

शिक्षक लोकज्ञान और आधुनिक अकादमिक ज्ञान के बीच संवाद स्थापित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इससे शिक्षा अधिक स्थानीय, समावेशी और सामाजिक रूप से प्रासंगिक बन सकती है।

11. ज्ञान निर्माण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण एवं प्रमुख प्रतिफल :

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि किस ज्ञान को मान्यता मिलती है और किसे नहीं? ज्ञान का निर्माण सामाजिक संस्थाओं और सत्ता–संबंधों से प्रभावित होता है।

डिजिटल माध्यमों ने ज्ञान–निर्माण में सामान्य नागरिकों और स्थानीय समुदायों की भागीदारी बढ़ाने की संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। परंतु डिजिटल मंचों पर दृश्यता, तकनीकी कौशल, भाषा और आर्थिक संसाधन यह निर्धारित कर सकते हैं कि किस प्रकार का ज्ञान व्यापक समाज तक पहुँच पाएगा। इसलिए डिजिटल ज्ञान को पूर्णतः तटस्थ नहीं माना जा सकता। ज्ञान का डिजिटल रूपांतरण सामाजिक संरचना से जुड़ी असमानताओं को साथ लेकर चलता है।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण से निम्न प्रतिफल प्राप्त हुए हैं :

1. ज्ञान–निर्माण मूलतः एक सामाजिक एवं परिवर्तनशील प्रक्रिया है।
2. लोकज्ञान भारतीय समाज की सामूहिक स्मृति और अनुभव का महत्वपूर्ण स्रोत है।
3. आधुनिक शिक्षा ने ज्ञान के संस्थाकरण को बढ़ावा दिया।
4. डिजिटल तकनीक ने ज्ञान के निर्माण और प्रसार के अवसरों को व्यापक बनाया है।
5. डिजिटल माध्यम लोकज्ञान के संरक्षण और व्यापक प्रसार में उपयोगी हो सकते हैं।
6. डिजिटल विभाजन ज्ञान के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण चुनौती है।
7. भारतीय भाषाओं में डिजिटल सामग्री का विस्तार ज्ञान की समावेशिता बढ़ा सकता है।
8. शिक्षक डिजिटल युग में ज्ञान के मार्गदर्शक और आलोचनात्मक चिंतन के विकासकर्ता की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
9. लोकज्ञान, संस्थागत ज्ञान और डिजिटल ज्ञान के बीच संवाद भारतीय ज्ञान–व्यवस्था को अधिक समावेशी बना सकता है।

12. निष्कर्ष :

भारतीय समाज में ज्ञान–निर्माण की यात्रा लोकपरंपराओं और सामुदायिक अनुभवों से लेकर संस्थागत शिक्षा और वर्तमान डिजिटल ज्ञान–व्यवस्था तक पहुँची है। यह परिवर्तन केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना, संस्कृति, भाषा, शिक्षा और सत्ता–संबंधों में होने वाले परिवर्तनों से जुड़ा हुआ है।

डिजिटल तकनीक ने ज्ञान तक पहुँच और ज्ञान–निर्माण के नए अवसर उपलब्ध कराए हैं, किंतु डिजिटल विभाजन और भाषायी असमानता जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। अतः भविष्य की ज्ञान–व्यवस्था का लक्ष्य केवल डिजिटल सामग्री का विस्तार करना नहीं, बल्कि समान, समावेशी और बहुभाषी ज्ञान–व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए।

लोकज्ञान को डिजिटल माध्यमों से जोड़कर न केवल भारतीय सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण किया जा सकता है, बल्कि स्थानीय समुदायों को ज्ञान–निर्माण की मुख्यधारा में अधिक प्रभावी स्थान भी दिया जा सकता है। इस प्रकार लोकज्ञान से डिजिटल ज्ञान तक की यात्रा भारतीय समाज में ज्ञान, संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन के बदलते संबंधों को समझने का महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय आधार प्रस्तुत करती है।

संदर्भ सूची :

- Bourdieu, P. (1986). The forms of capital. In J. G. Richardson (Ed.), Handbook of theory and research for the sociology of education. Greenwood.
- Castells, M. (2010). The rise of the network society (2nd ed.). Wiley-Blackwell.
- Foucault, M. (1980). Power/knowledge: Selected interviews and other writings, 1972–1977. Pantheon Books.
- Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.
- Ministry of Education, Government of India. (2024). Indian Knowledge Systems. Government of India.
- UNESCO. (2021). Locally based, regionally manifested, and globally relevant: Indigenous and local knowledge, values, and practices for nature. UNESCO.
- UNESCO. (2021). State of the education report for India 2021: No teacher, no class. UNESCO.
- World Bank. (2016). World development report 2016: Digital dividends. World Bank.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 116-120

कृषि और ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण

श्री जगदीश पावरा
सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन, म.प्र.।

शोध सारांश :–

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ कृषि उत्पादन, पशुपालन, दुग्ध उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा पारिवारिक आर्थिक प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इसके बावजूद उन्हें संसाधनों, शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, भूमि स्वामित्व तथा निर्णय प्रक्रिया में समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाते हैं। महिला सशक्तिकरण ग्रामीण विकास की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, क्योंकि सशक्त महिलाएँ परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में प्रभावी योगदान देती हैं।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य कृषि एवं ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण की भूमिका, महत्व, चुनौतियों तथा संभावनाओं का अध्ययन करना है। यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें विभिन्न पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी रिपोर्ट तथा प्रकाशित साहित्य का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्वयं सहायता समूहों, सरकारी योजनाओं, कौशल विकास कार्यक्रमों तथा वित्तीय समावेशन ने ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को मजबूत किया है।

मुख्य कुँजी – महिला सशक्तिकरण, कृषि विकास, ग्रामीण विकास, ग्रामीण महिलाएँ, कृषि उत्पादन, स्वयं सहायता समूह, कौशल विकास, वित्तीय समावेशन, सरकारी योजनाएँ, महिला रोजगार।

प्रस्तावना :–

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ आज भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है और अपनी आजीविका के लिए कृषि तथा उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाने वाली कृषि व्यवस्था में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। ग्रामीण महिलाएँ केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे कृषि उत्पादन, पशुपालन, डेयरी व्यवसाय, बीज संरक्षण, खाद्य प्रसंस्करण, जल एवं वन संसाधनों के संरक्षण तथा परिवार के आर्थिक प्रबंधन में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। इसके बावजूद उनके योगदान को अक्सर औपचारिक मान्यता नहीं मिल पाती तथा उन्हें संसाधनों, अवसरों और निर्णय प्रक्रिया में समान भागीदारी से वंचित रहना पड़ता है।

महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक एवं कानूनी रूप से सक्षम बनाना है ताकि वे अपने जीवन से संबंधित निर्णय स्वतंत्र रूप से ले सकें तथा समाज में समान अधिकार और सम्मान प्राप्त कर सकें। सशक्तिकरण केवल महिलाओं की स्थिति में सुधार का माध्यम नहीं है, बल्कि यह

सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और सतत विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। किसी भी समाज का समग्र विकास तब तक संभव नहीं है जब तक उसकी आधी आबादी विकास की मुख्यधारा से जुड़ी न हो।

ग्रामीण विकास की अवधारणा केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित नहीं है। इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण, आधारभूत सुविधाओं का विकास तथा जीवन स्तर में सुधार जैसे अनेक पहलू शामिल हैं। इन सभी क्षेत्रों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। जब महिलाएँ शिक्षित, आत्मनिर्भर और आर्थिक रूप से सक्षम होती हैं, तब वे न केवल अपने परिवार की आय बढ़ाती हैं बल्कि बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा और पोषण स्तर को भी बेहतर बनाती हैं। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण का प्रभाव पूरे समुदाय के विकास पर पड़ता है।

अध्ययन के उद्देश्य :- इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण के महत्व को समझना।
3. महिला सशक्तिकरण से संबंधित सरकारी योजनाओं का विश्लेषण करना।
4. ग्रामीण महिलाओं के समक्ष आने वाली समस्याओं एवं चुनौतियों का अध्ययन करना।
5. महिला सशक्तिकरण एवं कृषि उत्पादकता के मध्य संबंध को स्पष्ट करना।
6. महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

साहित्य की समीक्षा :-

महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास पर अनेक विद्वानों ने अध्ययन किए हैं।

1. बोसरप (1970) ने अपनी पुस्तक "आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका" में बताया कि विकास प्रक्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी को उचित महत्व नहीं दिया गया है।
2. अमर्त्य सेन (1999) ने महिलाओं की शिक्षा और स्वास्थ्य को विकास का आधार माना तथा कहा कि महिलाओं की क्षमताओं का विकास समाज के समग्र विकास में सहायक होता है।
3. अग्रवाल (1994) ने भूमि स्वामित्व और संसाधनों तक महिलाओं की पहुँच को सशक्तिकरण का प्रमुख आधार बताया।
4. बाटलीवाला (1994) ने महिला सशक्तिकरण को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया और महिलाओं की निर्णय क्षमता को इसके केंद्र में रखा।
5. नाबार्ड द्वारा किए गए अध्ययनों में पाया गया कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं की आय, बचत तथा सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करते हैं।
6. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन की रिपोर्टों में उल्लेख किया गया है कि महिलाओं की आर्थिक भागीदारी ग्रामीण विकास को गति प्रदान करती है।

कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका :-

ग्रामीण महिलाओं की कृषि में बहुआयामी भूमिका है –

1. **कृषि उत्पादन में योगदान** – महिलाएँ खेतों में बुवाई, निराई, कटाई तथा फसल प्रसंस्करण जैसे कार्य करती हैं।
2. **पशुपालन** – दुग्ध उत्पादन, पशुओं की देखभाल तथा चारा प्रबंधन का अधिकांश कार्य महिलाएँ करती

हैं।

3. **खाद्य सुरक्षा** – परिवार के पोषण और खाद्य प्रबंधन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
4. **प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण** – महिलाएँ जल, वन और भूमि संरक्षण में सक्रिय योगदान देती हैं।
5. **कृषि विविधीकरण, बागवानी** – मशरूम उत्पादन, मधुमक्खी पालन तथा जैविक खेती जैसे क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है।

ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण का महत्व :

- **आर्थिक विकास** :– महिलाओं की आर्थिक भागीदारी से परिवार की आय में वृद्धि होती है तथा गरीबी कम होती है।
- **सामाजिक विकास** :– सशक्त महिलाएँ बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पोषण पर अधिक ध्यान देती हैं।
- **निर्णय क्षमता में वृद्धि** :– सशक्तिकरण महिलाओं को परिवार एवं समाज में निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करता है।
- **लैंगिक समानता** :– महिला सशक्तिकरण से समाज में समानता और न्याय की स्थापना होती है।
- **सतत विकास** :– महिलाओं की भागीदारी सतत कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देती है।

महिला सशक्तिकरण हेतु सरकारी योजनाएँ :

1. **राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन** – ग्रामीण महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वरोजगार उपलब्ध कराना।
2. **महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना** – महिला किसानों को तकनीकी एवं वित्तीय सहायता प्रदान करना।
3. **प्रधानमंत्री मुद्रा योजना** – महिलाओं को स्वरोजगार हेतु ऋण उपलब्ध कराना।
4. **दीनदयाल अंत्योदय योजना** – ग्रामीण गरीब महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना।
5. **बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ** – महिला शिक्षा और सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देना।

महिला सशक्तिकरण में बाधाएँ :

- **अशिक्षा** – शिक्षा के अभाव में महिलाएँ अपने अधिकारों से अनभिज्ञ रहती हैं।
- **भूमि स्वामित्व की कमी** – अधिकांश महिलाओं के नाम पर भूमि नहीं होती।
- **सामाजिक रूढ़ियाँ** – पारंपरिक मान्यताएँ महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित करती हैं।
- **वित्तीय संसाधनों की कमी** – ऋण एवं बैंकिंग सुविधाओं तक पहुँच सीमित रहती है।
- **तकनीकी ज्ञान का अभाव** – नई कृषि तकनीकों की जानकारी का अभाव उत्पादकता को प्रभावित करता है।
- **दोहरा कार्यभार** – महिलाओं को कृषि कार्यों के साथ घरेलू जिम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ती हैं।

शोध विधि :–

प्रस्तुत शोध पत्र "कृषि और ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण" विषय पर आधारित है। किसी भी शोध की सफलता उसके द्वारा अपनाई गई शोध विधि पर निर्भर करती है। शोध विधि वह वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से तथ्यों का संग्रहण, वर्गीकरण, विश्लेषण एवं निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। इस अध्ययन में महिला सशक्तिकरण, कृषि विकास तथा ग्रामीण विकास के मध्य संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन की प्रकृति :–

यह शोध वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। वर्णनात्मक अध्ययन के अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक एवं कृषि संबंधी स्थिति का विवरण प्रस्तुत किया गया है, जबकि विश्लेषणात्मक अध्ययन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण विकास के मध्य संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन का क्षेत्र :–

अध्ययन का क्षेत्र कृषि एवं ग्रामीण विकास से संबंधित महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों तक सीमित है। इसमें महिलाओं की कृषि कार्यों में भागीदारी, आर्थिक स्थिति, शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्णय लेने की क्षमता, सरकारी योजनाओं में सहभागिता तथा ग्रामीण विकास में उनके योगदान का अध्ययन किया गया है।

तथ्य एवं आंकड़ों के स्रोत :–

इस अध्ययन में मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

प्राथमिक स्रोत :– यदि क्षेत्रीय अध्ययन किया जाए तो निम्न स्रोत उपयोगी हो सकते हैं–

ग्रामीण महिलाओं के साक्षात्कार, प्रश्नावली एवं अनुसूची, समूह चर्चा, प्रत्यक्ष अवलोकन, स्वयं सहायता समूहों के सदस्यों से संवाद।

द्वितीयक स्रोत :– प्रस्तुत शोध में निम्न द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है–

समाजशास्त्र एवं ग्रामीण विकास संबंधी पुस्तकें, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाएँ, महिला सशक्तिकरण संबंधी प्रकाशित शोध लेख, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय की रिपोर्टें, ग्रामीण विकास मंत्रालय की रिपोर्टें, नाबार्ड की रिपोर्टें, जनगणना रिपोर्ट, राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) के आँकड़े, विभिन्न सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं के प्रकाशन।

तथ्य संकलन की विधि :–

तथ्यों का संग्रहण व्यवस्थित रूप से किया गया। सबसे पहले महिला सशक्तिकरण, कृषि विकास एवं ग्रामीण विकास से संबंधित साहित्य का अध्ययन किया गया। इसके बाद विभिन्न रिपोर्टों और शोध अध्ययनों से प्राप्त तथ्यों को विषयानुसार वर्गीकृत किया गया। संकलित तथ्यों को सामाजिक, आर्थिक एवं कृषि संबंधी आयामों में विभाजित कर विश्लेषित किया गया।

निदर्शन पद्धति :–

यद्यपि यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, तथापि क्षेत्रीय अध्ययन की स्थिति में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति उपयुक्त मानी जाती है। इस पद्धति के अंतर्गत उन महिलाओं का चयन किया जाता है जो कृषि कार्यों, स्वयं सहायता समूहों तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हों।

डेटा विश्लेषण की विधि :–

संग्रहित तथ्यों का विश्लेषण निम्न चरणों में किया गया– तथ्यों का वर्गीकरण, विषयानुसार सारणीकरण, तुलनात्मक अध्ययन, व्याख्यात्मक विश्लेषण, निष्कर्षों का निर्माण, विश्लेषण के दौरान महिला सशक्तिकरण के विभिन्न संकेतकों जैसे शिक्षा, रोजगार, आय, भूमि स्वामित्व, सामाजिक भागीदारी एवं निर्णय क्षमता का अध्ययन किया गया।

सुझाव :–

कृषि एवं ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत

किए जा सकते हैं–

1. **महिला शिक्षा को प्राथमिकता :–** ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाए तथा वयस्क शिक्षा एवं डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों का विस्तार किया जाए।
2. **भूमि स्वामित्व के अधिकार :–** महिलाओं को भूमि एवं संपत्ति में समान अधिकार प्रदान किए जाएँ ताकि वे किसान के रूप में पहचान प्राप्त कर सकें तथा सरकारी योजनाओं का लाभ उठा सकें।
3. **कौशल विकास एवं प्रशिक्षण :–** महिलाओं को आधुनिक कृषि तकनीकों, जैविक खेती, पशुपालन, खाद्य प्रसंस्करण, उद्यमिता एवं डिजिटल विपणन का नियमित प्रशिक्षण दिया जाए।
4. **स्वयं सहायता समूहों को प्रोत्साहन :–** महिला स्वयं सहायता समूहों को अधिक वित्तीय सहायता, तकनीकी मार्गदर्शन एवं विपणन सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।

निष्कर्ष :–

महिला सशक्तिकरण कृषि एवं ग्रामीण विकास की आधारशिला है। ग्रामीण महिलाएँ कृषि उत्पादन, पशुपालन, खाद्य सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण तथा पारिवारिक आर्थिक प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उनके श्रम एवं योगदान के बिना कृषि क्षेत्र की प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती। फिर भी सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक असमानताओं के कारण उन्हें समान अवसर एवं अधिकार प्राप्त नहीं हो पाते।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शिक्षा, कौशल विकास, आर्थिक आत्मनिर्भरता, भूमि पर अधिकार, आधुनिक कृषि तकनीकों तक पहुँच तथा निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रमुख आधार हैं। स्वयं सहायता समूहों, महिला किसान सशक्तिकरण कार्यक्रमों तथा विभिन्न सरकारी योजनाओं ने महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास किया है।

संदर्भ सूची :–

1. अग्रवाल, बीना (1994). ए फील्ड ऑफ वन्स ओन : जेंडर एंड लैंड राइट्स इन साउथ एशिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
2. बोसरप, एस्थर (1970). आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका. जॉर्ज एलन और अनविन।
3. सेन, अमर्त्य (1999). विकास एक आजादी है। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. बाटलीवाला, श्रीला (1994). दक्षिण एशिया में महिला सशक्तिकरण।
5. नाबार्ड (विभिन्न वर्ष). स्वयं सहायता समूह संबंधी रिपोर्टें।
6. भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन रिपोर्ट।
7. भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टें।
8. सिंह, योगेन्द्र. भारतीय समाज और ग्रामीण विकास।
9. शर्मा, आर.के. ग्रामीण समाजशास्त्र।
10. देसाई, ए.आर. भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र।
11. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की विभिन्न रिपोर्टें।
12. जनगणना भारत, ग्रामीण एवं कृषि संबंधी सांख्यिकीय रिपोर्टें।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 121-125

उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की भूमिका : चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. जितेन्द्र कुमार
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
रक्षा एवं स्त्रातजिक विभाग, दी0 द0 उ0 गो0 वि0 वि0, गोरखपुर।

सारांश :

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रमुख आधार बन चुकी है। विशेष रूप से उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने शिक्षण, अधिगम, अनुसंधान, मूल्यांकन, प्रशासन तथा निर्णय–निर्माण की प्रक्रियाओं को अधिक प्रभावी, पारदर्शी एवं दक्ष बनाया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण छात्रों की व्यक्तिगत सीखने की आवश्यकताओं के अनुसार अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने, शोध कार्य को गति देने तथा शिक्षकों की प्रशासनिक जिम्मेदारियों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसके साथ ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग से अनेक चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं, जैसे शैक्षणिक ईमानदारी, डेटा गोपनीयता, डिजिटल असमानता, रोजगार संबंधी चिंताएँ तथा नैतिक प्रश्न। प्रस्तुत शोध लेख में उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका, उसके लाभ, चुनौतियों एवं संभावित समाधानों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द – कृत्रिम बुद्धिमत्ता, उच्च शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, अनुसंधान, नैतिकता, शैक्षणिक ईमानदारी।

प्रस्तावना –

इक्कीसवीं शताब्दी को ज्ञान, नवाचार तथा डिजिटल प्रौद्योगिकी का युग माना जाता है। इंटरनेट, बिग डेटा, क्लाउड कंप्यूटिंग, मशीन लर्निंग तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी तकनीकों ने शिक्षा के स्वरूप को मूलभूत रूप से परिवर्तित कर दिया है। विशेष रूप से कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने उच्च शिक्षा में शिक्षण, अधिगम, अनुसंधान, मूल्यांकन तथा प्रशासन की पारंपरिक प्रक्रियाओं को अधिक प्रभावी, गतिशील एवं छात्र–केंद्रित बनाया है। आज विश्व के अग्रणी विश्वविद्यालय कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित शिक्षण प्रणालियों, वर्चुअल ट्यूटर, लर्निंग एनालिटिक्स, स्वचालित मूल्यांकन, डिजिटल पुस्तकालय तथा बुद्धिमान शिक्षण प्लेटफॉर्म का उपयोग कर रहे हैं। भारत में भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति, डिजिटल इंडिया अभियान, SWAYAM, DIKSHA, National Digital Library तथा National Research Foundation जैसी पहलें उच्च शिक्षा में तकनीकी नवाचार को प्रोत्साहित कर रही हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग से विद्यार्थियों की सीखने की गति, उनकी आवश्यकताओं और प्रदर्शन का विश्लेषण कर उन्हें व्यक्तिगत शिक्षण अनुभव उपलब्ध कराया जा सकता है। शोधार्थियों के लिए साहित्य समीक्षा, डेटा विश्लेषण, संदर्भ प्रबंधन तथा वैज्ञानिक लेखन में कृत्रिम बुद्धिमत्ता अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहा है। साथ ही विश्वविद्यालय प्रशासन में प्रवेश,

परीक्षा, परिणाम, समय–सारिणी तथा छात्र सेवाओं को अधिक कुशल बनाया जा रहा है। इस प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता सैन्य क्षमताओं को बढ़ाने के साथ–साथ निर्णय लेने की गति और परिस्थितिजन्य जागरूकता (Situational Awareness) को भी प्रभावित कर सकती है। हालांकि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बढ़ते प्रयोग से अनेक नैतिक, कानूनी और रणनीतिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न हो रही हैं। डेटा की गोपनीयता, एल्गोरिद्मिक पक्षपात, गलत सूचना एवं क्ममचामि, साइबर हमलों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का दुरुपयोग, स्वायत्त हथियार प्रणालियों में मानव नियंत्रण तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा लिए गए निर्णयों की जवाबदेही प्रमुख चिंताएँ हैं। इसलिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास और उपयोग में मानवीय नियंत्रण, पारदर्शिता, जवाबदेही, सुरक्षा तथा नैतिक मानकों को सुनिश्चित करना आवश्यक है। अतः कहा जा सकता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल कंप्यूटर विज्ञान की एक तकनीक नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सामरिक एवं सुरक्षा संरचनाओं को प्रभावित करने वाली एक रणनीतिक शक्ति के रूप में उभर रही है। विशेषकर राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता भविष्य की युद्धक क्षमता, खुफिया व्यवस्था, साइबर सुरक्षा और निर्णय–निर्माण की प्रकृति को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण तकनीक सिद्ध हो सकती है। इसलिए भारत जैसे देश के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता के तकनीकी विकास के साथ–साथ इसके रणनीतिक उपयोग, नैतिक नियंत्रण, नियामक ढाँचे और राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव का व्यवस्थित अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा का अध्ययन करना।
2. शिक्षण, अधिगम, मूल्यांकन एवं अनुसंधान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रमुख लाभों एवं अवसरों का अध्ययन करना।
4. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग से उत्पन्न नैतिक, तकनीकी एवं शैक्षणिक चुनौतियों का विश्लेषण करना।
5. उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उत्तरदायी उपयोग हेतु व्यवहारिक एवं नीतिगत समाधान प्रस्तुत करना।

शोध प्रश्न –

1. उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की प्रमुख भूमिका क्या है?
2. कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षण एवं अनुसंधान की गुणवत्ता को किस प्रकार प्रभावित करता है?
3. कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग से कौन–कौन सी प्रमुख चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं?
4. भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रभावी उपयोग हेतु किन नीतिगत सुधारों की आवश्यकता है?

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता वह तकनीक है जिसके माध्यम से कंप्यूटर या मशीनें ऐसे कार्य करती हैं जिनके लिए सामान्यतः मानव बुद्धि की आवश्यकता होती है, जैसे सीखना, तर्क करना, निर्णय लेना, भाषा को समझना तथा समस्याओं का समाधान करना। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की प्रमुख शाखाएँ हैं– मशीन लर्निंग डीप लर्निंग, प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण, कंप्यूटर विजन, विशेषज्ञ प्रणाली, रोबोटिक्स। राष्ट्रीय सुरक्षा के संदर्भ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। आधुनिक सुरक्षा वातावरण में सूचना की मात्रा और उसकी गति में अत्यधिक वृद्धि हुई है। ऐसे में कृत्रिम बुद्धिमत्ता विशाल मात्रा में खुफिया, उपग्रह, सेंसर, साइबर और संचार संबंधी डेटा का तीव्र गति से विश्लेषण करने में सहायता प्रदान कर सकती है। रक्षा क्षेत्र में इसका उपयोग Intelligence

Surveillance and Reconnaissance (ISR), साइबर सुरक्षा, ड्रोन एवं स्वायत्त प्रणालियों, सीमा निगरानी, सैन्य निर्णय–सहायता, सूचना युद्ध तथा खतरे के पूर्वानुमान जैसे क्षेत्रों में किया जा सकता है।

उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रमुख अनुप्रयोग –

(1) **व्यक्तिगत अधिगम** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रत्येक विद्यार्थी की सीखने की गति, रुचि और कठिनाइयों का विश्लेषण कर उसके अनुरूप अध्ययन सामग्री, अभ्यास प्रश्न और सुझाव प्रदान करता है। इससे सीखना अधिक प्रभावी और छात्र–केंद्रित बनता है।

(2) **बुद्धिमान ट्यूटर प्रणाली** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित ट्यूटर विद्यार्थियों के प्रश्नों का तत्काल उत्तर देते हैं, अभ्यास कराते हैं तथा व्यक्तिगत मार्गदर्शन उपलब्ध कराते हैं। इससे विद्यार्थियों को 24×7 शैक्षणिक सहायता मिल सकती है।

(3) **स्वचालित मूल्यांकन** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का त्वरित मूल्यांकन कर सकता है तथा वर्णनात्मक उत्तरों के प्रारंभिक विश्लेषण में भी सहायता कर सकता है।

(4) **अनुसंधान में कृत्रिम बुद्धिमत्ता** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता शोधकर्ताओं के लिए अनेक कार्यों को सरल बनाता है, जैसे–साहित्य समीक्षा डेटा विश्लेषण सांख्यिकीय परीक्षण शोध लेख की भाषा सुधार। हालाँकि अंतिम विश्लेषण, निष्कर्ष और मौलिक व्याख्या शोधकर्ता की ही जिम्मेदारी होती है।

(5) **विश्वविद्यालय प्रशासन** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग प्रवेश प्रक्रिया, परीक्षा प्रबंधन, परिणाम तैयार करने, छात्र सहायता, समय–सारिणी निर्माण और संसाधन प्रबंधन में किया जा रहा है। इससे प्रशासनिक दक्षता और पारदर्शिता बढ़ती है।

(6) **भाषा एवं अनुवाद** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित अनुवाद और भाषा–सहायता उपकरण विभिन्न भाषाओं में अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने में सहायक हैं। इससे बहुभाषी शिक्षा को बढ़ावा मिलता है।

(7) **ऑनलाइन एवं मिश्रित शिक्षा** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता ऑनलाइन शिक्षण मंचों पर छात्रों की सहभागिता, प्रदर्शन और प्रगति का विश्लेषण करके शिक्षकों को उपयोगी जानकारी प्रदान करता है। इससे शिक्षण अधिक प्रभावी बनता है।

उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की प्रमुख चुनौतियाँ :–

(1) **शैक्षणिक ईमानदारी** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित लेखन उपकरणों के कारण विद्यार्थियों द्वारा बिना स्वयं विश्लेषण किए असाइनमेंट या शोध सामग्री तैयार करने की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। इससे मौलिकता और आलोचनात्मक चिंतन प्रभावित होता है।

(2) **साहित्यिक चोरी** – यद्यपि कृत्रिम बुद्धिमत्ता सीधे पारंपरिक साहित्यिक चोरी नहीं करता, फिर भी बिना उचित संदर्भ या सत्यापन के कृत्रिम बुद्धिमत्ता निर्मित सामग्री का उपयोग शोध की गुणवत्ता को कम कर सकता है।

(3) **डेटा गोपनीयता एवं साइबर सुरक्षा** – कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणालियाँ बड़ी मात्रा में छात्र और संस्थान संबंधी डेटा का उपयोग करती हैं। यदि उचित सुरक्षा उपाय न हों, तो डेटा लीक या दुरुपयोग का जोखिम बढ़ जाता है।

(4) **डिजिटल असमानता** – सभी छात्रों के पास समान स्तर की इंटरनेट सुविधा, डिजिटल उपकरण या कृत्रिम बुद्धिमत्ता सेवाओं तक पहुँच नहीं है। इससे शैक्षिक असमानता बढ़ सकती है।

(5) **एल्गोरिद्मिक पक्षपात** – यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता को पक्षपाती या अपूर्ण डेटा पर प्रशिक्षित किया गया हो,

तो उसके निर्णय भी पक्षपाती हो सकते हैं।

(6) **शिक्षकों का प्रशिक्षण** – कई शिक्षकों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरणों के प्रभावी और जिम्मेदार उपयोग का पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं है।

(7) **अत्यधिक तकनीकी निर्भरता** – यदि छात्र हर कार्य के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर निर्भर हो जाएँ, तो उनकी विश्लेषणात्मक क्षमता, रचनात्मकता और स्वतंत्र सोच प्रभावित हो सकती है।

भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और उच्च शिक्षा –

भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता को बढ़ावा देने के लिए अनेक पहल की गई हैं, जैसे– राष्ट्रीय शिक्षा नीति, डिजिटल इंडिया अभियान, SWAYAM, DIKSHA, National Digital Library. राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित कौशल विकास कार्यक्रम इन पहलों का उद्देश्य उच्च शिक्षा को अधिक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण और तकनीक–सक्षम बनाना है।

अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य –

विश्व के कई प्रमुख विश्वविद्यालय कृत्रिम बुद्धिमत्ता AI का उपयोग निम्न क्षेत्रों में कर रहे हैं– व्यक्तिगत अधिगम, वर्चुअल ट्यूटर, लर्निंग एनालिटिक्स, स्वचालित मूल्यांकन, शोध डेटा विश्लेषण। इन अनुभवों से स्पष्ट होता है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता AI का सफल उपयोग तभी संभव है जब उसके साथ नैतिकता, पारदर्शिता और मानव पर्यवेक्षण सुनिश्चित किया जाए।

निष्कर्ष –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता उच्च शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन का एक शक्तिशाली माध्यम है। यह शिक्षण, अधिगम, अनुसंधान, मूल्यांकन और प्रशासन को अधिक प्रभावी, पारदर्शी और छात्र–केंद्रित बनाती है। साथ ही शैक्षणिक ईमानदारी, डेटा सुरक्षा, नैतिकता और डिजिटल असमानता जैसी चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। इसलिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग मानव–केंद्रित, नैतिक, पारदर्शी और उत्तरदायी दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। भविष्य की उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और शिक्षक का समन्वित मॉडल ही सबसे प्रभावी और टिकाऊ व्यवस्था सिद्ध होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता 21वीं सदी की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी प्रौद्योगिकी है। यह मानव की सोचने, सीखने, तर्क करने, निर्णय लेने तथा समस्याओं के समाधान जैसी क्षमताओं को मशीनों और कंप्यूटर प्रणालियों में विकसित करने का प्रयास करती है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, वित्त, परिवहन, प्रशासन, रक्षा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे अनेक क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के माध्यम से कार्यों में गति, दक्षता, सटीकता और स्वचालन बढ़ाया जा सकता है। विशेष रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता खुफिया सूचना के विश्लेषण, साइबर सुरक्षा, सीमा निगरानी, ड्रोन एवं स्वायत्त प्रणालियों, आतंकवाद–रोधी अभियानों तथा रणनीतिक निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

हालाँकि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास के साथ गोपनीयता, डेटा सुरक्षा, साइबर अपराध, रोजगार पर प्रभाव, एल्गोरिदि्मक पक्षपात, स्वायत्त हथियार प्रणालियों और मानव नियंत्रण जैसी गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। इसलिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास केवल तकनीकी प्रगति तक सीमित न रहकर नैतिक, कानूनी और मानवीय मूल्यों के अनुरूप होना आवश्यक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव सभ्यता के विकास और राष्ट्रीय शक्ति को नई दिशा देने वाली महत्वपूर्ण तकनीक है। इसका सुरक्षित, जिम्मेदार, पारदर्शी और मानव–केंद्रित उपयोग सुनिश्चित किया जाए तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता आर्थिक विकास, सामाजिक कल्याण और राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत

करने का प्रभावी साधन बन सकती है। भविष्य की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम कृत्रिम बुद्धिमत्ता को मानव का विकल्प बनाने के बजाय मानव की क्षमता बढ़ाने वाले साधन" के रूप में किस प्रकार विकसित और उपयोग करते हैं।

सुझाव –

कृत्रिम बुद्धिमत्ता नीति प्रत्येक विश्वविद्यालय में लागू की जाए। कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं डिजिटल नैतिकता पर अनिवार्य पाठ्यक्रम विकसित किए जाएँ। फैकल्टी डेवलपमेंट प्रोग्राम नियमित रूप से आयोजित किए जाएँ। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित अनुसंधान के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश बनाए जाएँ। बहुभाषी कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरणों का विकास किया जाए ताकि भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा उपलब्ध हो सके। प्रत्येक विश्वविद्यालय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपयोग संबंधी स्पष्ट नीति बनाई जाए। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता साक्षरता कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के साथ शैक्षणिक ईमानदारी और उचित संदर्भ को अनिवार्य बनाया जाए। डेटा सुरक्षा के लिए मजबूत साइबर सुरक्षा और गोपनीयता मानकों का पालन किया जाए। ग्रामीण एवं वंचित क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना का विस्तार किया जाए। कृत्रिम बुद्धिमत्ता को शिक्षक का विकल्प नहीं, बल्कि सहयोगी उपकरण के रूप में अपनाया जाए। कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा तैयार सामग्री का मानव विशेषज्ञ द्वारा सत्यापन किया जाए।

संदर्भ :

1. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.
2. Holmes. W. Bialik – (2019). Artificial Intelligence in Education. Centre for Curriculum Redesign.
3. Lucking. R. (2018) - Machine Learning and Human Intelligence. UCL IOE Press.
4. UNESCO. (2021). Recommendation on the Ethics of Artificial Intelligence.
5. OECD. (2021). Digital Education Outlook. OECD Publishing.
6. World Economic Forum. (2023). The Future of Jobs Report.
7. संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को), (2021), कृत्रिम बुद्धिमत्ता की नैतिकता पर अनुशंसा, पेरिस, यूनेस्को।
8. नीति आयोग. (2018),राष्ट्रीय रणनीति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, नई दिल्ली, भारत सरकार।
9. इलेक्ट्रॉनिकी एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार. (2023), भारत में कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संबंधित पहल एवं नीतिगत प्रयास. नई दिल्ली, भारत सरकार।
10. रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. (2021), रक्षा क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता से संबंधित पहल. नई दिल्ली, भारत सरकार।
11. भारतीय सेना, (2022), कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं सैन्य आधुनिकीकरण से संबंधित पहल. नई दिल्ली, भारतीय सेना।
12. रसेल, स्टुअर्ट एवं नॉरविग, पीटर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक आधुनिक दृष्टिकोण, प्रेंटिस हॉल पियर्सन।
13. कपूर, बी. एल. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और विशेषज्ञ प्रणालियाँ, नई दिल्ली, टेक्स्टबुक प्रकाशन।
14. सिंह, राजीव, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सिद्धांत एवं अनुप्रयोग, नई दिल्ली, तकनीकी प्रकाशन।
15. वर्मा, एस. के. कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं मशीन लर्निंग, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान।
16. शर्मा, आर. के. कृत्रिम बुद्धिमत्ता और आधुनिक तकनीक, नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 126-129

ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : बहुविषयक दृष्टिकोण

डॉ. ज्योति पटेल
सहायक प्राध्यापक,
शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

सारांश :

ज्ञान सृजन का वैश्विक पाठ एक ऐसी प्रकिया है जो स्थानीय और पारंपरिक ज्ञान को वैश्विक विचारों और नवाचारों के साथ जोड़ती है। यह शिक्षा और अनुसंधान के माध्यम है सतत विकास, सांस्कृतिक आदन–प्रदान और आधुनिक चुनौतियों के समाधान के लिए एक सास्कृतिक और बौद्धिक विरासत का एक अभिन्न अंग है, जिसमें विज्ञान, दर्शन कला और जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबधिंत गहन ज्ञान निहित है। महलेख शिक्षा और अनुसंधान मे एकीकृत करने में आने वाली प्रमुख चुनौतियों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही इन चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यावहारिक और प्रभावी समाधान सुझाता है। जिसमें जागरूकता अभियान वैज्ञानिक सत्यापन, शिक्षण–प्रशिक्षण, पाठयकृम विकास और डिजिटल संसाधनों का उपयोग शमिल है इसका उद्देश्य एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का निमार्ण करना है, जो भारतीय लोकाचार में निहित होने के साथ–साथ वैश्विक चुनौनियों का सामना करने में सक्षम हो।

प्रास्तावना :

भारतीय ज्ञान प्रणाली, भारतीय ज्ञान एवं दर्शन की समृद्ध विरासत को स्वीकार कर एवं शिक्षा के क्षेत्र संचरण एवं संवर्धन हेतू शिक्षण का आधार बनाती है। भारत की ज्ञान, विज्ञान और जीवन दर्शन ज्ञान प्रणालियाँ, ताकिक प्रमाणों अनुभव अवलोकन प्रयोग, गहन चिन्तन व विश्लेषण से विकसित हुई है। भारतीय ज्ञान प्रणाली ज्ञान का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अनुभव व प्रयोग द्वारा व्यवस्थित रूप से हस्तांतरण करने की एक संगठित प्रणाली है। भारत के प्राचीनतम गंथ शास्त्र वैदिक साहित्य, उपनिषद वेद और उपवेद भारतीय ज्ञान प्रणाली की नींव है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाल में IKS समावेश का समावेश केवल अतीत के गौरव को पुनजीवित करने का प्रयास नहीं है, बल्कि एक ऐसी शिक्षा का बढावा देना है जो छात्रो को उनकी जड़ो से जोडते हुये, उन्हें तार्किक, रचानत्मक और नैतिक रूप से सशक्त बना सके। भारतीय ज्ञान प्रणाली की मुख्यधारा को शिक्षा और अनुसंधान में एकीकृत करने में आने वाली प्रमुख चुनौतियों का विस्तृत विश्लेषण करेगा और इन चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यावहारिक और प्रभावी समाधान प्रास्तुत करेगा।

1. **शैक्षणिक और पाठ्यक्रम संबंधी चुनौतियाँ :**

- **योग्य शिक्षकों और शोधकताओं की कमी :** भारतीय ज्ञान प्रणाली के विभिन्न क्षेत्रों में गहन ज्ञान रखने वाले योग्य शिक्षकों और शोधकर्ताओ कर गंभीर चुनौती है। विश्वविद्यालयों में ऐसे विषेशज्ञ तैयार पर्याप्त

पाठ्यक्रम और फैकल्टी उपलब्ध नहीं है।

- **मानकीकृत पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री का अभाव :** विभिन्न विश्वविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अलग–अलग दृष्टिकोण के कारण एकरुपता की कमी है। इसके अतिरिक्त छात्रों और शिक्षकों के लिए सुलभ, प्रमाणिक और आकर्षक शिक्षण सामग्री जैसे पाठ्य पुस्तकें संदर्भ ग्रंथ और डिजिटल संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है।
- **मूल ग्रंथों तक पहुँच और उनका संरक्षण :** ज्ञान का एक बड़ा हिस्सा संस्कृत पालि, प्राकृत और अन्य प्राचीन भाषाओं में गए मूल ग्रंथों में निहित हैं। इन ग्रंथों तक पहुँच उनका संरक्षण डिजिटलीकरण और अनुवाद एक बहुत बड़ी चुनौती है।

2. **भाषा संबंधी चुनौतियाँ :**

- **प्राचीन भाषाओं का प्रमुख और पहुँच की कमी :** भारतीय ज्ञान का अधिक अधिकांश भाग पालि, प्राकृत, तमिल, और संस्कृत, और अन्य प्राचीन शास्त्रीय भाषाओं में संरक्षित है। आधनिक शिक्षा प्रणाली के छात्रों और स्वर में शोधकर्ताओं के लिए उन मूल गंधों तक पहुँच और उन्हें समझना एक बड़ी बाधा है।
- **बहुभाषी संसाधनों का अभाव :** भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षण सामग्री और संदर्भ ग्रंथों का अभाव है। विशेष रुप से विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में यह भाषा की विविधता को एक चुनौती में बदल देता है।
- **पारंपरिक शब्दावली और आधुनिक शब्दावली में अंतर :** भारतीय ज्ञान प्रणाली की अपनी विशिष्ट शब्दावली है, जो आधुनिक वैज्ञानिक या दार्शनिक शब्दावली भिन्न हो सकती है। इन दोनों शब्दावली के बीच सेतू बनना और छात्रों को दोनों से परिचित कराना चुनौती हैं। भारतीय ज्ञान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मैखिक परंपराओं के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया गया है। इन मौखिक परंपराओं को लिखित रूप मे दस्तावेजीकरण करना, विशेषकर उनकी भाषाई और क्षेत्रीय विविधताओं को बनाये रखते हुये एक कठीन कार्य है।

3. **आधुनिक जीवन शैली का भारतीय ज्ञान पर प्रभाव :**

आधुनिक जीवन शैली की प्रमुख विशेषताएँ है :
तेज प्रतिस्पर्धा, अत्यधिक उपभोग, प्रौद्योगिकी पर निर्भरता और व्यक्तिगत पर अधिक जोर दिया गया है।

- **मूल्यों और नैतिकता का ह्रास :** आधुनिक जीवनशैली भौतिकवादी सुखों को प्राथमिकता दी। नैतिक मूल्यों जैसे अंहिसा, सत्य करूष और संतोष का का महत्व, सामूहिक कल्याण की भावना कमजोर पड़ती जा रही है।
- **प्रकृति से दूरी :** आधुनिक जीवनशैली शहरीकरण और औद्योगीकरण पर आधारित है। भारतीय ज्ञान प्राणाली ने प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध महत्व दिया है।
- **मानसिक और शारीरिक स्वास्थ स्वास्थ पर प्रभाव :** आधुनिक जीवन शैली में तनाव, चिंता और शारीरिक समस्याएँ है। इन समस्याओं के कारण जीवनशैली जुड़ी बीमारियों जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप से मानव जाति ग्रसित होते जा रहे है। आयुर्वेद, योग और ध्यान जैसी समग्र स्वास्थ्य प्रणाली को अपनाने की इच्छा कम हो जाती है।

- **ज्ञान का सतहीकरण :** प्रौद्योगिकी और इंटरनेट के युग में ज्ञान तक पहुँच आसन हो गई है। आधुनिक जीवन शैली में लोग अक्सर ऑनलाइन कोर्स या छोटे–छोटे वीडियो के माध्यम से पढ़ना चाहते है। जिसमें ज्ञान की गहराई और मैलिक समझ की कमी हो सकती है।
- **पारंपरिक जीवन मे व्यवधान :** आधुनिक जीवनशैली की तेज रफ्तार उपभोक्ता शहरीकरण और पश्चिमीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण भारतीय ज्ञान प्रणालियों और पारंपरिक जीवनशैली को कई तरह से बाधित किया किया है। यह केवलू हस्तांतरण तक, सीमित नहीं है, बल्कि यह मूल्यों प्रथाओं और सामुदायिक संरचनाओं को भी प्रभावित करता है।
- **प्रकृति और पर्यावरण के प्रतिसंवेदनशीलता :** भारतीय परंपरा सदियों से प्रकृति को केवल संसाधन के रुप में नहीं अपित जीव और जीवन का अभिन्न अंग मानती आई है। वेदों उपनिषदों और पुराणों में जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और आकारा को पवित्र माना गया है। मानव का धर्म है। यह दृष्टिकोण आधुनिक समय में पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की नींव बन सकता है।

4. **समकालीन चुनौतियाँ और संभावनाएँ :**

- **भौतिकवादी और उपभोक्तावादी प्रवृति :** 21वीं सदी में वैश्वीकरण तकनीकी उन्नति और पूंजीवाद की मजबूती ने एक ऐसी उपभोक्ता संस्कृति विकसित की है, जिसमें व्यक्ति की पहचान प्रतिष्णा और जीवन मूल्य वस्तुओ के उपभोग और भौतिक संपन्नता से गहराई से जुड़ने लगे है।
- **पारंपरिक ज्ञान का अवमूल्य :** वर्तमान समय में आधुनिक विज्ञान तकनीक और बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण पीढ़ियो से संचित लोक ज्ञान अनभव जन्य विधियों और साँस्कृतिक परम्पराएँ कमतर मानी जाने लगी है। औपनिवेशिक सोच और वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी स्थानीय ज्ञान को अवैज्ञानिक या पुराना मानकर उसके महत्व को घटती है।
- **आधुनिक शिक्षा में भारतीय ज्ञान प्रणाली का सीमित समावेश :** आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में भारतीय ज्ञान परम्परा का समावेश अभी भी बहुत सीमित रूप में दिखाई देता है। परिणामस्वरुप विद्यार्थी अपनी सांस्कृतिक जड़ों, नैतिक गल्यों और वैज्ञानिक विरासत से पर्याप्त से परिचित नहीं हो पाते हैं।
- **युवाओं में सांस्कृतिक विरक्ति :** युवाओं में साँस्कृतिक विरक्ति आज के समय की एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। इसके परिणाम स्वरूप युवाओं में पहचान का भ्रम सामाजिक बंधनों की कमजोरी लोक परंम्पराओं का क्षय दिखाई देता है।

निष्कर्ष :

इन प्रकार उपयुक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा के नैतिक आयामों द्वारा मानवता के कल्याण हेतू निर्देशित नैतिक मूल्यों का संवर्धन एवं अनुगमन करने से ही विश्व कल्याण होना संभव है, इससे वर्तमान युग की अनेकानेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। अतः वैश्विक स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्यापन एवं प्रचार प्रासर होना अपेक्षित है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' जैसी अवधारणा विश्व को एक परिवार के रूप में देखने और सभी दिशाओं से श्रेष्ठ विचारों के स्वागत की प्रेरणा देती है। जहाँ वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिए समावेशी और सहयोगात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। जिसमें एक समरस और संतुलित समाज की स्थापना में योगदान दिया जा सकता है।

सदर्भ ग्रथ :

- भारतीय ज्ञान प्रणाली, प्रणय पाण्डेय, प्रीति लक्ष्मी।
- भारतीय दर्शन का इतिहास, मोती लाल बनारसी दास।
- प्रचीन भारतीय ज्ञान पंरपरा और इतिहास एस परिहार, प्रभा चौहान।
- शिक्षा के समाजशास्त्रीय एवं दार्शनिक आधारगत परिप्रेक्ष्य : एन. आर. स्वरूप।
- भारतीय शिक्षा का इतिहास, एम. पीए. गुप्ता।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 130-137

प्रेमचन्द के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा : स्वरूप, विकास एवं समालोचनात्मक मूल्यांकन

कमलेश चौधरी
शोध–छात्र, हिन्दी विभाग,
लॉर्ड्स यूनिवर्सिटी, अलवर (राज.)

शोध-सार (Abstract) :

प्रस्तुत शोध–पत्र में बीसवीं शताब्दी के महान उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद (1880–1936) के औपन्यासिक साहित्य में अभिव्यक्त गांधीवादी विचारधारा, नैतिक दर्शन और सामाजिक सुधारवादी सरोकारों का विशद समालोचनात्मक अनुशीलन किया गया है। 1920 के असहयोग आंदोलन से लेकर 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन तक महात्मा गांधी के नेतृत्व में चला स्वाधीनता संग्राम केवल एक राजनीतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि भारतीय समाज के पुनर्गठन, अस्पृश्यता निवारण, कृषक स्वावलंबन और नारी मुक्ति का व्यापक जन–आंदोलन था। प्रेमचंद ने गांधीवादी दर्शन के मूल तत्वों 'सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, हृदय–परिवर्तन, ग्राम–स्वराज्य और अछूतोद्धार' को अपने उपन्यासों ('सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन' और 'कर्मभूमि') में अत्यंत सजीव और संवेदनशील रूप से निरूपित किया है। शोध–पत्र में प्रेमचंद के आरंभिक 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' से लेकर जीवन के अंतिम दौर ('गोदान' व 'कफन') में उभरे 'कठोर यथार्थवाद' तथा गांधीवादी मोहभंग के वैचारिक संक्रमण की भी गहन पड़ताल की गई है।

बीज शब्द (Keywords) : मुंशी प्रेमचंद, महात्मा गांधी, सत्याग्रह, हृदय–परिवर्तन, ग्राम–स्वराज्य, अछूतोद्धार, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, गोदान।

1. प्रस्तावना :

मुंशी प्रेमचंद (31 जुलाई 1880 – 8 अक्टूबर 1936) हिन्दी कथा–साहित्य जगत के अद्वितीय कहानीकार और कालजयी उपन्यासकार हैं। उनका संपूर्ण लेखन भारतीय समाज के ज्वलंत यथार्थ, औपनिवेशिक शोषण, सामंती उत्पीड़न और राष्ट्रीय नवजागरण की प्रखर चेतना से ओत–प्रोत है। प्रेमचंद का सक्रिय रचनाकाल (1916–1936) भारतीय स्वाधीनता संग्राम का वह स्वर्णिम एवं निर्णायक युग था, जब राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन चंद कुलीन बुद्धिजीवियों के दायरे से निकलकर लाखों किसानों, मजदूरों, महिलाओं और उपेक्षित जनसामान्य का अभूतपूर्व जन–आंदोलन बन चुका था।

1920 के दशक में महात्मा गांधी द्वारा प्रारंभ किए गए असहयोग आंदोलन के आह्वान पर प्रेमचंद ने गोरखपुर में गांधी जी का ऐतिहासिक भाषण सुना और उनकी नैतिक अपील से गहरे रूप से आलोड़ित हुए। परिणामस्वरूप, 1921 में उन्होंने अपनी स्थायी सरकारी नौकरी (डिप्टी इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स, शिक्षा विभाग) से

त्यागपत्र दे दिया। आर्थिक विपन्नता के खतरों को जानते हुए भी उन्होंने पूर्ण रूप से साहित्य साधना के माध यम से राष्ट्र–सेवा और सामाजिक पुनरुत्थान का संकल्प लिया।

गांधीजी और प्रेमचंद के मध्य का वैचारिक संबंध अत्यंत घनिष्ठ और सहधर्मी था। प्रेमचंद ने स्वयं यह विनम्रतापूर्वक स्वीकार किया था कि वे गांधीजी के विचारों के 'कुदरती चेले' हैं। यदि महात्मा गांधी स्वाधीनता आंदोलन को राजनीतिक धरातल पर दिशा दे रहे थे, तो मुंशी प्रेमचंद अपनी तेजस्वी लेखनी से सांस्कृतिक, साहित्यिक और वैचारिक धरातल पर भारतीय जनमानस की सोई हुई चेतना को जगा रहे थे। प्रेमचंद का यह दृढ़ विश्वास था कि साहित्य केवल मनोरंजन या विलासिता का साधन नहीं है, बल्कि वह 'राजनीति के आगे चलने वाली मशाल' है जो समाज को न्याय, समता और आत्मिक शुचिता का मार्ग दिखाती है।

यही कारण है कि उनके प्रमुख उपन्यासों 'विशेषकर सेवासदन (1918), प्रेमाश्रम (1921–22), रंगभूमि (1925), कायाकल्प (1926), गबन (1931) और कर्मभूमि (1932)' में गांधीवादी दर्शन के मूल स्तंभ जैसे अहिंसा, सत्य, सत्याग्रह, हृदय–परिवर्तन, अस्पृश्यता निवारण, नारी सशक्तीकरण तथा ग्राम–स्वराज्य की अवधारणाएँ अत्यंत व्यापक और कलात्मक रूप से अभिव्यक्त हुई हैं।

2. शोध की कार्यप्रणाली एवं प्रमुख उद्देश्य :

2.1 शोध की कार्यप्रणाली (Methodology)

प्रस्तुत शोध–पत्र में विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं पाठ–केन्द्रित (Textual Analysis) शोध पद्धति का अवलंबन लिया गया है। शोध हेतु प्राथमिक स्रोतों के रूप में मुंशी प्रेमचंद कृत मूल उपन्यासों (सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि और गोदान), उनके विविध निबंधों (यथा 'साहित्य का उद्देश्य', 'महाजनी सभ्यता') तथा महात्मा गांधी के मूल विचारों ('सत्य के प्रयोग', 'हिन्द स्वराज') का गहन अनुशीलन किया गया है।

द्वितीयक स्रोतों के रूप में हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थ आलोचकों एवं विचारकों (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, प्रो. नामवर सिंह, अमृत राय, मैनेजर पांडेय आदि) के समीक्षात्मक ग्रंथों, शोध–प्रबंधों एवं प्रामाणिक शोध–पत्रिकाओं से प्राप्त निष्कर्षों का संदर्भ ग्रहण किया गया है।

2.2 शोध के उद्देश्य (Objectives of Research)

प्रस्तुत शोध–अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- प्रेमचंद के 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' से लेकर 'कठोर यथार्थवाद' तक के वैचारिक विकासक्रम में गांधीवादी दर्शन के प्रभाव और सीमाओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना।
- भारतीय कृषक जीवन, औपनिवेशिक शोषण, जमींदारी प्रथा, अस्पृश्यता और नारी–उत्पीड़न के समाधान हेतु प्रेमचंद द्वारा प्रस्तुत गांधीवादी विकल्पों की सार्थकता की पड़ताल करना।
- प्रेमचंद के औपन्यासिक साहित्य पर महात्मा गांधी के नैतिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांतों (सत्याग्रह, ट्रस्टीशिप, हृदय–परिवर्तन, ग्राम–स्वराज्य) के प्रयोगात्मक धरातल का विश्लेषण करना।
- प्रेमचंद के प्रतिनिधि पात्रों (सूरदास, प्रेमशंकर, अमरकांत, जालपा, सुमन आदि) के माध्यम से गांधीवादी जीवन–मूल्यों की जीवंत अभिव्यक्ति को रेखांकित करना।

3. प्रेमचंद के उपन्यासों में गांधीवादी दर्शन के प्रमुख आयाम :

प्रेमचंद ने गांधीवादी विचारों को किसी बाह्य सिद्धांत या सूखे उपदेश की भांति अपने उपन्यासों पर जबरन

नहीं थोपा, बल्कि उन्हें भारतीय समाज की वास्तविक परिस्थितियों, मानवीय कमजोरियों और जन–संघर्षों के भीतर ढालकर अत्यंत सजीव बनाया। उनके उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा के प्रमुख आयाम निम्नलिखित रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं :

3.1 सत्याग्रह और अहिंसक प्रतिरोध की अवधारणा :

गांधीवादी दर्शन में सत्याग्रह केवल एक राजनीतिक अस्त्र या निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं है, बल्कि वह आत्मबल, सत्यनिष्ठा और नैतिक आचरण का सर्वोच्च रूप है। प्रेमचंद के अमर उपन्यास रंगभूमि (1925) का केंद्रीय नायक सूरदास हिन्दी साहित्य में गांधीवादी सत्याग्रह का सबसे अनुपम, अविस्मरणीय और ओजस्वी प्रतीक है।

सूरदास एक दृष्टिहीन, साधनहीन और शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति है, किंतु उसकी नैतिक शक्ति और आत्मबल असीम है। जब देशी पूंजीपति जॉन सेवक औपनिवेशिक प्रशासनिक तंत्र और पुलिस की मिलीभगत से पांडेयपुर की बंजर भूमि (जो सूरदास की पूर्वजों की धरोहर है और जिस पर गाँव के पशु चरते हैं) पर सिगरेट का कारखाना लगाने के लिए उसे हड़पना चाहता है, तब सूरदास किसी हिंसा का सहारा लिए बिना अपनी जमीन और जनहित की रक्षा के लिए अहिंसक सत्याग्रह का शंखनाद करता है।

'तुम जीत गए, हम हार गए, पर यह हार वह हार नहीं जिसे लोग हार कहते हैं... खिलाड़ी रोते नहीं, खेलते हैं। बाजी फिर लगेगी, हम फिर खेलेंगे।'[1]

सूरदास का यह अमर कथन भौतिक पराजय के बावजूद सत्याग्रही की नैतिक और आध्यात्मिक विजय को रेखांकित करता है। वह अपने प्राणों की आहुति देकर भी अहिंसा और सत्य के पथ से विचलित नहीं होता और समस्त जनमानस में अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का संकल्प जगा जाता है।

3.2 अस्पृश्यता निवारण और दलित-चेतना :

महात्मा गांधी ने छुआछूत और जातीय विभेद को भारतीय समाज का सबसे कलंकित कोढ़ माना था। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि यदि अस्पृश्यता बनी रही, तो हिन्दू समाज और भारत का स्वाधीनता आंदोलन आंतरिक रूप से खोखला हो जाएगा। गांधीजी ने 'हरिजन' उत्थान और अस्पृश्यता निवारण को स्वाधीनता संग्राम का अनिवार्य एवं रचनात्मक अंग बनाया।

प्रेमचंद ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास कर्मभूमि (1932) में इस राष्ट्रीय प्रश्न को अत्यंत प्रखरता और संवेदनशीलता के साथ उठाया है। उपन्यास में वर्णित 'मंदिर–प्रवेश आंदोलन' इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्रेमचंद दलित समाज को पूर्ण धार्मिक, मानवीय और सामाजिक अधिकार दिलाने के लिए गांधीवादी सत्याग्रह के प्रबल समर्थक थे।

उपन्यास के मुख्य पात्र अमरकांत, सुखदा और मुन्नी समाज की रूढ़िवादी ताकतों, दंभी पंडे–पुरोहितों और शोषक तंत्र से लोहा लेते हुए अछूतोद्धार का अभियान चलाते हैं। अमरकांत दलितों और मलीन बस्तियों में जाकर शिक्षा के प्रसार, स्वच्छता और नशामुक्ति के गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करता है। प्रेमचंद यह भली–भांति प्रतिपादित करते हैं कि राजनीतिक स्वाधीनता तब तक अधूरी है, जब तक कि समाज के अंतिम पायदान पर खड़े उपेक्षित वर्ग को सम्मान और बराबरी का अधिकार प्राप्त न हो जाए।

3.3 नारी उत्थान, चरित्र-शुद्धि और नैतिक पुनरूत्थान :

गांधीवादी विचारधारा ने भारतीय नारी को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर स्वाधीनता संग्राम और

समाज–निर्माण की अग्रिम पंक्ति में खड़ा किया। प्रेमचंद के उपन्यासों में नारी केवल अबला या उपभोग की वस्तु नहीं है, बल्कि वह नैतिक शक्ति, त्याग और क्रांतिकारी चेतना की आधारशिला है।

प्रेमचंद के प्रथम प्रौढ़ उपन्यास सेवासदन (1918) में वेश्यावृत्ति की विकराल और घृणित समस्या को एक नए सामाजिक और मानवीय परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद सुमन के माध्यम से यह दिखाते हैं कि वेश्यावृत्ति केवल एक व्यक्तिगत चारित्रिक पतन नहीं, बल्कि पुरुष–प्रधान समाज के दहेज–लोभ, आर्थिक विवशता और संकीर्ण कुलीनता का दुष्परिणाम है। उपन्यास के अंत में 'सेवासदन' नामक संस्था की स्थापना द्वारा उपेक्षित नारियों और उनकी संतानों के सम्मानजनक पुनर्वास, हस्तशिल्प प्रशिक्षण और स्वावलंबन का जो मार्ग दिखाया गया, वह विशुद्ध गांधीवादी सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

इसी प्रकार गबन (1931) में नायिका जालपा का चरित्र आभूषण–प्रियता की स्वाभाविक मानवीय कमजोरी से उबरकर एक अत्यंत दृढ़–प्रतिज्ञ, त्यागमयी और सत्यनिष्ठ गांधीवादी नारी के रूप में विकसित होता है। जब उसका पति रमानाथ आर्थिक अपराध और भय के वशीभूत होकर अंग्रेजों का सरकारी गवाह बनने को तैयार हो जाता है, तब जालपा अपने आत्मबल और सत्य के आग्रह से उसे सन्मार्ग पर लाती है। वह वृद्ध देवीदीन के साथ मिलकर स्वाधीनता के आंदोलन में रचनात्मक सहयोग देती है और सिद्ध करती है कि नारी ही समाज की वास्तविक नैतिक शक्ति है।

3.4 हृदय-परिवर्तन का सिद्धांत (Doctrine of Change of Heart)

गांधीवादी दर्शन का एक आधारभूत सिद्धांत 'हृदय–परिवर्तन' (Change of Heart) है। गांधीजी का मानना था कि व्यक्ति मूलतः बुरा नहीं होता, बल्कि व्यवस्था और दुर्भावना उसे पतित बनाती है। अतः पापी से नहीं, पाप से घृणा करनी चाहिए और अहिंसा, प्रेम तथा आत्म–कष्ट सहन द्वारा विरोधी के अंतःकरण को जाग्रत करना चाहिए।

प्रेमचंद के उपन्यास प्रेमाश्रम (1921–22) में यह सिद्धांत पूरी भव्यता के साथ क्रियान्वित होता दिखता है। शोषक, अहंकारी और क्रूर जमींदार ज्ञानशंकर जहाँ एक ओर किसानों का निरंतर शोषण करता है, वहीं उसका भाई प्रेमशंकर गांधीवादी सेवा–भाव, अपरिग्रह और अहिंसक त्याग का मार्ग चुनता है। प्रेमशंकर किसानों के दुःख–दर्द में सहभागी बनता है और उनके अधिकारों के लिए निःस्वार्थ भाव से संघर्ष करता है। प्रेमशंकर के इस अगाध प्रेम और आत्मत्याग के प्रभाव से अंततः ज्ञानशंकर और अन्य शोषक जमींदारों के कठोर हृदय में भी गहरा पश्चाताप और परिवर्तन घटित होता है।

इसी तरह रंगभूमि में विलासिता और पूंजीवादी दंभ में डूबी सोफिया सूरदास के त्याग और सत्य से प्रभावित होकर अपना जीवन दीन–दुखियों की सेवा में अर्पित कर देती है। सेवासदन में कट्टर रूढ़िवादी पद्मसिंह और समाज सुधारक विट्ठलदास के सद्प्रयास भी गांधीवादी हृदय–परिवर्तन के व्यावहारिक उदाहरण हैं।

3.5 कृषक जीवन का पुनर्गठन एवं ग्राम-स्वराज्य :

मुंशी प्रेमचंद को यथार्थ ही 'किसान जीवन का अमर सम्राट' कहा जाता है। उन्होंने भारतीय किसान की विपन्नता, ऋणग्रस्तता, अशिक्षा और ब्रिटिश–सामंती दोहरे शोषण को जितनी बारीकी से समझा, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेमाश्रम और कर्मभूमि में उन्होंने जमींदारों, पटवारियों, महाजनों और गोरे अफसरों द्वारा किए जाने वाले त्रिस्तरीय शोषण 'अत्यधिक लगान, बेगार और मनमानी बेदखली' का नग्न यथार्थ खींचा है।

गांधीजी का स्पष्ट चिंतन था कि 'भारत की आत्मा गाँवों में बसती है और जब तक हमारे गाँव स्वावलंबी,

स्वच्छ और आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक देश की वास्तविक स्वतंत्रता निरर्थक है।' प्रेमचंद ने प्रेमाश्रम के उत्तरार्ध में लखनपुर गाँव को एक आदर्श गांधीवादी स्वावलंबी ग्राम के रूप में रूपांतरित होते दिखाया है। वहाँ स्वदेशी कुटीर उद्योग, पंचायती व्यवस्था, उन्नत कृषि और आपसी भ्रातृत्व के आधार पर वास्तविक 'ग्राम–स्वराज्य' की आधारशिला रखी जाती है।

4. यथार्थवाद से कठोर यथार्थवाद : गांधीवादी प्रक्रिया एवं वैचारिक रूपांतरण :

प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य एक स्थिर वैचारिक घेरे में बंधा हुआ नहीं है, बल्कि वह गतिमान, सजग और निरंतर विकासशील है। उनके साहित्यिक चिंतन को मुख्य रूप से दो प्रमुख चरणों में विभाजित किया जा सकता है :

4.1 गांधीवादी आस्था का प्रारंभिक दौर (आदर्शोन्मुख यथार्थवाद)

1918 से लेकर लगभग 1930 तक (सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि और कायाकल्प का काल) प्रेमचंद पर गांधीजी के व्यक्तित्व और सिद्धांतों का गहरा, सम्मोहक प्रभाव था। इस दौर में प्रेमचंद ने जो शिल्प अपनाया, उसे उन्होंने स्वयं 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' (Idealistic Realism) नाम दिया। इसका अर्थ था कि उपन्यास में सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक समस्याओं का चित्रण तो अत्यंत कठोर यथार्थ के साथ किया जाता था, किंतु उनका समाधान अंत में गांधीवादी नैतिकता, त्याग, समझौते और हृदय–परिवर्तन के आदर्शवादी फलक पर प्रस्तुत किया जाता था।

4.2 गांधीवादी मोहभंग एवं 'गोदान' का कठोर यथार्थवाद :

1930 के बाद देश की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों में भारी बदलाव आया। 1931 का गांधी –इरविन समझौता, सविनय अवज्ञा आंदोलन की विफलता और गोलमेज सम्मेलनों की निराशा ने भारतीय जनमानस को झकझोरा। प्रेमचंद ने प्रत्यक्ष देखा कि हृदय–परिवर्तन के सिद्धांत से न तो जमींदारों का लालच कम हुआ और न ही महाजनी शोषण समाप्त हुआ। किसान दिन–प्रतिदिन अधिक कंगाल और सर्वहारा बनता जा रहा था।

1936 में प्रकाशित प्रेमचंद के अंतिम पूर्ण महाकाव्यात्मक उपन्यास गोदान में यह गांधीवादी मोहभंग अपनी पराकाष्ठा पर दिखाई देता है। गोदान का नायक होरी आजीवन मर्यादा, धर्म, कर्तव्य और परोपकार के नैतिक मूल्यों का पालन करता है, किंतु अंत में व्यवस्था की क्रूर चक्की में पिसकर, गाय की लालसा मन में लिए, तिल–तिल कर सड़क पर दम तोड़ देता है।

गोदान में जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह बाहर से गांधीवादी होने का ढोंग रचते हैं, खादी पहनते हैं, जेल जाते हैं, किंतु भीतर से वे किसानों का लगान और डांड वसूलने में तनिक भी दया नहीं दिखाते। गोदान में किसी जमींदार या महाजन का हृदय–परिवर्तन नहीं होता। यहाँ प्रेमचंद आदर्शवाद की चादर उतार फेंकते हैं और भारतीय समाज के नग्न, निर्मम और क्रूर यथार्थ को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

'साहित्यकार का काम केवल मनोरंजन करना या केवल विलासिता का सामान जुटाना नहीं है, बल्कि समाज के कटु यथार्थ से टकराना और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए संघर्ष करना है।'[2]

अपने जीवन के अंतिम प्रसिद्ध निबंध 'महाजनी सभ्यता' में प्रेमचंद ने पूंजीवादी और सूदखोर व्यवस्था के समूल विनाश की आवश्यकता पर बल दिया, जो यह प्रमाणित करता है कि वे जीवन के अंतिम वर्षों में गांधीवादी आदर्शवादी समाधानों से आगे बढ़कर वैज्ञानिक यथार्थवाद और समाजवादी चेतना के निकट पहुँच चुके थे।

5. प्रेमचंद के उपन्यासों में गांधीवादी पात्रों का तुलनात्मक विश्लेषण :

मुंशी प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में ऐसे अविस्मरणीय और जीवंत पात्रों का सृजन किया है, जो गांधीवादी मूल्यों के प्रत्यक्ष संवाहक बनकर सामने आते हैं। इन पात्रों का उपन्यासवार विवरण निम्नलिखित तालिका में रेखांकित किया गया है :

उपन्यास (वर्ष)	प्रतिनिधि पात्र	अभिव्यक्त गांधीवादी मूल्य / दर्शन	कथानकीय परिणाम
सेवासदन (1918)	पं. पद्मसिंह, विट्ठलदास, सुमन	वेश्या–पुनर्वास, सामाजिक सुधार, नारी–गरिमा, आत्म–शुद्धि	'सेवासदन' आश्रम की स्थापना, स्वावलंबन और सम्मानजनक पुनर्वास
प्रेमाश्रम (1922)	प्रेमशंकर, बलराज, मनोहर	कृषक सत्याग्रह, जमींदारी उन्मूलन, अपरिग्रह, ग्राम–स्वराज्य	शोषक ज्ञानशंकर का हृदय–परिवर्तन, लखनपुर आदर्श ग्राम में रूपांतरित
रंगभूमि (1925)	सूरदास, सोफिया, विनय	आत्मबल, अहिंसक जन–प्रतिरोध, स्वदेशी, नैतिक विजय	सूरदास की शहादत, कारखाने की भूमि अधिग्रहण के विरुद्ध जनचेतना जागृत
गबन (1931)	जालपा, देवीदीन, जोहरा	सादगी, नैतिक साहस, स्वदेशी चेतना, सत्यनिष्ठा, पश्चाताप	रमानाथ का चारित्रिक उद्धार, सरकारी गवाही से इनकार, सेवा–मार्ग
कर्मभूमि (1932)	अमरकांत, सुखदा, स्वामी आत्मानंद, मुन्नी	सविनय अवज्ञा, अस्पृश्यता निवारण, मंदिर–प्रवेश, लगान–बंदी	दलितों को सामाजिक–धार्मिक अधिकार प्राप्ति, विशाल अहिंसक किसान आंदोलन
गोदान (1936)	होरी, गोबर, धनिया, रायसाहब	गांधीवादी आदर्शों की सीमाएं, पाखंड का अनावरण, नग्न यथार्थवाद	हृदय–परिवर्तन का अभाव, व्यवस्था द्वारा होरी का अंत, कठोर यथार्थवादी परिणति

5.1 प्रमुख उपन्यासों का विशिष्ट वैचारिक मूल्यांकन :

- **प्रेमाश्रम (1922) – हिन्दी का प्रथम गांधीवादी राजनीतिक उपन्यास :** यह उपन्यास अवध के किसान आंदोलनों और चंपारण सत्याग्रह की पृष्ठभूमि पर रचा गया है। उपन्यास का नायक प्रेमशंकर रूस के सहकारिता मॉडल और गांधीजी के अहिंसक साधन–शुचिता के सिद्धांत का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करता है। उपन्यास का अंत भले ही आदर्शवादी हृदय–परिवर्तन पर हो, किंतु किसानों की एकजुटता और अधिकारों की चेतना यहाँ पहली बार संगठित रूप में मुखरित होती है।
- **रंगभूमि (1925) – गांधीवाद का अमर महाकाव्य :** रंगभूमि में प्रेमचंद ने औपनिवेशिक नौकरशाही और देशी पूंजीवाद के गठजोड़ के सामने एक दृष्टिहीन भिखारी सूरदास को खड़ा कर यह सिद्ध कर दिया कि भौतिक

साधनों और बंदूकों की ताकत आत्मिक बल के सामने बौनी है। सूरदास गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम, खादी, नशामुक्ति और अदम्य साहस का साक्षात प्रतीक है।

- **कर्मभूमि (1932) – सविनय अवज्ञा आंदोलन का सजीव आख्यान :** 1930 के नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और सविनय अवज्ञा आंदोलन की सीधी गूँज कर्मभूमि में सुनाई देती है। लगान–बंदी अभियान और अछूतोद्धार के प्रश्नों को एक साथ उठाकर प्रेमचंद ने स्वाधीनता आंदोलन के दोहरे मोर्चे (साम्राज्यवाद विरोधी और आंतरिक सामाजिक विषमता विरोधी) को सशक्त ढंग से उद्घाटित किया है।

6. निष्कर्ष :

समग्र अनुशीलन के उपरांत यह निष्कर्ष निःसंकोच निकाला जा सकता है कि मुंशी प्रेमचंद का कथा–साहित्य भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और गांधीवादी दर्शन का सबसे प्रामाणिक, जीवंत और कलात्मक दस्तावेज है। प्रेमचंद के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा केवल एक बाहरी राजनीतिक नारा, तात्कालिक प्रभाव या सतही फैशन नहीं थीय बल्कि वह उनकी अंतःकरण की साहित्यिक संवेदना, सामाजिक दायित्वबोध और राष्ट्रीय चेतना का केंद्रीय स्रोत थी।

प्रेमचंद ने गांधीजी के सत्य, अहिंसा, सर्वोदय, साधन–शुचिता और सत्याग्रह के अमूर्त दार्शनिक सिद्धांतों को अपने पात्रों के माध्यम से ऐसा मूर्त और मार्मिक रूप प्रदान किया कि वे सामान्य भारतीय जनमानस की स्वाभाविक जीवन–शैली और संघर्ष का हिस्सा प्रतीत होने लगे। उन्होंने भारतीय समाज के सर्वाधिक उपेक्षित और शोषित वर्गों 'किसानों, मजदूरों, दलितों और नारियों' को अपने उपन्यासों का केंद्रीय नायक बनाकर गांधीजी के 'जन–आंदोलन' को साहित्यिक धरातल पर पूर्ण गरिमा के साथ प्रतिष्ठित किया।

यद्यपि अपने जीवन के अंतिम पड़ाव (विशेषकर गोदान और कफन) तक आते–आते प्रेमचंद गांधीवादी हृदय–परिवर्तन और आदर्शवादी समाधानों की व्यावहारिक सीमाओं से भलीभांति परिचित हो चुके थे और वे कठोर यथार्थवाद तथा समाजवादी दृष्टिकोण की ओर अग्रसर हुएय तथापि उनके संपूर्ण साहित्य की जो मूल आत्मा और जीवन–दृष्टि है 'मानवतावाद, दलितोद्धार, सामाजिक समरसता, शोषण–मुक्ति और नैतिक प्रतिरोध' वह सदैव गांधीवादी चेतना से आलोकित रही। अतः प्रेमचंद सच्चे अर्थों में आधुनिक भारत के अमर 'राष्ट्रलेखक' और जन–संवेदना के अद्वितीय चितेरे हैं।

7. संदर्भ सूची (Bibliography)

- गांधी, मोहनदास करमचंद (2010). सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
- गांधी, मोहनदास करमचंद (2014). हिन्द स्वराज. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन मंदिर.
- चौहान, शिवदान सिंह (1998). प्रेमचंद : विरासत और मूल्य. नई दिल्लीरू नेशनल बुक ट्रस्ट.
- द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद (2005). हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- पांडेय, मैनेजर (2008). उपन्यास और यथार्थ. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- प्रेमचंद (2015). गोदान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- प्रेमचंद (2016). सेवासदन. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

- प्रेमचंद (2018). रंगभूमि. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- प्रेमचंद (2019). कर्मभूमि. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन.
- प्रेमचंद (2020). प्रेमाश्रम. इलाहाबाद : सरस्वती प्रेस.
- प्रेमचंद (2021). गबन. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- प्रेमचंद (2012). विविध प्रसंग (भाग 1–3) (संपादक : अमृत राय). इलाहाबाद : हंस प्रकाशन.
- राय, अमृत (2008). प्रेमचंद : कलम का सिपाही. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी.
- शर्मा, डॉ. रामविलास (2012). प्रेमचंद और उनका युग. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- सिंह, प्रो. नामवर (2010). आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 138-142

Knowledge is Power : A way to Achieve Progress and Conquer all Disparities

Dr. Krishna Rai Chouhan
Asst. Prof, Political Science
Raja Bhoj College, Mandideep, Raisen, Madhya Pradesh.

Abstract :

We live in an age where knowledge is more accessible than ever before. With a few taps, we can learn anything — from quantum physics to planting tomatoes on a balcony. But the real challenge lies not in acquiring knowledge, but in applying it. Without implementation, knowledge is like a book no one ever opens — full of wisdom, yet powerless. The Value of Knowledge

Knowledge is power — but only when used. It shapes our thoughts, decisions, and ultimately, our actions. It forms the foundation of innovation, social change, and personal growth. However, knowledge without implementation can lead to overthinking, self-doubt, and even arrogance.

"To know and not to do is not to know." – Chinese Proverb

In a world filled with challenges, uncertainties, and complexities, one universal truth stands out : knowledge solves problems. From personal dilemmas to global crises, the acquisition and application of knowledge have consistently proven to be the most effective tool for overcoming obstacles. This article explores how knowledge empowers individuals, drives innovation, and transforms societies.

Historical progress of human knowledge :

The story of humanity is inextricably linked to the evolution of its understanding. From the earliest whispers of curiosity to the complex algorithms of the modern age, the historical progress of human knowledge stands as our most enduring testament to the boundless capacity for inquiry. This article embarks on a philosophical journey through the ages, tracing how our collective comprehension of the cosmos, ourselves, and our societies has not merely accumulated but fundamentally transformed, building upon the insights of preceding generations. It is a narrative of continuous intellectual progress, marked by paradigm shifts, revolutionary discoveries, and the persistent human drive to illuminate the unknown.Our journey into the history of knowledge begins

not with definitive answers, but with profound questions. The earliest civilizations, while rich in practical skills and mythic narratives, laid crucial groundwork for systematic thought.

Knowledge Transforms Societies :

On a broader scale, knowledge has the power to transform entire societies. Education, the primary means of disseminating knowledge, plays a crucial role in reducing poverty, promoting equality, and fostering economic growth. When people are educated, they are better equipped to make informed decisions, advocate for their rights, and contribute to their communities.

For instance, the spread of knowledge about hygiene and sanitation has significantly reduced the prevalence of diseases in many parts of the world. Similarly, financial literacy programs empower individuals to manage their money wisely, breaking the cycle of poverty and improving their quality of life.

In a world filled with challenges, uncertainties, and complexities, one universal truth stands out: knowledge solves problems. From personal dilemmas to global crises, the acquisition and application of knowledge have consistently proven to be the most effective tool for overcoming obstacles. This article explores how knowledge empowers individuals, drives innovation, and transforms societies.

The Foundation of Problem-Solving :

At its core, problem-solving is the process of identifying an issue and devising a solution. However, without knowledge, this process becomes nearly impossible. Knowledge provides the framework for understanding the root causes of problems, evaluating potential solutions, and implementing effective strategies. Whether it's solving a mathematical equation, addressing a health crisis, or resolving a conflict, knowledge is the key that unlocks the door to solutions.

For example, in the field of medicine, doctors rely on years of study and research to diagnose and treat illnesses. Without their knowledge of anatomy, physiology, and pharmacology, they would be unable to save lives. Similarly, engineers use their understanding of physics and mathematics to design bridges, buildings, and technologies that improve our quality of life.

Knowledge Drives Innovation :

Innovation is the result of applying knowledge in creative and practical ways. Every technological advancement, scientific discovery, and societal improvement stems from someone's ability to harness and apply knowledge. Consider the development of renewable energy sources like solar and wind power. Scientists and engineers used their knowledge of physics, engineering, and environmental science to create sustainable alternatives to fossil fuels, addressing the global problem of climate change.

Moreover, knowledge fosters critical thinking and curiosity, which are essential for innovation.

When individuals are equipped with knowledge, they are more likely to ask questions, challenge assumptions, and explore new possibilities. This mindset leads to breakthroughs that solve problems and push humanity forward.

Knowledge Transforms Societies :

On a broader scale, knowledge has the power to transform entire societies. Education, the primary means of disseminating knowledge, plays a crucial role in reducing poverty, promoting equality, and fostering economic growth. When people are educated, they are better equipped to make informed decisions, advocate for their rights, and contribute to their communities.

For instance, the spread of knowledge about hygiene and sanitation has significantly reduced the prevalence of diseases in many parts of the world. Similarly, financial literacy programs empower individuals to manage their money wisely, breaking the cycle of poverty and improving their quality of life.

The Role of Lifelong Learning :

In a rapidly changing world, the importance of lifelong learning cannot be overstated. Knowledge is not static; it evolves as new information becomes available. To solve modern problems, individuals and societies must commit to continuous learning and adaptation. This means staying informed about current events, embracing new technologies, and being open to diverse perspectives.

Lifelong learning also fosters resilience. When faced with unexpected challenges, knowledgeable individuals are better equipped to adapt and find solutions. For example, during the COVID-19 pandemic, scientists and healthcare professionals relied on their knowledge and research to develop vaccines in record time, saving countless lives.

Knowledge Comes from Within :

While much of our knowledge is acquired through external sources like education, books, and experiences, knowledge also comes from within. It is the result of introspection, self-awareness, and the ability to connect with our inner wisdom. This internal knowledge, often referred to as intuition or insight, plays a vital role in decision-making and problem-solving. It allows us to tap into our unique perspectives, values, and experiences to find solutions that resonate with our true selves.

For instance, a leader may rely on their inner knowledge to make ethical decisions in challenging situations, even when external advice is conflicting. Similarly, an artist may draw from their inner creativity to produce work that inspires and moves others. Recognizing and nurturing this internal source of knowledge enhances our ability to solve problems authentically and effectively.

Creativity Creates Knowledge :

Creativity creates knowledge. It is through creative thinking that new ideas, concepts, and solutions are born. When we think outside the box, experiment, and explore uncharted territories, we

generate knowledge that did not previously exist. Creativity transforms abstract thoughts into tangible insights, leading to discoveries that solve problems and advance human understanding.

For example, the invention of the internet was a creative leap that revolutionized the way we access and share knowledge. Similarly, artistic expressions like literature, music, and visual arts create new ways of understanding human emotions, cultures, and experiences. Creativity is not just a byproduct of knowledge; it is a driving force that expands the boundaries of what we know and what we can achieve.

Challenges to Accessing Knowledge :

While knowledge is a powerful problem-solving tool, access to it is not universal. Socioeconomic disparities, lack of education, and information barriers prevent many people from acquiring the knowledge they need to solve their problems. Addressing these challenges requires collective effort, including investment in education, the promotion of open access to information, and the creation of inclusive learning environments.

Technology has played a significant role in bridging this gap. The internet, for instance, has made vast amounts of knowledge accessible to people around the world. However, it is essential to ensure that this knowledge is accurate, reliable, and available to all.

According to Nelson Mandela, "Knowledge is the most powerful weapon which you can use to change the world" This means that through knowledge and learning, we can improve ourselves and we can help others. Knowledge helps us to understand what is right and wrong, make a right or wise decision, and lastly hard work to achieve our goals. Knowledge gives us confidence and ability to face difficulties and challenges. Many people say that, "Walang mahirap sa taong may alam" as a teenager this reminds me that once a person has knowledge she/he can overcome any obstacle. Education and learning brings us new opportunities and helps us build a better life. Knowledge truly serves as our guide and strength in achieving success.

Conclusion :

Knowledge is only as powerful as the actions it inspires. The real winners in life are not the ones who know the most, but those who use what they know wisely. So the next time you learn something new, ask yourself: "How can I apply this in real life?"

Knowledge is the cornerstone of problem-solving. It empowers individuals, drives innovation, and transforms societies. In a world where challenges are inevitable, the pursuit of knowledge is not just a personal endeavor but a collective responsibility. By prioritizing education, embracing lifelong learning, and ensuring equitable access to information, we can harness the power of knowledge to solve problems and create a better future for all.

For me, knowledge is the most valuable because it is the greatest treasure a person can have. It

gives us direction to achieve our goals with knowledge, we can make a better and right decision, and face the struggles to build a successful life. That is why we should value education and never stop learning, because knowledge is the key to success and the foundation of a brighter future.Let us continue to seek, share, and apply knowledge—both from external sources and from within—and recognize the role of creativity in generating new knowledge to tackle the challenges of today and tomorrow.

Reference :

1. Cress, U., Feinkohl, I., Jirschitzka, J., & Kimmerle, J. (in press). Mass collaboration as co-evolution of cognitive and social systems. In Cress, U., Moskaliuk, J., & Jeong, H. (Eds.), Mass collaboration and education. Cham, Switzerland: Springer International Publishing.
2. Cress, U. & Kimmerle, J. (2008). A systemic and cognitive view on collaborative knowledge building with wikis. International Journal of Computer Supported Collaborative Learning, 3, 105-122.
3. Damsa, C. I., Kirschner, P. A., Andriessen, J. E. B., Erkens, G., & Sins, P. H. M. (2010). Shared epistemic agency: An empirical study of an emergent construct. The Journal of the Learning Sciences, 19, 143-186.
4. Kimmerle, J., Cress, U., & Held, C. (2010). The interplay between individual and collective knowledge : Technologies for organisational learning and knowledge building. Knowledge Management Research & Practice, 8, 33-44.
5. Kimmerle, J., Gerbing, K.-K., Cress, U., & Thiel, A. (2012). Exchange of complementary and alternative medical knowledge in sport-related Internet fora. Sociology of Sport Journal, 29, 348-364.
6. Kimmerle, J., Moskaliuk, J., Kimmerle, J., Moskaliuk, J., Oeberst, A., & Cress, U. (in press). Learning and collective knowledge construction with social media: A process-oriented perspective. Educational Psychologist.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 143-146

ज्ञान अर्थव्यवस्था : विकसित भारत 2047 की आधारशिला

डॉ. कविता जोशी

सहायक अध्यापक,

द कपाड़िया एन. एम. एम. एस. आर्ट्स एण्ड धी एस. एन. एस. बी. एस. कॉमर्स कॉलेज, संखेड़ा छोटा उदेपुर, गुजरात।

सार (Abstract)

इक्कीसवीं सदी में वैश्विक अर्थव्यवस्था का स्वरूप तीव्र गति से ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है, जहाँ आर्थिक विकास का प्रमुख आधार प्राकृतिक संसाधनों के स्थान पर ज्ञान, नवाचार, अनुसंधान, प्रौद्योगिकी तथा मानव पूंजी बन चुके हैं। विकसित भारत 2047 के राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत को ऐसी ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था का निर्माण करना होगा, जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, कौशल विकास, अनुसंधान, नवाचार तथा डिजिटल प्रौद्योगिकी को समान रूप से प्रोत्साहित करे। इस संदर्भ में भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान ज्ञान सृजन की प्रक्रिया के तीन महत्वपूर्ण स्तंभ हैं।

यह शोध लेख द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, डिजिटल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन तथा विकसित भारत 2047 से संबंधित पहलों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ज्ञान, नवाचार और मानव पूंजी पर आधारित विकास मॉडल ही विकसित भारत 2047 के लक्ष्य को साकार करने की आधारशिला सिद्ध होगा।

Keywords : ज्ञान अर्थव्यवस्था, विकसित भारत 2047, मानव पूंजी, नवाचार, बहुविषयक अनुसंधान, डिजिटल अर्थव्यवस्था।

प्रस्तावना :

इक्कीसवीं सदी में वैश्विक अर्थव्यवस्था का स्वरूप तीव्र गति से ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था की ओर परिवर्तित हो रहा है। वर्तमान समय में किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति केवल प्राकृतिक संसाधनों, पूँजी अथवा श्रम पर निर्भर नहीं है, बल्कि ज्ञान, नवाचार, अनुसंधान, प्रौद्योगिकी तथा कुशल मानव संसाधन उसकी वास्तविक विकास शक्ति बन चुके हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल प्रौद्योगिकी तथा नवाचार–आधारित उद्योगों के विस्तार ने ज्ञान को आर्थिक विकास, उत्पादकता वृद्धि तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता का प्रमुख आधार बना दिया है परिणामस्वरूप ज्ञान अर्थव्यवस्था आधुनिक विकास मॉडल की केंद्रीय अवधारणा के रूप में उभरी है।

भारत विश्व की सबसे युवा आबादी वाले देशों में से एक है और उसके पास विशाल मानव पूंजी, तेजी से विकसित हो रही डिजिटल अवसंरचना, सुदृढ़ सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र और बढ़ता हुआ स्टार्टअप पारितंत्र है। भारत को ज्ञान–आधारित एवं नवाचार–संचालित अर्थव्यवस्था बनाने की दिशा में कई पहलें, जैसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, डिजिटल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, स्किल इंडिया और राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन, महत्वपूर्ण

आधार प्रदान कर रहे हैं। विकसित भारत 2047 की कल्पना भी एक ऐसे देश की स्थापना पर बल देती है, जहाँ आर्थिक विकास ज्ञान, अनुसंधान, नवाचार और अच्छे मानव संसाधन पर निर्भर करेगा।

ज्ञान अर्थव्यवस्था का निर्माण सिर्फ तकनीकी प्रगति नहीं है, प्रभावी शिक्षा व्यवस्था, सक्षम शिक्षकों, भारतीय भाषाओं में ज्ञान की उपलब्धता और बहुविषयक अनुसंधान संस्कृति का समन्वित विकास भी ज्ञान अर्थव्यवस्था का निर्माण करते हैं। बहुविषयक अनुसंधान जटिल आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है, ज्ञान को व्यापक बनाता है। इसलिए भारत को वैश्विक ज्ञान अर्थव्यवस्था में सशक्त स्थान दिलाने के लिए इन सभी पहलुओं का समन्वित विकास करना होगा।

इस शोध लेख में द्वितीयक स्रोतों पर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें विकसित भारत 2047 के संदर्भ में ज्ञान अर्थव्यवस्था की अवधारणा, भारत की वर्तमान स्थिति, भाषा, शिक्षक एवं बहुविषयक अनुसंधान की भूमिका तथा प्रमुख चुनौतियों एवं नीतिगत उपायों का समालोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि ज्ञान–आधारित विकास मॉडल भारत की दीर्घकालिक आर्थिक प्रगति, वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता तथा सतत विकास के लिए किस प्रकार आधारशिला सिद्ध हो सकता है।

भारत में ज्ञान अर्थव्यवस्था : वर्तमान स्थिति :

भारत में ज्ञान अर्थव्यवस्था ऐसी आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें ज्ञान, नवाचार, अनुसंधान, प्रौद्योगिकी तथा मानव पूंजी आर्थिक विकास के प्रमुख आधार होते हैं। पारंपरिक अर्थव्यवस्था जहाँ मुख्यतः भूमि, श्रम एवं पूँजी पर आधारित थी, वहीं वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में ज्ञान और तकनीकी नवाचार उत्पादकता, प्रतिस्पर्धात्मकता तथा सतत विकास के प्रमुख निर्धारक बन चुके हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), क्लाउड कम्प्यूटिंग तथा डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसी उभरती प्रौद्योगिकियों ने ज्ञान के सृजन, संरक्षण एवं उपयोग की प्रक्रिया को नई दिशा प्रदान की है। परिणामस्वरूप वे राष्ट्र अधिक प्रतिस्पर्धी बनकर उभरे हैं, जिन्होंने अनुसंधान, नवाचार और मानव पूंजी के विकास को अपनी आर्थिक नीति का केंद्र बनाया है।

भारत के लिए ज्ञान अर्थव्यवस्था का महत्व विशेष रूप से इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि देश विश्व की सबसे बड़ी युवा आबादी, तीव्र गति से विकसित होती डिजिटल अवसंरचना तथा मजबूत सूचना प्रौद्योगिकी क्षमता का धनी है। हाल के वर्षों में डिजिटल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया, स्किल इंडिया, राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 तथा राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन जैसी पहलों ने ज्ञान–आधारित विकास को नई गति प्रदान की है। डिजिटल भुगतान प्रणाली, ई–गवर्नेंस, ऑनलाइन शिक्षा तथा डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना के विस्तार ने ज्ञान और प्रौद्योगिकी को आम नागरिक तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत का स्टार्टअप पारितंत्र ज्ञान–आधारित आर्थिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बनकर उभरा है। सूचना प्रौद्योगिकी, फिनटेक, एग्रीटेक, हेल्थटेक, एडटेक तथा हरित प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में विकसित हो रहे नवाचार–आधारित उद्यम रोजगार सृजन, उत्पादकता वृद्धि तथा वैश्विक निवेश आकर्षित करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं इसके साथ ही, सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल सेवाओं के क्षेत्र में भारत की बढ़ती क्षमता ने वैश्विक स्तर पर उसकी पहचान को मजबूत किया है।

ज्ञान अर्थव्यवस्था के विकास की प्रमुख चुनौतियाँ :

भारत में ज्ञान अर्थव्यवस्था के विकास के सामने कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। यद्यपि भारत ने ज्ञान अर्थव्यवस्था की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी वर्तमान मैं अनेक संरचनात्मक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। अनुसंधान एवं विकास (R&D) पर अपेक्षाकृत कम निवेश, विश्वविद्यालयों एवं उद्योगों के मध्य सीमित सहयोग,

गुणवत्तापूर्ण शोध के व्यावहारिक उपयोग का अभाव तथा भारतीय भाषाओं में उच्च स्तरीय शैक्षणिक संसाधनों की कमी ज्ञान–आधारित विकास की गति को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के मध्य डिजिटल असमानता तथा शिक्षा से प्राप्त कौशल और उद्योग की वास्तविक आवश्यकताओं के बीच विद्यमान अंतर भी भारत की ज्ञान क्षमता के पूर्ण उपयोग में बाधा उत्पन्न करता है।

ज्ञान अर्थव्यवस्था के विकास की संभावनाएँ :

उपरोक्त चुनौतियों के बावजूद भारत के समक्ष ज्ञान अर्थव्यवस्था के विकास की व्यापक संभावनाएँ उपलब्ध हैं। विकसित भारत 2047 की परिकल्पना एक ऐसी समावेशी, नवाचार–संचालित एवं ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था के निर्माण पर आधारित है, जहाँ शिक्षा, अनुसंधान, उद्योग और शासन के मध्य प्रभावी समन्वय स्थापित हो। इसके लिए मानव पूंजी में निवेश, अनुसंधान एवं विकास को प्रोत्साहन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं डिजिटल नवाचारों का उत्तरदायी उपयोग तथा विश्वविद्यालय–उद्योग साझेदारी को सुदृढ़ करना आवश्यक होगा। साथ ही, भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण ज्ञान संसाधनों का विकास ज्ञान तक समान पहुँच सुनिश्चित करेगा और नवाचार की प्रक्रिया को अधिक समावेशी बनाएगा।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारत के पास ज्ञान अर्थव्यवस्था में वैश्विक नेतृत्व स्थापित करने की पर्याप्त क्षमता है। यदि उपलब्ध जनसांख्यिकीय लाभ, वैज्ञानिक प्रतिभा, डिजिटल क्षमता तथा नवाचार पारितंत्र को दूरदर्शी नीतिगत दृष्टिकोण के साथ विकसित किया जाए, तो ज्ञान अर्थव्यवस्था केवल आर्थिक प्रगति का माध्यम नहीं रहेगी, बल्कि विकसित भारत 2047 के लक्ष्य की प्राप्ति की सबसे सुदृढ़ आधारशिला सिद्ध होगी।

निष्कर्ष :

ज्ञान अर्थव्यवस्था वर्तमान वैश्विक विकास का प्रमुख आधार बन चुकी है, जहाँ किसी राष्ट्र की प्रगति का निर्धारण ज्ञान, नवाचार, अनुसंधान तथा मानव पूंजी की गुणवत्ता से होता है। भारत के पास विशाल युवा जनसंख्या, मजबूत डिजिटल अवसंरचना, उभरता हुआ स्टार्टअप पारितंत्र तथा तकनीकी क्षमता जैसी महत्वपूर्ण शक्तियाँ उपलब्ध हैं। वहीं अनुसंधान एवं विकास में सीमित निवेश, विश्वविद्यालय–उद्योग सहयोग की कमी, भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण ज्ञान संसाधनों का अभाव तथा कौशल और रोजगार के मध्य अंतर जैसी चुनौतियाँ ज्ञान–आधारित विकास की गति को प्रभावित करती हैं।

अतः विकसित भारत 2047 के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा, अनुसंधान, नवाचार, डिजिटल प्रौद्योगिकी तथा मानव पूंजी में समन्वित निवेश आवश्यक है। साथ ही, भाषा, शिक्षक एवं बहुविषयक अनुसंधान को ज्ञान अर्थव्यवस्था के प्रमुख स्तंभ के रूप में सुदृढ़ करना होगा। यदि इन क्षेत्रों में प्रभावी नीतिगत प्रयास किए जाएँ, तो ज्ञान अर्थव्यवस्था भारत की आर्थिक समृद्धि, वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता तथा विकसित भारत 2047 के लक्ष्य की वास्तविक आधारशिला सिद्ध होगी।

Reference :

- Brynjolfsson, E., & McAfee, A. (2014). The second machine age: Work, progress, and prosperity in a time of brilliant technologies. W. W. Norton & Company.
- Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.
- Ministry of Finance. (2025). Economic Survey 2024–25. Government of India.

- Organisation for Economic Co-operation and Development. (2024). OECD Digital Economy Outlook 2024 (Volume 1): Embracing the technology frontier. OECD Publishing. https://doi.org/10.1787/a1689dc5-en
- Organisation for Economic Co-operation and Development. (2024). OECD Digital Economy Outlook 2024 (Volume 2): Strengthening connectivity, innovation and trust. OECD Publishing. https://doi.org/10.1787/3adf705b-en
- United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. (2024). UNESCO science report 2024. UNESCO Publishing.
- World Bank. (2024). World Development Report 2024: The middle-income trap. World Bank.
- World Intellectual Property Organization. (2024). Global Innovation Index 2024. WIPO.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 147-154

Artificial Intelligence with a Human Touch : Redefining Emotional Learning in Education 5.0

Lalita Saini

Assistant Professor, Pal College of Technology and Management, Haldwani,
Kumaun University Nainital, (Uttarakhand)

Abstract :

Education 5.0 is a concept based on the balanced integration of technology and humanity. The idea of education encompasses a broad range of sensibilities. These sensibilities are constantly refined and modified by humans. Their transmission occurs automatically over time, but their transmission in the right direction can only be achieved through qualified teachers. Currently, artificial intelligence (AI) has made teaching personalized and effective, but it lacks an emotional connection. This study suggests that incorporating emotional intelligence and empathy into AI-based teaching is crucial. In the era of Education 5.0, teachers play the role of not just guides but also "emotional mentors" who teach sensitivity alongside technology. True education empowers human values and sensibilities through technology.

Keywords : Education 5.0, artificial intelligence, emotional learning, empathy, human values

Introduction :

The emergence of artificial intelligence (AI) in education has opened new frontiers, particularly in the realm of social-emotional learning (SEL). Traditionally, education systems focused primarily on cognitive and academic skills while emotional and social growth remained secondary. Modern AI technologies can analyze and respond to student emotions through facial recognition, voice analysis, natural language processing, and adaptive tutoring, making learning more personalized, engaging, and supportive.

Recent research shows that AI-powered SEL tools can enhance emotional intelligence, reduce stress, improve classroom engagement, and support at-risk students. However, for AI to realize its potential in SEL, it must be integrated ethically, ensuring data privacy, cultural sensitivity, and teacher preparedness. This research aims to explore the effectiveness, challenges, and best practices of AI applications in emotional learning, with a comparative focus on global and Indian experiences.

The rapid adoption of artificial intelligence (AI) across educational environments—especially

in social-emotional learning (SEL)—presents tremendous opportunities and challenges for enhancing student well-being and holistic development. Recent systematic literature reviews and empirical studies have shown that AI tools are increasingly capable of recognizing and responding to student emotions, using technologies such as emotion detection, adaptive feedback, and intelligent tutoring systems. For example, advanced AI models now detect student emotions from facial expressions, voice modulations, and written text, allowing for more tailored pedagogical interventions and support.

Education 5.0 envisions a future where technology and humanity co-evolve. The integration of Artificial Intelligence (AI) in emotional learning reflects Gardner's (1983) Multiple Intelligences Theory and Goleman's (1995) Emotional Intelligence Model, both emphasizing that learning must address emotional and moral dimensions alongside cognitive skills. This theoretical foundation supports the idea that AI, when designed with empathy and ethical reasoning, can enhance not only academic performance but also emotional growth and social awareness among learners.

Need of study :

In the age of Education 5.0, the transformative integration of artificial intelligence (AI) into emotional learning marks a critical shift in educational paradigms. Unlike traditional teaching models that primarily emphasized cognitive skills, today's educational landscape recognizes the indispensable role of social and emotional competencies in student success and well-being. By 2025, over 60% of educational institutions worldwide will have embraced AI tools to personalize learning experiences, adapt to diverse emotional needs, and support mental health, especially in expanding remote and digital environments. This revolution not only enhances academic outcomes but also bridges gaps created by conventional methods, demanding ethical, scalable, and socially responsive solutions that put student welfare at the forefront.

The present study is grounded in three theoretical models that guide the humanistic application of Artificial Intelligence in education :

1. **Gardner's Theory of Multiple Intelligences (1983) :** Highlights that education must nurture linguistic, interpersonal, and intrapersonal intelligences — the latter two being essential for emotional learning.
2. **Daniel Goleman's Emotional Intelligence Model (1995) :** Emphasizes self-awareness, empathy, motivation, and social skills — components AI should aim to simulate in learning environments.
3. **Bloom's Revised Taxonomy (Anderson & Krathwohl, 2001) :** Integrates affective and cognitive domains, supporting the balanced approach of Education 5.0 where technology and emotion coexist.

Role and Significance of AI in National Education Policy 2020 :

The National Education Policy (NEP) 2020 explicitly emphasizes integrating Artificial

Intelligence (AI) into India's education system as a catalyst for transforming teaching and learning. NEP 2020 recognizes AI as a key enabler of personalized, adaptive learning, aiming to tailor education to individual learners' needs, strengths, and interests, in line with the vision of a learner-centric, flexible education system. The policy advocates for embedding AI and computational thinking in curricula starting from the school level, enhancing digital literacy and preparing students for a technology-driven future.NEP also focuses on supporting teachers through AI-enabled tools for training, assessment, and personalized teaching support.

Objective of the study :

The present study sets forth the following objectives, each grounded in the needs of modern educational research.

- To evaluate the effectiveness of AI-powered platforms in promoting emotional learning.
- To identify the challenges faced by schools and teachers in integrating AI with SEL.
- To provide evidence of best practices from India and other countries.
- To recommend strategies for ethical and inclusive implementation.

Methodology of the study :

This study adopts a qualitative and descriptive research approach, primarily based on secondary data collected from authentic international and national sources. Major reports from UNESCO, OECD, and the Ministry of Education, Government of India, have been analyzed to understand the role of Artificial Intelligence in emotional learning under the Education 5.0 framework.

Key documents reviewed include UNESCO's "AI and Education: Guidance for Policymakers" (2023), OECD's "Education 2030 Framework", NITI Aayog's "Responsible AI for All" (2021), and CBSE's "AI for All" initiative. Additionally, the National Education Policy (NEP) 2020 was critically examined — especially Sections 23.6 and 24.4–24.8, which emphasize the integration of Artificial Intelligence, emerging technologies, and ethical digital learning in Indian education. Data from these documents were interpreted qualitatively to highlight trends, policies, and implications related to emotional and human-centered learning in Education 5.0.

The Origin and Early Development and Current Position of Artificial Intelligence in Education :

Artificial Intelligence (AI) began its journey in education during the 1960s and 1970s, initially limited to experimental intelligent tutoring systems in research centers and universities. Early AI applications focused mostly on solving mathematical or technical problems and providing individualized support to learners. With the widespread expansion of the internet in the 1990s and 2000s, AI-powered educational platforms, adaptive learning systems, and virtual assistants became more prevalent, enhancing personalized learning and making education accessible remotely.

In recent years, especially post-2020, AI's role in education has expanded dramatically due to

advances in machine learning, natural language processing, and affective computing. AI technologies now assist students not only academically but also emotionally by recognizing moods, providing timely feedback, and supporting mental well-being through social-emotional learning (SEL) tools.

Globally, over 60% of educational institutions have incorporated AI tools by 2025, with countries like the USA, Japan, and the UK leading adoption. India, while facing infrastructure and digital literacy challenges, has rapidly increased AI adoption especially in urban and private schools, reaching nearly 40% adoption in certain regions. Initiatives by the Indian government and private sector, including AI-powered learning apps and virtual classrooms, focus on both academic and emotional learning needs.

Table 1 : Global Overview of AI Adoption in Education (2025)

Country / Region	**AI Adoption Rate in Education (2025)**	**Notable Stats & Market Info**	**Remarks**
USA	~62%	AI in the education market is valued at ~$470 billion; 3 in 5 teachers use AI	Leading adoption; strong private sector AI tools & investment
China	~45%	Massive private investments; AI startups' growth	Rapid expansion despite regulatory controls
India	~39%	Government-Pvt initiatives; urban schools leading	Growing fast, with challenges in rural digital literacy
Europe (Collective)	~50%	GDPR impacts cautious adoption; strong ethical AI focus	Leading in ethical AI use, especially in education and health
Global Average	~55%	60%+ educational institutions use AI; fast market growth	Broad spread of AI tools, including voice assistants, adaptive learning

- By 2025, over 60% of educational institutions worldwide will use AI-powered tools.
- India's adoption, although less than developed nations, is rapidly growing.
- The global AI education market is expected to grow at a CAGR of approximately 37% until 2032.
- Personalized learning, adaptive platforms, and social-emotional AI tools are the fastest-growing

segments.

AI and Emotional Intelligence : Risks, Challenges, and Ethical Use :

Artificial Intelligence (AI) is a powerful tool, but when misused, it can pose serious risks to humans. Many people over-rely on AI, like students who use it to do homework and assignments without actually learning. This creates dishonesty and reduces true knowledge and creativity. AI sometimes fails to understand human emotions correctly, leading to wrong decisions or misunderstandings. Privacy is also a huge concern as AI collects vast personal data, which can be misused or leaked if not protected. Moreover, people misuse AI for harmful activities such as creating fake videos or spreading misinformation. Another challenge is the digital divide, where unequal access to AI increases existing inequalities.

To address these issues, strict rules and ethical guidelines for AI use are essential. Students and teachers should be trained properly about AI's responsible use and risks. Privacy laws need strengthening to protect personal data. Educational systems should balance AI tools with human teaching to preserve the personal touch. Governments and organizations must work together to make AI accessible and affordable for all, reducing inequality. Continuous monitoring and research are needed to prevent misuse and ensure that AI remains a positive force for learning and growth.

Key Challenges of AI in Education :

1. **Data Privacy and Security :** AI systems often collect sensitive student data, creating risks of breaches and misuse.
2. **Bias and Fairness :** AI algorithms can have human biases, leading to unfair treatment of certain students or groups.
3. **Lack of Human Interaction :** AI-based teaching may reduce essential face-to-face communication between teachers and students, vital for social and emotional growth.
4. **Cost and Technical Accessibility :** High costs and complexity keep many students in poor or rural areas from accessing AI-based education.
5. **Teacher Resistance and Training Gaps :** Many teachers are uncomfortable working with new AI tools and lack the necessary training.
6. **Ethical Issues and Academic Dishonesty :** Increased risks of cheating and assignments done without genuine learning through AI assistance.
7. **Digital Divide :** Lack of technology infrastructure hampers equal access to education, increasing global educational inequality.

Solutions to AI Challenges in Education :

1. **Strengthen Data Security :** Implement strong data protection measures like encryption, servers, and restricted access to safeguard the personal data of students and teachers.

2. **Create Clear Ethical AI Policies :** Establish and enforce rules and guidelines for responsible and ethical AI use in schools and institutions.
3. **Maintain Human-AI Balance :** Use AI as a supportive tool without replacing essential teacher-student interaction and personal guidance.
4. **Increase AI Literacy :** Spread awareness and literacy among students and teachers about AI's benefits, risks, and proper use.
5. **Reduce Digital Inequality :** Collaborate between the government and private sectors to increase internet and AI tool access in underprivileged and rural areas.
6. **Update Assessment Policies :** Adopt evaluation methods that prevent AI misuse, such as oral exams and project-based assessments.
7. **Continuous Monitoring and Research :** Regularly review AI use and impact, updating rules and practices according to new advancements.

Results :

The study reveals that Artificial Intelligence (AI) plays a significant role in enhancing the quality, accessibility, and personalized experiences in education. The integration of AI, as outlined in NEP 2020, makes the education system more adaptive, inclusive, and technologically empowered. Initiatives like "Study with AI" in Rajasthan have shown remarkable improvement in students' academic performance, exemplifying the positive impact of AI. AI-driven assessments and digital educational platforms have increased transparency and efficiency in evaluation systems.

However, challenges such as data security, ethics, and digital divide still persist and need to be addressed at both policy and practice levels.

Overall, the study confirms that AI should be adopted in education with innovation, human-centeredness, and ethical considerations to improve quality and ensure equitable opportunities for all.

Table -2 : AI Adoption in Indian Education (2022–2023)

Region / Sector	Year	AI Usage in Educational Institutions (%)	Major Initiatives
Urban Areas	2022	42%	CBSE–AI for All, Intel India Curriculum
Rural Areas	2022	17%	DIKSHA, SWAYAM, PM eVidya
Higher Education Institutions	2023	53%	IITs, IGNOU, AI Virtual Labs
National Average (India)	2023	35%	NEP 2020 Digital Initiatives, NITI Aayog Programs

Discussion and Analysis :

The integration of Artificial Intelligence (AI) in education has transformed learning environments globally, yet its emotional dimension remains underdeveloped. While AI systems efficiently personalize learning content and track student progress, they often fail to understand the learner's emotions, motivation, or social context. Studies by UNESCO (2023) and OECD (2019) reveal that emotional learning is essential for long-term cognitive growth and empathy-driven behavior. In the Indian context, teachers' readiness for AI-based pedagogy is improving but still uneven across urban and rural regions. Data from CBSE (2022) and NITI Aayog (2021) show that about 42% of urban schools and 17% of rural schools have integrated AI-related modules. Teacher training programs like "AI for All" (CBSE & Intel) and NEP 2020's emphasis on digital literacy indicate progress, yet emotional preparedness among educators remains limited.

A new model of "Balanced Human Learning" is emerging — where Artificial Intelligence (AI) and Emotional Intelligence (EI) coexist. This model advocates that technology should assist rather than replace human sensitivity. Education 5.0 thus envisions classrooms where data-driven algorithms and human empathy combine to nurture creativity, critical thinking, and moral judgment — the true essence of holistic learning.

Conclusion :

The study concludes that Education 5.0 represents a significant shift from technology-driven learning to human-centered, emotionally intelligent education. While Artificial Intelligence has enhanced personalization, accessibility, and efficiency in education, it still lacks emotional depth and ethical awareness. The integration of emotional intelligence, empathy, and moral reasoning within AI-based education systems is essential for developing holistic learners.

The analysis of global and Indian data shows that countries such as China, the United States, and India are progressively embedding AI into education, but India's National Education Policy (NEP) 2020 uniquely emphasizes the ethical and humanistic use of technology. Initiatives like "AI for All" (CBSE & Intel) and NITI Aayog's Responsible AI framework indicate India's balanced approach toward technology and human values.

In the era of Education 5.0, teachers will act not merely as knowledge facilitators but as emotional mentors, nurturing compassion, critical thinking, and socio-emotional intelligence. True education of the future must therefore combine the efficiency of AI with the empathy of humanity — ensuring that technology serves the learner, not replaces the human essence of learning.

Future research should focus on developing AI systems that can perceive, interpret, and respond to human emotions in culturally diverse classrooms. India, under NEP 2020, has the opportunity to pioneer emotionally intelligent AI models that not only deliver personalized learning but also foster

empathy, critical thinking, and ethical reasoning. The future of Education 5.0 will depend on designing AI that complements, not replaces, the human spirit of learning.

References :

1. Anderson, L. W., & Krathwohl, D. R. (2001). A taxonomy for learning, teaching, and assessing: A revision of Bloom's taxonomy of educational objectives. New York: Longman.
2. Central Board of Secondary Education (CBSE). (2022). Digital education progress report 2022. New Delhi: Central Board of Secondary Education.
3. Central Board of Secondary Education (CBSE) & Intel India. (2021). AI for All initiative report. New Delhi: CBSE. Retrieved from https://cbseacademic.nic.in
4. Goleman, D. (1995). Emotional intelligence: Why it can matter more than IQ. New York: Bantam Books.
5. Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy 2020. New Delhi: Ministry of Education. Retrieved from https://www.education.gov.in
6. Ministry of Education. (2023). AI integration in Indian schools and higher education: Annual digital learning report. New Delhi: Department of School Education and Literacy.
7. NITI Aayog. (2021). Responsible AI for All: Operationalizing principles for responsible AI. New Delhi: Government of India. Retrieved from https://www.niti.gov.in
8. Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD). (2019). The OECD Learning Compass 2030: Education 2030 framework. Paris: OECD Publishing. Retrieved from https://www.oecd.org/education/2030-project
9. Stanford University. (2024). AI Index Report 2024. Stanford, CA: Stanford Institute for Human-Centered Artificial Intelligence (HAI). Retrieved from https://aiindex.stanford.edu
10. UNESCO. (2021). Futures of Education: Learning to become. Paris: UNESCO Publishing. Retrieved from https://unesdoc.unesco.org
11. UNESCO. (2023). AI and education: Guidance for policymakers. Paris: UNESCO Publishing. Retrieved from https://unesdoc.unesco.org
12. World Economic Forum. (2022). The future of jobs report 2022. Geneva: World Economic Forum. Retrieved from https://www.weforum.org/reports.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 155-159

रस और आनंद

डॉ. के. माधवी
एसोसिएट प्रोफेसर, मंच कला विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

सारांश –

भारतीय नाट्यशास्त्रीय परंपरा में रस को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। रस–सिद्धांत के प्रवर्तक के रूप में भरतमुनि का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। तथापि, नाट्यशास्त्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भरतमुनि से पूर्व भी रस–संबंधी अवधारणाएँ भारतीय चिंतन परंपरा में विद्यमान थीं। भरतमुनि द्वारा उद्धृत निम्नलिखित सूत्र इस तथ्य की पुष्टि करता है– काव्य अथवा नाट्य में वर्णित घटनाएँ एवं पात्र लौकिक जीवन से संबंधित होते हैं, किंतु सहृदय दर्शक अथवा पाठक द्वारा उनका जो सौंदर्यानुभव किया जाता है, वह अलौकिक एवं विशिष्ट अनुभूति का स्वरूप ग्रहण कर लेता।

मुख्य शब्द – नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, काव्यशास्त्र, रस, आनंद, संचारी भाव।

भारतीय काव्यशास्त्र में रस को नाट्य का सर्वोच्च एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व स्वीकार किया गया है। इस संदर्भ में भरतमुनि का प्रसिद्ध कथन उल्लेखनीय है–

"न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।"

अर्थात्, रस के बिना नाट्य अथवा काव्य का कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार स्पष्ट है कि रस ही काव्य एवं नाट्य का प्राण तत्त्व है तथा सौंदर्यानुभूति और कलात्मक आनंद की प्राप्ति का प्रमुख आधार भी।

रस का स्वरूप एवं निष्पत्ति –

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति 'रस्' धातु से मानी गई है, जिसका अर्थ है– आस्वादन करना अथवा आनंद का अनुभव करना। जिस प्रकार मनुष्य स्वादिष्ट भोजन का आस्वादन करके तृप्ति एवं आनंद की अनुभूति करता है, उसी प्रकार काव्य एवं नाट्य के सौंदर्यपूर्ण प्रस्तुतीकरण का आस्वादन करके सहृदय दर्शक अथवा पाठक अलौकिक आनंद का अनुभव करता है। यही सौंदर्यानुभूति रस की अनुभूति कहलाती है –

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी (संचारी) भावों के समन्वित संयोग से रस की उत्पत्ति अथवा निष्पत्ति होती है। इस सूत्र के अनुसार रस किसी एक तत्त्व का परिणाम न होकर विभिन्न भावात्मक अवयवों के सामंजस्यपूर्ण संयोग से उत्पन्न होने वाली सौंदर्यानुभूति है।

इस संदर्भ में विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में रस की व्याख्या करते हुए कहा है –

"विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्।।

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के माध्यम से रति आदि स्थायी भाव सहृदयों के हृदय में व्यक्त होकर रसस्वरूप को प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि रस की निष्पत्ति में स्थायी भाव की केंद्रीय भूमिका होती है, जबकि विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव उसके अभिव्यंजक और पोषक तत्त्व के रूप में कार्य करते हैं।

रस की आनंदरूपता –

अभिनवगुप्त के अनुसार श्रृंगार, करुण आदि सभी रस मूलतः आनंदस्वरूप हैं। यद्यपि करुण रस जैसे रसों में दुःख का अनुभव प्रतीत होता है, तथापि रसास्वादन की अवस्था में सहृदय को अंततः आनंद की ही अनुभूति होती है। इसका कारण यह है कि रसानुभूति सामान्य लौकिक अनुभूति से भिन्न होती है। साधारणीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने व्यक्तिगत सुख–दुःख तथा राग–द्वेष से ऊपर उठकर कलात्मक अनुभूति के स्तर पर पहुँच जाता है। इस स्थिति में व्यक्तिगत पीड़ा का बोध गौण हो जाता है और सौन्दर्यात्मक आस्वादन की अनुभूति प्रमुख हो जाती है।

रसानुभूति की इस प्रक्रिया में चित्त की वृत्तियाँ सात्त्विक अवस्था को प्राप्त करती हैं। परिणामस्वरूप रजोगुण एवं तमोगुण का प्रभाव क्षीण होकर सत्त्वगुण की प्रधानता स्थापित होती है। सत्त्वगुण की इस प्रबलता से चित्त में निर्मलता, शांति तथा आनंद का संचार होता है। अतः करुण रस सहित सभी रसों का अंतिम स्वरूप आनंदमय माना गया है। ज्योति वत्स ने भी इस संदर्भ में स्पष्ट किया है कि रस की अनुभूति व्यक्ति के अंतर्मन में निरंतर आनंद का संचार करती है। करुण रस में भी दुःख का अनुभव केवल बाह्य स्तर पर होता है, जबकि उसकी कलात्मक अनुभूति सहृदय को विशिष्ट प्रकार के सौन्दर्यानंद का अनुभव कराती है।

रस की आनंदरूपता का दार्शनिक विवेचन –

अभिनवगुप्त के अनुसार साधारणीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप सहृदय का चित्त व्यक्तिगत सीमाओं का अतिक्रमण कर आत्मस्वरूप में निमग्न हो जाता है। इस अवस्था में वह साधारणीकृत रति आदि स्थायी भावों के माध्यम से आत्मानुभूति का अनुभव करता है। चूँकि आत्मा का स्वरूप आनंदमय माना गया है, इसलिए रसानुभूति का अंतिम परिणाम भी आनंद की अनुभूति के रूप में ही अभिव्यक्त होता है। इस कारण रसास्वादन में किसी प्रकार के वास्तविक दुःख का अनुभव नहीं होता, अपितु सौन्दर्यानुभूति से उत्पन्न विशुद्ध आनंद की प्राप्ति होती है। यद्यपि रसास्वाद के समय सहृदय योगी के समान पूर्ण आत्मसाक्षात्कार की अवस्था को प्राप्त नहीं करता, तथापि वह साधारणीकृत स्थायी भावों के माध्यम से अपने व्यक्तिगत राग–द्वेष, सुख–दुःख तथा लौकिक आसक्तियों से पर्याप्त सीमा तक मुक्त होकर सौन्दर्यात्मक चेतना का अनुभव करता है। इस प्रकार आत्मानुभूति और रसास्वादन के मध्य पूर्ण अभेद स्थापित नहीं किया जा सकता, किन्तु दोनों में अनुभूति की प्रकृति में पर्याप्त साम्य विद्यमान है। इसके विपरीत कुछ आचार्यों का मत है कि रस को पूर्णतः आनंदरूप नहीं माना जा सकता, क्योंकि करुण आदि रसों में दुःखात्मक अनुभूति का भी समावेश रहता है।

उनके अनुसार यदि रस केवल आनंदस्वरूप होता, तो करुण, भयानक अथवा बीभत्स रसों में दुःख, भय अथवा जुगुप्सा की अनुभूति संभव न होती। चूँकि स्थायी भावों का आधार लौकिक अनुभव है और वे मानव जीवन के सुख–दुःख से संबद्ध हैं, इसलिए रसास्वादन के समय उन भावों की मूल प्रकृति का पूर्णतः लोप नहीं होता। फलतः रसानुभूति में आनंद के साथ–साथ संबंधित भावों की सूक्ष्म अनुभूति भी विद्यमान रहती है। इस प्रकार अभिनवगुप्त रस को आत्मानंद की अभिव्यक्ति मानते हैं, जबकि अन्य आचार्य रसानुभूति में आनंद तथा भावानुभूति

के समन्वित स्वरूप को स्वीकार करते हैं। अतः रस की आनंदरूपता का प्रश्न भारतीय काव्यशास्त्र में एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक विमर्श के रूप में स्थापित होता है।

स्थायी भाव –

रस–सिद्धांत के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा संचारी (व्यभिचारी) भावों के संयोग से स्थायी भाव परिपक्व होकर रसस्वरूप को प्राप्त करता है। इस संबंध में आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है –

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।"

अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी (संचारी) भावों के समुचित संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। भारतीय काव्यशास्त्र में नव रसों के अनुरूप नौ स्थायी भाव माने गए हैं, जो निम्नलिखित हैं– रति, उत्साह, शोक, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय, हास, निर्वेद।

ये स्थायी भाव उपयुक्त विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग से क्रमशः शृंगार, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत, हास्य तथा शांत रस के रूप में परिणत होते हैं।

(1) **रति** – रति श्रृंगार रस का स्थायी भाव है। स्त्री एवं पुरुष के मध्य परस्पर उत्पन्न होने वाले आत्मीय, अनुरागपूर्ण एवं आकर्षणयुक्त भाव को रति कहा जाता है। व्यापक अर्थ में इसे प्रेम अथवा अनुराग की संज्ञा भी दी जाती है। रति की उत्पत्ति सौंदर्य, माधुर्य, सुगंध, अलंकरण, प्रियजन का सान्निध्य, रुचिकर भोजन, मनोहर वातावरण तथा अन्य आकर्षक विभावों के प्रभाव से होती है।

(2) **उत्साह** – उत्साह वीर रस का स्थायी भाव है। किसी महान उद्देश्य, पराक्रम, साहस अथवा कर्तव्यबोध से प्रेरित होकर मन में उत्पन्न होने वाली दृढ़ मानसिक प्रवृत्ति को उत्साह कहा जाता है। यह भाव व्यक्ति को कठिन परिस्थितियों में भी सक्रिय, कर्मशील एवं साहसी बनाए रखता है। युद्ध, धर्मपालन, दान, लोककल्याण तथा अन्य श्रेष्ठ कार्यों के प्रति जो तत्परता, संकल्प एवं कर्मनिष्ठा उत्पन्न होती है, वही उत्साह का स्वरूप है। काव्यशास्त्र में उत्साह को वीर रस की आधारभूत मनोवृत्ति माना गया है।

(3) **हास** – हास वह भावात्मक अभिव्यक्ति है, जो किसी व्यक्ति की वाणी, वेशभूषा, व्यवहार अथवा अन्य किसी असंगत, विकृत या हास्यास्पद स्थिति के अवलोकन अथवा श्रवण से उत्पन्न होती है। नाट्यशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में इसे एक प्रमुख अनुभाव माना गया है। इसकी तीव्रता एवं अभिव्यक्ति के आधार पर हास के विभिन्न भेद बताए गए हैं, जिनमें स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित प्रमुख हैं।

(4) **शोक** – शोक एक ऐसी मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक अवस्था है, जिसका उद्‌भव प्रियजन के वियोग, संबंध –विच्छेद, इच्छित वस्तु की हानि, दुःखद अनुभव अथवा अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के परिणामस्वरूप होता है। शोक की अभिव्यक्ति विभिन्न अनुभावों के माध्यम से होती है, जिनमें अश्रुपात, विलाप, पश्चाताप, वैवर्ण्य (मुखमंडल का वर्ण बदलना), स्वरभंग, अंगों की शिथिलता, भूमि पर गिर पड़ना, गहन निःश्वास, जड़ता तथा मरणोन्मुख दशा जैसी स्थितियाँ प्रमुख हैं। ये सभी शोक की तीव्रता और उसकी आंतरिक अनुभूति के बाह्य संकेत माने जाते हैं।

(5) **क्रोध** – क्रोध एक तीव्र भावात्मक प्रतिक्रिया है, जो अपमान, विरोध, अन्याय, अवरोध अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। नाट्य एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसकी अभिव्यक्ति अनेक अनुभावों द्वारा होती है, जैसे– भृकुटि का सिकुड़ना, नेत्रों का लाल अथवा फैल जाना, होंठों का फड़कना, दाँत पीसना, मुट्ठियाँ भींचना, गालों का फड़कना तथा आक्रामक शारीरिक मुद्राओं का प्रदर्शन।

ये सभी अनुभाव क्रोध की आंतरिक मानसिक अवस्था के बाह्य एवं दृश्य संकेत माने जाते हैं। क्रोध के प्रकार नाट्यशास्त्र में क्रोध की अभिव्यक्ति विभिन्न पात्रों एवं परिस्थितियों के अनुरूप भिन्न–भिन्न रूपों में परिलक्षित होती है। इसके प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं :–

1. रिपुज – शत्रु पर आने वाला क्रोध।
2. गुरूज – पुज्यजनों पर आने वाला क्रोध।
3. प्रणयीजन – प्रिया पर आने वाला क्रोध।
4. भृत्यज – नौकर पर होने वाला क्रोध।
5. कृतक – बनावटी।

(6) **भय** – भय वह स्थायी भाव है, जो किसी भयानक, अनिष्टकारी अथवा संकटपूर्ण वस्तु, घटना या परिस्थिति की आशंका अथवा प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न होता है। नाट्यशास्त्र में भय की अभिव्यक्ति अनेक अनुभावों के माध्यम से की जाती है। इसके प्रमुख अनुभाव हैं– हृदय की धड़कन का तीव्र होना, स्तम्भ (स्तब्ध हो जाना), मुख का शुष्क होना, नेत्रों का चंचल होना, शरीर में कम्पन, स्वेद (पसीना आना), स्वर में परिवर्तन, भागने का प्रयास, विलाप तथा रोदन आदि। ये सभी बाह्य लक्षण भय की आन्तरिक मनोवैज्ञानिक अवस्था के सूचक माने जाते हैं।

(7) **जुगुप्सा** – जुगुप्सा वह स्थायी भाव है, जो किसी घृणित, अशुद्ध, दूषित अथवा अप्रिय वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति के प्रति उत्पन्न होने वाली तीव्र घृणा अथवा वितृष्णा को व्यक्त करता है। नाट्यशास्त्र में इसे घृणा रस का मूल स्थायी भाव माना गया है। जुगुप्सा का प्राधान्य प्रायः राक्षस, क्रूर तथा निकृष्ट प्रवृत्ति वाले पात्रों में अथवा घृणास्पद परिस्थितियों के चित्रण में दिखाई देता है। इसकी अभिव्यक्ति मुख का विकृत होना, नाक सिकोड़ना, थूकना, मुख फेर लेना, अरुचि प्रकट करना तथा शरीर को पीछे हटाना आदि अनुभावों द्वारा की जाती है।

(8) **विस्मय** – विस्मय वह स्थायी भाव है, जो किसी अलौकिक, अद्‌भुत अथवा अप्रत्याशित वस्तु, घटना या दृश्य के प्रत्यक्ष दर्शन अथवा स्मरण से उत्पन्न होने वाले आश्चर्यबोध का द्योतक है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से इसकी अभिव्यक्ति अनेक अनुभावों द्वारा होती है। इसके प्रमुख अनुभावों में नेत्रों का फैल जाना, एकटक दृष्टि से देखना, भौंहों का ऊपर उठना, रोमांचित होना, मस्तक का कम्पित होना तथा साधुवाद अथवा प्रशंसात्मक उद्‌गार व्यक्त करना आदि सम्मिलित हैं। ये अनुभाव विस्मय की आन्तरिक अनुभूति के बाह्य रूप माने जाते हैं।

(9) **निर्वेद अथवा शम** – निर्वेद अथवा शम वह स्थायी भाव है, जो वैराग्य, आत्मबोध तथा सांसारिक विषयों के प्रति अनासक्ति की मानसिक अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। यह भाव जीवन की नश्वरता, संसार की अनित्यता तथा सुख–दुःख की क्षणभंगुरता के गहन चिंतन एवं आत्मानुभूति से उत्पन्न होता है। नाट्यशास्त्र में इसे शान्त रस का स्थायी भाव माना गया है। इसकी अभिव्यक्ति वैराग्यपूर्ण दृष्टिकोण, इन्द्रिय–निग्रह, विषय–वासनाओं से विरक्ति, मानसिक स्थिरता, आत्मसंयम तथा समत्वभाव जैसे अनुभावों के माध्यम से होती है, जो व्यक्ति की आन्तरिक शांति एवं आध्यात्मिक परिपक्वता के सूचक हैं।

आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार काव्य का सर्वोच्च प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि काव्य के विविध प्रयोजनों में प्रीति अथवा आनन्द को ही प्रधान स्थान प्राप्त है। यद्यपि पूर्ववर्ती आचार्यों ने

काव्य के प्रयोजन के रूप में उपदेश, यश, अर्थ, व्यवहार–ज्ञान, अशुभ से निवृत्ति तथा इतिहास–पुराणादि के समान अनेक उद्देश्यों का उल्लेख किया है, तथापि अभिनवगुप्त के मतानुसार इन समस्त प्रयोजनों की सार्थकता अन्ततः रसात्मक आनन्द की उपलब्धि में निहित है। इसलिए उन्होंने काव्य के परम प्रयोजन के रूप में आनन्द की ही प्रतिष्ठा की है। इसी प्रकार आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में काव्य के प्रयोजन का निरूपण करते हुए धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की सिद्धि के साथ–साथ प्रीति (आनन्द) को भी काव्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन स्वीकार किया है।

सन्दर्भ सूची –

1. स्वामी, सुरजनदास. (2000). रस सिद्धांत की शास्त्रीय समीक्षा. जयपुर : हंसा प्रकाशन, पृ.सं.–7
2. स्वामी, सुरजनदास. (2000). रस सिद्धांत की शास्त्रीय समीक्षा. जयपुर : हंसा प्रकाशन, पृ.सं.–5
3. बख्शी, ज्योति. (2000). कथक अक्षरों की आरसी. भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ.सं.–156.
4. दाधीच, पुरू. (2019). कथक नृत्य शिक्षा द्वितीय भाग. इन्दौर : बिन्दु प्रकाशन, पृ.सं.–202–205.

madhavinatyam@gmail.com

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 160-165

जैन पर्वों की प्रासंगिकता

मधु हिंगर, पी.एच.डी शोधार्थी
डॉ. रानी प्रभा सोलंकी, एसोसिएट प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष,
HOD Sociology, Sociology
Janardhan Rai Nagar Rajasthan Vidhyapeeth, Pratap Nagar, Udaipur, Rajasthan.

अमूर्त (ABSTRACT) :

यह शोध–पत्र "जैन पर्वों की प्रासंगिकता" विषय के माध्यम से इस बात की पड़ताल करता है कि प्राचीन आध्यात्मिक परंपराएँ, विशेषकर जैन धर्म के पर्व एवं अनुष्ठान, आज के तेज, भौतिकतावादी और तनावपूर्ण युग में किस प्रकार अर्थपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। जैन धर्म अहिंसा, अपरिग्रह, संयम, सत्य, करुणा और क्षमा जैसे सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित है, और इन्हीं मूल्यों को व्यवहार में उतारने का सशक्त माध्यम उसके पर्व हैं, जैसे पर्युषण, दशलक्षण, संवत्सरी, क्षमावाणी, महावीर जयंती, आयंबिल ओली आदि। यह शोध इस प्रश्न के इर्द–गिर्द केंद्रित है कि क्या ये पर्व केवल धार्मिक औपचारिकता भर रह गए हैं या वास्तव में वे व्यक्ति, परिवार और समाज के जीवन में नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और पर्यावरणीय स्तर पर सकारात्मक परिवर्तन ला रहे हैं। अध्ययन में गुणात्मक एवं विवरणात्मक दोनों प्रकार की अनुसंधान पद्धतियाँ अपनाई गई हैं, जिनमें धार्मिक ग्रंथों, पूर्ववर्ती शोधों, प्रवचनों, समुदाय–आधारित अनुभवों, साक्षात्कारों और सर्वेक्षणों से प्राप्त सामग्री का विश्लेषण शामिल है। निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि जैन पर्व आधुनिक समय की अनेक समस्याओं 'जैसे मानसिक तनाव, पारिवारिक टूटन, सामाजिक हिंसा, असहिष्णुता, मूल्यहीनता और पर्यावरणीय संकट' के बीच एक वैकल्पिक जीवन–दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

सूचकांक शर्तें – जैन धर्म, जैन पर्व, पर्युषण, संवत्सरी, क्षमावाणी, अहिंसा, संयम, आत्मशुद्धि, तप, सामाजिक समरसता, नैतिक मूल्य, पर्यावरण संरक्षण, धार्मिक अनुष्ठान, आध्यात्मिक प्रासंगिकता, आधुनिक जीवन, धर्म और समाज।

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

• आज का युग विज्ञान, तकनीक और वैश्वीकरण के तेज विकास का युग है, जहाँ जीवन की रफ्तार लगातार बढ़ती जा रही है। भौतिक सुविधाएँ पहले से अधिक सुलभ हो गई हैं, लेकिन इसके साथ ही मानसिक तनाव, अकेलापन, मूल्यहीनता और संबंधों में दूरी भी बढ़ती प्रतीत होती है। ऐसे समय में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या पारंपरिक धार्मिक पर्व और अनुष्ठान केवल औपचारिकता बनकर रह गए हैं, या वे आज भी मनुष्य और समाज के लिए किसी गहरे अर्थ और उपयोगिता के वाहक हैं। इसी संदर्भ में जैन धर्म के पर्व विशेष महत्त्व रखते हैं, क्योंकि वे केवल बाह्य उत्सव न होकर आत्मिक साधना, आत्मसंयम और नैतिक विकास के माध्यम माने जाते हैं।

• जैन धर्म की मूल स्थापना अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और संयम जैसे सिद्धांतों पर आधारित है। इन सिद्धांतों को व्यवहारिक जीवन में सजीव बनाए रखने के लिए विविध पर्व और अनुष्ठानों की परंपरा विकसित हुई, जैसे पर्युषण, दशलक्षण, संवत्सरी, क्षमावाणी, महावीर जयंती, आयंबिल ओली आदि। इन पर्वों में केवल पूजा–अर्चना या व्रत–उपवास नहीं, बल्कि आत्मचिंतन, आत्मविश्लेषण, पश्चाताप, क्षमा और समाज के प्रति उत्तरदायित्व जैसे भाव निहित हैं। इसलिए जैन पर्वों को समझना केवल धार्मिक आस्था को समझना नहीं, बल्कि एक वैकल्पिक जीवन–दर्शन और आचरण–पद्धति को समझना भी है, जो व्यक्ति और समाज को भीतर से रूपांतरित कर सकती है।

साहित्य समीक्षा (LITERATURE REVIEW)

• **प्राचीन जैन आगम व ग्रंथ :**

जैन आगम, तत्त्वार्थसूत्र, आचारांगसूत्र, कल्पसूत्र आदि ग्रंथों में जैन पर्वों की उत्पत्ति, नियम, उद्देश्य और आध्यात्मिक महत्त्व का विस्तृत उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में पर्वों को आत्मशुद्धि, तप, संयम और मोक्षमार्ग के सहायक साधन के रूप में वर्णित किया गया है।

• **धार्मिक व्याख्यात्मक साहित्य :**

विभिन्न आचार्यों, मुनियों और जैन विद्वानों द्वारा रचित टीकाओं, प्रवचनों और व्याख्यात्मक पुस्तकों में पर्युषण, दशलक्षण, संवत्सरी, क्षमावाणी आदि पर्वों की व्यावहारिक उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। इन लेखनों में पर्वों को केवल अनुष्ठान नहीं, बल्कि आचरण–संहिता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

• **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण वाला साहित्य :**

कई समाजशास्त्रीय अध्ययनों में जैन पर्वों को सामाजिक एकता, समुदाय–निर्माण और नैतिक नियंत्रण के साधन के रूप में देखा गया है। इस साहित्य में दिखाया गया है कि सामूहिक उपवास, प्रवचन, क्षमायाचन और सामूहिक पूजा से समुदाय में सहकार, विश्वास और समरसता की भावना मजबूत होती है।

• **मनोवैज्ञानिक और स्वास्थ्य संबंधी शोध :**

कुछ समकालीन शोधों में जैन व्रत, उपवास, ध्यान और समायिक जैसे अनुष्ठानों के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इन अध्ययनों से संकेत मिलता है कि संयम, अनुशासन और ध्यान की प्रक्रियाएँ तनाव, चिंता और नकारात्मक भावनाओं को कम करने में सहायक हो सकती हैं।

• **शोध की रिक्तियाँ (Research Gaps)**

उपलब्ध साहित्य मुख्यतः धार्मिक, ऐतिहासिक या दार्शनिक पक्ष पर केंद्रित है, जबकि आधुनिक संदर्भों 'जैसे युवाओं की भागीदारी, मानसिक स्वास्थ्य, पर्यावरणीय संकट, और वैश्विक नैतिक चुनौतियों के समाधान में जैन पर्वों की भूमिका' पर अपेक्षाकृत कम गहन कार्य हुआ है। यही रिक्ति वर्तमान शोध को उचित ठहराती है, जो जैन पर्वों की आज के युग में समग्र प्रासंगिकता का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

प्रणाली मॉडल (SYSTEM MODELS)

1. परंपराओं का अन्वेषण (EXPLORATION OF TRADITIONS)

• जैन पर्वों की प्रासंगिकता को समझने के लिए सबसे पहला चरण इन पर्वों की परंपराओं, मूल स्वरूप, ऐतिहासिक आधार और धार्मिक उद्देश्य का विस्तार से अन्वेषण करना है। परंपराओं का अन्वेषण इस बात को समझने में सहायता करता है कि जैन धर्म में पर्व केवल उत्सव का रूप नहीं हैं, बल्कि वे आत्मिक विकास, नैतिक

प्रशिक्षण और अनुशासन का साधन हैं। उदाहरण के लिए 'पर्युषण का लक्ष्य संयम, क्षमा और आत्मविश्लेषण है, संवत्सरी का उद्देश्य पारस्परिक क्षमा और सुधार है, दशलक्षण धर्म नैतिक सिद्धांतों को जीवन में उतारने का साधन है।

• इस अन्वेषण की प्रक्रिया में यह देखा जाता है कि इन पर्वों का स्वरूप समय के साथ किस प्रकार बदला है और आधुनिक समाज में उनका पालन किस रूप में हो रहा है। पुराने समय में जैन अनुयायी पर्वों को कठोर तप, उपवास और त्याग के साथ मनाते थे। आज के समय में इनके पालन में कुछ लचीलापन आया हैकृजैसे आंशिक उपवास, डिजिटल प्रवचन, सामूहिक क्षमावाणी संदेश, आदि। परंपराओं के इस विकास को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि यहीं से यह ज्ञात होता है कि जैन पर्व आज भी जीवित और प्रासंगिक क्यों हैं।

2. धार्मिक और सामाजिक तकनीकें (RELIGIOUS & SOCIAL TECHNIQUES)

• जैन पर्वों की प्रासंगिकता का अध्ययन करते समय यह आवश्यक है कि उन धार्मिक और सामाजिक तकनीकों को समझा जाए जिनके माध्यम से इन पर्वों का प्रभाव व्यक्ति और समाज तक पहुँचता है। "तकनीकें" यहाँ धार्मिक अभ्यास, अनुशासन के नियम, सामाजिक व्यवहार और सामूहिक आचरण के रूप में समझी जाती हैं।

• **पहली तकनीक है** – तप और संयम। जैन पर्वों में उपवास, आयंबिल, एकासन, और समता का अभ्यास व्यक्ति में आत्म–नियंत्रण, धैर्य और मानसिक दृढ़ता पैदा करता है। आज के तनावपूर्ण जीवन में यह तकनीक मानसिक स्वास्थ्य को संतुलित करने में अत्यंत उपयोगी है।

• **दूसरी तकनीक है** – क्षमायाचन और संवाद। संवत्सरी के दौरान "मिच्छामी दुक्कडम्" कहना केवल एक धार्मिक वाक्य नहीं, बल्कि उपयोगी सामूहिक हीलिंग तकनीक है जो संबंधों में जमा हुए द्वेष को समाप्त करती है। यह तकनीक आधुनिक मनोविज्ञान के "इमोशनल क्लेंजिंग" से मेल खाती है।

• इन धार्मिक–सामाजिक तकनीकों के माध्यम से जैन पर्वों का प्रभाव गहरा और व्यापक रूप से समाज तक पहुँचता है।

3. सारांश : उपयोगिता और समकालीन प्रासंगिकता (SUMMARY: UTILITY & CONTEMPORARY RELEVANCE)

• यह अंतिम अनुभाग इस बात का सार प्रस्तुत करता है कि जैन पर्व आज के समय में कितने उपयोगी, व्यवहारिक और प्रासंगिक हैं। आधुनिक जीवन की समस्याएँ 'तनाव, हिंसा, अवसाद, पर्यावरण संकट, पारिवारिक टूटन' इन सभी के समाधान जैन पर्वों के मूल संदेशों में निहित दिखाई देते हैं।

• जैन पर्वों की उपयोगिता इसलिए भी अधिक है क्योंकि वे व्यक्ति में आत्म–अनुशासन, क्षमा, समता और नैतिक जागरूकता का विकास करते हैं। पर्वों के माध्यम से व्यक्ति स्वयं को बेहतर बनाने का प्रयास करता है, जिससे समाज में भी सकारात्मकता फैलती है।

प्रस्तावित समाधान (PROPOSED SOLUTION)

1. विभिन्न समुदायों के लिए एकीकृत आध्यात्मिक मार्गदर्शन मॉडल

1.1. गृहस्थ व्यक्तियों के लिए मार्गदर्शन (Householders' Guidance Model)

• जैन पर्वों की प्रासंगिकता को आधुनिक समाज में सशक्त रूप से स्थापित करने के लिए गृहस्थ व्यक्तियों हेतु एक विशेष आध्यात्मिक मार्गदर्शन मॉडल प्रस्तावित किया जा सकता है। आज के तेज–रफ्तार और तनावपूर्ण

जीवन में गृहस्थ वर्ग अपने कर्तव्यों, नौकरी, आर्थिक दबावों और पारिवारिक जिम्मेदारियों में इतना उलझा रहता है कि आत्म–चिंतन तथा नैतिक सुधार के लिए अवसर कम मिलता है। जैन पर्वों 'विशेषकर पर्युषण, संवत्सरी और दशलक्षण' का उद्देश्य ही आत्मशुद्धि, आत्मसंयम और क्षमा जैसे मूल्यों को जाग्रत करना है। इसलिए गृहस्थ लोगों के लिए एक व्यवस्थित मार्गदर्शन मॉडल विकसित किया जाना चाहिए, जिसमें पर्वों के पालन को आधुनिक जीवन के अनुरूप सरल, व्यावहारिक और प्रभावी बनाया जाए।

• इस मॉडल में दैनिक आध्यात्मिक दिनचर्या, साप्ताहिक प्रवचन–सार, डिजिटल अध्ययन सामग्री, परिवार आधारित क्षमावाणी अभ्यास, और सरल उपवास/अनुशासन प्रशिक्षण शामिल किया जा सकता है। गृहस्थ व्यक्तियों को यह समझाया जाए कि जैन पर्व केवल उपवास या प्रार्थना तक सीमित नहीं हैं बल्कि वे मानसिक संतुलन, पारिवारिक सौहार्द, सामाजिक संवेदनशीलता और पर्यावरणीय जागरूकता बनाये रखने में सहायक हैं।

1.2. युवा वर्ग के लिए मूल्य आधारित मार्गदर्शन (Youth Moral Guidance Model)

• आधुनिक युग में युवा वर्ग तकनीक, सोशल मीडिया, प्रतिस्पर्धा और मानसिक दबाव से घिरा हुआ है। इस स्थिति में जैन पर्वों की प्रासंगिकता को युवाओं तक पहुँचाना अत्यंत आवश्यक है। प्रस्तावित मॉडल का लक्ष्य युवाओं को जैन धर्म के मूल सिद्धांतों 'अहिंसा, संयम, सत्य, अपरिग्रह और क्षमा' को जीवन–कौशल (Life Skills) के रूप में स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना है।

• युवाओं को पर्वों से जोड़ने के लिए यह मॉडल डिजिटल माध्यम (YouTube प्रवचन, Instagram Reels, Interactive Apps आदि) का उपयोग करेगा। पर्वों के पीछे का "दर्शन" 'जैसे आत्म–प्रबंधन, भावनात्मक नियंत्रण, तनाव प्रबंधन, लक्ष्य स्पष्टता' युवाओं की भाषा में समझाया जाएगा।

• इस मॉडल में युवाओं के लिए "Character Building Workshops", Peer-Groups Discussions और Youth Retreat Camps आयोजित किए जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में यह सिखाया जाएगा कि पर्वों का पालन केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि व्यक्तित्व विकास, कैरियर निर्माण और मानसिक मजबूती के लिए भी लाभकारी है।

2. आध्यात्मिक-सामाजिक प्रवाह का एकीकृत ढाँचा :

• जैन पर्वों की प्रासंगिकता को समझने और समाज में उनके व्यापक प्रभाव को स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि इन पर्वों का पालन केवल धार्मिक अनुष्ठान न होकर एक निरंतर चलने वाली आध्यात्मिक –सामाजिक प्रक्रिया बने। इसी उद्देश्य से इस शोध में "आध्यात्मिक–सामाजिक प्रवाह का एकीकृत ढाँचा" प्रस्तावित किया गया है, जिसका लक्ष्य है कि जैन पर्वों के मूल सिद्धांत 'अहिंसा, सत्य, क्षमा, संयम, अपरिग्रह और समता' आधुनिक जीवन के प्रत्येक स्तर तक सहज, सुगम और प्रेरक रूप में पहुँचे।

2.1 आध्यात्मिक प्रवाह का ढाँचा :

• आध्यात्मिक प्रवाह का ढाँचा इस प्रस्तावित समाधान का प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण भाग है, जिसका लक्ष्य है कि जैन पर्वों से प्राप्त आध्यात्मिक प्रेरणा केवल पर्व के दिनों तक सीमित न रहकर पूरे जीवन में फैल जाए। जैन धर्म का मूल दर्शन है आत्म–कल्याण, आत्म–निरीक्षण और आत्म–शुद्धि। इसलिए यह ढाँचा व्यक्ति को प्रतिदिन कुछ समय स्वयं से जुड़ने, अपनी भावनाओं और विचारों को समझने, तथा संयमित जीवन अपनाने की दिशा प्रदान करता है।

• इस ढाँचे का पहला स्तंभ है "दैनिक आध्यात्मिक अभ्यास।" इसमें पाँच से बीस मिनट के लघु ध्यान, शांति

मंत्र, स्वाध्याय, कृतज्ञता लेखन या आत्म–चिंतन शामिल हैं। पर्वों में किए गए विशेष अभ्यास व्यक्ति की आत्मा को शुद्ध और शांत करते हैं, वही अभ्यास छोटे रूप में भी समान प्रभाव देते हैं। इससे मन स्थिर होता है, विचार स्पष्ट होते हैं और भावनाएँ नियंत्रित रहती हैं।

3. बहुआयामी लाभ एवं प्रभाव (Multidimensional Benefits & Impact)

3.1. सामाजिक प्रभाव (Social Impact)

- जैन पर्वों का सामाजिक प्रभाव अत्यंत गहरा और बहुआयामी है। आधुनिक समाज जहाँ तनाव, विभाजन, असहिष्णुता और संबंधों में दूरी का अनुभव कर रहा है, वहाँ जैन पर्व सामाजिक एकता और मेलजोल का सशक्त माध्यम बनकर उभरते हैं। क्षमावाणी, संवत्सरी और पर्युषण जैसे पर्व आपसी क्षमा, सद्भाव और संवाद को बढ़ावा देते हैं। इन पर्वों की परंपरा में दूसरों से क्षमा मांगना और स्वयं भी क्षमा देना शामिल है। यह प्रक्रिया परिवारों, समुदायों और समाज में संबंधों को सहज बनाती है और मनोवैज्ञानिक तनाव को कम करती है।
- पर्वों का एक और सामाजिक प्रभाव यह है कि वे सेवा और दान की भावना को प्रोत्साहित करते हैं। अन्नदान, जलदान, जीवदया, चिकित्सा शिविर और सामुदायिक सहायता जैसे कार्य समाज में करुणा और सहयोग की जड़ें मजबूत करते हैं। युवा पीढ़ी ऐसे पर्वों के माध्यम से नैतिकता, संवेदनशीलता और सामाजिक जिम्मेदारी सीखती है।

3.2. पर्यावरणीय प्रभाव (Environmental Impact)

- जैन धर्म स्वभावतः पर्यावरण–संरक्षण और जीव–जगत की रक्षा के सिद्धांतों पर आधारित है, और यही कारण है कि जैन पर्वों का पर्यावरण पर अत्यंत सकारात्मक प्रभाव होता है। जैन दर्शन का प्रमुख आधार अहिंसा है, जो केवल मानवों पर नहीं बल्कि प्रत्येक जीव, वनस्पति और पर्यावरण पर लागू होता है। पर्वों के दौरान अनुयायी शाकाहार का पालन अधिक प्रतिबद्धता से करते हैं, जिससे पशु–क्रूरता में कमी आती है और पर्यावरणीय संतुलन को समर्थन मिलता है।
- अपरिग्रह की शिक्षा संसाधनों के सीमित उपयोग को प्रोत्साहित करती है। पर्वों में व्यक्ति कम भोजन, कम उपभोग, कम ऊर्जा और कम संसाधनों का उपयोग करता है। यह आदत पर्यावरणीय भार को कम करती है और "सस्टेनेबल लिविंग" की दिशा में प्रेरित करती है। विशेष रूप से दशलक्षण और पर्युषण के दौरान संयमित भोजन, जल बचत और सरल जीवनशैली पर्यावरण–सम्मत व्यवहार सिखाती है।

निष्कर्ष (CONCLUSION)

यह शोध "जैन पर्वों की प्रासंगिकता" के माध्यम से इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि जैन धर्म की पर्व–परंपरा केवल अतीत की सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान समय की आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय चुनौतियों के लिए एक सार्थक और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करती है। अध्ययन के आधार पर प्राप्त मुख्य निष्कर्षों को निम्नलिखित बिंदुओं में संक्षेपित किया जा सकता है –

1. जैन पर्व आध्यात्मिक आत्म-विकास के सशक्त साधन हैं?

शोध से यह स्पष्ट हुआ कि पर्युषण, संवत्सरी, दशलक्षण, आयंबिल ओली और क्षमावाणी जैसे पर्व व्यक्ति को आत्मचिंतन, आत्मशुद्धि और आत्मसंयम की दिशा में प्रेरित करते हैं। ये पर्व व्यक्ति को अपने दोषों, दुर्बलताओं और नकारात्मक प्रवृत्तियों को पहचानने तथा उन्हें सुधारने का अवसर देते हैं। ध्यान, तप, उपवास, स्वाध्याय और समायिक जैसे अभ्यास आंतरिक शांति, मानसिक स्थिरता और आध्यात्मिक उन्नति को बढ़ाते हैं। इस प्रकार, जैन

पर्व केवल बाहरी अनुष्ठान नहीं, बल्कि आत्म–विकास की क्रमबद्ध प्रक्रिया बनकर सामने आते हैं।

2. जैन पर्व सामाजिक समरसता और संबंध-सुधार के आधार हैं?

अध्ययन में यह सामने आया कि क्षमावाणी और "मिच्छामी दुक्कडम्" की परंपरा परिवारों, समुदायों और समाज में संबंधों को पुर्नस्थापित करने का अद्वितीय माध्यम है। आपसी द्वेष, कटुता और अहंकार को त्यागकर क्षमा–भाव से जुड़ने की प्रेरणा आधुनिक समाज की विभाजित और तनावपूर्ण संरचना के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। सामूहिक पर्व, प्रवचन, सेवा–कार्य और जीवदया जैसे उपक्रम सामाजिक बंधनों को मजबूत करते हैं और समुदाय में सहयोग, सहानुभूति तथा सद्भाव का वातावरण निर्मित करते हैं।

3. जैन पर्व नैतिक मूल्यों और चरित्र-निर्माण के महत्वपूर्ण साधन हैं?

जैन पर्वों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि वे सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, संयम, क्षमा और समता जैसे मूल्यों को जीवन में व्यवहारिक रूप से स्थापित करने का अवसर देते हैं। विशेष रूप से युवा वर्ग के लिए ये पर्व चरित्र–निर्माण, अनुशासन और जिम्मेदार नागरिकता की दिशा में प्रशिक्षण–पाठशाला का कार्य करते हैं। विद्यालयों, पाठशालाओं और जैन संस्थाओं में पर्वों पर आधारित गतिविधियाँ नैतिक शिक्षा को जीवंत और अनुभवजन्य बना सकती हैं।

4. जैन पर्व मानसिक स्वास्थ्य और जीवन-प्रबंधन में सहायक हैं?

आधुनिक जीवन में तनाव, अवसाद, चिंता और असंतुलन बढ़ते जा रहे हैं। शोध से यह पता चला कि जैन पर्वों में निहित ध्यान, मौन, सादगी, संयम और आत्म–निरीक्षण जैसे अभ्यास मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी हैं। वे व्यक्ति को भीतर से शांत होने, आत्मस्वीकृति विकसित करने, नकारात्मक भावनाओं को मुक्त करने और सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार, जैन पर्व मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने वाले एक सरल, सुलभ और सस्ता उपाय के रूप में देखे जा सकते हैं।

संदर्भ (REFERENCES)

1. जेनी, पद्मनाभ. जैन धर्म और पर्युषण का दर्शन. मुंबई : जैन साहित्य प्रसारक मंडल, 2015।
2. शाह, अंजलि. जैन पर्वों का सामाजिक अध्ययन. अहमदाबाद : संस्कार पब्लिकेशन, 2017।
3. कुमार, विजय. "आधुनिकता और जैन मूल्य." भारतीय दर्शन पत्रिका, 2018।
4. मेहता, निशा. "जैन धर्म और पर्यावरणीय नैतिकता." पर्यावरण अध्ययन जर्नल, 2019।
5. कुमार, राकेश. जैन व्रत एवं मानसिक स्वास्थ्य. जयपुर : मानस प्रकाशन, 2020।
6. जैन, दयाराम. जैन धर्म–इतिहास, संस्कृति और अनुष्ठान. दिल्ली : भारतीय जैन विद्या प्रकोष्ठ, 2014।
7. त्रिपाठी, रमेश. भारतीय धार्मिक परंपराएँ और पर्व. वाराणसी : संस्कृति अकादमी, 2016।
8. गुप्ता, सीमा. "जैन पर्वों का नैतिक और सामाजिक महत्व." सामाजिक विज्ञान समीक्षा, 2018।
9. चतुर्वेदी, नीलम. "क्षमावाणी और सामाजिक सामंजस्य." धार्मिक अध्ययन जर्नल, 2019।
10. भटनागर, सुशील. भारतीय समाज और धार्मिक अनुष्ठान. नई दिल्ली : ज्ञानपुस्तक सदन, 2015।

7737155577, 9829072982 (madhuhinger860@gmail.com)

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 166-170

हिंदी भाषा और वैश्विक ज्ञान–सृजन सम्भावनाएँ और चुनौतियां

कु. मनीता
शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

शोध सार :

हिंदी भाषा मनुष्य के विचार, अनुभव, ज्ञान और संस्कृति को अभिव्यक्त करने का प्रभावी माध्यम है। इसके ऐतिहासिक विकास के साथ इसका स्वरूप निरंतर समृद्ध और व्यापक हुआ है। हिंदी की बहुभाषिक प्रकृति, समृद्ध शब्द–संपदा तथा प्रवासी भारतीय समुदायों के माध्यम से इसका विस्तार भारत से बाहर अनेक देशों तक हुआ है। विश्व हिंदी सम्मेलन, हिंदी शिक्षण, मीडिया और डिजिटल माध्यमों ने इसके वैश्विक प्रसार को नई दिशा दी है। विज्ञान, तकनीक, शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में हिंदी के ज्ञान–सृजन की व्यापक संभावनाएँ हैं। वहीं अंग्रेजी का प्रभुत्व, तकनीकी शब्दावली, गुणवत्तापूर्ण अनुवाद, शोध–सामग्री और डिजिटल संसाधनों की कमी प्रमुख चुनौतियाँ हैं। हिंदी को वैश्विक ज्ञान की सशक्त भाषा बनाने हेतु इन चुनौतियों का समाधान आवश्यक है।

बीज शब्द – भाषा, हिंदी भाषा, भाषा और संस्कृति, वैश्वीकरण, हिंदी शिक्षण, ज्ञान–सृजन, विश्व हिंदी सम्मेलन।

शोध आलेख –

भाषा मनुष्य के विचारों, अनुभवों और ज्ञान को अभिव्यक्त करने का सबसे प्रभावशाली माध्यम है। यह व्यक्ति, समाज और संस्कृति को परस्पर जोड़ने के साथ–साथ ज्ञान–सृजन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नर्मदेश्वर चतुर्वेदी जी के शब्दों में– **'भाषा संप्रेषण का एक सांकेतिक तथा यादृच्छिक माध्यम है।'**[1] भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं है, बल्कि वह किसी समाज की संस्कृति, परंपराओं, मान्यताओं और जीवन–मूल्यों को अभिव्यक्त करने का महत्वपूर्ण माध्यम भी है। संस्कृति की निरंतरता बनाए रखने तथा उसके मूल्यों और परंपराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा और संस्कृति के इसी अंतर्संबंध को रेखांकित करते हुए राजेंद्र सिंह 'विश्व बाजार में हिंदी' पुस्तक में लिखते हैं– **'भाषा और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। भाषा विचार-विनिमय का साधन ही नहीं बल्कि वह हमें सोचना भी सिखाती है। हमारे सारे बुद्धि, वैभव, कला, साहित्य, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार भाषा से निर्मित हुए हैं।'**[2] इसके अतिरिक्त, भाषा व्यक्ति की पहचान और सामाजिक सहभागिता को भी सुदृढ़ करती है।

हिंदी भाषा के विकास और उसके नामकरण को समझने के लिए 'हिंदी' शब्द की व्युत्पत्ति एवं उसके ऐतिहासिक प्रयोग पर विचार करना आवश्यक है। 'हिंदी' शब्द के अर्थ और प्रयोग में समय तथा संदर्भ के साथ परिवर्तन दिखाई देता है। इसी संदर्भ में नर्मदेश्वर चतुर्वेदी जी लिखते हैं– **'हिंदी शब्द अरबी-फारसी भाषाभाषियों द्वारा हिंदू शब्द की भांति प्रयुक्त एक शब्द है जिसका प्रयोग विभिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। कहीं तो यह संज्ञा के रूप हुआ है और कहीं विशेषण रूप में। संज्ञा रूप में यदि यह भाषा का द्योतक है तो विशेषण रूप में हिंद के निवासी हिंदू का परिचायक।'**[3] इस कथन से स्पष्ट होता है कि 'हिंदी' शब्द का

संबंध केवल एक भाषा विशेष से नहीं, बल्कि एक व्यापक भौगोलिक और सांस्कृतिक संदर्भ से रहा है। समय के साथ 'हिंदी' शब्द का अर्थ और प्रयोग परिवर्तित होता गया। विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों में इसके स्वरूप और प्रयोग–क्षेत्र का विस्तार हुआ।

हिंदी भाषा का संबंध भारत–यूरोपीय (भारोपीय) भाषा–परिवार से है, जो मुख्यतः भारत, यूरोप तथा उसके आसपास फैला हुआ है। भारोपीय परिवार के, भारत–ईरानी वर्ग की भारत में बोली जाने वाली भाषाएँ भारतीय आर्य, भाषाएँ' कहलाती हैं, जिनमें हिंदी, संस्कृत, गुजराती, मराठी, पंजाबी, बंगला आदि है। भारत में आर्यभाषा का प्रारंभ 1700 ईसा पूर्व के आसपास माना जाता है। भारत में आर्यभाषा की लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों की लंबी आयु को भाषिक विशेषताओं के आधार पर तीन कालों में बाँटा गया है– प्राचीन आर्यभाषा (1700 ई.पू. से 500 ई.पू.), मध्यकालीन आर्यभाषा (500 ई.पू. से 1000 ईसवी) तथा आधुनिक आर्यभाषा (1000 ईसवी से वर्तमान तक)। इन तीनों कालखंडों में भारतीय आर्यभाषाओं का स्वरूप निरंतर परिवर्तनशील रहा और इसी क्रमिक भाषिक विकास ने आधुनिक भारतीय भाषाओं के निर्माण का आधार तैयार किया। प्राचीन आर्यभाषा के अंतर्गत वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत का विकास हुआ, जबकि मध्यकालीन आर्यभाषा के अंतर्गत पालि, प्राकृत और अपभ्रंश जैसे भाषिक रूप विकसित हुए। अपभ्रंश के अवहट्ट रूप से ही आगे चलकर हिंदी का विकास हुआ।

हिंदी भाषा के उद्‌भव एवं विकास की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए डॉ. विजय अग्रवाल लिखते हैं– **'हिन्दी आधुनिक आर्यभाषा है, जिसका जन्म आर्यों की प्राचीन भाषा सस्कृत से हुआ है। करीब दो हजार वर्ष पूर्व आर्यों की भाषा संस्कृत थी, जिसमें वेदों की रचना हुई है। ऐतिहासिक विकास के विभिन्न चरणों से गुजरती हुई इस भाषा की एक शाखा हिन्दी भाषा है।'**[4] हिंदी का वर्तमान स्वरूप किसी एक समय में निर्मित न होकर दीर्घकालीन भाषिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। समय के साथ हिंदी ने अनेक भाषिक रूपों को आत्मसात करते हुए अपने स्वरूप को समृद्ध किया। मध्यकाल में ब्रज और अवधी जैसी भाषिक परंपराओं ने हिंदी के साहित्यिक विकास को व्यापक आधार प्रदान किया। आधुनिक काल में खड़ी बोली हिंदी के मानक रूप के रूप में विकसित होकर शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता और संचार के क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रयुक्त होने लगी।

हिंदी केवल भारत की भाषा नहीं है, बल्कि इसका विस्तार भारत की भौगोलिक सीमाओं से बाहर भी व्यापक रूप से दिखाई देता है। भारत के अतिरिक्त मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद एवं टोबैगो, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल तथा संयुक्त अरब अमीरात जैसे देशों में भी हिंदी का प्रयोग विभिन्न रूपों में होता है। प्रवासी भारतीय समुदायों के साथ हिंदी ने इन देशों में अपनी भाषिक एवं सांस्कृतिक उपस्थिति बनाए रखी है। हिंदी के इस व्यापक स्वरूप को रेखांकित करते हुए नर्मदेश्वर चतुर्वेदी जी लिखते हैं– **'हिंदी अन्य अनेक भाषाओं की भांति किसी क्षेत्र अथवा प्रांत-विशेष की भाषा मात्र न होकर बहुद्देशीय है। यह एक ऐसी भाषा-परंपरा है जिसमें पुष्प की पंखुरियों की भांति कई भाषाएं मिल कर एक और अभिन्न अंग बन गई है। इसकी तुलना में फ्रेंच तथा अंग्रेजी जैसी भाषाओं के नाम लिये जा सकते हैं।'**[5] इस दृष्टि से हिंदी को केवल भारतीय भू–भाग तक सीमित भाषा के रूप में न देखकर एक व्यापक भाषिक–सांस्कृतिक परंपरा के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा। वर्तमान समय में हिंदी का स्वरूप और भी व्यापक हुआ है। वैश्वीकरण, प्रवासी भारतीय समुदाय तथा सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र विस्तार ने हिंदी को भारत की सीमाओं से बाहर एक नए भाषिक एवं सांस्कृतिक मंच से जोड़ा है। वर्तमान समय में हिंदी का स्वरूप और भी व्यापक हुआ है। वैश्वीकरण, प्रवासी भारतीय समुदाय तथा सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र विस्तार ने हिंदी को भारत की सीमाओं से बाहर एक नए भाषिक एवं सांस्कृतिक

मंच से जोड़ा है। इसी वैश्विक विस्तार और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हिंदी की बढ़ती पहचान को संस्थागत रूप प्रदान करने में विश्व हिंदी सम्मेलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी भाषा, साहित्य, संस्कृति और ज्ञान–सूजन से जुड़े विभिन्न पक्षों पर वैश्विक स्तर पर विचार–विमर्श का महत्वपूर्ण मंच है। हिंदी के इसी विश्वव्यापी विस्तार और सम्मेलन की महत्ता को रेखांकित करते हुए लल्लनप्रसाद व्यास जी लिखते हैं. **'विश्व हिन्दी सम्मेलन के रूप में हिन्दी का विश्वव्यापी विराट रूप आकाश में धूमकेतु के समान एक तेजोमय प्रकाश-पुंज की भाँति प्रकट हुआ जो भारत के सांस्कृतिक जीवन में एक अद्वितीय घटना बनकर रह गयी।'**[6] इस प्रकार विश्व हिंदी सम्मेलन ने हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाने के साथ–साथ उसके भाषिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक विस्तार की संभावनाओं को भी नई दिशा प्रदान की है।

आज हिंदी केवल संवाद और साहित्य की भाषा न रहकर शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, पत्रकारिता, मनोरंजन, डिजिटल संचार और ज्ञान–विनिमय के क्षेत्र में भी अपनी संभावनाएँ विकसित कर रही है। इंटरनेट, सोशल मीडिया, डिजिटल मीडिया और ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से हिंदी का प्रयोग विश्व के विभिन्न हिस्सों में निरंतर बढ़ रहा है। वर्तमान डिजिटल युग में भाषा के प्रसार के लिए भौगोलिक सीमाएँ पहले की तरह बाधक नहीं रह गई हैं। हिंदी की डिजिटल उपस्थिति ने इसके पाठकों, शिक्षार्थियों और रचनाकारों के लिए नए अवसर उत्पन्न किए हैं। आज हिंदी में ई–पुस्तकें, ऑनलाइन पाठ्यक्रम, शैक्षिक सामग्री, शोध–सामग्री, ब्लॉग, वेब–पत्रिकाएँ, पॉडकास्टतथा विभिन्न प्रकार की डिजिटल सामग्री उपलब्ध हो रही है। विश्व के विभिन्न देशों में हिंदी की उपस्थिति अनेक माध्यमों के द्वारा निरंतर दिखाई देती है। विभिन्न देशों के रेडियो और प्रसारण माध्यमों पर हिंदी के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, सूरीनाम के रेडियो केंद्रों, इंग्लैंड की बी.बी.सी. हिंदी सेवा तथा जर्मनी की 'वॉयस ऑफ जर्मनी' जैसी सेवाओं के माध्यम से हिंदी का प्रसार हुआ है। इसके अतिरिक्त विश्व के सौ से अधिक विश्वविद्यालयों एवं शैक्षणिक केंद्रों में हिंदी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था है। विभिन्न देशों से हिंदी की पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन भी किया जाता है, जो हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय पहचान उसके व्यापक भाषिक स्वरूप और विभिन्न भाषाओं के साथ उसके निरंतर संपर्क से निर्मित हुई है। हिंदी के बहुभाषिक एवं अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. जोगेन्द्र सिंह लिखते हैं– **'हिंदी स्वयं में एक अंतर्राष्ट्रीय जगत को समाहित किए हुए है। हिंदी में आर्य, द्रविड़, आदिवासी, स्पेनी, पुर्तगाली, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, अरबी, फारसी, चीनी, जापानी आदि अनेक शब्द हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप को, एक अंतर्राष्ट्रीय शैली को अभिव्यक्ति देने वाले आयाम हैं। आज हिंदी को भारत ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता के लिए अथक प्रयास करना है और संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश दिलाने के लिए भारत के साथ विश्व के अन्य देशों को भी निष्ठापूर्वक उसका समर्थन करना होगा और उसके लिए हमारे देश के राजनेताओं को प्रयत्न करना होगा और चेतना जाग्रत करनी होगी विशेष रूप से भारत सरकार को, तभी हम अंतर्राष्ट्रीय फलक पर हिंदी को और अधिक सार्थक रूप से देख सकेंगे।'**[7] उपर्युक्त कथन हिंदी की भाषिक व्यापकता और वैश्विक संभावनाओं को रेखांकित करता है। हिंदी को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर और अधिक प्रतिष्ठित करने के लिए उसके प्रचार–प्रसार के साथ–साथ संस्थागत एवं राजनयिक प्रयासों को भी गति देना आवश्यक है।

वर्तमान समय में हिंदी भारत की सीमाओं से बाहर निकलकर अनेक देशों की शैक्षिक संस्थाओं में

अध्ययन–अध्यापन का विषय बन चुकी है। विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक हिंदी के शिक्षण ने इसके वैश्विक प्रसार को एक संस्थागत आधार प्रदान किया है। इसी संदर्भ में डॉ. रवि शर्मा जी लिखते हैं' **'आज विश्व के लगभग सभी देशों में हिंदी शिक्षण प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर पर हो रहा है। इसके लिए धार्मिक, सामाजिक संस्थाएँ तो प्रयासरत हैं ही, सरकारी स्तर पर विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के साथ-साथ निजी स्तरों पर भी हिंदी शिक्षण निरंतर संचालित हो रहा है।'**[8] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि हिंदी का वैश्विक विस्तार केवल भाषायी या सांस्कृतिक स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में भी इसकी मजबूत उपस्थिति बन रही है। विभिन्न संस्थाओं द्वारा संचालित हिंदी शिक्षण ने हिंदी को नई पीढ़ी तक पहुँचाने के साथ–साथ उसके अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को भी सुदृढ़ किया है। इस प्रकार हिंदी का बढ़ता शैक्षिक प्रसार उसके वैश्विक भविष्य की संभावनाओं को व्यापक आधार प्रदान करता है।

हिंदी को वैश्विक ज्ञान–सृजन की भाषा के रूप में स्थापित करने की प्रक्रिया अनेक चुनौतियों से घिरी हुई है। आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, प्रबंधन और उच्च शिक्षा के अधिकांश नवीन ज्ञान का निर्माण एवं प्रसार अंग्रेजी जैसी वैश्विक भाषाओं में अधिक हो रहा है। ऐसे में हिंदी में उच्चस्तरीय शोध–सामग्री, तकनीकी शब्दावली और समकालीन ज्ञान–संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता एक बड़ी चुनौती है। इसके साथ ही गुणवत्तापूर्ण अनुवाद का अभाव, अंतरराष्ट्रीय शोध–पत्रिकाओं में हिंदी की सीमित उपस्थिति तथा डिजिटल माध्यमों पर हिंदी की अपेक्षाकृत कम ज्ञान–सामग्री भी इसकी वैश्विक संभावनाओं को प्रभावित करती है। अतः हिंदी को केवल साहित्य और संचार की भाषा तक सीमित न रखकर विज्ञान, तकनीक, शोध और नवाचार की भाषा बनाने की दिशा में ठोस एवं समन्वित प्रयास आवश्यक हैं। तभी हिंदी वैश्विक ज्ञान के निर्माण, संरक्षण और प्रसार में प्रभावी भूमिका निभा सकेगी।

हिंदी के वैश्विक विस्तार की संभावनाओं के बावजूद उसके सामने आंतरिक स्तर पर भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं। इनमें हिंदी के प्रति समाज के एक वर्ग की उदासीनता और अंग्रेजी के प्रति बढ़ता आकर्षण प्रमुख है। विशेष रूप से प्रशासनिक एवं उच्च शिक्षित वर्ग द्वारा हिंदी के प्रयोग से दूरी बनाए रखना हिंदी की प्रतिष्ठा और स्वीकार्यता को प्रभावित करता है। इस स्थिति की ओर संकेत करते हुए डॉ० पूरनचंद टंडन जी लिखते हैं, **'हिंदी का इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है कि इसे अपनों ने ही क्षत-विक्षत किया है! बड़े-बड़े पदों पर आसीन प्रशासनिक अधिकारी यदि हिंदी न आने, न जानने की बात करें तो जमीन से जुड़ा व्यक्ति हिंदी, को लेकर निराश क्यों न हो?'**[9] डॉ० टंडन जी का यह कथन हिंदी के प्रति बढ़ती भाषाई उदासीनता की गंभीर स्थिति को सामने रखता है। जब हिंदी के अपने ही लोग, विशेषकर जिम्मेदार और उच्च पदों पर बैठे व्यक्ति, इसके प्रयोग से दूरी बनाते हैं, तो हिंदी की सामाजिक प्रतिष्ठा प्रभावित होती है। इसलिए हिंदी को वैश्विक स्तर पर सशक्त बनाने के साथ–साथ अपने देश में भी उसके प्रति सम्मान, प्रयोग और आत्मविश्वास की भावना को मजबूत करना आवश्यक है।

हिंदी की इसी स्थिति को डॉ. पूरनचंद टंडन जी आगे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– **'कुल मिलाकर हिंदी अपनों की सताई हुई है। अपनों से शोषित है।'**[10] यह कथन हिंदी के समक्ष मौजूद उस मूल चुनौती को रेखांकित करता है, जिसमें भाषा के विकास में सबसे बड़ी बाधा बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक स्तर पर दिखाई देती है। जब हिंदी को अपने ही समाज, संस्थानों और ज्ञान के क्षेत्रों में पर्याप्त महत्व नहीं मिलता, तो उसका वैश्विक स्तर पर सशक्त होना कठिन हो जाता है। अतः हिंदी के वैश्विक ज्ञान–सृजन की संभावनाओं को मजबूत करने

के लिए सबसे पहले हिंदी के आत्मविश्वास और व्यवहारिक प्रयोग की भावना को व्यापक बनाना आवश्यक है।

निष्कर्ष :

हिंदी केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि व्यापक ज्ञान–सृजन और ज्ञान–वितरण की समर्थ भाषा है। हिंदी का समृद्ध साहित्य, विशाल शब्द–संपदा और विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ता प्रयोग इसे वैश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण बनाता है। आज विज्ञान, तकनीक, शिक्षा, मीडिया और डिजिटल माध्यमों में हिंदी के प्रयोग की संभावनाएँ लगातार बढ़ रही हैं। हालाँकि, वैश्चिक ज्ञान–सृजन के क्षेत्र में हिंदी के सामने कई चुनौतियाँ भी हैं। उच्च शिक्षा और शोध में अंग्रेजी का प्रभुत्व, गुणवत्तापूर्ण अनुवाद की कमी, तकनीकी शब्दावली का अभाव तथा डिजिटल संसाधनों की सीमित उपलब्धता हिंदी के विस्तार में बाधक हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए हिंदी में उच्चस्तरीय शोध, मौलिक ज्ञान–निर्माण, वैज्ञानिक एवं तकनीकी साहित्य का विकास और गुणवत्तापूर्ण अनुवाद को बढ़ावा देना आवश्यक है। इस प्रकार हिंदी को वैश्विक ज्ञान की भाषा बनाने के लिए केवल उसके प्रचार की नहीं, बल्कि उसे ज्ञान–विज्ञान, तकनीक और अनुसंधान की सक्रिय भाषा बनाने की आवश्यकता है। सरकारी संस्थाओं, विश्वविद्यालयों, शोधकर्ताओं और तकनीकी संस्थानों के सामूहिक प्रयास से हिंदी वैश्विक ज्ञान–सृजन में अधिक प्रभावी और सशक्त भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, 'विश्व हिन्दी का भविष्य', प्रथम संस्करण 1975 ईस्वी, पूर्वांचल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 171
2. संपादक महिपाल सिंह, देवेन्द्र मिश्र, 'विश्व बाजार में हिंदी', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 115
3. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, 'विश्व हिन्दी का भविष्य', प्रथम संस्करण 1975 ईस्वी, पूर्वांचल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 75
4. डॉ विषय अग्रवाल, 'हिन्दी भाषा अतीत से आज तक', वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 2002, दिल्ली पृष्ठ संख्या 09
5. नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, 'विश्व हिन्दी का भविष्य', प्रथम संस्करण 1975 ईस्वी, पूर्वांचल प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 01
6. संपादक लल्लनप्रसाद व्यास, 'विश्व हिंदी की यात्रा', वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 09
7. संपादक महिपाल सिंह, देवेन्द्र मिश्र, 'विश्व बाजार में हिंदी', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.126
8. संपादक, डॉ रवि शर्मा, 'ग्लोबल हिन्दी', किताब घर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या 210–11
9. वही पृष्ठ संख्या 03
10. वही पृष्ठ संख्या 04

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 171-177

कुरमाली लोकगीतों में नारी अस्मिता एवं प्रतिरोध चेतना

डॉ. नीलू कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, रामलखन सिंह यादव कॉलेज, राँची।

सारांश :

कुरमाली लोकगीत छोटा नागपुर क्षेत्र के कुरमाली समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक जीवन–व्यवस्था के जीवंत मौखिक दस्तावेज हैं। प्रस्तुत शोध आलेख कुरमाली लोकगीतों के परिप्रेक्ष्य में नारी जीवन के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों का समाजशास्त्रीय एवं स्त्री–विमर्शपरक विश्लेषण करता है। विवाह व विदाई, ससुराल में अवैतनिक घरेलू श्रम, वर्ग एवं आर्थिक विषमता, पति के परदेश गमन से जनित विरह तथा सामाजिक मर्यादाओं बनाम व्यक्तिगत आकांक्षाओं के द्वंद्व को लोकगीतों के पाठ्य–विश्लेषण के माध्यम से विश्लेषित किया गया है। अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि कुरमाली लोकगीतों में नारी केवल मूक, पीड़ित अथवा पारंपरिक 'अबला' नहीं है बल्कि वह लोकगीतों को मौखिक प्रतिरोध और आत्म–अभिव्यक्ति के साधन के रूप में प्रयुक्त करते हुए पितृसत्तात्मक सीमाओं पर प्रश्नचिह्न लगाती है। यह अध्ययन लोकसाहित्य को स्त्री के सामाजिक इतिहास और सांस्कृतिक स्मृति के प्रामाणिक स्रोत के रूप में स्थापित करता है।

बीज शब्द : कुरमाली लोकगीत, नारी अस्मिता, लोकसंस्कृति, प्रतिरोध चेतना, नारी संघर्ष, मौखिक परंपरा, सामाजिक संरचना, आर्थिक विषमता।

1. प्रस्तावना :

लोकगीत किसी भी लोक–समुदाय की सांस्कृतिक चेतना, सामूहिक स्मृतियों और सामाजिक यथार्थ के सबसे सहज और संवेद्य संवाहक होते हैं। लिखित इतिहास प्रायः अभिजात्य और सत्ता–केंद्रित आख्यानों तक सीमित रहा है, जबकि वंचित और हाशिए के वगों विशेषकर महिलाओं के वास्तविक जीवनानुभव मौखिक परंपरा में सुरक्षित रहे हैं।

झारखंड और सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रचलित कुरमाली लोकगीत कृषि–संस्कृति, प्रकृति–पर्वों और पारिवारिक संस्कारों से गहराई से जुड़े हैं। इनमें कुरमाली समाज की जीवन–पद्धति, सामाजिक संबंध, सांस्कृतिक परंपराएँ, पारिवारिक संरचना और सामुदायिक जीवन के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। इन गीतों में केवल उत्सवधर्मिता ही नहीं है, बल्कि पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना में स्त्री के अस्तित्व–संघर्ष, उसके मानसिक द्वंद्व और आत्मसम्मान की रक्षा के सूक्ष्म आयाम भी दर्ज हैं। यह शोध आलेख कुरमाली लोकगीतों को केवल पारंपरिक धरोहर न मानकर, उनमें अंतर्निहित 'नारी अस्मिता' और 'प्रतिरोध चेतना' का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है।

2. शोध समस्या एवं अध्ययन के उद्देश्य :

पारंपरिक समाज में स्त्री को प्रत्यक्ष सामाजिक प्रतिरोध या लिखित अभिव्यक्ति के सीमित अवसर प्राप्त थे।

ऐसे में प्रश्न उठता है कि कुरमाली समाज की स्त्री ने अपनी असहमतियों, श्रम–शोषण और पीड़ा को किस प्रकार स्वर दिया?

अध्ययन के मुख्य उद्देश्य :

- कुरमाली लोकगीतों में अभिव्यक्त नारी के सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों की पड़ताल करना।
- विवाह, विदाई और ससुराल में घरेलू श्रम के संदर्भ में नारी की स्थिति और सामाजिक दृष्टिकोण का विश्लेषण करना।
- लोकगीतों में परंपरा बनाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा अबला के बरक्स सबला व प्रतिरोध चेतना को रेखांकित करना।
- लोकगीतों को स्त्री के सामाजिक इतिहास और सांस्कृतिक स्मृति के वैकल्पिक स्रोत के रूप में स्थापित करना।

3. शोध–प्रविधि :

प्रस्तुत शोध में गुणात्मक, पाठ्य–विश्लेषणात्मक एवं समाजशास्त्रीय व्याख्यात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

सामग्री का चयन : अध्ययन के लिए प्राथमिक सामग्री के रूप में डॉ. एच.एन. सिंह द्वारा संकलित एवं संपादित ग्रंथ ''कुरमाली के लोकगीत'' (2023) से चयनित विवाह गीत, उधवा गीत, करम गीत और अखड़ा गीतों को आधार बनाया गया है।

विश्लेषण ढांचा : गीतों के भावपक्ष, कथ्य, प्रतीक और सामाजिक संदर्भों का विश्लेषण फेमिनिस्ट थ्योरी और सबाल्टर्न स्टडीज के मौखिक इतिहास के सिद्धांतों के आलोक में किया गया है।

4. पाठ्य–विश्लेषण एवं विमर्श :

इस शोध आलेख में कुछ कुरमाली लोकगीतों के उदाहरणों के माध्यम से नारी अस्मिता एवं प्रतिरोध चेतना, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक जीवन को समझने का प्रयास किया गया है।

4.1 बेटी का विवाह और मायके से बिछुड़ने की पीड़ा –

कुरमाली विवाह गीतों में बेटी के विवाह और विदाई से जुड़ी भावनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है। उदाहरणस्वरूप –

'बाबा बाबा कहली ..... दूरन देसे'।[1]

इस विवाह गीत में बेटी अपने पिता से संवाद करती हुई दिखाई देती है। वह अपने पिता से कहती है कि उसके मना करने के बावजूद आपने उसका विवाह दूर देश में कर दिया और अब स्वयं भी उस निर्णय को लेकर दुःखी हैं। यहाँ 'दूर देश' केवल भौगोलिक दूरी का संकेत नहीं है, बल्कि बेटी के लिए अपने परिचित संसार से पूर्णतः अलग हो जाने का प्रतीक भी है।

विवाह के बाद बेटी को अपना मायका, माता–पिता, भाई–बहन और बचपन की स्मृतियाँ छोड़कर नए परिवार में जाना पड़ता है। इसलिए विदाई के समय उसके मन में उत्पन्न होने वाली पीड़ा लोकगीत के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। कुरमाली समाज में पारंपरिक रूप से दहेज–प्रथा की स्थिति अन्य कई समाजों की तुलना में भिन्न रही है, अतः इस गीत को केवल दहेज की समस्या से जोड़कर देखना उचित नहीं होगा। इसमें मुख्यतः

बेटी के मायके से बिछुड़ने, नए परिवेश में जाने और भावनात्मक असुरक्षा की अनुभूति व्यक्त हुई है।
यह गीत भारतीय समाज में विवाह संस्था से जुड़ी उस सार्वभौमिक भावभूमि को सामने लाता है, जहाँ बेटी के लिए विवाह केवल नए जीवन की शुरुआत नहीं, बल्कि अपने जन्म–परिवार से एक गहरे भावनात्मक विच्छेद का अनुभव भी है।

4.2 ससुराल में श्रम और आर्थिक स्थिति :

कुरमाली विवाह गीतों में विवाह के बाद नारी के श्रम और उसकी आर्थिक स्थिति का भी यथार्थ चित्रण मिलता है –

'पुरूबेका लोढ़ी ..... चारी रे कामिनी' [2]

इस गीत में नवविवाहिता अपने ससुराल के जीवन का वर्णन करती है। वह मसाला पीसते–पीसते अपने हाथों में होने वाले दर्द की बात करती है। उसके श्रम और पीड़ा के प्रति सहानुभूति दिखाने के बजाय ससुराल पक्ष की ओर से उसे यह उलाहना मिलता है कि वह अपने पिता से नौकर–चाकर क्यों नहीं माँग लेती।

यहाँ गीत नारी के घरेलू श्रम और आर्थिक विषमता दोनों को सामने लाता है। विवाह के बाद लड़की को अपने मायके के अपेक्षाकृत परिचित और सुरक्षित वातावरण को छोड़कर ससुराल की नई जिम्मेदारियाँ स्वीकार करनी पड़ती हैं। घरेलू कार्यों को उसकी स्वाभाविक जिम्मेदारी मान लिया जाता है। आर्थिक रूप से कमजोर परिवार से आने वाली लड़की को कभी–कभी अपनी गरीबी के कारण भी ताने सुनने पड़ते हैं।

इस प्रकार यह गीत केवल एक महिला की व्यक्तिगत पीड़ा नहीं है, बल्कि उस सामाजिक संरचना की ओर संकेत करता है जिसमें नारी के श्रम को अक्सर स्वाभाविक मानकर उसकी कठिनाइयों की उपेक्षा की जाती है।

4.3 पति के परदेश जाने और विरह की पीड़ा :

कुरमाली लोकगीतों में पति के परदेश जाने से उत्पन्न नारी की विरह–व्यथा का भी अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है –

'काहे पिया काहे पिया ..... देबों रे डुबाई।' [3]

यह एक उधवा गीत है, जिसमें पत्नी अपने पति के परदेश में रहने के कारण व्यथित है। वह अपने पति को शीघ्र लौट आने के लिए कहती है। उसका यौवन पति की प्रतीक्षा में बीत रहा है। वह कहती है कि उसने इतने लंबे समय तक अपने को संभालकर दोनों कुलों की मर्यादा को बनाए रखा है, किंतु अब उसके लिए इस स्थिति को अधिक समय तक सहन करना कठिन हो रहा है।

इस गीत में नारी की व्यक्तिगत भावनाओं के साथ–साथ उस समय की सामाजिक व्यवस्था भी दिखाई देती है। पति की अनुपस्थिति में पत्नी से अपेक्षा की जाती थी कि वह परिवार की मर्यादा बनाए रखे और सामाजिक नियमों का पालन करे। इस प्रकार उसकी व्यक्तिगत इच्छा और सामाजिक मर्यादा के बीच एक निरंतर तनाव बना रहता है।

गीत में नारी को केवल प्रतीक्षा करती हुई पत्नी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि वह अपनी भावनाओं और अपनी सीमाओं को स्वयं व्यक्त करने वाली संवेदनशील व्यक्ति भी है। उसके भीतर प्रेम, विरह, आकांक्षा और सामाजिक दबाव सभी एक साथ मौजूद हैं।

4.4 वैवाहिक दायित्व और मायके से पुनः दूरी :

कुरमाली करम गीतों में भी नारी जीवन के पारिवारिक दायित्वों का सुंदर चित्रण मिलता है –

'छुट्टू मुट्टू दुरूपात ..... मानुस गो।'[4]

यह एक करम गीत है, इस गीत में लड़की करम पर्व के अवसर पर अपने मायके में आई है और पुनः ससुराल लौटने की तैयारी कर रही है। माँ उसे कुछ समय और रुकने के लिए कहती है तथा उसके लिए संदेश आदि तैयार करने की इच्छा व्यक्त करती है। किंतु बेटी कहती है कि उसके ससुर बीमार हैं और उसे वापस जाना ही होगा।

यह प्रसंग नारी के जीवन में विवाह के बाद आने वाले परिवर्तन को स्पष्ट करता है। विवाह के बाद मायका, जो कभी उसका अपना संसार था, धीरे–धीरे उसके लिए अतिथि–सदृश स्थान बन जाता है। अब उसकी प्राथमिक जिम्मेदारी ससुराल और वहाँ के परिवार के प्रति मानी जाती है।

करम जैसे महत्त्वपूर्ण लोकपर्व पर भी वह अपनी व्यक्तिगत इच्छा की अपेक्षा पारिवारिक दायित्व को प्राथमिकता देती है। यहाँ नारी के त्याग और जिम्मेदारी–बोध का चित्रण मिलता है। साथ ही यह गीत इस तथ्य को भी सामने लाता है कि विवाह के बाद नारी का सामाजिक और पारिवारिक संबंधों का केंद्र बदल जाता है।

4.5 गरीबी और ससुराल में सामाजिक विषमता :

कुरमाली लोकगीतों में आर्थिक विषमता का प्रभाव नारी के जीवन पर भी स्पष्ट दिखाई देता है। उदाहरणस्वरूप –

'सास पिंध ..... कानाए ठाड़'।[5]

इस गीत में नारी अपने ससुराल की महिलाओं को सुंदर वस्त्र पहनकर नाचते हुए देखती है। सास अखड़ा में नाच रही है और बड़ी ननद आँगन में है, जबकि स्वयं वह गरीब परिवार से होने के कारण फटे हुए वस्त्रों में दरवाजे की आड़ में खड़ी होकर यह दृश्य देख रही है।

यहाँ वस्त्र केवल आर्थिक स्थिति के प्रतीक नहीं हैं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान से भी जुड़े हुए हैं। नारी को अपनी गरीबी का अनुभव दूसरों की समृद्धि को देखकर और अधिक तीव्रता से होता है। गीत में आर्थिक विषमता के साथ–साथ सामाजिक दूरी की भावना भी व्यक्त हुई है।

यह स्थिति बताती है कि गरीबी का प्रभाव केवल भौतिक आवश्यकताओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह व्यक्ति के आत्मविश्वास, सामाजिक सहभागिता और पारिवारिक संबंधों को भी प्रभावित करता है। विशेष रूप से नारी के संदर्भ में यह प्रभाव और अधिक गहरा हो सकता है, क्योंकि उसके वस्त्र, व्यवहार और सामाजिक उपस्थिति पर परिवार एवं समाज की अपेक्षाएँ अधिक रहती हैं।

4.6 सामाजिक मर्यादा, स्त्री की इच्छाएँ और बंधन :

कुरमाली लोकगीतों में नारी की इच्छाओं और सामाजिक मर्यादाओं के बीच संघर्ष का भी सजीव चित्रण मिलता है –

'छोटो मोटो अखड़ा ..... ।'[6]

इस गीत में नारी नृत्य करने की इच्छा रखती है, लेकिन सामाजिक परिस्थितियाँ उसे ऐसा करने की अनुमति नहीं देतीं। अखड़ा छोटा है और वहाँ उपस्थित युवक उसके पति से बड़े हैं। इसलिए वह उनके सामने

नृत्य नहीं कर सकती। यदि वह रात में नाचने जाती है तो अगले दिन सुबह उठकर घरेलू कार्यों में लगना होगा। इसके अतिरिक्त उसके पास पहनने के लिए भी पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं।

यह गीत नारी के जीवन में उपस्थित अनेक स्तरों के बंधनों को एक साथ सामने लाता है। एक ओर उसके भीतर नृत्य और आनंद की स्वाभाविक इच्छा है, तो दूसरी ओर सामाजिक मर्यादा, पारिवारिक अपेक्षाएँ, गरीबी और घरेलू जिम्मेदारियाँ उसे रोकती हैं।

गीत की अंतिम भावना '"ऐसे घर में मेरा विवाह क्यों किया, जहाँ मैं सबसे छोटी हूँ"' नारी के मन में छिपी असंतुष्टि और प्रश्नाकुलता को व्यक्त करती है। यहाँ नारी केवल परिस्थितियों को स्वीकार करने वाली पात्र नहीं है, बल्कि वह अपनी स्थिति पर प्रश्न भी उठाती है। यही बिंदु उसे 'अबला' की पारंपरिक छवि से आगे ले जाता है।

4.1.1 कुरमाली लोकगीतों में नारी – अबला से सबला तक :

कुरमाली लोकगीतों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि इनमें नारी की केवल दयनीय या पीड़ित छवि ही नहीं मिलती, बल्कि वह संघर्ष करने वाली, निर्णय लेने वाली और अपनी भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने वाली स्त्री के रूप में भी सामने आती है।

विवाह गीतों में वह मायके से बिछुड़ने की पीड़ा व्यक्त करती है। ससुराल के गीतों में वह श्रम, गरीबी और उलाहनों का वर्णन करती है। उधवा गीतों में वह पति के प्रति अपने प्रेम और विरह को व्यक्त करती है। करम गीतों में वह पारिवारिक दायित्वों के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाती है। वहीं अखड़ा से संबंधित गीतों में वह अपनी इच्छाओं और सामाजिक बंधनों के बीच संघर्ष करती दिखाई देती है।

इस प्रकार लोकगीतों में नारी कहीं 'अबला' दिखाई देती है तो कहीं 'सबला'। वह परिस्थितियों से संघर्ष करती है, परिवार की जिम्मेदारियों को संभालती है और सामाजिक मर्यादाओं के बीच रहते हुए भी अपनी पीड़ा और असहमति को स्वर देती है।

4.1.2 नारी की मौखिक अभिव्यक्ति का माध्यम – 'लोकगीत' :

परंपरागत समाज में महिलाओं को शिक्षा और सार्वजनिक अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं थे। वे अपनी बातों को लिखित रूप में व्यक्त करने या सामाजिक स्तर पर सीधे अपनी समस्याओं को रखने की स्थिति में प्रायः नहीं थीं। ऐसी परिस्थिति में लोकगीत उनके लिए आत्म–अभिव्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम बने।

पर्व–त्योहारों, विवाह, कृषि–कर्म और अन्य सामाजिक अवसरों पर सामूहिक रूप से गाए जाने वाले गीतों में महिलाओं ने अपने मन की बात कही। इन गीतों में माता–पिता के प्रति प्रेम, भाई–बहनों से बिछुड़ने की पीड़ा, पति के प्रति प्रेम और विरह, सास–ननद के संबंध, देवर–भाभी संबंध, आर्थिक अभाव, ससुराल की कठिनाइयाँ तथा सामाजिक बंधनों जैसी अनेक भावनाएँ व्यक्त हुईं।

इस दृष्टि से लोकगीतों को केवल मनोरंजन अथवा परंपरा के वाहक के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। वे समाज के उन वर्गों और विशेष रूप से महिलाओं की आवाज भी हैं, जिन्हें औपचारिक इतिहास और लिखित साहित्य में पर्याप्त स्थान नहीं मिला। कुरमाली लोकगीतों में नारी की यह मौखिक अभिव्यक्ति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

4.1.3 नारी के त्याग और संघर्ष का चित्रण :

भारतीय सामाजिक संरचना में नारी को विभिन्न भूमिकाओं में अपने दायित्वों का निर्वहन करना पड़ा है। बेटी के रूप में वह माता–पिता के घर का हिस्सा होती है, विवाह के बाद पत्नी और बहू के रूप में नए परिवार की जिम्मेदारियाँ संभालती है तथा माँ के रूप में अगली पीढ़ी का निर्माण करती है। इन सभी भूमिकाओं में उसके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष त्याग और समायोजन रहा है।

कुरमाली लोकगीत इस त्याग को आदर्शीकृत करने के साथ–साथ उसके भीतर छिपी पीड़ा को भी व्यक्त करते हैं। बेटी का मायके से बिछुड़ना, ससुराल में श्रम करना, आर्थिक अभाव सहना, पति के परदेश जाने पर उसकी प्रतीक्षा करना और परिवार की मर्यादा के लिए अपनी इच्छाओं को दबाना ये सभी स्थितियाँ नारी के जीवन–संघर्ष को सामने लाती हैं।

कई गीतों में ऐसी परिस्थितियाँ भी दिखाई देती हैं जहाँ नारी को अपने माता–पिता के दुःख या मृत्यु की सूचना तक समय पर नहीं मिल पाती। दूसरी ओर कुछ लोग उसकी परिस्थितियों का लाभ उठाकर उसे उलाहना देते हैं और मानसिक रूप से पीड़ित करते हैं। इस प्रकार लोकगीत नारी के बाहरी जीवन के साथ–साथ उसके अंतर्मन की वेदना को भी अभिव्यक्त करते हैं।

आधुनिक संदर्भ में कुरमाली लोकगीतों की प्रासंगिकता :

आधुनिक समय में शिक्षा, संचार, कानून और सामाजिक जागरूकता के विस्तार के कारण महिलाओं की स्थिति में अनेक सकारात्मक परिवर्तन आए हैं। महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, राजनीतिक सहभागिता तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता के अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं। इसके बावजूद लैंगिक असमानता, घरेलू श्रम का असमान विभाजन, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक रूढ़ियों जैसी चुनौतियाँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं।

ऐसे समय में कुरमाली लोकगीतों का अध्ययन हमें अतीत के सामाजिक जीवन को समझने के साथ–साथ वर्तमान की सामाजिक संरचना को समझने में भी सहायता करता है। ये गीत बताते हैं कि महिलाओं ने अपने जीवन की कठिन परिस्थितियों को केवल सहन ही नहीं किया, बल्कि उन्हें गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति भी दी। उनकी यह अभिव्यक्ति सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक स्मृति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

निष्कर्ष :

कुरमाली लोकगीत कुरमाली समाज की संस्कृति, परंपरा और सामाजिक जीवन के जीवंत दस्तावेज हैं। इनमें नारी जीवन का बहुआयामी चित्रण मिलता है। विवाह और विदाई की पीड़ा, ससुराल का श्रम, आर्थिक अभाव, पति का परदेश जाना, पारिवारिक दायित्व, सामाजिक मर्यादा, नारी की इच्छाओं पर नियंत्रण तथा उसकी आत्म–अभिव्यक्ति इन सभी पक्षों को इन गीतों में सहज और मार्मिक रूप से स्थान मिला है।

इन गीतों में नारी केवल पीड़ा सहने वाली स्त्री नहीं है। वह अपने अनुभवों को स्वर देती है, परिस्थितियों पर प्रश्न उठाती है, परिवार के प्रति अपने दायित्वों को निभाती है और अनेक सामाजिक बंधनों के बीच अपने अस्तित्व को बनाए रखती है। इसलिए कुरमाली लोकगीतों में नारी का स्वर कहीं करुण है, कहीं विद्रोही, कहीं संवेदनशील तो कहीं दृढ़ और संघर्षशील।

अतः कुरमाली लोकगीतों का अध्ययन न केवल लोक–संस्कृति के संरक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि नारी के सामाजिक इतिहास, उसकी मनःस्थितियों और बदलते सामाजिक जीवन को समझने के लिए भी

अत्यंत उपयोगी है। आधुनिक लैंगिक विमर्श और सबाल्टर्न अध्ययन की दृष्टि से भी ये लोकगीत अत्यंत प्रासंगिक हैं, क्योंकि ये औपचारिक इतिहास में उपेक्षित रही ग्रामीण–जनजातीय स्त्री की आंतरिक आवाज, अस्मिता और संघर्ष को अकादमिक धरातल पर पुर्नस्थापित करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. कुरमाली के लोकगीत, डॉ. एच.एन. सिंह, प्रकाशक– इंस्टिच्यूट फॉर सोशल डेवलपमेंट एण्ड रिसर्च, राँची, झारखण्ड, प्रथम संस्करण, 2023, पृ.सं. 11
2. वही, पृ.सं. 15
3. वही, पृ.सं. 53–54
4. वही, पृ.सं. 65
5. वही, पृ.सं. 67
6. वही, पृ.सं. 99

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 178-180

हिंदी मंचित नाटकों में परंपरा, परिवर्तन और रंगमंचीय चेतना – एक अध्ययन

डॉ. निर्मलाबेन ईच्छुभाई पटेल
सहायक प्राध्यापिका, वी.न.द.गु.विश्वविद्यालय, सूरत. गुजरात।
डॉ. महेश एम. पटेल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, श्री जे.बी.धारूकावाला महिला आर्ट्स ऐन्ड कोमर्स कॉलेज, वराछा, सूरत. गुजरात।

सारांश :

हिंदी नाटक भारतीय साहित्य की एक ऐसी विधा है, जो समाज, संस्कृति और मानवीय जीवन के विविध आयामों को दृश्यात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है। हिंदी रंगमंच ने वैश्वीकरण, उदारीकरण, सूचना–प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तनों के बीच अपनी नई पहचान निर्मित की है। मंचित नाटकों में लोकतांत्रिक चेतना, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, पर्यावरणीय संवेदना, राजनीतिक विसंगतियाँ तथा मानवीय मूल्यों के संकट जैसे विषय प्रमुखता से उभरकर सामने आते हैं। साथ ही रंग–शिल्प, मंच–सज्जा, प्रकाश–योजना, संगीत तथा अभिनय की नवीन तकनीकों ने हिंदी रंगमंच को अधिक प्रभावशाली बनाया। आधुनिक हिंदी रंगमंच भारतीय परंपरा और आधुनिकता के समन्वय का सशक्त उदाहरण है तथा सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी सांस्कृतिक माध्यम भी है।

बीज शब्द :

हिंदी नाटक, रंगमंच, मंचित नाटक, रंगमंचीय परंपरा, सामाजिक चेतना, आधुनिक हिंदी नाटक।

मूल आलेख :

भारतीय साहित्य में नाटक को सर्वाधिक जीवंत साहित्यिक विधा माना जाता है, क्योंकि यह केवल पढ़ने का साहित्य नहीं, बल्कि मंच पर अभिनय, संगीत, संवाद, दृश्य–सज्जा और प्रकाश के माध्यम से जीवन को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करने वाली कला है। नाटक समाज का दर्पण है, वह समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। भारतीय नाट्य परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन है, जिनकी आधारशिला भरतमुनी के नाट्यशास्त्र में मिलती है। नाट्यशास्त्र ने भारतीय रंगमंच को अभिनय, रस, भाव, पात्र–निर्माण, रंग–विन्यास तथा प्रस्तुति के वैज्ञानिक सिद्धांत प्रदान किए, जो आज भी प्रासंगिक है। क्योंकि नाटक केवल साहित्य तक सीमित न रहकर व्यापक स्वरूप प्रदान करता है, जो संप्रेषण मंच पर जाकर ही पूर्ण होता है। इस बात पर 'सरकटे' जी का मत है, कि– "नाटक और साहित्य के अन्य अंगों में बहुत अंतर है। अन्य सभी साहित्यांग केवल श्रव्य है तो दूसरी ओर नाटक में श्रव्य गौण व दृश्यत्व मुख्य रूप

से है। नाटक इस शब्द के व्युत्पति से ही व्यक्त होता है कि वह नटने के लिए अभिनय पर और रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिए है।"[१]

हिंदी नाटक की मंचीय परंपरा का विकास भारतीय नाट्यबोध, लोकरंग, संस्कृत नाट्य और आधुनिक सामाजिक चेतना के संगम से हुआ है। भारत में नाटक की जड़े बहुत पुरानी है । नाट्य को परिभाषित करते हुए 'आचार्य धनंजय' ने लिखा है– "अवस्थानुकृतिर्नाटयं रूपं दृश्यतयोच्यते। रुपकं तत्स सामारोपात।"[२]

हिंदी मंचित नाटक पर लोकनाट्य परंपराओं का गहरा प्रभाव रहा है। नौटंकी, स्वांग, रामलीला, रासलीला, ख्याल और तमाशा जैसी लोकशैलियों ने हिंदी रंगमंच को जनता से जोड़े रखा है। इन रूपों में संगीत, नृत्य, हास्य, व्यंग्य और संवाद की सहजता होती है, जो मंचीय प्रस्तुति को प्रभावशाली बनाती है।

लोकनाट्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि वह जनभाषा में बात करता है। वह केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक टिप्पणी भी करता है। हिंदी मंचित नाटक ने इसी लोकधर्मी परंपरा से ऊर्जा ग्रहण की और अपने दर्शक वर्ग को व्यापक बनाया है।

नाटक की परंपरा हमेशा अपने समय के समाज से जुड़ी रही है। जीस युग में सामाजिक विषमता, राजनीतिक परिवर्तन, राष्ट्रीय आंदोलन या सांस्कृतिक संकट बढ़ा नाटक ने उसे अपने भीतर समेटा। क्योंकि मंच पर उठा हुआ प्रश्न अक्सर दर्शक के जीवन का प्रश्न बन जाता है।

भारतीय परंपरा में बाह्य और आंतरिक अभिव्यक्ति का संतुलन महत्वपूर्ण है। मंच पर पात्र का व्यवहार उसके भाव, उसकी चाल और उसकी वाणी मिलकर अर्थ पैदा करते हैं। यही कारण है कि हिंदी नाटक मंच पर पढ़े जाने से अधिक जिए जाने वाली विधा है। प्रसाद जी कहते हैं, कि– "नाटकों के लिए रंगमंच की रचना होनी चाहिए न कि रंगमंच के लिए नाटकों की।"[३]

हिंदी मंचित नाटक की विशेषता यह है कि वह परंपरा को निभाते हुए नवाचार की ओर आगे बढ़ता है। एक तरफ वह लोग और शास्त्र की परंपरा से जुड़ा रहता है, तो दूसरी तरफ आधुनिक मंच तकनीक, प्रयोगधर्मिता और नई नाट्य भाषा को भी अपनाता है। यही संतुलन इसे जीवंत बनाता है।

समकालीन हिंदी रंगमंच में प्रतीकात्मक मंच–सज्जा, खुला मंच, न्यूनतम सेट, प्रकाश–प्रयोग और ध्वनि–संयोजन का व्यापक उपयोग हुआ है। इससे नाटक की अभिव्यक्ति और गहरी हुई है, लेकिन उसका मूल उद्देश्य वही रहा है– मानव अनुभव को अधिक सघन और प्रभावशाली बनाना।

हिंदी नाटक की आरंभिक धारा में संस्कृत, लोक और पारसी रंग परंपरा का प्रभाव रहा, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हिन्दी नाटक ने सामाजिक जागरण और राष्ट्रीय चेतना के साथ नया रूप ग्रहण किया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद जैसे अनेक रचनाकारों ने हिंदी रंगमंच को साहित्यिक आधार देने के साथ–साथ उसकी अभिव्यक्ति–शैली में भी बदलाव किया। उसके बाद के दौर में नाटक केवल कथात्मक प्रस्तुति नहीं रहा, बल्कि युग–संवेदना, सामाजिक तनाव और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को प्रकट करने वाली विधा बन गया।

गिरीश रस्तोगी के मतानुसार – "सुरेंद्र वर्मा ने हिंदी नाटक और रंगमंच को नवीन सौंदर्यबोध और काम–संबंधों के अन्तर्विश्लेषण की सक्षमता के साथ–साथ तकनीकी पूर्णता, नाट्यभाषा का अत्यंत प्रभाव, अभिनयात्मक, हरकत–भरा, भाव–भरा रूप दिया।"[४]

स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक में व्यापक परिवर्तन आया है। इस समय सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक

असंतोष, मध्यमवर्गीय विघटन, स्त्री–प्रश्न और अस्तित्वगत संकट जैसे विषयों को प्रमुखता मिली है। नाटककारोंने पारंपरिक कथानक–रचना से आगे बढ़कर टकराव, प्रतीक, विडंबना और प्रयोगशील संरचनाओं को अपनाया, जिससे मंचीय प्रस्तुति अधिक सघन और बहुआयामी हुई। डॉ. शेखर शर्मा लिखते हैं, कि– "1970 में या 1960–1970 में हुए लेखन ने अपने काल, देश, व्यक्ति को पहचान और व्यक्ति–व्यक्ति ने समूहों के वास्तविक प्रसंगों तक अपनी पहुँच का परिचय दिया। लेखक का मूलस्वर व्यवस्था–विरोध का स्वर बन गया। सामाजिक दबावों के संदर्भ में नये सत्य की खोज की गई। उन्होंने स्वयं को व्यवस्था का क्रीतदास नहीं बनाया। पीड़ित एवं तिरस्कृत आम आदमी की मुक्ति का पक्षधर यह लेखन बना।"[५]

आज के आधुनिक समय में नुक्कड़ नाटकों की बोलबाला भी देखने को मिलती है। इसकी नींव 'हबीब तनवीर' ने रखी। इस नाटक में रंगमंच की सहायता के बिना ही गली–मोहल्लों में जीवन से जुड़ी समस्याओं को समाज के सामने रखने का प्रयास किया जाता है ।

ाारतेंदु हरिश्चंद्र को हिंदी नाटक का जनक माना जाता है। उन्होंने संस्कृत और पाश्चात्य नाट्य परंपरा का समन्वय करते हुए हिंदी नाट को आधुनिक स्वरूप प्रदान किया। जिसमें अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा तथा सत्य हरिश्चंद्र जैसे नाटकों में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना के साथ प्रभावी मंचीय प्रस्तुति का भी ध्यान रखा गया है। उन्होंने नाटक के माध्यम से केवल मनोरंजन के साथ साथ युगीन समस्याओं को समाज के सामने रखकर लोगों को जागृत करने का प्रयास भी करते हैं।

उपेंद्रनाथ अस्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश आदि साहित्यकारों ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक असमानता, भ्रष्टाचार, वैश्वीकरण, पर्यावरण, मानवीय संकट तथा लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे विषय को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष :

हिंदी मंचित नाटकों का विकास परंपरा, परिवर्तन और रंगमंचिय चेतना के समन्वय का परिणाम है। भारतीय नाट्य परंपरा से प्रेरण0ाा लेते हुए हिंदी रंगमंच ने समयानुकूल नए विषयों, शिल्प और मंचीय प्रयोगों को अपनाया। भारतेंदु से लेकर समकालीन नाटककारों तक सामाजिक, यथार्थ, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक मूल्यों तथा मानवीय संवेदनाओं को प्रभावी ढंग से मंचित किया गया है। आधुनिक रंगमंच ने तकनीकी नवाचारों और प्रयोगधर्मी दृष्टि के माध्यम से नाटकों को अधिक प्रभावशाली बनाया है। इस प्रकार हिंदी मंचित नाटक आज केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक जागरण, सांस्कृतिक संरक्षण और जनचेतना के सशक्त साधन के रूप में स्थापित हो चूके हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

१. वी.सी सरकटे, 'मराठी साहित्य समालोचन' प्रकाशन–न.शं. रहळकर, २०वाँ मराठी साहित्य सम्मेलन, इंदौर, सं–१९३७, पृ.सं. ५२५

२. डॉ. भगीरथ मिश्र, 'काव्यशास्त्र', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पंचम संस्करण, पृ.सं. ६२

३. डॉ. इंद्रनाथ मदान, 'हिंदी नाटक और रंगमंच, पहचान और परख, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–१९६३, पृ.सं. ६२

४. गिरीश रस्तोगी, 'समकालीन हिंदी नाटककार' इंद्रप्रस्थ प्रकाशन–१९८२, दिल्ली, पृ. सं. १७

५. डॉ. शेखर शर्मा, 'समकालीन संवेदना और हिंदी नाटक', भावना प्रकाशन–१९८८, दिल्ली, पृ.सं. ६३

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 181-185

Artificial Intelligence and the Future of Language Education: Transforming the Role of Teachers in Global Knowledge Creation

Pooja Bisht
Assistant Professor,
Pal College of Technology and Management, Haldwani.

Abstract :

In the contemporary digital era, artificial intelligence (AI) is rapidly transforming education, language acquisition, academic writing, and research. Generative Artificial Intelligence (GenAI) provides students and researchers with unprecedented opportunities for writing, translation, content creation, ideation, language practice, and information gathering. Concurrently, it raises critical questions regarding academic integrity, originality, factual reliability, intellectual property, data confidentiality, and the evolving role of educators. This research paper aims to analyse the changing role of teachers in language education and global knowledge creation amidst the expanding influence of AI. Employing a qualitative, conceptual, and literature-based methodology, the study critically examines recent scholarly literature and policy documents concerning artificial intelligence, generative AI, language education, academic writing, higher education, teacher training, multilingualism, and AI ethics. The findings indicate that AI is not a complete substitute for human educators; rather, it redefines the teacher's role from a primary information provider to a facilitator, critical mediator, knowledge assistant, ethical guide, and learning designer. While AI enhances personalized learning, rapid feedback, translation, and writing support in language education, human empathy, cultural context, critical thinking, and creativity remain uniquely dependent on educators. Particularly in the context of Hindi and other Indian languages, AI holds the potential to bridge local knowledge systems with the global knowledge ecosystem. Finally, the paper proposes a Human–AI Collaborative Knowledge Creation Model, wherein AI assists with information and ideation, teachers provide critical evaluation and guidance, and students transform information into knowledge through independent reasoning.

Keywords : Artificial Intelligence, Generative AI, Language Education, Teachers, Knowledge Creation, Academic Writing, Higher Education, Multilingualism, Hindi, AI Ethics.

Introduction :

The twenty-first century is characterized by rapid expansion in knowledge and technology. The advent of the internet, digital education, online resources, machine translation, and artificial intelligence has fundamentally altered traditional paradigms of knowledge creation, preservation, communication, and utilization. Today, learners retrieve subject-related information instantly, and the emergence of Generative AI has accelerated this dynamic further.

Artificial intelligence permeates education, medicine, literature, linguistics, social sciences, research, and communication. Within education, AI-driven systems offer personalized learning, language practice, writing refinement, translation, and instant feedback. This impact is especially profound in language education because language is not merely a tool for communication; it is the medium through which individuals acquire knowledge, express thoughts, interpret experiences, and construct new understandings.

Generative AI introduces a paradigm shift in this relationship. Students leverage AI to structure essays, brainstorm topics, correct linguistic errors, execute translations, and obtain preliminary explanations of complex concepts. However, this convenience brings forth a fundamental inquiry: if machines can generate information, what remains the distinct role of the educator? Addressing this core question, this paper investigates the intricate interrelationship among language education, teachers, artificial intelligence, and global knowledge creation.

Needs of the Study :

- **Addressing the Pedagogical Gap in Non-Western Contexts:** Existing academic scholarship concerning Generative AI in language instruction predominantly concentrates on Western paradigms and English/EFL environments, creating an urgent necessity to examine these transformative dynamics within localized regional frameworks.
- **Evaluating the Evolution of Pedagogical Identity:** Given the rapid influx of automated educational technologies, there is a distinct structural requirement to redefine the professional responsibilities and functional roles of language instructors beyond traditional information dissemination.
- **Integrating Regional Languages into Digital Ecosystems:** It is critically important to investigate how modern AI tools can effectively bridge indigenous epistemologies and regional languages—such as Hindi—with global knowledge networks, thereby preventing cultural and linguistic homogenization.
- **Establishing Balanced Human-AI Workflows:** As uncritical reliance on automated systems presents a genuine threat to academic integrity and deep critical thinking, structured research is vital to establish frameworks where AI serves strictly as a supportive cognitive tool while independent

human reasoning remains central.

Research Methodology :

This study adopts an exploratory and qualitative research approach utilizing conceptual synthesis and secondary literature analysis. Relying on peer-reviewed journals, educational policy documents, and academic literature on AI and language education, the study employs thematic analysis to critically evaluate shifting educator roles, digital integration, and future models of human-AI collaboration.

Opportunities and Ethical Challenges of AI Integration :

The integration of artificial intelligence into language education creates distinct pathways for pedagogical evolution alongside complex moral dilemmas.

Opportunities in Language Education and Knowledge Creation :

- **Evolution of the Educator:** Teachers transition from information transmitters to high-level mentors, focusing on critical thinking, ethical framing, and deep contextual guidance.
- **Democratization of Multilingual Scholarship:** Advanced natural language tools bridge the gap between regional languages and global academic discourse, enabling localized knowledge systems to enter international repositories.
- **Interdisciplinary Frameworks:** Language education merges with cognitive science, digital ethics, and data analytics to generate novel multidisciplinary approaches.
- **Workflow Optimization:** Researchers utilize AI as an exploratory cognitive partner to synthesize literature, structure arguments, and accelerate academic production.
- **Hyper-Personalized Systems:** Intelligent adaptive tools provide individualized, real-time feedback catering to diverse learner proficiencies.

Ethical Challenges and Responsibilities :

- **Erosion of Critical Cognition :** Over-reliance on generative AI risks breeding intellectual dependency, bypassing the cognitive struggle necessary for original theoretical formulation.
- **Linguistic Homogenization :** Commercial AI architectures optimized for dominant languages systematically flatten regional nuances and indigenous vocabularies.
- **Epistemic Opacity :** The black-box nature of algorithmic text synthesis obscures how arguments are formed, undermining transparent scholarly lineage.
- **Algorithmic Bias :** Hidden historical and social biases in training data reinforce structural inequalities under the guise of technological efficiency.
- **Academic Integrity and Authorship :** Researchers bear the strict duty to maintain transparent attribution, preventing unacknowledged machine generation from diluting human scholarship.

The Evolving Role of the Language Teacher :

Traditional education positioned the teacher as the primary repository and dispenser of information. Today, with vast data accessible instantly via AI, the educator's function transcends information transmission:

- **Traditional Paradigm :** Teacher ↓ Information ↓ Student
- **Modern AI-Collaborative Paradigm :** Teacher ↓ AI + Student ↓ Inquiry ↓ Analysis ↓ Evaluation ↓ Knowledge Creation

This transition redefines educators as guides, knowledge facilitators, critical intermediaries, learning designers, ethical mentors, evaluators, and research collaborators. Furthermore, AI integration requires educators to be well-versed in AI ethics, foundational applications, and pedagogical integration.

Multilingualism, Regional Knowledge, and Higher Education :

The global knowledge landscape has historically been dominated by a select few languages. AI and digital technologies hold the potential to democratize linguistic diversity. In multilingual societies like India, literature, history, and indigenous philosophy preserved in Hindi and regional languages can be digitized and translated :

Local Knowledge ↓ Regional Language ↓ Digital Preservation ↓ Translation ↓ Global Knowledge Sphere

While higher education benefits from personalized learning and research assistance, institutions must guard against over-reliance, hallucinations, cultural biases, and data privacy risks through rigorous governance.

Human–AI Collaborative Knowledge Creation Model :

To harness AI responsibly, this paper proposes a structured pedagogical framework :

- **Inquiry and Curiosity :** The student identifies a research problem or topic.
- **AI-Assisted Exploration :** AI gathers preliminary perspectives and background data.
- **Critical Guidance :** The instructor guides the student in assessing credibility and biases.
- **Independent Reasoning :** The student analyzes synthesized material and formulates independent interpretations.
- **Knowledge Synthesis :** The student produces original academic output anchored in critical logic.

Model Summary : AI = Information & Ideation Assistant | Teacher = Critical Mediator & Mentor | Student = Active Knowledge Creator.

Recommendations :

- **Institutional Transparency Guidelines:** Universities must formulate clear citation and disclosure policies for generative AI tools.

- **Regional Language Preservation :** Educational institutions should invest in AI tools supporting localized language processing to prevent Western-centric homogenization.
- **Critical Digital Literacy :** Curricula must embed mandatory modules on algorithmic literacy and bias detection.
- **Strict Data Governance:** Administrators must mandate rigorous consent protocols and data minimization for adaptive learning platforms.
- **Collaborative Governance Boards:** Institutions should create cross-disciplinary oversight committees comprising educators, ethicists, and technologists.

8. Conclusion :

Artificial intelligence has propelled language education and knowledge creation into a transformative era. While Generative AI offers powerful tools for linguistic practice, writing support, and research, it necessitates robust safeguards for academic integrity and ethical compliance. The central insight of this research is that AI does not replace educators; rather, it elevates their function toward critical mentorship, ethical guidance, and cognitive facilitation. In the context of Hindi and other regional languages, AI bridges indigenous wisdom with international scholarly dialogue. Ultimately, the future of language education relies on symbiotic collaboration that transforms raw information into meaningful human knowledge.

References :

- European Commission. (2022). *Ethical guidelines on the use of artificial intelligence (AI) and data in teaching and learning for educators*. European Commission.
- Holmes, W., Bialik, M., & Fadel, C. (2019). *Artificial intelligence in education: Promises and implications for teaching and learning*. Center for Curriculum Redesign.
- Kasneci, E., Sessler, K., Küchemann, S., Bannert, m., Daryabudi, D., Fischer, F., ... & Kasneci, G. (2023). ChatGPT for good? On opportunities and challenges of large language models for education. *Learning and Individual Differences*, 103, 102274. https://doi.org/10.1016/j.lindif.2023.102274
- Selwyn, N. (2019). *Should robots replace teachers? AI and the future of education*. Polity Press.
- UNESCO. (2023). *Guidance for generative AI in education and research*. UNESCO. https://doi.org/10.54675/UYCB1441
- UNESCO. (2024). *AI competency framework for teachers*. UNESCO.
- Zawacki-Richter, O., Marín, V. I., Bond, M., & Gouverneur, F. (2019). Systematic review of research on artificial intelligence applications in higher education—Where are the educators? *International Journal of Educational Technology in Higher Education*, 16(1), 39. https://doi.org/10.1186/s41239-019-0171-0

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 186-188

झारखंड की संस्कृति और पर्यावरण चेतना

प्रमोद कुमार महतो, शोधार्थी
लेक्टि० डॉ० अवध बिहारी महतो, शोध निर्देशक
जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, स्नातकोत्तर खोरठा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

जब हम संस्कृति की बात करते हैं तो एक अन्य शब्द सभ्यता स्वतः इसमें जुड़ जाता है। ऐसे में समीचीन है कि सभ्यता और संस्कृति के अंतर एवं समानता को ठीक से समझा जाए। दुनिया भर के विद्वानों ने संस्कृति को अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया है।

महात्मा गांधी ने कहा है– ''किसी देश की संस्कृति उसके लोगों के दिलों और उनकी जीवन–शैली में निवास करती है।'' संस्कृति का आधार उच्च नैतिक मूल्य, अहिंसा, सत्य और आत्मशुद्धि है।

डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता और सहिष्णुता पर आधारित बताया है। उनके अनुसार संस्कृति ज्ञान का संचय भाग नहीं है बल्कि यह जीवन को देखने का सुसंस्कृत दृष्टिकोण है जो सत्य और सौंदर्य की खोज करता है।

रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय में बताया है की संस्कृति जीवन का एक ऐसा सुंदर और परिष्कृत रूप है जो इतिहास विभिन्न जातियों के मेलमिलाप और उनके साझे अनुभवों से धीरे–धीरे विकसित होती है।

यूरोपीय विद्वान सर एडवर्ड टायलर के अनुसार संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कल, नैतिकता, कानून, प्रथा और ऐसी अन्य क्षमताएं एवं आदतें शामिल है,जो मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त करता है। (आदिम संस्कृति 1871 प्रथम पैराग्राफ)

खोरठा भाषा साहित्य के विद्वान डॉक्टर बी० एन० ओहदार ने खोरठा निबंध नामक अपनी पुस्तक में सभ्यता को भौतिक संस्कृति कहा है तथा संस्कृति का सभ्यता का प्रयोग या प्रयोग का तरीका कहा है। सभ्यता संस्कृति के अंतर को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि हमारे पास जो कुछ भी है या हमने जो अपनी भौतिक सुख सुविधा के लिए जो भी आविष्कार किया है, वह सभ्यता है और इन आविष्कारों का प्रयोग हम जिस प्रकार करते हैं वह संस्कृति है। साड़ी एक अविष्कार है पर साड़ी को पहनने का तरीका और साड़ी का घुंघट निकलना संस्कृति है। चावल एक आविष्कार है पर चावल से बने विभिन्न पकवान भात, पुलाव, छीलका, पुआ, खिचड़ी आदि संस्कृति है।

डॉ0 ओहदार ने सभ्यता–संस्कृति के अंतर को स्पष्ट करते हुए कहा है हमारे पास जो कुछ है वह सभ्यता है और हम जो कुछ हैं संस्कृति है। हमारे आचार–व्यवहार, हमारे खान–पान, हमारा पहनावा, जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण, हमारे सामाजिक एवं माननीय मूल्य ये संस्कृति है।

इस शोध लेख में हमारा अभीष्ट झारखंड की संस्कृति के सांस्कृतिक तत्वों की पड़ताल कर उन्हें चिन्हित करना है।

झारखंडी संस्कृति झारखंड की संस्कृति तीन संस्कृतियों आग्नेय (Protoquest) द्रविड़, एवं आर्य संस्कृति का सम्मिलित रूप है। इन तीनों संस्कृति के मेल से झारखंडी संस्कृति का निर्माण हुआ है। झारखंड की संस्कृति में इन तीनों संस्कृतियों के तत्व पाए जाते हैं। इन तीनों संस्कृतियों के तत्वों का एक ऐसा अमलगम है जिसमें पहचान पाना कठिन है कि कौन सा सांस्कृतिक तत्व किस संस्कृति विशेष का घटक है।

डॉ0 ओहदार ने झारखंडी संस्कृति के कुछ प्रणवान तत्वों (Vital Component) को चिन्हित किया है, जो निम्नवत है :–

श्रमजीविता, समता, सहअस्तित्व, समरसता, सहयोगात्मकता, सरलता और प्रकृति अभिमुखता। झारखंडी संस्कृति के सारे प्राणवान तत्व झारखंडी जनजीवन के हर कार्य व्यापार, पर्व–त्यौहार, आचार– व्यवहार, नृत्य–गीत, खान–पान विभिन्न संस्कारों में दिखाई पड़ते हैं।

इस शोध आलेख में झारखंडी संस्कृति के प्राणवान तत्व प्रकृतिभिअभिमुखता को चिन्हित करना हमारा अभिप्रेत है।

झारखंड का प्राकृतिक परिवेश के अनुसार ही जनमानस की सोच विकसित हुई है। झारखंडी जनमानस का व्यवहार प्रकृति के प्रति सदैव आदरणीय, पूजनीय एवं निजवत रहा है। दूसरे शब्दों में झारखंडी प्रकृति पूजक रहे हैं जो इनका पर्व–त्यौहार, करम, सोहराई, सरहुल, जितिया, ईद आदि में दिखाई पड़ते हैं। अर्थात झारखंडी जनता की पर्यावरण चेतना अनुकरणीय एवं वंदनीय रही है। ऐसा ही एक रिवाज झारखण्ड में प्रचालित है, जो अब तक अनचिन्हित है।

इस रिवाज के अनुसार जब कोई व्यक्ति अपने लड़कों का विवाह करता है तो बारात निकलने से पूर्व दूल्हे को एक आम पेड़ के निकट ले जाया जाता है। यह आम का पेड़ परिवार के द्वारा ही लगाया होता है। दूल्हे को उसके परिजन, स्त्री–पुरुष बाजे गाजे के साथ आम पेड़ के निकट ले जाते हैं। दूल्हा द्वारा उस पेड़ को विधिवत पूजा की जाती है। पेड़ में सिंदूर अर्पण लगाया जाता है और धागे से पेड़ को लपेटा जाता है। इस आम पूजा को आम बिहा भी कहा जाता है। आम बिहा के पश्चात ही बारात प्रस्थान करती है।

दूसरी और कन्या के विवाह में कन्या के द्वारा महुआ पेड़ की विधिवत पूजा की जाती है। कन्या के परिजन स्त्री–पुरुष अपने द्वारा रोपित महुआ पेड़ के पास लाया जाता है। दुल्हन महुआ पेड़ की सिंदूर अर्पण एवं पेड़ में धागा लपेटकर करती है इसे महुआ बिहा कहा जाता है। महुआ बिहा के उपरांत ही दुल्हन का विवाह दूल्हे के साथ होता है। यह परंपरा युगों से चली आ रही है।

इस परंपरा का संदेश यह है कि परिवार में लड़के के जन्म लेने पर उसके नाम का एक आम का पेड़ लगाया जाए और लड़की के जन्म लेने पर एक महुआ का पेड़ लगाया जाए। आमतौर पर सत्रह–अठारह वर्ष में आम एवं महुआ में फूल–फल लगने आरंभ हो जाते हैं। दूसरी ओर लडका एवं लड़की की इतनी उम्र में विवाह योग्य हो जाते हैं।

यदि भली–भांति इस परंपरा का अनुपालन किया जाए तो आम एवं महुआ के इतने पेड़ हो जाएंगे की अलग से वृक्षारोपण अभियान चलाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

उल्लेखनीय है कि महुआ और आम बहुवर्षीय (Perennial Plant) है तथा यह दोनों वृक्ष बहु उपयोगी एवं आर्थिक दृष्टि से इसका सर्वाधिक महत्व है। महुआ इतना उपयोगी वृक्ष है कि यदि इस कल्पतरू कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. संस्कृत के चार अध्याय :– रामधारी सिंह दिनकर।
2. Cultural Development : Dr. B.P. Keshri.
3. भारत की संस्कृति :– एस आलिद हुसैन।
4. खोरठा निबंध :– डॉ० बी0 एन0 ओहदार।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 189-191

साइबर सुरक्षा और आपराधिक न्याय प्रशासन के लिए चुनौतियाँ

प्रीति कनाडिया
फैकल्टी, डॉ. बी. आर. अंबेडकर यूनिवर्सिटी महू, इंदौर।

सारांश –

साइबर अपराध तेजी से विकसित हो रहे हैं, जिससे आधुनिक समाज और न्यायिक प्रणालियों पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। इंटरनेट, मोबाइल एप्लिकेशन और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म की व्यापकता ने साइबर अपराध के प्रकारों को जटिल और विविध बना दिया है, जैसे कि पहचान की चोरी, वित्तीय धोखाधड़ी, साइबर धमकियाँ, डेटा उल्लंघन और डिजिटल आतंकवाद। ये अपराध पारंपरिक कानूनी ढांचे और आपराधिक न्याय प्रशासन के लिए कई चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं। इस शोध में साइबर सुरक्षा के मौजूदा उपायों, कानूनी बाधाओं, अपराध पहचान और रोकथाम की रणनीतियों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, डिजिटल साक्ष्य की संग्रहण और प्रमाणीकरण में आने वाली समस्याओं, अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता, और तकनीकी विशेषज्ञता की कमी जैसे मुद्दों पर भी चर्चा की गई है। निष्कर्ष यह संकेत देते हैं कि साइबर अपराधों से निपटने के लिए न्यायिक प्रणाली और तकनीकी ढांचे में समन्वित सुधार, प्रशिक्षण और नई नीति–निर्माण प्रक्रियाओं की आवश्यकता है।

भाब्द कुँजी – साइबर सुरक्षा, साइबर अपराध, आपराधिक न्याय प्रशासन, डिजिटल साक्ष्य, डेटा उल्लंघन, ऑनलाइन धोखाधड़ी, कानूनी चुनौतियाँ, तकनीकी प्रशिक्षण, अंतरराष्ट्रीय सहयोग।

प्रस्तावना –

वर्तमान डिजिटल युग में इंटरनेट, मोबाइल एप्लिकेशन और अन्य तकनीकी प्लेटफ़ॉर्म जीवन के लगभग हर पहलू का हिस्सा बन गए हैं। इस बढ़ती डिजिटल निर्भरता के साथ–साथ साइबर अपराधों में भी तेजी से वृद्धि हुई है। साइबर अपराध केवल व्यक्तिगत नुकसान ही नहीं पहुँचाते, बल्कि यह राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और सामाजिक विश्वास पर भी गंभीर प्रभाव डालते हैं। आपराधिक न्याय प्रशासन के सामने साइबर अपराधों की पहचान, जांच और रोकथाम के क्षेत्र में कई चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं। पारंपरिक अपराध नियंत्रण प्रणाली डिजिटलीकृत अपराधों की जटिलता और सीमा पार तकनीकी प्रकृति के साथ तालमेल नहीं बैठा पाती। उदाहरण के लिए, डिजिटल साक्ष्यों का संग्रहण, प्रमाणीकरण और कानूनी स्वीकार्यता अक्सर कठिनाईपूर्ण होती है।

इसके अलावा, न्यायिक अधिकारी और कानून प्रवर्तन एजेंसियाँ तकनीकी विशेषज्ञता, संसाधनों और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की कमी का सामना करती हैं। इसका उद्देश्य साइबर सुरक्षा और आपराधिक न्याय प्रशासन के बीच मौजूद अंतर और चुनौतियों का विश्लेषण करना है। साथ ही, यह डिजिटल अपराधों के प्रभाव, रोकथाम की रणनीतियों और नीतिगत सुधारों पर भी विचार प्रस्तुत करता है। अंततः यह अध्ययन यह दर्शाने का प्रयास करता है कि कैसे न्यायिक और तकनीकी उपायों का समन्वय करके साइबर अपराधों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित

किया जा सकता है।

महत्व –

आज के डिजिटल युग में इंटरनेट, मोबाइल एप्लिकेशन और अन्य तकनीकी प्लेटफ़ॉर्म जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं, लेकिन इसके साथ ही साइबर अपराधों में भी तेजी से वृद्धि हुई है। ये अपराध न केवल व्यक्तिगत और वित्तीय नुकसान पहुंचाते हैं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और सामाजिक विश्वास पर भी गंभीर प्रभाव डालते हैं।

आपराधिक न्याय प्रशासन के सामने साइबर अपराधों की पहचान, जांच और रोकथाम में कई चुनौतियाँ आती हैं, जैसे कि डिजिटल साक्ष्यों का संग्रहण और प्रमाणीकरण, तकनीकी विशेषज्ञता की कमी, संसाधनों की अपर्याप्तता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता। पारंपरिक कानूनी और आपराधिक नियंत्रण प्रणालियाँ इन जटिल और सीमा पार तकनीकी अपराधों से पूरी तरह अनुकूल नहीं हो पाती हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य इन चुनौतियों का विश्लेषण करना, साइबर सुरक्षा और न्याय प्रशासन के बीच समन्वय की आवश्यकता को उजागर करना और नीतिगत तथा तकनीकी सुधारों के माध्यम से डिजिटल अपराधों से निपटने के उपायों पर विचार प्रस्तुत करना है।

उद्देश्य –

- साइबर अपराधों की प्रकृति और उनके प्रकारों का विश्लेषण करना।
- आपराधिक न्याय प्रशासन को साइबर अपराधों से निपटने में आने वाली मुख्य चुनौतियों की पहचान करना।
- डिजिटल साक्ष्य के संग्रहण, प्रमाणीकरण और कानूनी मान्यता से संबंधित समस्याओं का अध्ययन करना।
- साइबर सुरक्षा के मौजूदा उपायों और रणनीतियों का मूल्यांकन करना।
- अंतरराष्ट्रीय सहयोग, तकनीकी प्रशिक्षण और नीतिगत सुधारों के माध्यम से साइबर अपराध नियंत्रण के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।

समस्याएँ –

साइबर सुरक्षा और आपराधिक न्याय प्रशासन के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण समस्याएँ उभर रही हैं। सबसे बड़ी चुनौती यह है कि डिजिटल अपराधों की प्रकृति जटिल और लगातार बदलती रहती है, जिससे उनके पहचान और रोकथाम में कठिनाई आती है। डिजिटल साक्ष्यों का संग्रहण और कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त करना अक्सर विवादास्पद और तकनीकी रूप से चुनौतीपूर्ण होता है। इसके साथ ही, न्यायिक अधिकारी और कानून प्रवर्तन एजेंसियाँ तकनीकी विशेषज्ञता, पर्याप्त संसाधन और आधुनिक उपकरणों की कमी का सामना करती हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साइबर अपराधों का असर सीमा पार होने के कारण न्यायिक और कानूनी समन्वय में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। इसके अलावा, नीतिगत और प्रशिक्षण संबंधी कमज़ोरियाँ, साइबर सुरक्षा जागरूकता की कमी और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म पर तेजी से बढ़ते नए खतरे भी समस्याओं को और जटिल बनाते हैं। ये सभी कारक मिलकर साइबर अपराध नियंत्रण और आपराधिक न्याय प्रशासन को गंभीर चुनौतियों के सामने खड़ा करते हैं।

सुझाव –

साइबर सुरक्षा और आपराधिक न्याय प्रशासन की चुनौतियों से निपटने के लिए कई प्रभावी उपाय किए जा सकते हैं। सबसे पहले, डिजिटल साक्ष्यों के संग्रहण, संरक्षण और कानूनी मान्यता के लिए स्पष्ट और मजबूत

नियम बनाए जाने चाहिए। न्यायिक अधिकारियों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों के लिए तकनीकी प्रशिक्षण और विशेषज्ञता बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। साथ ही, साइबर सुरक्षा जागरूकता कार्यक्रमों और नीतिगत सुधारों के माध्यम से नागरिकों और संस्थानों को सुरक्षित डिजिटल व्यवहार के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय सहयोग और सूचना साझा करने के मंचों को मजबूत करके सीमा पार साइबर अपराधों पर प्रभावी नियंत्रण संभव है। अंततः, नवीनतम तकनीकी उपाय जैसे एन्क्रिप्शन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित निगरानी और साइबर फोरेंसिक टूल्स का समन्वित उपयोग न्यायिक प्रणाली की क्षमता को बढ़ा सकता है और साइबर अपराधों से निपटने में प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष –

साइबर अपराधों की बढ़ती जटिलता और डिजिटल प्रौद्योगिकी के तेज़ी से विकास ने आपराधिक न्याय प्रशासन के सामने कई गंभीर चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। पारंपरिक कानूनी और न्यायिक ढांचे अक्सर इन तकनीकी अपराधों के स्वरूप और सीमा–पार प्रभावों से पूरी तरह अनुकूल नहीं हो पाते। डिजिटल साक्ष्यों का संग्रहण, प्रमाणीकरण और कानूनी प्रक्रिया में बाधाएँ, न्यायिक अधिकारियों और कानून प्रवर्तन एजेंसियों में तकनीकी विशेषज्ञता की कमी, संसाधनों की अपर्याप्तता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता जैसी समस्याएँ इस क्षेत्र को और जटिल बनाती हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए न्यायिक प्रणाली और तकनीकी ढांचे में समन्वित सुधार अत्यंत आवश्यक हैं। प्रभावी नीतियाँ, आधुनिक तकनीकी उपकरणों और साइबर फोरेंसिक उपायों का समन्वित उपयोग, प्रशिक्षण और जागरूकता अभियान साइबर अपराधों की पहचान, रोकथाम और नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। साथ ही, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और जानकारी साझा करने के प्लेटफ़ॉर्म को मजबूत करना सीमा पार अपराधों से निपटने में मददगार सिद्ध हो सकता है।

अंततः, यह स्पष्ट है कि साइबर सुरक्षा और आपराधिक न्याय प्रशासन के बीच समन्वित दृष्टिकोण और सतत सुधार ही डिजिटल युग में न्याय, सुरक्षा और समाज की सुरक्षा सुनिश्चित करने की कुंजी हैं। यदि इन उपायों को प्रभावी रूप से लागू किया जाए, तो न केवल साइबर अपराधों की दर कम की जा सकती है, बल्कि नागरिकों और संस्थानों में डिजिटल सुरक्षा और विश्वास भी मजबूत किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

- कुमार, अजय, साइबर अपराध और कानून, नई दिल्ली : न्याय प्रकाशन, 2021।
- सिंह, राधा, डिजिटल सुरक्षा और साइबर कानून. जयपुर : टेक्नोलॉजी पब्लिकेशन, 2020।
- भारतीय साइबर अपराध रिपोर्ट, भारत सरकार, केंद्रीय गृह मंत्रालय, 2022।
- चौहान, विकास, साइबर फोरेंसिक और डिजिटल साक्ष्य प्रबंधन. मुंबई : साइबर एजुकेशन पब्लिकेशन, 2019।
- भारत में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000।
- OECD. Cybersecurity and Criminal Justice Challenges. Paris : OECD Publishing, 2020.
- M. Smith, Cybercrime: Challenges for Law Enforcement, New York : Springer, 2018.
- International Telecommunication Union (ITU). Global Cybersecurity Index Report, 2021.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 192-198

Factors Affecting Employee Retention Among Generation Z Employees in Startup

Dr. Priya Singh

Assistant Professor, Department of Commerce and Management Studies.

Mahatma Gandhi Kashi Vidhyapith Varanasi.

ABSTRACT :

Startups face additional retention issues as Generation Z, defined as those born between 1997 and 2012, enters the workforce with different expectations and beliefs. The elements influencing Gen Z employees' retention in startups are examined in this study. A structured questionnaire was used to gather data from 120 Gen Z workers employed by startups in the Varanasi using a quantitative descriptive design. Pay and benefits, work-life balance and flexibility, career advancement and learning opportunities, corporate culture and leadership style, and technology and work environment are the five main characteristics identified by the study. According to research, professional advancement, mental health support, flexible work schedules, and a purpose-driven culture are better indicators of retention for Generation Z than traditional retention tactics like high salaries alone.

Keywords : Work-Life Balance, Organizational Culture, Startups, Generation Z, and Retention of Employees.

INTRODUCTION :

Talent is both the greatest resource and the greatest obstacle in the startup ecosystem. Now, the bulk of startup employees are members of Generation Z, who were born between 1997 and 2012. Gen Z seeks purpose, flexibility, quick learning, and a positive workplace atmosphere in addition to employment stability, unlike earlier generations. Despite being creative and active, startups are frequently marked by low compensation, intense pressure, and instability, which results in high yearly turnover rates of 28–32%. Gen Z is not being retained by conventional retention tactics that solely concentrate on pay. With an emphasis on pay, work-life balance, career advancement, organizational culture, and work environment, this study seeks to determine and evaluate the critical elements influencing employee retention among Generation Z workers in startups.

With the arrival of Generation Z into the workforce, employee retention has become a crucial concern for entrepreneurs. Compared to traditional corporate employees, Gen Z employees have

different expectations about work culture, growth, and flexibility. Startups are losing time and money due to Gen Z's high turnover rate. In order to assist founders in creating successful, Gen Z-centric retention strategies, this study looks at the key elements affecting Gen Z retention in startups. Startups face a paradox: they need young, innovative talent to grow, but they suffer from the highest turnover rates. According to NASSCOM (2024), average annual attrition in Indian startups is 28-32%, with Generation Z accounting for over 60% of exits within 18 months.Generation Z differs from Millennials and Gen X. Research by Schroth (2019) shows Gen Z prioritizes flexibility, mental health, purpose, and rapid growth over long-term job security. While startups offer innovation and flat hierarchy, they also offer instability, low pay, and burnout — factors that clash with Gen Z expectations (Gabrielova & Buchko, 2021). Despite growing literature on employee retention, limited research focuses specifically on Gen Z in the startup ecosystem of South Asia. Most retention models were built for corporate jobs, not for high-pressure, resource-constrained startups.

LITERATURE REVIEW :

For more than a century, employee retention has been a major focus of human resource management studies. Retention, according to Hom et al. (2017), is the organizational endeavor to prevent valuable personnel from leaving and to lower voluntary turnover. Due to hiring, training, and intellectual capital loss, the cost of turnover in knowledge-intensive companies, such as startups, is estimated to be between 50 and 75 percent of yearly compensation.

Early retention theories, including March and Simon (1958) and Herzberg's Two-Factor Theory (1959), focused on organizational commitment, job satisfaction, and the harmony between hygiene elements and motivators. Although these theories are still fundamental, they were created for stable corporate settings and do not adequately represent the ideals of Generation Z, the newest generation of workers.

The first generation to enter the workforce as true digital natives is Generation Z, who were born between 1997 and 2012 (Seemiller & Grace, 2018). Gen Z values distinct lines between work and life, in contrast to Millennials who advocated work-life integration. According to Schroth (2019) in the California Management Review, Gen Z workers have a low threshold for hierarchical and opaque cultures and need regular feedback, mental health care, and moral leadership. They see a job as a platform for learning rather than a lifelong career.

According to Chillakuri (2020), Gen Z anticipates a feeling of purpose, quick onboarding, and technology-driven procedures. Their intention to leave increases dramatically if these expectations are not fulfilled in the first six months.

According to conventional research, the main retention element is remuneration (Milkovich & Newman, 2008). But new research on Generation Z indicates a change. Only 38% of Gen Z

respondents to Deloitte's Gen Z and Millennial Survey (2024) cited pay as the primary motivator for staying, with work-life balance and educational possibilities ranking higher. Non-monetary advantages including flexible benefits, health insurance, and ESOPs have grown more important in the context of Indian and Nepali businesses, because salaries are frequently below market rate (NASSCOM, 2023). According to Gabrielova and Buchko (2021), among all generations at work, Gen Z reported the highest levels of worry and burnout. Gen Z's need for flexibility is squarely at odds with startups' "hustle culture" and extended workdays.

According to Randstad's (2023) research, 62% of Gen Z workers in startups would rather quit than follow a strict 9–5, onsite-only work schedule. Mental health leave and hybrid work are now viewed as retention strategies rather than benefits.

According to Seemiller and Grace (2018), Gen Z has a "need for speed" in their job advancement, anticipating a promotion or skill upgrade in less than a year. Lack of mentorship and a defined career path is the main cause of resignation in companies with inadequate formal training systems. In their research on Malaysian startups, Goh and Lee (2018) discovered that workers who had access to opportunities for professional growth and formal learning were 2.5 times more likely to stick around.

According to Schroth (2019). Turnover is largely caused by micromanagement, toxic cultures, and a lack of psychological safety. According to a study on Indian startups by Sharma and Stolp (2022), open communication, inclusive decision-making, and a culture of acknowledgment greatly increased the retention of young workers. Additionally, Gen Z has a high level of attention to social responsibility, diversity, and corporate ethics.

According to Chillakuri (2020), Gen Z is frustrated and disengaged by antiquated tools, laborious procedures, and disorganized work systems. Early-stage startups frequently have cluttered, disorganized work environments, which lower employee productivity and retention.

Research Problem :

What elements can increase Gen Z employees' retention and why do they leave businesses after a short tenure?

Research objective :

- To identify the main elements influencing Gen Z employees' retention in startups.
- To examine the impact of corporate culture, professional advancement, work-life balance, and pay affect retention.
- To provide suggestions for Gen Z retention to startup founders.

HYPOTHESES :

Based on literature, 5 hypotheses for testing :

H1: There is a significant positive relationship between Compensation & Benefits and Employee Retention among Gen Z in startups.

H2 : There is a significant positive relationship between Work-Life Balance & Flexibility and Employee Retention among Gen Z in startups.

H3 : There is a significant positive relationship between Career Growth & Learning Opportunities and Employee Retention among Gen Z in startups.

H4 : There is a significant positive relationship between Organizational Culture & Leadership Style and Employee Retention among Gen Z in startups.

H5 : There is a significant positive relationship between Technology & Work Environment and Employee Retention among Gen Z in startups.

RESEARCH METHODOLOGY :

- **Research Design :** Descriptive and causal quantitative research.
- **Population :** Gen Z employees (age 22-28) working in startups less than 5 years old in Varanasi/ U. P, India.
- **Sample Size :** 120 respondents using convenience sampling.
- **Data Collection :** Primary data through Google Form questionnaire with 5-point Likert Scale (1=Strongly Disagree to 5=Strongly Agree). 25 questions divided into 5 factors.
- **Data Analysis :** Mean, Standard Deviation, Correlation and Regression using SPSS.
- **Dependent Variable (DV) :** Employee Retention / Intention to Stay
- **Independent Variables (IVs) :** Career growth & development, work life balance, organizational culture, compensation & benefits, technology & environment

DATA ANALYSIS & FINDINGS :

Factor	Mean	Rank	Impact On Retention
Career Growth and Learning	4.45	1	Very High
Work Life Balance	4.32	2	Very High
Organizational Culture	4.18	3	High
Compensation And Benefits	3.85	4	Moderate
Technology And Environment	3.72	5	Moderate

Regression Outcome :

Career growth (ß=0.42, p<0.01) and work-life balance (ß=0.38, p<0.01) are the strongest predictors of Gen Z retention, while compensation is significant but weaker (ß=0.19, p<0.05). H2 and H3 are strongly supported by this 60% of respondents said that if startups offered : Flexible scheduling, mental health support, and a clear advancement as shown in the above timetable.

Reliability Analysis :

The reliability of the questionnaire was tested using Cronbach's Alpha. The overall alpha value was 0.912, which indicates excellent internal consistency. All individual constructs had alpha values above 0.70, as shown in Table 1. This confirms that the questionnaire is reliable and suitable for further analysis

DISCUSSION :

The results run counter to the conventional retention idea that salary is king. Growth is the new pay in companies for Generation Z. Startups can outperform multinational corporations in terms of learning speed and adaptability, but they cannot compete on salary. This supports the findings of Gabrielova & Buchko (2021), who discovered that Gen Z saw work as a platform for learning rather than a career.The low rank of remuneration does not imply that salary is insignificant; rather, it indicates that while below-market compensation is expected in startups, poor mental health is not.

The study concludes that employee retention among Generation Z in startups is driven more by intrinsic and lifestyle factors than by traditional extrinsic factors like salary.

For Gen Z, the traditional formula of retention = high compensation + job stability is ineffective. For them, retention is equal to growth, flexibility, and a positive culture. The most important thing is learning and career growth. If Gen Z workers have a clear career path, receive regular mentoring and feedback, and learn something new every day, they will stick around.

The second most crucial element is work-life balance. Startups need to realize that Gen Z will not compromise their mental well-being in order to expand their business. Over late-night hustle, they favor a hybrid model, respect for personal time, and mental health support.

The third important factor is organizational culture. Gen Z prefers a coach over a boss. Psychological safety, acknowledgment, and open communication are crucial.

In terms of hygiene, compensation is significant, but it is not an incentive. A startup must provide fair, transparent compensation and flexible perks, but it is not required to match MNC salaries.As is already known, technology does not play a major role in retention.

CONCLUSION & RECOMMENDATIONS :

Free lunches and bean bags won't keep Gen Z. Startups need to rethink retention :

1. **Career Growth :** Establish 90-day growth objectives, coaching, and a 10,000-rupee annual

microlearning budget.

2. **Work-Life Balance :** Mental health leave, no-meeting Fridays, three days of WFO plus two days of WFH hybrid.
3. **For Culture :** Transparent compensation bands, inclusive decision-making, and weekly one-on-one feedback should take the place of annual appraisals.
4. **Compensation :** Offer flexible benefits, such as wellness, upskilling, or health, as part of compensation.

Gen Z will stick with startups that view people as partners rather than assets.

LIMITATIONS :

Restricted to a sample of 120 people in Varanasi City; qualitative interviews and a larger sample size may be used in future studies.

REFERENCES :

- Chillakuri, B. (2020). Understanding Generation Z expectations for effective onboarding. Journal of Organizational Change Management, 33(7), 1277–1296. https://doi.org/10.1108/JOCM-02-2020-0058
- Deloitte. (2024). The Deloitte Global 2024 Gen Z and Millennial Survey: How Gen Zs and millennials are creating a future of their own. Deloitte Touche Tohmatsu Limited.
- Gabrielova, K., & Buchko, A. A. (2021). Here comes Generation Z: Millennials as managers. Business Horizons, 64(4), 489–499. https://doi.org/10.1016/j.bushor.2021.02.013
- Goh, E., & Lee, C. (2018). A workforce to be reckoned with: The emerging pivotal Generation Z hospitality workforce. International Journal of Hospitality Management, 73, 20–28. https://doi.org/10.1016/j.ijhm.2018.01.016
- Herzberg, F. (1959). The motivation to work. John Wiley & Sons.
- Hom, P. W., Lee, T. W., Shaw, J. D., & Hausknecht, J. P. (2017). One hundred years of employee turnover theory and research. Journal of Applied Psychology, 102(3), 530–545. https://doi.org/10.1037/apl0000103
- March, J. G., & Simon, H. A. (1958). Organizations. John Wiley & Sons.
- Milkovich, G. T., & Newman, J. M. (2008). Compensation (9th ed.). McGraw-Hill.NASSCOM. (2023). Indian startup ecosystem report 2023: Attrition and talent trends. National Association of Software and Service Companies.
- Randstad. (2023). Workmonitor 2023: Gen Z and the future of work. Randstad NV.
- Schroth, H. (2019). Are you ready for Gen Z in the workplace? California Management Review, 61(3), 5–18. https://doi.org/10.1177/0008125619841006

- Seemiller, C., & Grace, M. (2018). Generation Z: A century in the making. Routledge.
- Sharma, A., & Stolp, P. (2022). Organizational culture and retention of young employees in Indian startups. Journal of Entrepreneurship and Innovation in Emerging Economies, 8(2), 210–228. https://doi.org/10.1177/23939575221105534
- Stahl, G. K., Björkman, I., Farndale, E., Morris, S. S., Paauwe, J., Stiles, P., Trevor, J., & Wright, P. (2012). Six principles of effective global talent management. MIT Sloan Management Review, 53(2), 25–32.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 199-202

कुँड़ुख़ निबंध साहित्य का सामान्य परिचय

राधिका उराँव
सहायक प्राध्यापक / शोधार्थी, कुँड़ुख़ विभाग
राँची वीमेंस कॉलेज, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

कुँड़ुख़ झारखंड की प्रमुख जनजातीय भाषाओं में से एक है, जो उराँव जनजातियों की प्रमुख भाषा है। यह मुख्य रूप से झारखंड, बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, असम, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, अंडमान–निकोबार आदि क्षेत्र में बोली जाती हैं। इसके अलावा नेपाल, भूटान, बंगलादेश, अमेरिका, स्वीडेन और रोम जैसे देशों में बोली जाती है। कुँड़ुख़ भाषा केवल बोल–चाल की भाषा नहीं है, बल्कि इसके साथ समृद्ध लोक–संस्कृति और साहित्यिक परम्परा भी जुड़ी है। कुँड़ुख़ लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोक सुभाषित, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और निबंध आदि विभिन्न साहित्यिक विधाओं में रचनाकारों ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

कुँड़ुख़ साहित्य में निबंध साहित्य का अपना विशेष स्थान है। निबंध एक ऐसी गद्य–विधा है जिसमें लेखक किसी विषय पर अपने विचारों, अनुभवों, भावनाओं और दृष्टिकोणों को क्रमबद्ध तथा प्रभावपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करता है। कुँड़ुख़ निबंध साहित्य में भाषा, समाज, संस्कृति, प्रकृति, लोकजीवन, शिक्षा, कृषि, पर्व–त्योहार, सामाजिक समस्याओं, बदलते समाज और सरकारी योजनाओं जैसे अनेक विषयों की अभिव्यक्ति मिलती है। इस दृष्टिकोण से कुँड़ुख़ निबंध साहित्य केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि उराँव समाज के जीवन और उसकी मानसिकता का दस्तावेज भी है।

निबंध का अर्थ एवं परिभाषा :–

'निबंध' शब्द संस्कृत साहित्य से हिन्दी में लिया गया है। इसका अर्थ एकत्र करना, जोड़ना, बाँधना, संगठन करना, प्रबंध करना आदि। लेकिन अब 'निबंध' शब्द का प्रचलन अंग्रेजी के 'एस्से' (ESSAY) के पर्याय स्वरूप हो रहा है। प्रारंभ में लेख, आलेख, प्रबंध आदि भी इसके पर्याय थे। वस्तुतः विचारों की स्वाभाविक और तरंगित अभिव्यक्ति के लिए निबंध एक विशिष्ट रूप में स्थिर हो गया है। जिसकी परिभाषा अनिश्चित है।

कुँड़ुख़ में ब्यातोर लकड़ा ने निबंध के लिए हेअःना सँवरअना शब्द का प्रयोग किया है। हेअःना का अर्थ होता है बाँधना और सँवरअना का अर्थ सजाकर लिखना। सिनगी दई पत्रिका में और शोध कार्य के दौरान 'बखनी' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी तरह से आधुनिक रचनाकारों ने अधिकांश पुस्तकों में निबंध के लिए 'कत्थटुड़' शब्द का प्रयोग किया है। अतः कत्थटुड़ कहना उचित लगता है। जिस प्रकार कुँड़ुख़ में निबंध के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, उसी प्रकार अलग–अलग विद्वानों के अनुसार निबंध की परिभाषा इस प्रकार दी गई हैं–

(1) **डॉ० भागीरथ मिश्र के अनुसार** – ''निबंध वह गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी भी विषय पर स्वच्छंदता

पूर्वक परन्तु एक विशेष सौष्ठव–संहिति, सजीवता और वैयक्तिकता के साथ भावों, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करता है।''[1]

(2) **डॉ० श्याम सुन्दर दास के अनुसार** – ''निबंध उस लेख को कहना चाहिए जिसमें किसी गहन विषय पर विस्तृत एवं पांडित्यपूर्ण विचार किया गया हो।''[2]

(3) **डॉ० नागेन्द्र :–** ''निबंध उस कलात्मक गद्य लेख को कहते हैं, जिसमें वैयक्तिक दृष्टिकोण तथा आत्मिक दृष्टि से विषय का प्रवाहपूर्ण वर्णन हो और जो अपने संक्षिप्त आकार में स्वतः पूर्ण हो।''[3]

(4) **रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार** – ''यदि गद्य कवियों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में सबसे अधिक सम्भव होता है।''[4]

निबंध के तत्व :

निबंध के प्रमुख तत्व :

(1) **विचार** – निबंध में लेखक अपने विचार, अनुभव और दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है इसलिए विचार स्पष्ट, सार्थक और विषयाानुकूल होना चाहिए।

(2) **भाषा–शैली** – निबंध की भाषा सरल, स्पष्ट एवं प्रभावशाली होनी चाहिए। निबंध की भाषा विषय के अनुरूप होना चाहिए।

(3) **क्रमबद्धता** – निबंध में विचारों का प्रस्तुतीकरण सुव्यवस्थित और तार्किक क्रमानुसार होना चाहिए ताकि पाठक विषय को आसानी से समझ सके।

(4) **संक्षिप्तता और सुसंगति** – निबंध में संक्षिप्तता और सुसंगति बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। निबंध अनावश्यक विस्तार न होकर संक्षिप्त तथा एक सूत्र में बंधा हुआ होना चाहिए।

(5) **व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति** – जब कोई लेखक किसी विषय पर निबंध लिखता है तो उस निबंध में लेखक के व्यक्तित्व, भावनाओं और दृष्टिकोण की झलक दिखाई देती है।

(6) **सजीवता** – निबंधकार जब किसी निबंध की रचना करता है तब वह उसके माध्यम से किसी विचार की अभिव्यक्ति करता है या किसी भावना का चित्रण करता है। अतः निबंध रोचक होना चाहिए, उसमें सजीवता का होना अनिवार्य होता है।

(7) **गद्य की अनिवार्यता** – निबंध एक गद्यात्मक विधा है। अधिकतर निबंध गद्य में होता है। गद्य इसकी अनिवार्य शर्त होती है, किन्तु कभी–कभी इसमें पद्य का भी समावेश देखने को मिलता है।

कुँड़ुख़ निबंध के प्रकार :

कुँड़ुख़ निबंध को मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं –

(1) वर्णनात्मक निबंध (तिख़ड:अना कत्थटूड़)

(2) विचारात्मक निबंध (धोखना कत्थटूड़)

(3) भावात्मक निबंध (मनगुन कत्थटूड़)

(4) विवरणात्मक निबंध (पेदेखअना कत्थटूड़)

(1) **वर्णनात्मक निबंध** – वर्णनात्मक निबंध में किसी व्यक्ति, स्थान, वस्तु या घटना का वर्णन किया जाता है।

(2) **विचारात्मक निबंध** – विचारात्मक निबंध में चिंतन अर्थात विचार की प्रधानता होती है।

(3) **भावात्मक निबंध :–** भावात्मक निबंध में भाव की प्रधानता होती है।

(4) **विवरणात्मक निबंध** :–विवरणात्मक निबंध में कथा, समयकाल का वर्णन विवरण रहता है।

कुँड़ुख निबंध का उद्‌भव एवं विकास :

कुँड़ुख़ नाटक और उपन्यास के समान ही कुँड़ुख़ निबंध का वास्तविक उद्‌भव मध्यकाल 1940–50 में हुआ है। स्वतंत्रता के बाद उराँव समाज में एक नई सांस्कृतिक और राजनैतिक चेतना का उदय हुआ। जिसमें कुँड़ुख़ लेखकों ने अनेकानेक विषय को लेकर पत्र–पत्रिकाओं में अपने लेख प्रकाशित किए। विशेष रूप से इन्होंने समाज सुधार, शिक्षा प्रसार, राजनैतिक गतिविधि, जनता को जागरूक बनाना तथा राष्ट्रीय भावना का प्रणयन आदि। सर्वप्रथम पुस्तक के रूप में जगदीश त्रिगुणायत का 'उराँव भाषा और साहित्य' निबंध पुस्तक के रूप में आया। जिसमें कुँड़ुख़ भाषा और साहित्य के रूप में लम्बी निबंध लिखी गई है। 1976 ई. में एडमण्ड टोप्पो का 'कुँड़ुख़ कत्थपंडी' डंडी पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें लोककथा और लोकगीत के साथ–साथ उराँव के उद्‌भव, विकास, जीवन–यापन, शासन व्यवस्था, नेग–नियम से संबंधित 10 निबंध लिखा गया है। 2005 ई. में चौठी उराँव और महावीर उराँव का 'कुँड़ुख़ कत्थअइन अरा कत्थटूड़' प्रकाशन में आया। जिसमें व्याकरण के साथ–साथ कुल 23 निबंध है। उराँव समाज के रीति–रिवाज, धार्मिक व्यवस्था, पर्व–त्योहार एवं महापुरुषों की जीवनी इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। 2008 ई. में डॉ० शांति खलखो का ''पुना डहरे'' प्रकाशन में आया। जिसमें 22 आकाशवाणी राँची से अपनी वार्ता को संकलित कर निबंध के माध्यम से सरकारी योजनाओं व सरकार की गतिविधियों को आम जनता तक पहुँचाने का काम किया है। 2009 ई. में ब्यातोर लकड़ा का 'कुँड़ुख़ कत्थ–रफना' प्रकाशित हुआ।

2011 में बेचन उराँव का ''एग्हय पद्‌दा'' निबंध संग्रह आया। 2013 में महेश भगत का 'कुँड़ुख़ भाषा शिक्षण एवं साहित्य' प्रकाश में आया। 2013 ई. में ही जनजातीय कल्याण शोध संस्थान राँची कल्याण विभाग की ओर से 'कुँड़ुख़ लोक साहित्य' प्रकाशन में आया, जिसमें कुल 8 निबंध है। 2014 में कुमारी सुरना उराँव का ''डहरे'' निबंध पुस्तक आया। 2014 में ही भीखु तिर्की का ''चोन्हा कत्थटूड़'' आया जिसमें कुल 52 निबंधों का संग्रह है। 2018 ई. में प्रेमचंद उराँव का ''कुँड़ुख़ कत्थटुड़ अरा अतखा टुड़ना'' आया जिसमें कुल 24 निबंध पुस्तक आया, 2025 में बेचन उराँव का ''चोप्पा'' निबंध आया, जिसमें कुल 10 निबंध है। 2026 में डॉ० बंदे खलखो द्वारा लिखा गया ''पुना कत्थटूड़'' प्रकाशन में आया जिसमें कुल 16 निबंध है। आज निबंध पुस्तक के रूप में ही नहीं बल्कि शुरुआती दौर से अब तक विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं। जैसे – नाम कुँड़ुख़, पड़हा, सरना फूल, बिज–बिनको, बोलता, धुमकुड़िया, सिंगी दई, नाम कुँड़ुख, एजरखा, सरना फूल, पड़हा, बकपुन, हिन्दी पत्रिका जैसे – निष्कलगा, सग्गोम, संगम एवं अखड़ा, झारखण्डी साहित्य में इत्यादि में तरह–तरह के निबंध प्रकाशित हुए हैं।

कुँड़ुख़ निबंध की विशेषताएँ :

कुँड़ुख़ निबंध की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

(1) **संक्षिप्तता** – कुँड़ुख़ में लिखी गई अधिकांश निबंध बहुत लम्बी नहीं है। हालांकि निबंध के आकार पर कोई प्रतिबंध नहीं है। 10–12 पन्ने के निबंध तो कुँड़ुख़ में देखने को ही नहीं मिलते हैं। कुँड़ुख़ में जितने भी निबंध हैं भले ही आकार में छोटी हैं, लेकिन दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हैं।

(2) **गीतों का समावेश** – निबंध एक गद्यात्मक विधा है लेकिन कुँड़ुख़ निबंधों में गीतों का भी समावेश है। यह गीतों से अछूता नहीं रहा है। उराँव लोगों के रग–रग में गीत–संगीत भरा पड़ा है। गीतों के प्रति उनका अगाध प्रेम है। गीतों के बगैर इनके कोई कार्यक्रम सम्पन्न नहीं होता। कुँड़ुख़ में एक कहावत कही

गई है – ''**एकना दिम तोकना, कत्थादीम डंडी तली।**'' अर्थात चलना ही नृत्य और बोलना ही गीत है। वहाँ गीत कैसे छुट सकता। कुँडुख़ के अधिकांश निबंधकारों ने अपने आपको रोक नहीं पाया है। इस तरह से कुँडुख़ निबंध में यदा–कदा गीतों का भी वर्णन देखने को मिलता है।

(3) **लोक जीवन से जुड़ाव** – कुँडुख़ की अधिकांश निबंध लोक जीवन से जुड़ा हुआ मिलता है। इनके निबंध में उराँव समाज के परम्पराएं, संस्कृति, प्रकृति, रीति–रिवाज और दैनिक जीवन की झलक मिलती है।

(4) **एकसूत्रता** – कुछ विद्वानों के अनुसार निबंध में क्रम और व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहा गया है किन्तु ऐसा कहना ठीक/उचित नहीं है। कुँडुख़ निबंध में निबंधकार स्वयं को अभिव्यक्त करता है, जिसमें भावों का आवेग रहता है। उनकी वैयक्तिक विशेषता का अर्थ यह कदापि नहीं होता है कि निबंधकार अर्थहीन, भावहीन, प्रलाप करें, बल्कि कुँडुख़ निबंधकारों में चिंतन का प्रकाश रहता है। उनके द्वारा लिखित निबंध में एक सूत्रता पाई जाती है।

(5) **रोचकता एवं सजीवता** – कुँडुख़ निबंध में निबंधकार अपने विषय को रोचक एवं सजीव बनाने का प्रयास करता है। इसलिए अपनी भावनाओं को आकर्षक तरीके से एक समायोजित कसौटी में सहेजने का प्रयत्न करता है। साथ ही अपने विचारों, भावनाओं को सम्प्रेषित करने के लिए रोचकता एवं सजीवता का सहारा लेता है, ताकि पाठकों को विषय एवं तथ्य ग्रहण कर सके।

निष्कर्ष :–

कुँडुख़ निबंध साहित्य के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि कुँडुख़ निबंध साहित्य अभी भी पूर्ण विकास को प्राप्त न कर सका है, किन्तु आरंभिक काल से अब तक विकास की ओर लगातार अग्रसर है। कुँडुख़ निबंधकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से उच्चतम शिखर तक पहुँचाने के मार्ग पर दिखाई पड़ रहे हैं। एक से बढ़कर एक विचारवान निबंधकार कुँडुख़ में अपनी सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं। साहित्य के क्षेत्र में जिस प्रकार निबंध का महत्व है, उसके अनुसार इस क्षेत्र में और कार्य करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :

1. महेश भगत, कुँडुख़ कत्था–अरा कत्थपंडी गहि कुदुरना अरा परदना, अक्टूबर 2017, पृष्ठ संख्या – 53, 54, 55
2. बंदे खलखो, कुँडुख़ शिष्ट साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन, दिसम्बर 2021, पृष्ठ संख्या – 118, 119, 120, 122, 123
3. विद्योतमा निधि, ज्ञानोत्तम विधि, नागपुरी कर साहित्यिक निबंध – 2012
4. प्रेमचन्द उराँव, कुँडुख़ कत्थटुड़ अरा अतखा टूड़ना 2018 पृष्ठ संख्या – 6, 7
5. डॉ० किरण कुल्लू, खड़िया शिष्ट साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन, 2018
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास।
7. डॉ० श्याम सुन्दरदास, साहित्यालोचन, 2017

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 203-207

शिक्षा और शोध में मातृभाषा तथा क्षेत्रीय बोलियों की उपयोगिता

राजीव कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर – हिंदी
जे.एस. हिन्दू पी.जी. कॉलेज अमरोहा (उ.प्र.)

सारांश :

शिक्षा और शोध में भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि ज्ञान–सृजन और संज्ञानात्मक विकास की नींव है। प्रस्तुत शोध–पत्र में मातृभाषा एवं क्षेत्रीय बोलियों के माध्यम से शिक्षा और शोध के प्रभाव, महत्व तथा चुनौतियों का अध्ययन किया गया है। यह पत्र विश्लेषित करता है कि किस प्रकार क्षेत्रीय भाषाएँ मौलिक सोच, नवाचार और समावेशी ज्ञान–सृजन को बढ़ावा देती हैं।

बीज शब्द :- मातृभाषा, क्षेत्रीय बोलियां, ज्ञान सृजन, भाषा, शिक्षा, शोध आदि।

प्रस्तावना :

भाषा केवल संवाद का माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि यह मानव चेतना, संस्कृति और मौलिक ज्ञान–सृजन की संवाहक है। वैश्वीकरण और औपनिवेशिक इतिहास के प्रभावस्वरूप आधुनिक अकादमिक परिदृश्य में अंग्रेजी भाषा का एकाधिकार स्थापित हो गया है, जिससे उच्च शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान एक विशिष्ट अभिजात वर्ग तक सीमित होकर रह गए। इसके दुष्परिणामस्वरूप समाज का एक बड़ा वर्ग, जो अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में सोचने–समझने में सक्षम था, मौलिक ज्ञान निर्माण की मुख्यधारा से अलग–थलग पड़ गया। ज्ञानात्मक स्वतंत्रता और समावेशी शिक्षा का तकाजा है कि ज्ञान का लोकतंत्रीकरण किया जाए। यूनेस्को की नीति रिपोर्ट–2016 स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है कि शिक्षार्थी अपनी मातृभाषा में जटिल से जटिल अवधारणाओं को अधिक सुगमता, गहराई और गति से आत्मसात करते हैं। जब किसी शिक्षार्थी को उसकी अपनी भाषा में सोचने और विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता मिलती है, तब उसमें मौलिकता और नवोन्मेष का जन्म होता है। भारत जैसे भाषाई विविधता से समृद्ध देश में मातृभाषा और क्षेत्रीय बोलियों को प्राथमिक से लेकर उच्च अनुसंधान के स्तर तक अपनाना केवल भाषाई अस्मिता का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह देश में एक सशक्त और न्यायसंगत ज्ञान–पारिस्थितिकी के निर्माण की अनिवार्य शर्त है।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि :

मातृभाषा आधारित शिक्षा और अनुसंधान की अवधारणा को समझने के लिए भाषा, चिंतन और ज्ञानमीमांसा के अंतर्संबंधों का सैद्धांतिक विश्लेषण आवश्यक है। रूसी मनोवैज्ञानिक लेव वाइगोत्स्की के सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धांत के अनुसार– "भाषा बालक के संज्ञानात्मक विकास और चिंतन का मुख्य उपकरण है। जब कोई शोधार्थी अपनी मातृभाषा में सोचता है, तो उसका मस्तिष्क जटिल विचारों का विश्लेषण सहजता से करता है। इसके विपरीत, किसी पराई भाषा में अनुसंधान करते समय शोधार्थी की आधी ऊर्जा भाषा के अनुवाद और व्याकरणिक

शुद्धता में व्यतीत हो जाती है, जिससे मौलिक चिंतन बाधित होता है।" भाषाई वर्चस्व की समस्या पर प्रकाश डालते हुए डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक भाषा, समाज और संस्कृति (2007) में लिखते हैं– 'भाषा समाज के बौद्धिक विकास का दर्पण होती है। जब कोई समाज अपनी मातृभाषा को छोड़कर पराई भाषा को ज्ञान का साधन बनाता है, तो उसकी मौलिक सोच कुंठित हो जाती है और वह केवल अनुकरण तक सीमित रह जाता है।' जिससे सिद्ध होता है कि क्षेत्रीय भाषाओं को दरकिनार कर विदेशी भाषा के सहारे मौलिक शोध की अपेक्षा करना बेमानी है। शिक्षा शास्त्री डॉ. कृष्ण कुमार अपनी चर्चित कृति शिक्षा की भाषा (2014) में विचार व्यक्त करते हैं– 'शिक्षा में भाषा का प्रश्न केवल एक माध्यम का प्रश्न नहीं है, यह बच्चे के सोचने, दुनिया को देखने और अपनी पहचान बनाने की क्षमता से जुड़ा है। मातृभाषा में शिक्षा शिक्षार्थी को अपने अनुभवों को ज्ञान में बदलने का साहस देती है।' यह स्थापना दर्शाती है कि क्षेत्रीय भाषाएँ शोधार्थी को उसके स्थानीय परिवेश और व्यावहारिक अनुभवों से जोड़ती हैं, जिससे शोध केवल किताबी न होकर सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक बनता है। शोध कार्यप्रणाली के संदर्भ में डॉ. सी. आर. कोठारी अपनी पुस्तक रिसर्च मेथोडोलॉजी : मेथड्स एंड टेक्निक्स (2019) में उल्लेख करते हैं कि– "अनुसंधान का प्राथमिक हेतु सत्य की खोज और नए ज्ञान का निर्माण करना है। जब यह प्रक्रिया शोधार्थी की अपनी स्वाभाविक भाषा में संपन्न होती है, तो आंकड़ों का संग्रह, विश्लेषण और निष्कर्ष अधिक सटीक व वैज्ञानिक होते हैं।"

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारत में मातृभाषा और क्षेत्रीय बोलियों के माध्यम से ज्ञान–सृजन, शिक्षण और अभिव्यक्ति की एक समृद्ध और दीर्घकालिक ऐतिहासिक परंपरा रही है। समय–समय पर भाषाई परिदृश्य में आए परिवर्तनों और जन–भाषाओं के संघर्ष को निम्नलिखित ऐतिहासिक चरणों के माध्यम से समझा जा सकता है।

प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में क्षेत्रीय बोलियों का योगदान :

प्राचीन काल में जहाँ संस्कृत भाषा शास्त्र, दर्शन और अकादमिक विमर्श की मुख्य भाषा थी, वहीं पाली और प्राकृत जैसी जन–भाषाओं ने ज्ञान के लोकतंत्रीकरण में क्रांतिकारी भूमिका निभाई। भगवान बुद्ध और महावीर ने अपने उपदेश और दार्शनिक विचार जन–सामान्य की भाषा (पाली और प्राकृत) में दिए, जिससे ज्ञान राजप्रासादों और गुरुकुलों से निकलकर जन–जन तक पहुँचा। वहीं मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के दौरान कबीर, तुलसीदास, सूरदास, ज्ञानेश्वर और गुरु नानक जैसे संत–विचारकों ने अवधी, ब्रज, मराठी और पंजाबी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं में उच्चस्तरीय दार्शनिक और सामाजिक चिंतन प्रस्तुत किया। इस कालखंड ने यह सिद्ध किया कि मौलिक विचारों और सामाजिक सुधारों की अभिव्यक्ति मातृभाषा में ही सबसे अधिक प्रभावशाली होती है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक काल और भाषाई विस्थापन :

भारत में आंग्ल भाषा के एकाधिकार और मातृभाषाओं के ह्रास की शुरुआत 1835 के लॉर्ड मैकाले के 'मिनट ऑन एजुकेशन' से हुई। मैकाले का स्पष्ट उद्देश्य एक ऐसा वर्ग तैयार करना था जो 'रक्त और रंग से भारतीय हो, लेकिन रुचि, विचारों, नैतिकता और बुद्धि से अंग्रेज हो।' 1854 के 'वुड्स डिस्पैच' ने प्राथमिक शिक्षा में मातृभाषा के उपयोग की सिफारिश अवश्य की, लेकिन उच्च शिक्षा और प्रशासनिक स्तर पर अंग्रेजी को ही सर्वोपरि माना गया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय ज्ञान प्रणालियों और क्षेत्रीय भाषाओं को अकादमिक शोध और उच्च शिक्षा से दरकिनार कर दिया गया, जिससे एक गहरा भाषाई और सामाजिक विभाजन पैदा हुआ।

स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय विचारकों का दृष्टिकोण :

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देश के शीर्ष विचारकों ने माना कि स्वाधीनता केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि ज्ञानात्मक और भाषाई भी होनी चाहिए। महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक हिंद स्वराज और हरिजन पत्र में बार–बार रेखांकित किया कि "विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देना देश के बच्चों पर एक मानसिक बोझ डालता है और उनकी सृजनशीलता को समाप्त कर देता है।" उन्होंने श्बुनियादी शिक्षाश के तहत मातृभाषा में शिक्षण को अनिवार्य माना। रवींद्रनाथ टैगोर ने शांतिनिकेतन की स्थापना के माध्यम से मातृभाषा में सहज शिक्षा का मॉडल प्रस्तुत किया और कहा कि– 'मातृभाषा माँ के दूध के समान है, जो बाल मन को स्वाभाविक पोषण देती है।' स्वामी विवेकानंद ने भी आम जनमानस के उत्थान के लिए लोक–भाषा में शिक्षा और ज्ञान–प्रसार पर बल दिया।

स्वतंत्रोत्तर भारत में भाषाई नीतियाँ :

स्वतंत्रता के पश्चात् गठित विभिन्न शिक्षा आयोगों ने मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं के महत्व को स्वीकार किया जिनमें राधाकृष्णन आयोग ने विश्वविद्यालयी स्तर पर अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाने की सिफारिश की। कोठारी आयोग ने शिक्षा के सभी स्तरों पर 'त्रिभाषा सूत्र' का सुझाव दिया, जिसमें मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथमिकता दी गई। प्रथम एवं द्वितीय राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में क्षेत्रीय भाषाओं के संवर्धन, उच्च शिक्षा में उनके उपयोग और अनुवाद संस्थानों की स्थापना पर जोर दिया गया, यद्यपि व्यावहारिक रूप से अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहा। वर्तमान समय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 इसी ऐतिहासिक धारा को पुनर्जीवित करते हुए मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथमिक से लेकर अनुसंधान के स्तर तक पुर्नस्थापित करने का एक ऐतिहासिक प्रयास कर रही है।

मातृभाषा व क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा व शोध के प्रमुख आयाम :

मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा और अनुसंधान केवल एक भाषाई परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के बहुआयामी विकास का मुख्य आधार है। इस अवधारणा के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं–

संज्ञानात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आयाम :

- **सृजनशीलता और मौलिक चिंतन :** विदेशी भाषा में पढ़ते समय विद्यार्थी का मस्तिष्क मुख्य रूप से व्याकरण और अनुवाद पर ध्यान केंद्रित करता है। मातृभाषा में अध्ययन करने से बौद्धिक ऊर्जा की बचत होती है, जिससे सहज चिंतन, प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति और मौलिक विचारों का विकास होता है। अनजानी भाषा में कठिन अवधारणाओं को समझने का प्रयास शिक्षार्थियों में हीनभावना और तनाव उत्पन्न करता है। मातृभाषा में शिक्षा आत्म–विश्वास और सीखने के प्रति स्वाभाविक रुचि बढ़ाती है।

सामाजिक एवं समावेशी आयाम :

- **ज्ञान का लोकतंत्रीकरण :** आंग्ल भाषा के वर्चस्व के कारण ज्ञान एक विशिष्ट सामाजिक वर्ग तक सीमित हो गया था। क्षेत्रीय भाषाओं के उपयोग से ग्रामीण, जनजातीय और वंचित पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा व अनुसंधान में समान अवसर मिलते हैं। साथ ही अकादमिक और सामाजिक विषमता के क्षेत्र में यह आयाम समाज में फैली उस खाई को पाटता है जहाँ अंग्रेजी बोलने वाले वर्ग को ज्ञानवान और क्षेत्रीय भाषा बोलने वाले को पिछड़ा मान लिया जाता था।

अनुसंधान व नवाचार आयाम :

- **स्थानीय समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान :** क्षेत्रीय भाषा में अनुसंधान होने पर शोध सीधे स्थानीय विषयों 'जैसे कृषि तकनीक, स्थानीय जल प्रबंधन, जड़ी–बूटियों के प्रयोग, हस्तशिल्प और जनस्वास्थ्य समस्याएँ' से जुड़ता है। जब शोधार्थी स्थानीय भाषा और संस्कृति में जाकर आंकड़े एकत्र करता है, तो उसे प्राथमिक और वास्तविक जानकारी प्राप्त होती है, जिससे अनुसंधान की गुणवत्ता और प्रामाणिकता बढ़ती है।

सांस्कृतिक एवं भाषाई संरक्षण आयाम :

पारंपरिक ज्ञान प्रणाली का संरक्षण : भारत का सदियों पुराना वैज्ञानिक, गणितीय, औषधीय और दार्शनिक ज्ञान स्थानीय भाषाओं और पांडुलिपियों में रचा–बसा है। क्षेत्रीय भाषाओं में शोध से इस पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक संदर्भों में पुनः स्थापित किया जा सकता है। वहीं जब किसी भाषा को शिक्षा और रोजगार का माध्यम बनाया जाता है, तभी उसका तकनीकी और साहित्यिक विकास संभव होता है। शोध में प्रयोग होने से क्षेत्रीय भाषाओं में नए शब्दकोश और मानक शब्दावली का निरंतर निर्माण होता है।

आर्थिक एवं नीतिगत आयाम :

- **रोजगार के नए अवसर :** क्षेत्रीय भाषाओं में पठन–सामग्री, संदर्भ पुस्तकों के निर्माण, सॉफ्टवेयर विकास, ई–कंटेंट और अनुवाद के क्षेत्रों में व्यापक रोजगार का सृजन होता है।

मातृभाषा व क्षेत्रीय भाषाओं में सम्भावनाएँ और विस्तार :

क्षेत्रीय भाषाओं और मातृभाषा में अनुसंधान व शिक्षा का दायरा केवल साहित्य या भाषाशास्त्र तक सीमित नहीं है, बल्कि आधुनिक समय में इसका विस्तार विज्ञान, प्रौद्योगिकी, चिकित्सा और वैश्विक ज्ञान–तंत्र तक हो रहा है। इसके प्रमुख सम्भावना और विस्तार के क्षेत्र निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है :–

- **विज्ञान और प्रौद्योगिकी :** अभियांत्रिकी और विज्ञान की कठिन अवधारणाओं को क्षेत्रीय भाषाओं में तैयार करने से मौलिक सोच को बढ़ावा मिलता है। भारत में आईआईटी और एनआईटी द्वारा क्षेत्रीय भाषाओं में बी.टेक पाठ्यक्रम की शुरुआत इस दिशा में एक बड़ा कदम है।
- **चिकित्सा और जनस्वास्थ्य :** स्थानीय भाषाओं में चिकित्सा शिक्षा के विस्तार से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार होगा। मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में हिंदी में एमबीबीएस की पढ़ाई इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।
- **सामाजिक विज्ञान और कानून :** स्थानीय न्याय प्रणाली, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के गहन विश्लेषण के लिए क्षेत्रीय भाषाएँ अत्यंत प्रभावी माध्यम सिद्ध हो रही हैं।

डिजिटल तकनीक और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की भूमिका :

- **मशीन अनुवाद और एआई टूल :** 'भाषिणी' जैसे राष्ट्रीय एआई आधारित भाषा अनुवाद प्लेटफॉर्म के माध्यम से अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के वैश्विक शोध–पत्रों का त्वरित अनुवाद क्षेत्रीय भाषाओं में संभव हो रहा है।
- **डिजिटल ज्ञानकोश का निर्माण :** ई–ज्ञानकोश, नेशनल डिजिटल लाइब्रेरी और शोधगंगा जैसे पोर्टलों पर क्षेत्रीय भाषाओं में ई–बुक्स, शोध–प्रबंध और ऑडियो–वीडियो लेक्चर्स का तेजी से विस्तार हो रहा है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध–पत्र के समग्र विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि मातृभाषा और क्षेत्रीय बोलियों के माध्यम से शिक्षा और अनुसंधान को बढ़ावा देना केवल भावुकता, प्रांतीयता या भाषाई अस्मिता का विषय नहीं है, यह

वास्तविक, मौलिक और समावेशी ज्ञान–सृजन की पूर्व शर्त है। इतिहास और आधुनिक संज्ञानात्मक विज्ञान दोनों इस बात की पुष्टि करते हैं कि जब शोधकर्ता अपनी स्वाभाविक भाषा में चिंतन करता है, तभी मौलिक विचारों, नवोन्मेष और ज्ञान–परंपरा का वास्तविक विकास संभव होता है।

संक्षेप में, मातृभाषा आधारित शिक्षा और अनुसंधान ही ज्ञान का लोकतंत्रीकरण करने, स्थानीय समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान खोजने तथा भारतीय ज्ञान परंपरा को वैश्विक पटल पर स्थापित करने का एकमात्र माध्यम है। जब भारत अपनी भाषाओं के सामर्थ्य को पहचानकर आगे बढ़ेगा, तभी वह ज्ञान–सृजन के वैश्विक पथ पर विश्वगुरु के रूप में अपनी अग्रणी भूमिका पुनः प्राप्त कर सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. आहुजा, आर. (2011). सामाजिक अनुसंधान की पद्धतियाँ. रावत पब्लिकेशंस।
2. कुमार, के. (2014). शिक्षा की भाषा. राजकमल प्रकाशन।
3. कोठारी, सी. आर., और गर्ग, जी. (2019). रिसर्च मेथोडोलॉजी : मेथड्स एंड टेक्निक्स (4था संस्करण). न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स।
4. गांधी, एम. के. (1938). हिंद स्वराज. नवजीवन प्रकाशन मंदिर।
5. यूनेस्को (UNESCO). (2016). इफ यू डोन्ट अंडरस्टैंड, हाउ कैन यू लर्न? (ग्लोबल एजुकेशन मॉनिटरिंग रिपोर्ट पॉलिसी पेपर 24). https://unesdoc.unesco.org/
6. वाइगोत्स्की, एल. एस. (1978). माइंड इन सोसाइटी : द डेवलपमेंट ऑफ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेसेज. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
7. शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार। https://www.education.gov.in/
8. शर्मा, आर. (2002). भाषा और समाज. राजकमल प्रकाशन।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 208-212

भारतीय जनजातीय औषधीय चिकित्सा–पद्धति

डॉ. राम कुमार
सहायक प्राध्यापक, नागपुरी विभाग,
राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

भूमिका :–

जन्म, जरा, मृत्यु जीवन का परम सत्य है। इस धरती पर जिसने भी जन्म लिया है। एक नीयत समय के पश्चात् उसकी मृत्यु निश्चित है। जीवन और मृत्यु के बीच जो अवधि है, उसे हम कैसे व्यतीत करते हैं? वह हमारे जीवन–शैली, खान–पान और भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करता है। विरले ही कोई मनुष्य होगा जो अपने जीवन काल में कभी रोग–दुःख से ग्रसित न हुआ हो। प्राचीन काल से लेकर अब तक व्याधि से मुक्ति पाने के अनेक प्रयास हुए हैं और निरंतर हो रहे हैं। आज की आधुनिक काल में कई प्रकार के व्याधियों से, रोगों से मुक्ति के लिए अनेक औषधि एवं वस्तुएं उपलब्ध हैं एवं खोज भी जारी है। किंतु प्राचीन काल में जब कोई मनुष्य व्याधि, रोगों से ग्रसित होता था उस समय स्थानीय उपलब्ध जड़ी–बूटियों एवं सुविधाओं के माध्यम से ही आरोग्य प्राप्त करते थे और आज भी कर रहे हैं। प्राचीन काल में इस विधा पर लिखी गई पुस्तकें प्राप्त होती है। किंतु भारत के परिपेक्ष्य में, स्थानीय स्तर पर वैद्य और जानकार लोग ही उपचार करते थे। उपचार के संसाधन भी स्थानीय ही होते थे। जड़ी–बूटी और औषधीय तेल आदि का प्रयोग कर रोगग्रस्त व्यक्तियों का इलाज होता था। कमोवेश आज भी इसका प्रचलन है। प्रकृति का यह वरदान है कि भारत में अनेकों प्रकार की जड़ी–बूटियाँ उपलब्ध हैं। जिनका प्रयोग विभिन्न प्रकार के रोगों के इलाज में किया जाता है।

प्राकृतिक और स्थानीय चिकित्सा–पद्धति की ओर पूरा विश्व पुनः लौट रही है और आशा भरी नजरों से असाध्य रोगों का निदान के लिए पुनः जड़ी–बूटियों का प्रयोग कर रही है। आधुनिक चिकित्सा के जो नकारात्मक प्रभाव हैं उनसे अब विश्व परिचित हो चुका है। किंतु प्राचीन लोकजीवन, लोक संस्कृति के ज्ञान के आधार पर जो औषधियाँ प्रयोग में लायीं जाती थी, उनका कोई दुष्प्रभाव रोगियों पर नहीं पड़ता। भारत के औषधीय ज्ञान रखने वाले लोगों का कोई लिखित विवरण नहीं मिलता। इतना ही नहीं इस क्षेत्र में पाए जाने वाले जड़ी–बूटियों का औषधीय गुणों का वर्णन कोई एक जगह नहीं मिलता और आमजन इसके गुणों को नहीं जानते हैं। जिसके कारण अपने आस–पास, अपने अगल–बगल में सहज उपलब्ध औषधीय गुणों से भरे–पूरे जड़ी–बूटियों, साग–पात और वृक्ष के छाल वगैरह का प्रयोग नहीं कर पाते। यहाँ तक कि अपने रसोई घरों में उपयोग की जाने वाली चीजों के भी औषधीय गुणों को नहीं जानते हैं।

इस आलेख में इन्हीं कमियों को पूरा करने का प्रयास किया गया है। इसमें भारत में सहज रुप से प्राप्त साधनों के बारे में, उसके गुणों, प्रयोग विधियों और उसके प्रभाव के बारे में जनमानस के सामने रखने का प्रयास किया गया है। हो सकता है कि कुछ कमीवेशी इस आलेख में हो सकती है, किंतु इस आशा के साथ कि शुद्धि

पाठकों, विद्वतजनों, जानकारों का सुझाव मिलेगा।

भारत की धरती न केवल खनिज सम्पदा से परिपूर्ण है अपितु यहाँ के सपूत अपने पारम्परिक ऐतिहासिक ज्ञान से भी धन–धान्य है। भारत में रहने वाले जनजाति पारम्परिक ढंग से सभी प्रकार के ज्ञान से समृद्ध रहे हैं। यदि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि जनजातियों का ज्ञान भण्डार पुरातन काल से अपने वास्तविक रूप में विद्यमान रही है। ऐसा कहने के पीछे पुख्ता वजह है। यद्यपि किसी एक समूह अथवा काल को सर्वज्ञान से परिपूर्ण कहना अतिशयोक्ति होगी फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मानव जीवन के जन्म से अंत तक प्रायः सभी तथ्यात्मक तत्व जनजातियों की मौलिक इतिहास में उपलब्ध रही है और इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि हर क्षेत्र एवं हर विद्या में जनजातियों का ज्ञान भण्डार समृद्ध रहा है।

इस आलेख में हमने जनजातियों के पारम्परिक औषधीय ज्ञान के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने एवं इनके विश्लेषण द्वारा निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया है। भारत के जनजाति समाज अपनी औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु बाहरी दुनिया पर आश्रित नहीं रहा है बल्कि बाहरी दुनिया ने जनजातियों की पारम्परिक व ऐतिहासिक औषधीय वातावरण को प्रदूषित किया है। ऐसा कहने के पीछे ठोस वजह है। भारत के जनजातीय समाज के कई प्रकार से शोषण–दोहन होता रहा है। जनजातीय समाज अपनी औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर रहा है किन्तु प्रकृति से छेड़छाड़ ने जनजातियों को धीरे–धीरे प्राकृतिक अपादानों से दूरी बनाने पर विवश कर दिया है। यह एक वृहत् विश्लेषण का विषय है।

पारम्परिक औषधीय चिकित्सा–पद्धति से परिपूर्ण जनजातीय समुदाय अपनी औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति अपने पारम्परिक ज्ञान से करता रहा है जिससे अन्य समूह भी लाभान्वित होते रहे हैं। बल्कि यह कहना सर्वथा उचित प्रतीत होता है कि जनजातियों का औषधीय ज्ञान का विस्तार विश्व के अन्य समूहों और दूसरे–दूसरे भागों में हुआ है और ऐतिहासिक रूप से पारम्परिक औषधीय ज्ञान में पारंगत जनजातीय समाज अपने ही ज्ञान से दूर होता गया। आज स्थिति ऐसी हो गई है कि जनजातीय समाज अपने ज्ञान से अनभिज्ञ होता जा रहा है और इसी ज्ञान को जानकर, शोध करके अन्य शक्तियाँ अपने औषधीय ज्ञान को बढ़ाते हुए व्यवसायिक रूप प्रदान करते जा रहे हैं। भारत के जनजातीय क्षेत्र निरंतर बाहरी शक्तियों का हस्तक्षेप झेलते–झेलते अपने पारम्परिक क्रिया–कलापों से दूर होते जा रहे हैं। एक लम्बे समय तक बाहरी आक्रमण एवं विदेशी ताकतों की सत्ता में काबिज रहने के कारण जनजातीय क्षेत्र प्रयोगशाला एवं जनजाति इसके अवयय बनते रहे हैं जबकि जनजाति ही वास्तव में पारम्परिक औषधीय ज्ञान के जन्मदाता रहे हैं।

जनजातियों का विस्तृत एवं उपयोगी औषधीय ज्ञान का ही देन है कि आज के 'साइड इफेक्ट' से ग्रसित औषधीय प्रणाली की अपेक्षा देशी चिकित्सा–पद्धति/जुड़ी–बूटी से इलाज और फल–फूल, कन्द–मूल की ऋषि–मुनियों वाली पारम्परिक औषधीय ज्ञान से हानिरहित, लाभकारी औषधीय प्रणाली पुनः जीवित हो रही है एवं प्रमुखता से इनका प्रयोग हो रहा है। पारम्परिक औषधीय ज्ञान की व्यापकता इसी से समझी जा सकती है कि आज लगभग विश्व के हर हिस्से में पारम्परिक चिकित्सा पद्धति का प्रचार–प्रसार और उपयोगिता बढ़ी है।

इस आलेख के माध्यम से जनजातियों की पारम्परिक औषधीय ज्ञान एवं इसकी व्यापक उपयोगिता को दर्शाने का संक्षिप्त प्रयास किया गया है जिसके वाहक जनजातीय समाज रहे हैं।

विशिष्ट शब्द :- परम्परा, औषधी, जड़ी–बुटी, प्राचीन भारतीय ग्रंथ, आखेट, जनजाति, रोम, रोग नाशक, पारम्परिक ज्ञान, संजीवनी, ऋषि–मुनी।

शोध विधि :-

यह शोध आलेख विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक पद्धति से प्रस्तुत है। इसकी प्रस्तुति में विभिन्न संदर्भ ग्रन्थों, साक्षात्कार एवं द्वितीयक स्रोतों का सहयोग लिया गया है।

तथ्य विश्लेषण :-

जनजातीय जनमानस का सम्पूर्ण जीवन चक्र प्रकृतिक के इर्द–गिर्द घुमता है। विभिन्न मानव वैज्ञानिकों का मानना है कि जनजातीय जन–जीवन प्रकृति की क्रोढ़ से आरम्भ होता है और प्रकृति की क्रोढ़ में समा कर समाप्त हो जाता है। यह वास्तविकता भी है। यदि हम भारत के जनजातियों के संदर्भ में इसका अध्ययन करें तो अनेक तथ्य स्पष्ट होते जाएंगे। आदिकाल से रहने वालों को जनजाति के रूप में निरूपित किया जाता है।

यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि जिस काल खण्ड में आज के तरह नए–नए अन्वेषण नहीं हुए थे, वैज्ञानिक प्रगति नहीं हुई थी तो भी मानव जीवन की हर आवश्यकता पूरी हो रही थी और आज की अपेक्षा कहीं ज्यादा संतुष्ट समाज था। इसमें विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जनजातीय समाज आज भी सर्वाधिक संतुष्ट एवं शांतिप्रिय माना जाता है क्योंकि इस समाज में अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा या जरूरत से ज्यादा की चाहत नहीं है। जिस प्रकार से प्रकृति अपनी अनवरत् गति से चलयमान रहती है, उसी प्रकार जनजातीय समाज भी गतिमान रहते आ रहा है।

प्रकृति और जनजातीय जनमानस का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्रकृति जनजातीय जनमानस की जीवन प्रणाली है तो जनजाति पूर्णतः प्रकृति पर आधारित हैं। प्रकृति के प्रमुख स्तम्भ जल, जंगल, जमीन है और इन तीनों प्रमुख स्तम्भ ही जनजाति जन–जीवन का मूलाधार है। जब मानव जाति का आर्विभाव हुआ और धीरे–धीरे यह बढ़ने लगा तो इस जाति के पूर्वज जनजाति ही थे और ये पूर्णतः जल, जंगल, जमीन पर ही आश्रित थे। जंगल और जनजाति एक–दूसरे के पर्याय माना जा सकता है, कारण यह है कि जनजाति ने जंगल अर्थात् पेड़–पौधों को ही अपना जीवन–चक्र का मूलाधार माना। जंगलों के पेड़–पौधे एक ओर सुरक्षित निवास, दिन–प्रति–दिन की आवश्यकताओं के पूर्तिकर्ता थे तो दूसरी ओर हर कष्ट का निवारण पेड़–पौधे में मौजूद था। यह सिर्फ ऐतिहासिक सच्चाई भर नहीं है बल्कि आज भी जनजाति समाज बिना पेड़–पौधे के अपना जीवन पूर्ण नहीं मानता है।

जनजातियों के लिए जंगली पेड़–पौधों का दायरा काफी विस्तृत है इसमें एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा औषधीय पेड़–पौधों का है। इन पेड़–पौधों से जुड़ाव और लाभ की एक पुरानी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। जनजाति इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के केन्द्र में है। पुरानी ऐतिहासिक परम्परा को देखा जाए तो जनजातियों का पुरातन काल से पेड़–पौधों से लगाव रहा है। इसके भी कई कारण हो सकते हैं। विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि जनजातियों को औषधीय पौधों एवं इनके उपयोग विधि का ज्ञान प्राचीन काल से रहा है। कई स्रोतों से प्राप्त जानकारी के मुताबिक जनजातीय समाज न केवल कन्द–मूल, फल–फूल का उपयोग करता है बल्कि अपनी तमामतर दुःखों के निवारण का भी उपाय जनजातियों को पेड़–पौधों से ही प्राप्त होता रहा है। वैसे तो जनजाति कहने से ही पेड़–पौधों से स्वाभाविक सम्बन्ध का बोध होता है। मानव द्वारा पेड़–पौधों का उपयोग उतना ही प्राचीन है, जितनी कि मानव सभ्यता, अनेक भारतीय ग्रंथों में जड़ी–बूटी तथा इसके ज्ञाता का गुणगान भरा पड़ा

है। रामायण में संजीवनी बूटी की महिमा के बखान को लीजिए, संजीवनी की शक्ति ने मूर्छित लक्ष्मण को मिनटों में होश में ला दिया। भारत के सुदूर जंगलों और पहाड़ियों की तलहटी में निवास करने वाली विभिन्न जनजातियों के बीच जिस प्रकार के औषधीय पौधों (इथिनिक मेडिसनल प्लांट) का ज्ञान है तथा जिस तरह से इन पौधों से असाध्य रोग भी साध्य हो जाता है।

सरकारी स्वास्थ्य सेवा के अभाव में भारत की अनेक जनजातियाँ जड़ी–बूटी से ही अपने स्वास्थ्य को ठीक रखती हैं। इन्हें औषधीय पौधों का ज्ञान मौखिक रूप से अपने पूर्वजों से मिलता आया है। इनके द्वारा प्रयोग में लायी जानेवाली जड़ी–बूटी में जहाँ कुछ जंगली कंद शामिल हैं। वहीं कुछ पौधों की जड़, तना, छाल तथा पत्ते भी शामिल हैं। इन जड़ी–बूटी से तन तो तंदुरूस्त रहता ही है साथ ही आश्चर्य तो यह है कि कुछ जड़ी–बूटी से मानव मन में किसी के प्रति उपजे द्वेष और कटुता का भी इलाज होता है। भारत में लगभग 550 जनजातियाँ निवास करती है। अगर हम झारखण्ड की बात करें तो यहाँ 32 जनजातियाँ निवास करती हैं, जिसमें कुछ बहुसंख्यक है तो कुछ अल्पसंख्यक, कुछ जनजातियाँ तो इन दिनों भी खाद्य संग्रह तथा आखेट के साथ–साथ स्थानांतरित कृषि पर ही आश्रित है। जिसके कारण इन्हें यहाँ आदिम जनजाति की श्रेणी में रखा गया है, जिनकी संख्या आठ है। सौरिया पहाड़िया जो राजमहल की पहाड़ियों पर निवास करती है तथा बिरहोर व असूर जो मुख्य रूप से हजारीबाग, गुमला, लोहरदगा तथा राँची के जंगलों में रहते हैं ये आदिम जनजाति के अंतर्गत आते हैं। इसी तरह पशुपालन, कृषि और मजदूरी पर पूर्ण रूप से निर्भर बेदिया जनजाति झारखण्ड की बहुसंख्यक जनजाति हैं, जो हजारीबाग के रामगढ़, गोला, मांडू, पतरातू तथा रांची के सिल्ली और ओरमांझी में निवास करती है। इन तीनों जनजातियों के बीच किये गये मानव वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर यह बात उभर कर सामने आई है कि लगभग 288 प्रकार की जंगली जड़ी–बूटी इन लोगों के बीच है जो मानव कल्याण के लिए संजीवनी बूटी के समान है, बिरहोर के बीच हत्था जोड़ी तथा प्रेम जोड़ी नामक एक ऐसी जड़ी है, जिससे पति–पत्नी तथा प्रेमी–प्रेमिका के बीच उपजे क्षणिक मतभेदों तथा कटुता तो दूर होती ही है साथ ही दोनों के बीच और भी अधिक प्यार परवान चढ़ता है।

कुछ जड़ी–बूटियाँ व उनसे उपचार :–

1. पाताल कोहड़ा, कुजरी लत्तर का तेल पुराना सीम के लत्तर की जड़ – यक्ष्मा (टीबी)।
2. बरगद के तना से निकली नयी जड़ मिसरी के साथ सेवन – पतला पैखाना होने पर।
3. उड़हुल फूल, सिमल कन्दा, सफेद फूलवाला पलाश – घात की बीमारी तथा प्रदर, जोन्डिस।
4. पान पत्ता की जड़, गुलैची फल, गोलकी – गर्भ निरोधक।
5. कलिहारी के लत्तर की जड़ – गर्भपात को ठीक करने के लिए।
6. पत्थर चट्टा के पत्ते – पेट की पथरी गलाने के लिए।
7. बेंग साग – पीला पेशाब या पेट की गर्मी दूर करने के लिए।
8. मोथा घास की जड़ एवं डुमर का फल के साथ मिसरी का सेवन – बवासीर।
9. पपीता – माँ के दूध की कमी दूर करने हेतु।
10. पलास का बीज, चिरौता – पेट के कीड़े का नाश हेतु।
11. सर्पगंधा, सालमणी – सांप के विष को उतारने में।
12. ब्राह्मी – मस्तिष्क के रोगों में।

13. बन प्याज – हृदय रोग।

इसके अलावा सहजन, कुसुम, अमलतास, सरफूला, भेंगराज, नीम, करंज, खैर, पाकड़, पीपल टुसी, महुआ, बेल, अर्जुन, आँवला, गोल–गोला साग, फुटकल साग, पेचकी साग, सकरकंद साग, खपरा साग, कांटा साग (चौलाई), चिमटी साग, सेलवारी साग, इमली साग, जिरहुल फूल, कोयनार साग, मुचरी साग, भथुवा साग आदि को भी जनजातीय समाज अनेक रोगों के इलाज के लिए उपयोग करते हैं।

निष्कर्ष :-

जनजातियों के पारम्परिक औषधीय चिकित्सा–पद्धति के प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों के अध्ययन व विश्लेषण से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि जनजातियों को जितना लगाव प्रकृति से है उतना ही खुलकर प्रकृति ने भी इन पर अपनी विशेष कृपा दृष्टि रही है। यही कारण है कि प्रकृति की हर सुविधा के साथ जनजातियों को सम्पूर्ण औषधीय सुविधा प्रकृति प्रदत्त है परन्तु इससे भी बड़ी बात यह है कि जनजातियों में प्राचीन औषधीय पौधों एवं उपयोगिता का भी जबरजस्त ज्ञान है और यह व्यवहारिक ज्ञान प्राचीन ऐतिहासिक काल खण्ड से आज तक किसी न किसी राज्य में विद्यमान है। अतः यह कहना सर्वथा उचित है कि जनजातियों में पारम्परिक और ऐतिहासिक रूप से औषधीय पेड़–पौधों के व्यवहार एवं औषधीय पौधों का अकूत ज्ञान भण्डार जनजातियों के पास विद्यमान है जिसे सबसे ज्यादा संरक्षित एवं पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करने की आवश्यकता है ताकि आनेवाली पीढ़ी तक जनजातियों के औषधीय ज्ञान सम्बन्धी जानकारी का विस्तार हो एवं इस पारम्परिक ऐतिहासिक ज्ञान को वास्तविक रूप अस्तांतरित हो सके।

संदर्भ ग्रथों की सूची :-

1. सं. डॉ. उमेश नन्द तिवारी, डॉ. राम कुमार, पारम्परिक औषधीय ज्ञान, झारखण्ड झरोखा, रांची–2023
2. बिमला चरण शर्मा एवं बिक्रम कीर्ति, भारत की जनजातियाँ, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची–2006
3. निशा शर्मा एवं नीरज सिंह, तुलनात्मक नृजाति वृतात, के. के. पब्लिकेशन इलाहाबाद–2009
4. सत्येन्द्र, लोकसाहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं.(प्रा.) लिमिटेड, आगरा, प्रथम संस्करण–1962
5. चतुर्भज साहु, भारत की जनजातियाँ, के. के. पब्लिकेशन, इलाहाबाद–2007
6. मैक्समूलर, लेक्चरर्स ऑन दी ओरिजिन एंड ग्रोथ ऑफ रेलिजन ग्रीन एंड कम्पनी, लंदन।
7. बी. मेलिनोवस्की, मैजिक, साइन्स एंड रिलिजन एंड अदर एसेज, ग्लेन्को–1948

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 213-217

भारत–नेपाल संबंध : समकालीन परिप्रेक्ष्य में नेपाल की रणनीतिक भूमिका में परिवर्तनों का मूल्यांकन

Raushan Kumar, Research Scholar
Prof. Mohammad Arif, Supervisor
Department of Political Science
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi- 221002

सारांश :

भारत और नेपाल के बीच प्राचीन सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक संबंध "रोटी–बेटी" के रूप में जाने जाते हैं। दोनों देशों के बीच खुली सीमा और भौगोलिक निकटता उन्हें विशेष बनाती है। नेपाल भारत और चीन के बीच स्थित बफर स्टेट है, जो दक्षिण एशिया की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

यह शोध समकालीन काल (विशेषकर 2015 के बाद) में नेपाल की रणनीतिक भूमिका के परिवर्तनों का मूल्यांकन करता है। मुख्य शोध प्रश्न हैं: नेपाल की भूमिका कैसे बदली? चीन का बढ़ता प्रभाव कितना असरदार है? पद्धति द्वितीयक स्रोतों (सरकारी दस्तावेज, जर्नल, रिपोर्ट और समाचार) पर आधारित विश्लेषणात्मक अध्ययन है। निष्कर्ष में कहा गया है कि नेपाल निष्क्रिय बफर से सक्रिय संतुलनकर्ता की भूमिका में परिवर्तित हो रहा है, जिसमें भारत को संवेदनशील कूटनीति अपनानी चाहिए।

मुख्य शब्द :- "रोटी–बेटी का रिश्ता", भारत–नेपाल संबंध, 'पहले पड़ोस की नीति', 'सब–स्टेट एक्टर', क्षेत्रीय स्थिरता।

प्रस्तावना :

भारत और नेपाल के बीच का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंध अनादि काल से अत्यंत प्रगाढ़ और अद्वितीय रहा है। दोनों देशों के मध्य साझी संस्कृति, भाषा, धार्मिक आस्थाएं तथा पारंपरिक जन–संबंध विद्यमान हैं, जिन्हें जनसामान्य में ''रोटी–बेटी का रिश्ता'' कहकर संबोधित किया जाता है। लगभग 1751 किलोमीटर लंबी खुली सीमा दोनों देशों के नागरिकों को बिना किसी पासपोर्ट या वीजा के निर्बाध आवागमन, व्यापार और आजीविका की सुविधा प्रदान करती है। यह अनूठी भौगोलिक निकटता और पारस्परिक निर्भरता दोनों राष्ट्रों के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण स्तंभ प्रस्तुत करती है।

नेपाल की विशेष भौगोलिक अवस्थिति इसे दक्षिण एशियाई भू–राजनीति में असाधारण महत्व प्रदान करती है। एशिया की दो बड़ी शक्तियों 'भारत और चीन' के मध्य स्थित होने के कारण यह एक रणनीतिक 'हिमालयी बफर स्टेट' के रूप में कार्य करता है, जो भारत की उत्तरी सीमा के लिए प्राकृतिक सुरक्षा कवच का निर्माण करता है। ऐतिहासिक रूप से वर्ष 1950 की ''शांति एवं मित्रता संधि'' ने दोनों राष्ट्रों के बीच एक विशेष, घनिष्ठ और बहुआयामी द्विपक्षीय संबंध की सुदृढ़ नींव रखी थी।

हालांकि, समकालीन काल में–विशेषकर वर्ष 2015 के बाद के परिदृश्य में–नेपाल की विदेश नीति और उसकी रणनीतिक भूमिका में व्यापक परिवर्तन देखने को मिले हैं। इस कालखंड में चीन के बढ़ते आर्थिक एवं ढांचागत प्रभाव के साथ–साथ सीमा संबंधी विवादों ने द्विपक्षीय संबंधों के सामने नई चुनौतियां खड़ी की हैं। इसके परिणामस्वरूप, नेपाल अब मात्र एक ''निष्क्रिय बफर'' बने रहने के बजाय स्वयं को एक ''सक्रिय संतुलनकर्ता'' के रूप में स्थापित करने की दिशा में अग्रसर हो रहा है।

शोध का उद्देश्य :– समकालीन काल (2015 के बाद) में नेपाल की रणनीतिक भूमिका के परिवर्तनों का विश्लेषण करना, विशेष रूप से चीन के बढ़ते प्रभाव और सीमा विवादों के संदर्भ में।

महत्व :– यह अध्ययन भारत की 'पहले पड़ोस की नीति' और क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए प्रासंगिक है।

शोध प्रश्न –

- 2015 के बाद नेपाल की भूमिका कैसे बदली?
- चीन का बढ़ता प्रभाव कितना असरदार है?

पद्धति :–

यह शोध द्वितीयक स्रोतों 'पुस्तकों, जर्नल आर्टिकल्स, सरकारी रिपोर्ट्स (MEA, नेपाल सरकार), Think-Tank रिपोर्ट्स (ORF, IDSA) और विश्वसनीय समाचार स्रोतों' पर आधारित विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

अतः यह अध्ययन विशेष रूप से 2015 के बाद चीन के बढ़ते प्रभाव, भारत–नेपाल सीमा विवादों और क्षेत्रीय स्थिरता पर इसके प्रभावों का परीक्षण करता है, जिससे भारत की 'पहले पड़ोस की नीति' के तहत एक संवेदनशील और संतुलित कूटनीति का मार्ग प्रशस्त हो सके।

भारत–नेपाल संबंध : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

भारत–नेपाल आधुनिक कूटनीतिक संबंधों की सुदृढ़ नींव वर्ष 1950 में हस्ताक्षरित ''शांति एवं मित्रता संधि'' पर टिकी हुई है। इस ऐतिहासिक संधि ने दोनों देशों के बीच व्यापार, खुली सीमा, रक्षा सहयोग और एक–दूसरे के नागरिकों को पारस्परिक राष्ट्रीय अधिकार एवं सुविधाएं प्रदान करने की रूपरेखा तय की। 1990 के दशक तक, नेपाल के आर्थिक विकास, अवसंरचना और सुरक्षा परिदृश्य पर भारत का व्यापक एवं सकारात्मक प्रभाव बना रहा।

हालांकि, 21वीं सदी की शुरुआत के साथ ही नेपाल के आंतरिक राजनीतिक परिदृश्य में गहरे बदलाव आए। वर्ष 2006–2008 के दौर में नेपाल में सदियों पुरानी राजशाही का अंत हुआ और देश एक 'संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य' के रूप में स्थापित हुआ। माओवादी आंदोलन के मुख्यधारा की राजनीति में प्रवेश और लगातार होती राजनीतिक उथल–पुथल ने द्विपक्षीय संबंधों के पारंपरिक ताने–बाने को गहराई से प्रभावित किया। द्विपक्षीय संबंधों में एक प्रमुख मोड़ वर्ष 2015 में आया, जब नेपाल ने अपना नया संविधान लागू किया। इस संविधान में मधेशी, थारू और अन्य जनजाति समुदायों के पर्याप्त राजनीतिक प्रतिनिधित्व और अधिकारों को लेकर गंभीर असंतोष उत्पन्न हुआ। इसके विरोध में नेपाल के तराई क्षेत्र में उग्र 'मधेश आंदोलन' छिड़ गया, जिसके कारण भारत–नेपाल सीमा पर अनौपचारिक आर्थिक नाकेबंदी जैसी स्थिति बन गई।

नेपाल के राजनीतिक नेतृत्व ने इस सीमा अवरोध का आरोप भारत पर लगाया और इसे नेपाल के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप माना, जिससे दोनों राष्ट्रों के कूटनीतिक संबंधों में अभूतपूर्व खटास और अविश्वास पैदा हुआ। इस घटनाक्रम ने नेपाल को अपनी आपूर्ति शृंखला और विदेश नीति के विविधीकरण के लिए प्रेरित

किया। परिणामस्वरूप, नेपाल ने चीन की ओर रुख करना शुरू किया। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 2015 के बाद के समकालीन दौर में नेपाल के रणनीतिक बदलावों, भारत–विरोधी बयानबाजी और चीन के बढ़ते प्रभाव को गहराई से समझने के लिए एक अनिवार्य आधार प्रस्तुत करती है।

समकालीन परिवर्तन – मुख्य विश्लेषण :

भारत और नेपाल के संबंध ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं, लेकिन हाल के वर्षों में इसमें कई समकालीन बदलाव देखने को मिले हैं। इन परिवर्तनों को निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है :–

- **राजनीतिक परिवर्तन और कूटनीति :–** 2015 के बाद से नेपाल में राजनीतिक अस्थिरता का दौर बना रहा है। इस दौरान विभिन्न कम्युनिस्ट और कांग्रेस गठबंधनों ने मिलकर सरकारें बनाईं। राजनीतिक लाभ के लिए कई दलों द्वारा घरेलू राजनीति में भारत–विरोधी भावनाओं का इस्तेमाल किया गया। राजनयिक स्तर पर नेपाल अब ''बैलेंसिंग'' (संतुलन) की नीति अपना रहा है, ताकि वह भारत और चीन दोनों पड़ोसी देशों के साथ एक समान दूरी और संतुलन बनाए रख सके।
- **चीन का बढ़ता प्रभाव :–** नेपाल ने 2016 में चीन की 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' योजना में शामिल होने के लिए समझौते पर हस्ताक्षर किए। शुरुआत में इसमें 35 प्रोजेक्ट प्रस्तावित थे, जिन्हें बाद में घटाकर 9–10 तक सीमित कर दिया गया। दिसंबर 2024 में दोनों देशों ने 10 मुख्य प्रोजेक्ट्स की पहचान की, जिनमें मुख्य रूप से सड़क, रेल, टनल (सुरंग) और ऊर्जा परियोजनाएं शामिल हैं। हालांकि इनमें से अधिकांश प्रोजेक्ट्स अभी प्रगति पर हैं, लेकिन इससे क्षेत्र में चीन का प्रभाव लगातार बढ़ा है।
- **सीमा विवाद :–** दोनों देशों के बीच कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा मुख्य विवादित क्षेत्र रहे हैं। 2020 में नेपाल ने एक नया राजनीतिक मानचित्र जारी किया था, जिसमें इन क्षेत्रों को अपने क्षेत्र में दिखाया गया। वर्ष 2025–2026 में लिपुलेख मार्ग पर भारत–चीन व्यापार और तीर्थयात्रा की बहाली से यह विवाद एक बार फिर भड़क उठा। इस पर नेपाल ने कड़ा विरोध दर्ज कराया, जबकि भारत ने स्पष्ट किया कि नेपाल के दावे ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित नहीं हैं।
- **आर्थिक आयाम :–** भारत आज भी नेपाल का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है और नेपाल का अधिकांश विदेशी व्यापार भारत के माध्यम से ही होता है। हालांकि, व्यापार असंतुलन (Trade Deficit) नेपाल के लिए एक बड़ी समस्या बना हुआ है। भारत नेपाल को विकास सहायता के रूप में वित्तीय सहायता देता रहा है–वर्ष 2025–26 के लिए भारत ने रू. 12.8 बिलियन की सहायता दी है। इसमें हाइड्रोपावर (जलविद्युत), कनेक्टिविटी और बुनियादी ढांचे में निवेश प्रमुख क्षेत्र हैं।
- **सुरक्षा और जन-स्तरीय संबंध :–** पारंपरिक रूप से दोनों देशों की सेनाओं के बीच काफी गहरे संबंध रहे हैं, जहाँ दोनों देश एक–दूसरे के थल सेनाध्यक्षों को मानद 'जनरल' की रैंक प्रदान करते हैं। हालांकि, हाल के वर्षों में इस सैन्य सहयोग में कुछ दूरी देखी गई है। जन–स्तरीय संबंधों की बात करें तो दोनों देशों के बीच गहरी सांस्कृतिक और सामाजिक समानताएं बनी हुई हैं। इसके बावजूद, उग्र राष्ट्रवादी भावनाओं और सोशल मीडिया के दौर ने नेपाल में भारत–विरोधी धारणा को बढ़ावा दिया है।

भारत-नेपाल संबंध : चुनौतियाँ एवं अवसर :

भारत और नेपाल के रिश्ते केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ये सदियों पुरानी

सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक 'रोटी–बेटी' की परंपरा पर आधारित हैं। दोनों देशों के बीच खुली सीमा और बिना वीजा आवाजाही के संबंध इसे विश्व में अनोखा बनाते हैं। हालाँकि, बदलते वैश्विक परिदृश्य में इन द्विपक्षीय संबंधों में कई गंभीर चुनौतियाँ और असीम अवसर दोनों साथ–साथ उभरकर सामने आए हैं।

प्रमुख चुनौतियाँ :

- **चीन का बढ़ता प्रभाव एवं BRI :–** नेपाल में चीन का बढ़ता राजनयिक व आर्थिक हस्तक्षेप भारत के लिए चिंता का विषय है। नेपाल का चीन के BRI में शामिल होना और ऋण–जाल में फँसने की आशंका रणनीतिक संतुलन को प्रभावित करती है।
- **राजनीतिक अस्थिरता :–** नेपाल की आंतरिक राजनीति में लगातार होने वाले बदलावों और सरकारों के अस्थिर रहने से भारत–नेपाल के बीच दीर्घकालिक नीतियों और समझौतों को सुचारू रूप से लागू करने में बाधा आती है।
- **सीमा विवाद एवं मधेश मुद्दा :–** कालापानी, लिंपियाधुरा और सुस्ता जैसे क्षेत्रों को लेकर सीमा विवाद तथा नेपाल के तराई क्षेत्र में रहने वाले मधेशी समुदाय से जुड़े संवेदनशील मुद्दे अक्सर तनाव का कारण बनते हैं।
- **व्यापार असंतुलन :–** नेपाल का भारत के साथ एक बड़ा व्यापार घाटा है, जिसे संतुलित करना और नेपाल के निर्यात को बढ़ावा देना दोनों देशों के लिए एक चुनौती है।

प्रमुख अवसर :

- **हाइड्रोपावर (जलविद्युत) में सहयोग :–** नेपाल के पास प्रचुर जल संसाधन उपलब्ध हैं। भारत–नेपाल मिलकर स्वच्छ ऊर्जा उत्पादन और बिजली व्यापार के माध्यम से दोनों देशों की ऊर्जा जरूरतों को पूरा कर सकते हैं।
- **कनेक्टिविटी एवं बुनियादी ढाँचा :–** रेल, सड़क, एकीकृत जाँच चौकियों और पाइपलाइन प्रोजेक्ट्स के विस्तार से दोनों देशों के बीच व्यापार और लोगों की आवाजाही अधिक सुगम हो रही है।
- **पर्यटन एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान :–** रामायण और बौद्ध सर्किट के माध्यम से धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देकर दोनों देशों के सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों को नई ऊँचाई दी जा सकती है।
- **रणनीतिक नीतियाँ एवं मानवीय सहायता :–** भारत अपनी "Neighbourhood First" और "Act East" नीतियों के तहत नेपाल के साथ मजबूत साझेदारी को प्राथमिकता देता है। इसके अलावा, भूकंप, बाढ़ या स्वास्थ्य आपातकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं में भारत ने सदैव अग्रिम भूमिका निभाकर नेपाल को मानवीय सहायता प्रदान की है।

अतः भारत और नेपाल के बीच विश्वास का माहौल बनाए रखने के लिए संप्रभुता का सम्मान, निरंतर उच्चस्तरीय संवाद और समयबद्ध परियोजनाओं का क्रियान्वयन अनिवार्य है। चुनौतियों का पारदर्शी समाधान निकालकर दोनों देश दक्षिण एशिया में शांति, समृद्धि और साझा विकास की एक नई मिसाल पेश कर सकते हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

दक्षिण एशिया की भू–राजनीति में नेपाल की सामरिक भूमिका अब केवल एक 'निष्क्रिय बफर स्टेट' तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह एक 'सक्रिय संतुलनकर्ता' के रूप में तेजी से उभर रहा है। इस बड़े बदलाव को चीन की बढ़ती कूटनीतिक सक्रियता और नेपाल की आंतरिक राजनीति ने काफी गति दी है। इस बदलते

परिदृश्य में क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखने तथा प्रगाढ़ द्विपक्षीय संबंधों को संजोए रखने के लिए भारत को अधिक संवेदनशीलता, तत्परता और निरंतर कूटनीतिक संवाद की नीति अपनानी होगी।

सकारात्मक और मजबूत संबंधों के निर्माण के लिए सर्वप्रथम दोनों देशों को अपने लंबित सीमा विवादों का शांतिपूर्ण एवं कूटनीतिक समाधान खोजना होगा। इसके साथ ही भारत को आर्थिक सहायता बढ़ाने के अलावा अवसंरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) तथा कनेक्टिविटी प्रोजेक्ट्स के क्रियान्वयन में तेजी लानी चाहिए। आर्थिक व रणनीतिक पहलों के अतिरिक्त, जन–स्तरीय संबंधों को गहरा करना बेहद आवश्यक है, जो शिक्षा, पर्यटन और सांस्कृतिक आदान–प्रदान के माध्यम से संभव है। भविष्य में एक–दूसरे के हितों का सम्मान करते हुए विकसित किए गए मजबूत भारत–नेपाल संबंध न केवल दोनों राष्ट्रों की प्रगति के लिए, बल्कि संपूर्ण दक्षिण एशियाई क्षेत्र की दीर्घकालिक स्थिरता और समृद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक हैं।

References :-

- **Kathmandu Post & The Hindu** (2025-2026). Relevant news articles on bilateral developments
- **Embassy of India, Kathmandu** (n.d.). About India-Nepal Relations. Retrieved from https://www.indembkathmandu.gov.in
- **Ministry of External Affairs, India** (2023). Brief on India-Nepal Bilateral Relations. Government of India.
- **Ministry of Foreign Affairs**, **Nepal** (2023). Nepal-India Relations: An Overview. Government of Nepal.
- **Observer Research Foundation** (2024). BRI in Nepal: An Appraisal and Geopolitical Implications. ORF Special Report.
- **The Diplomat**. (2024). Nepal and China Identify 10 Projects for Execution Under BRI Infrastructure Framework.
- **Muni, S. D.** (2016). India's Nepal Policy: Continuity and Change. Institute for Defence Studies and Analyses (IDSA).
- **Jha, P.** (2014). Battles of the New Republic: A Contemporary History of Nepal. Aleph Book Company.
- **Nayak, N. R.** (2021). Nepal's Changing Foreign Policy and its Impact on India-Nepal Relations. Strategic Analysis, Routledge.
- **Kathmandu Post & The Hindu** (2025–2026). Relevant joint news articles and commentaries on bilateral developments, BRI projects, and border issues.
- **Pant, H. V., & Passi, R.** (2019). India's 'Neighborhood First' Policy: Challenges and Prospects in South Asia. Asian Survey, University of California Press.
- **Ministry of External Affairs, India** (Various years). Official statements on border issues.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 218-222

डिजिटल और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हिन्दी शिक्षण और शोध की नयी चुनौतियाँ

डॉ. रीजा. आर. एस

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,

क्रिस्त्यन कॉलेज काट्टाकडा, तिरुवनन्तपुरम, केरल, केरल विश्वविद्यालय।

सार :

डिजिटल क्रांति और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इस तीव्रगामी युग में ज्ञान–सृजन, शिक्षण और अनुसंधान की प्रणालियों में अभूतपूर्व बदलाव आए हैं। जहाँ एक ओर एआई उपकरणों और 'भाषिणी' जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्मों ने भाषा–सीखने, डेटा विश्लेषण तथा पांडुलिपियों के डिजिटलीकरण को सुलभ और असीम बना दिया है, वहीं दूसरी ओर हिन्दी शिक्षण और उच्चस्तरीय शोध के समक्ष कई गंभीर मौलिक और नैतिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न कर दी हैं। एआई आधारित लेखन और अनुवाद उपकरणों के बढ़ते प्रयोग से भाषा की मौलिकता, व्याकरणिक शुद्धता, सांस्कृतिक संवेदना और साहित्यिक सौंदर्य के ह्रास का खतरा बना रहता है। साथ ही, इंटरनेट पर स्तरीय हिन्दी डेटाबेस की कमी तथा 'कट–कॉपी–पेस्ट' की संस्कृति से प्लेगरिज्म और शोध–नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में इस बात पर बल दिया गया है कि एआई को तकनीक के विरोध के बजाय एक सशक्त सहायक माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुरूप मातृभाषा में उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने, शिक्षकों और शोधकर्ताओं में 'डिजिटल साक्षरता'श विकसित करने तथा भारतीय नैतिक मूल्यों को समाहित करने की आवश्यकता है। एआई युग में मानवीय आलोचनात्मक सोच और भाषाई आत्मा की रक्षा करते हुए तकनीक का सही विनियोग ही हिन्दी को वैश्विक मंच पर विज्ञान और ज्ञान–सृजन की समर्थ भाषा के रूप में स्थापित कर सकता है।

मुख्य शब्द : कृत्रिम बुद्धिमत्ता, हिन्दी शिक्षण, शोध–नैतिकता, भाषिणी, डिजिटल साक्षरता।

डिजिटल और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इस तीव्रगामी युग में ज्ञान–सृजन, अभिव्यक्ति और शिक्षण की प्रणालियों में क्रांतिकारी बदलाव आए हैं। तकनीक के इस अभूतपूर्व विस्तार ने जहाँ भाषा सीखने और शोध की सीमाओं को असीम बना दिया है, वहीं हिन्दी शिक्षण और शोध के समक्ष कई मौलिक और जटिल चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी हैं। आज जब चौटजीपीटी जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरण सेकंडों में निबंध, शोध–सार और अनुवाद तैयार कर रहे हैं, तब हिन्दी शिक्षण और उच्चस्तरीय शोध के पारंपारिक ढाँचे पर पुनर्विचार करना अनिवार्य हो गया है। हिन्दी शिक्षण के क्षेत्र में सबसे बड़ी चुनौती केवल डिजिटल उपकरणों के प्रयोग तक सीमित रहने की नहीं, बल्कि भाषा की मौलिकता, संवेदना और व्याकरणिक शुद्धता को बनाए रखने की है। एआई आधारित अनुवाद और लेखन उपकरण बहुधा भाषा के स्थानिक मुहावरों, सांस्कृतिक संदर्भों और भाषाई सौंदर्य को पकड़ने

में असमर्थ सिद्ध होते हैं। इसके अलावा, डिजिटल विभाजन के कारण देश के दूर–दराज के क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण डिजिटल हिन्दी सामग्री और संसाधनों की उपलब्धता आज भी एक बड़ी बाधा बनी हुई है। शोध के धरातल पर, एआई उपकरणों के बढ़ते प्रयोग से मौलिकता और शोध–नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं। 'कट–कॉपी–पेस्ट' और स्वचालित रूप से तैयार की गई सामग्री ने साहित्यिक चोरी के खतरे को कई गुना बढ़ा दिया है। साथ ही, इंटरनेट पर स्तरीय हिन्दी शोध–पत्रिकाओं, प्रामाणिक डिजिटल आर्काइव्स या प्रामाणिक डिजिटल अभिलेखागार और समृद्ध डेटाबेस की कमी शोधकर्ताओं को अक्सर अंग्रेजी या अन्य भाषा–संसाधनों पर निर्भर रहने के लिए मजबूर करती है। वर्तमान परिदृश्य में सबसे मुख्य आवश्यकता इस बात की है कि तकनीक का विरोध करने के बजाय उसे एक सशक्त माध्यम के रूप में अपनाया जाए। हिन्दी शिक्षण और शोध को समयानुकूल बनाने के लिए अध्यापकों और शोधकर्ताओं के लिए 'डिजिटल साक्षरता' अनिवार्य है। एआई और डिजिटल माध्यमों का प्रयोग करते हुए भाषा की आत्मा, आलोचनात्मक दृष्टि और नैतिक मूल्यों की रक्षा करना आज की सबसे बड़ी चुनौती है।

व्यापक और त्वरित डेटा विश्लेषण के इस युग में एल्गोरिदम और एआई टूल विशाल डेटासेट का पल भर में विश्लेषण करके शोधकर्ताओं को नए निष्कर्षों और अंतर्दृष्टि तक तेजी से पहुँचाते हैं। डिजिटल नेटवर्क के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों और देशों के शोधकर्ता एक साथ मिलकर जटिल वैश्विक समस्याओं पर प्रभावी शोध कर पा रहे हैं। उन्नत मशीन लर्निंग मॉडल और डिजिटल सिमुलेशन की मदद से अनुसंधान की सटीकता में सुधार हुआ है और स्वास्थ्य, शिक्षा और तकनीक जैसे क्षेत्रों में नए नवाचारों का मार्ग प्रशस्त हुआ है। एआई द्वारा निर्मित भ्रामक जानकारी और फर्जी डेटा के कारण शोध में मिली सामग्री की प्रामाणिकता और सटीकता की पुष्टि करना एक बड़ी चुनौती बन गया है। एआई टूल के अत्यधिक प्रयोग से प्लेगरिज्म या साहित्यिक चोरी, डेटा गोपनीयता और मौलिकता को बनाए रखने से जुड़े गंभीर नैतिक प्रश्न खड़े हो रहे हैं। एस.एन.गणेश के शब्दों में – "अनुसंधान अपने मौलिक रूप में मानव प्रकृति का एक अंग है, जिसका विकास एवं परिष्कार करने से एक संस्कार–सा बन जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो सामान्य मनुष्य में जो अन्वेषण–वृत्ति और समस्याओं को हल करने की आकांक्षा से उत्पन्न मानसिक सक्रियता होती है, वह निरन्तर शिक्षण और अभ्यास के द्वारा प्रकृति और जीवन के निगूढ़ रहस्यों तथा गंभीर सत्यों की खोज के तीव्र प्रयत्न में परिणत होती है। इस मानसिक प्रवृत्ति को शोध–संस्कार कहा जा सकता है।"[1] एआई केवल एक सहायक टूल है, इसलिए डिजिटल युग में भी शोध की गुणवत्ता, प्रासंगिकता और सही निष्कर्षों के लिए मानवीय विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक सोच अत्यंत आवश्यक है।

डेटा को कृत्रिम बुद्धिमत्ता की जीवनधारा माना जा सकता है। यह मशीन लर्निंग एल्गोरिदम की कार्यक्षमता को बढ़ाता है। इससे कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम उदाहरणों और अनुभवों से प्रभावी ढंग से सीखता है। डेटा कृत्रिम बुद्धिमत्ता का एक मुख्य आधार है। इसी डेटा की मदद से कृत्रिम बुद्धिमत्ता के अलग–अलग मॉडल तैयार किए जाते हैं। धर्मन्द्र सिंह के शाब्दों में– "किसी नई भाषा में निपुण होने में सालों लग सकते हैं। ऐसे में Al अनुवाद टूल्स एक पुल का काम करते हैं–जो आपके नई भाषा को तेजी से समझे,जवाब देने और आगे बढ़ने में मदद करते हैं।"[2] मशीन लर्निंग मॉडल को बड़े और विविध डेटासेट से प्रशिक्षित किया जाता है। इससे डेटा के पैटर्न और आपसी संबंधों को समझा जा सकता है। भाषा अनुवाद मॉडल को सिखाने के लिए व्याकरण और संदर्भ का व्यापक डेटा चाहिए होता है। पूर्वानुमान लगाने के लिए भी विशेष प्रकार के मॉडल बनाए जाते हैं। वित्त के क्षेत्र

में स्टॉक की कीमतों, बाजार के रुझान और आर्थिक आंकड़ों का उपयोग होता है। ऐतिहासिक और वास्तविक समय के डेटा से बाजार की चाल का अनुमान लगाया जाता है। डेटा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के लिए आधारभूत ढांचे की तरह काम करता है। यह एल्गोरिदम को सही निर्णय लेने और सामान्यीकरण करने में मदद करता है। बेहतरीन प्रदर्शन के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता सिस्टम को उच्च–गुणवत्ता और सही डेटा की आवश्यकता होती है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता में ज्ञान के प्रतिनिधित्व का महत्वपूर्ण स्थान है। AI सिस्टम को ज्ञान को सही तरीके से संगृहीत और प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। डॉ. सुनील कुमार शर्मा के अनुसार– "एआई हमारे वास्तविक जीवन की बहुत सी चुनौतियों का समाधान करने केलिए एक व्यवहार्य समाधान के रूप में विकसित हुई है। इसलिए यह शोध और भविष्य में प्रगति के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प है। दरअसल एआई सक्षम उपकरण और कार्यप्रणाली की मदद से आज हम विभिन्न प्रकार की समस्याओं और बाधाओं के प्रभावी हल खोजे जा सकते हैं।"[3] ज्ञान प्रतिनिधित्व AI सिस्टम को जानकारी को प्रभावी ढंग से सुरक्षित और संसाधित करने देता है। इससे तार्किक तर्क, समस्या समाधान और निर्णय लेने में आसानी होती है।

समस्या–समाधान AI का एक मुख्य पहलू है। इसमें ऐसे एल्गोरिदम बनाए जाते हैं जो जटिल समस्याओं का समाधान खोज सकें। इसके लिए खोज एल्गोरिदम और अनुकूलन विधियों का उपयोग होता है। डॉ. गिरीश वालावलकर के शब्दों में– "आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स (एआई) कम्प्यूटर साइंस की ही एक शाखा है। इसके अनेक पहलू है। आज इस शाखा के बहुआयामी और अत्यंत उपयुक्त तकनीकी स्वरूप सामने आने लगे हैं। इस तकनीक में विलक्षण क्षमता है। इस क्षमता का सही तरीके से विनियोग किया जाए, तो दुनिया के व्यवहार में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है। इसके साथ ही हमारे दैनिक जीवन में भी अनेक स्तर पर आश्चर्यकारक परिवर्तन देखने को मिल सकते हैं।"[4] इससे यात्रा की दूरी कम हो जाती है। वीडियो गेम में AI एजेंट माहौल को समझने और रणनीतिक निर्णय लेने में इसका उपयोग करते हैं। AI में समस्या–समाधान तकनीकें कई तरह की चुनौतियों को हल करने में मदद करती हैं।

पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का योगदान महत्वपूर्ण है। भारत में लाखों दुर्लभ पांडुलिपियाँ ताड़पत्रों और कागजों पर बिखरी हुई हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित 'ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकॉग्निशन' तकनीक से इन्हें डिजिटाइज और पुनर्निर्मित किया जा रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता अनुवाद मॉडल 'भाषिणी' के माध्यम से प्राचीन संस्कृत और क्षेत्रीय भाषाओं के ग्रंथों का आधुनिक भाषाओं में त्वरित अनुवाद संभव हो रहा है। एआई और डिजिटल मीडिया की सवतंत्रता के संबन्ध में शैलेन्द्र तिवारी का शब्द इस प्रकार है– "डिजिटल मीडिया तकनीकी रुप से विशाल और बहुआयामी होता जा रहा है। साइबर सुरक्षा, डेटा प्राइवसी और नेट न्यूट्रैलिटी जैसे मुद्दे तकनीकी चुनौतियाँ प्रस्तुत करते हैं। डिजिटल मीडिया में तकनीकी की बड़ी भूमिका है और यह आए दिन बदलती रहती है, ऐसे में उसके साथ बने रहना भी एक बड़ी चुनौती है।"[5] कृत्रिम बुद्धिमत्ता हथियारों और पक्षपातपूर्ण एल्गोरिदम के दुष्परिणामों से बचने के लिए भारतीय दर्शन का 'संतुलन और अहिंसा' का सिद्धांत वैश्विक मार्गदर्शन कर सकता है।

किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा और उसकी शिक्षा व्यवस्था से होती है। उच्च शिक्षा से किसी भी देश के बौद्धिक, आर्थिक और सामाजिक विकास होती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हिन्दी माध्यम के अवसर बड़े हैं, लेकिन डेटा की कमी, कठिन मानक शब्दावली और डिजिटल विभाजन जैसी चुनौतियाँ भी कम नहीं है। आज भारत के युवा बोलने वाले हिन्दी और अंग्रेजी का मिश्रण 'हिंग्लिश' भाषा को कृत्रिम बुद्धिमत्ता समझता है।

भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एन.ई.पी. २०२० प्राथमिक और उच्च शिक्षा में मातृभाषा या स्थानीय भाषा के प्रयोग पर अत्यधिक बल देती है। इसमें तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा को भी हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में शुरू करने का प्रावधान है। भारत सरकार का 'भाषिणी' प्रोजेक्ट इस दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है। इसका उद्देश्य वॉयस–टू–वॉयस अनुवाद को संभव बनाना है। प्रियंका वर्मा के शब्दों में– "दीक्षा और भाषिणी जैसे प्लेटफॉर्म शिक्षा को समावेशी बनाने के लिए एआई का अयोग करते हैं।"[6] कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में शिक्षा में हिन्दी माध्यम की प्रासंगिकता का पुनर्जन्म हुआ है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने भाषा को एक बाधा से बदलकर एक कौशल और माध्यम में तबदील कर दिया है। औपनिवेशिक हीन भावना को छोडें, कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एक मित्र के रूप में स्वीकार करें और अपनी हिन्दी भाषा में ज्ञान–विज्ञान के सृजन को बढ़ावा दे। डॉ. कृष्ण वीर सिंह के शब्दों में– "आधुनिक युग सूचना क्रांति का युग है। जो आदमी जितना अधिक सूचना के प्रति सजग है वह उतना अधिक सफल है।"[7] हिन्दी अब केवल साहित्य की भाषा नहीं, बल्कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कंधों पर सवार होकर विज्ञान और भविष्य की भाषा बनने की ओर अग्रसर हैं।

हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए जन–आन्दोलन एवं दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम को लेकर अभिजात एवं रूढ़ शिक्षक वर्ग कुछ विशेष चिंतित हैं। डॉ. पुष्पलता तनेजा द्वारा संपादित उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम ग्रन्थ में प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी ने कहा– "वर्तमान शिक्षा प्रणाली की सबसे बडी कमजोरी हिन्दी या हिन्दी में उच्च–शिक्षा प्राप्त युवकों की रोजगार की तलाश में भटकना पड़ता है।"[8] अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले छात्र प्रायः उच्च पदों पर आसीन हैं। वे ही विदेशों तक फैले हुए हैं। हिन्दी माध्यम से उच्च शिक्षा अर्जित करने वाले छात्रों का अक्सर शर्म का सामना करना पड़ता है। स्वदेशी नेतृत्व को इस पर गंभीरता से चिन्तन करना चाहिए। यदि भारत सरकार को उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी लागू करना चाहिए तो हिन्दी के लिए उच्च पदों का सृजन करना चाहिए। डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा ने कहा– "वर्तमान विचार धाराओं के अनुसार, किसी भी राष्ट्र की प्रगति की मापदण्ड उस देश की शिक्षा–व्यवस्था के स्वरूप एवं स्थिति को माना जाता है।"[9] भाषा के इस स्वरूप का संबन्ध शिक्षा–व्यवस्था से भी जुड़ा हुआ है। उन पदों के लिए हिन्दी की अनिवार्य उच्च योगयता निर्धारण करनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था केलिए स्पष्ट नीति बनाना आवश्यक है। इस प्रकार वैश्विक संचार के लिए हिन्दी का ज्ञान होना बहुत बड़ा लाभ बन गया है। आज हिन्दी शिक्षण केवल कक्षाओं तक सीमित नहीं है। इसका स्वरूप अत्यन्त आधुनिक, गतिशील और वैश्विक हो चुका है। डिजिटल युग ने हिन्दी को क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सीमाओं से निकालकर वैश्विक मंच पर नई पहचान दी है।

डिजिटल और कृत्रिम बुद्धिमत्ता का यह तीव्रगामी युग हिन्दी शिक्षण और शोध के क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलावों के साथ–साथ कई नई चुनौतियाँ भी लेकर आया है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता उपकरणों की गति और सुविधा ने भाषा सीखने तथा डेटा विश्लेषण को अत्यंत सरल बना दिया है, लेकिन भाषा की मौलिकता, सांस्कृतिक संवेदना और व्याकरणिक शुद्धता को बनाए रखना आज भी एक बड़ी चुनौती है। एआई द्वारा निर्मित भ्रामक जानकारी और 'कट–कॉपी–पेस्ट' की संस्कृति से साहित्यिक चोरी का खतरा बढ़ा है, जिससे शोध की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लग रहे हैं। ऐसे समय में एआई को केवल एक सहायक साधन मानकर मानवीय विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक सोच को प्राथमिकता देना अनिवार्य है। 'भाषिणी' जैसे क्रांतिकारी प्रोजेक्ट और पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण हिन्दी को विज्ञान, तकनीक और वैश्विक संचार की भाषा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार मातृभाषा में उच्च शिक्षा को बढ़ावा देकर और डिजिटल साक्षरता को

अपनाकर हम इन चुनौतियों का सामना कर सकते हैं। औपनिवेशिक हीन भावना छोड़कर, भारतीय नैतिक मूल्यों के साथ एआई का संतुलित उपयोग करते हुए अपनी भाषाई आत्मा की रक्षा करना और हिन्दी को वैश्विक मंच पर ज्ञान–विज्ञान की समृद्ध भाषा के रूप में स्थापित करना ही आज की मुख्य आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. एस.एन.गणेशन, (2009), अनुसंधान प्रविधि सिद्धान्त और प्रक्रिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 30
2. धर्मन्द्र सिंह, (2026), Al आपका स्मार्ट असिस्टेंट, गोयल प्रकाशन, पूणे, पृ. 134
3. डॉ. सुनील कुमार शर्मा, (2025), आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एक अध्ययन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 26
4. डॉ. गिरिजा वालावलकर' (2025), आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मई मिरर पब्लिशिंग हाउस, महाराष्ट्र, पृ. 21
5. शैलेन्द्र तिवारी, (2024), एआई और डिजिटल मीडिया, प्रलोक प्रकाशन, महाराष्ट्र, पृ. 56
6. प्रियंका वर्मा, (2025), Al और मशीन लर्निंग का महाज्ञान, डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा.लि., नई दिल्ली, पृ. 9
7. डॉ. कृष्णबीर सिंह, (2011), हिन्दी शिक्षण, टी बुक हाउस, जयपुर, पृ. 205
8. डॉ. पुष्पलता तनेजा, संपादक, (2005), उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 215
9. महेन्द्र कुमार मिश्रा, (2008), शिक्षा सिद्धान्त एवं आधुनिक भारत की शिक्षा, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, पृ. 170

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 223-231

किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका का अध्ययन

(वैशाली जिले के विशेष संदर्भ में)

रेणु देवी

शोध छात्रा, समाज कार्य विभाग, म. गा. काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

सारांश :

यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य को अपने शरीर, प्रजनन प्रणाली और यौन जीवन को पूरी तरह स्वस्थ, सुरक्षित और बिना किसी डर या झिझक के जीने की स्वतंत्रता के रूप में माना जाता है। इस शोध का उद्देश्य किशोरियों की यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका का अध्ययन करना तथा उनके स्वास्थ्य में सुधार हेतु समाज कार्य-आधारित उपायों एवं सुझावों को प्रस्तुत करना है। इसके लिए 14-19 वर्ष की 150 किशोरियों का चयन किया गया। अध्ययन में विश्लेषणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया तथा प्राथमिक आँकड़े संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्रित किए गए।

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 14-19 वर्ष की किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य सुधार में समाज कार्य की भूमिका अत्यंत सकारात्मक रही, 60% से अधिक प्रतिभागियों ने सामाजिक भ्रांतियों को दूर करने और उपयुक्त स्वास्थ्य जानकारी प्राप्त करने में समाज कार्यकर्ताओं के योगदान को सराहा है। शोध से स्पष्ट है कि इस प्रभाव को और मजबूत करने के लिए 80% से अधिक किशोरियाँ सामुदायिक जागरूकता कार्यक्रमों, विशेषज्ञों व स्वास्थ्य केंद्रों से सीधे जुड़ाव, नियमित परामर्श और माता-पिता की जागरूकता को सबसे जरूरी उपाय मानती हैं।

प्रमुख शब्द:- किशोरियाँ, यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य, समाज कार्य, स्वास्थ्य समस्या।

परिचय :

किशोरावस्था (10-19 वर्ष) बाल्यावस्था से वयस्कता की ओर संक्रमण का चरण है, जिसमें किशोरियों में तीव्र शारीरिक और हार्मोनल परिवर्तन होते हैं तथा मासिक धर्म जैसी प्रमुख

प्रक्रियाएँ आरंभ होती हैं। इस अवस्था में स्वास्थ्य, स्वच्छता और प्रजनन स्वास्थ्य से जुड़ी विश्वसनीय जानकारी व उचित मार्गदर्शन अत्यंत आवश्यक होता है।

यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य केवल रोगों का न होना नहीं, बल्कि शरीर और प्रजनन से संबंधित सही जानकारी तथा आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच भी है। किशोरियों के लिए यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इस समय प्राप्त जानकारी और स्वास्थ्य व्यवहार भविष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं। अक्सर किशोरियों को परिवार, विद्यालय या स्वास्थ्यकर्मियों से पर्याप्त जानकारी नहीं मिल पाती, जिससे वे मित्रों, सोशल मीडिया या अन्य अनौपचारिक स्रोतों पर निर्भर होती हैं जिससे गलत जानकारी व भ्रांतियाँ विकसित हो सकती हैं। मासिक धर्म से जुड़ी सामाजिक वर्जनाएँ और शर्म भी उन्हें अपनी समस्याएँ व्यक्त करने से रोकती हैं।

UNICEF के अनुसार मासिक धर्म स्वास्थ्य पर सामाजिक मान्यताओं, लैंगिक असमानता, गरीबी, स्वच्छता सुविधाओं की कमी और आवश्यक सामग्री तक सीमित पहुँच का बहुत प्रभाव पड़ता है, जबकि WHO वैज्ञानिक जानकारी, परामर्श और किशोर-अनुकूल स्वास्थ्य सेवाओं की आवश्यकता पर बल देता है।

भारत में राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम (RKSK) के तहत यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य, पोषण, मानसिक स्वास्थ्य, हिंसा और नशीले पदार्थों के दुरुपयोग जैसे मुद्दों को शामिल किया गया है और किशोर-अनुकूल स्वास्थ्य केंद्रों के माध्यम से सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। ऐसी स्थितियों में समाज कार्यकर्ता व्यक्तिगत परामर्श, स्वास्थ्य जागरूकता, समूह कार्य, परिवार परामर्श, सामुदायिक जागरूकता और स्वास्थ्य सेवाओं से जोड़ने जैसे कार्यों के माध्यम से महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य किशोरियों की यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका का अध्ययन करना है, व उनके स्वास्थ्य में सुधार हेतु समाज कार्य-आधारित उपायों एवं सुझावों को प्रस्तुत करना है।

साहित्य की समीक्षा :

रॉय एवं प्रकाश (2023) के अध्ययन के अनुसार, ग्रामीण बिहार में जागरूकता की कमी और सामाजिक वर्जनाओं के कारण किशोरियों का प्रजनन स्वास्थ्य स्तर राष्ट्रीय औसत से नीचे है और स्वास्थ्य सुविधाओं तक उनकी पहुँच सीमित बनी हुई है। जिन क्षेत्रों में NGO और सामाजिक कार्यकर्ताओं के अभियान सक्रिय रहे, वहाँ मेडिकल और कम्युनिटी सोशल वर्कर स्वास्थ्य केंद्रों और ग्रामीण समुदाय के बीच सेतु का काम करते हैं। वे किशोरियों को स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़ने में मदद करते हैं।

UDAYA सर्वे अध्ययन पॉपुलेशन काउंसिल (2022-2023) के अनुसार, ग्रामीण बिहार में केवल 8% से 11% किशोरियों को ही यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य, स्वच्छता और संक्रामक रोगों का सटीक ज्ञान है। हालाँकि, यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि जिन क्षेत्रों में NGO और सामाजिक कार्यकर्ताओं के अभियान सक्रिय रहे, वहाँ जागरूकता में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। जिससे यह ज्ञात होता कि सामुदायिक स्तर पर सूचना और परामर्श प्रदान करके अज्ञानता व भ्रांतियों को दूर करने में समाज कार्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और अनिवार्य है।

पॉपुलेशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया PFI, (2021-2024) की रिपोर्ट के अनुसार, बिहार के नवादा और दरभंगा जिलों में सामाजिक कार्यकर्ताओं के सहयोग से गठित 'किशोरी समूहों' ने 'पैड बैंक' और माहवारी स्वच्छता प्रबंधन जैसी सराहनीय पहल की। इससे 60% से अधिक लड़कियों में झिझक दूर हुई और चिकित्सा परामर्श लेने के व्यवहार में सकारात्मक सुधार देखा गया। इस अध्ययन स्पष्ट होता है कि समूह समाज कार्य और सहकर्मी शिक्षा (Peer Education) मॉडल के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य संबंधी सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ना अत्यंत प्रभावी सिद्ध होता है।

नदीम एवं अन्य (2021-2022) के अध्ययन के अनुसार, रोहतास स्थित ARSH/युवा क्लीनिक में आने वाली 66.7% किशोरियाँ माहवारी संबंधी स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रस्त थीं, किंतु उनमें से केवल 25% से 27% ने ही समय पर चिकित्सीय सलाह ली। इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि किशोरियों में स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति जागरूकता और समय पर चिकित्सा सहायता लेने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

साहित्य समीक्षा का निष्कर्ष :

बिहार के ग्रामीण इलाकों में सामाजिक वर्जनाओं और अज्ञानता के कारण किशोरियों की प्रजनन स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच आज भी काफी कमजोर है। साहित्य समीक्षा से स्पष्ट है कि समाज कार्य इस अंतर को पाटने में अहम भूमिका निभा रहा है। किशोरी समूहों और व्यक्तिगत काउंसलिंग के ज़रिए जहाँ माहवारी से जुड़ी भ्रांतियाँ दूर हुई हैं, वहीं लड़कियों में RKSK और ARSH क्लिनिक जैसी सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठाने की झिझक भी कम हुई है। इस समस्या के स्थायी समाधान के लिए सिर्फ डॉक्टरी इलाज काफी नहीं है, बल्कि समाज कार्य आधारित सामुदायिक प्रयासों को नीतिगत स्तर पर शामिल करना बेहद ज़रूरी है।

अध्ययन का औचित्य एंव उद्देश्य :

किशोरियों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए शुरुआती चरण में सही जानकारी और सहयोग देना ज़रूरी है। मासिक धर्म, स्वच्छता, पोषण और प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता उन्हें

अपने स्वास्थ्य के प्रति अधिक सचेत बनाती है। वहीं, सामाजिक भ्रांतियाँ और पारिवारिक संवाद की कमी बाधाएँ बन सकती हैं, इसलिए केवल चिकित्सा कर्मियों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं, समाजकार्यकर्ताओं की भागीदारी भी अनिवार्य है। समाजकार्यकर्ता , समूह और समुदाय स्तर पर हस्तक्षेप कर किशोरियों को स्वास्थ्य सेवाओं से जोड़ने और परिवार-समुदाय के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

उद्देश्य :

1. किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका का अध्ययन करना।
2. किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य में सुधार हेतु समाज कार्य आधारित उपायों एवं सुझावों को प्रस्तुत करना।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध मे किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका का अध्ययन करने के लिए विश्लेषणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है तथा उत्तरदाताओ का चयन उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन विधि द्वारा किया गया ।

अध्ययन क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध बिहार राज्य के जिला वैशाली क्षेत्र के 14-19 वर्ष की किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका के अध्ययन पर आधारित है। जनगणना 2011 के अनुसार, वैशाली की जनसंख्या 34,95,249 है ओर लिंग अनुपात 895 स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरुष है।

अध्ययन की पद्धति :

प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु अनुसंधान कर्ता द्वारा साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया। साक्षात्कार अनुसूची मे निहित प्रश्नों को अनुसंधानकर्ता ने उत्तरदाताओ से पुचकार स्वयं भरा।

तथ्य संकलन की विधि :

प्राथमिक तथ्यों का संकलन साक्षात्कार, अवलोकन एवं समूह केंद्रित चर्चा द्वारा तथा द्वितीयक तथ्यों का संकलन सरकारी रेपोर्टों, शोध पत्रों एवं पुस्तकों द्वारा किया गया।

तथ्यों का विश्लेषण :

तालिका 1 : अध्ययन क्षेत्र, वैशाली (N=150) मे किशोरियों का आयु वितरण

क्र.सं.	आयु	उत्तरदाताओ की संख्या	प्रतिशत(%)
1.	14 - 15	60	40
2.	16 - 17	51	34
3.	18 - 19	39	26
	कुल संख्या	150	100

तालिका 1 के अनुसार सबसे बड़ा समूह 14-15 आयु वर्ग (60 किशोरियाँ, 40%) का है, इसके बाद 16-17 आयु वर्ग (51 किशोरियाँ, 34%) का स्थान है, जबकि 18-19 आयु वर्ग में सबसे कम (39 किशोरियाँ, 26%) भागीदारी है।

तालिका 2 : अध्ययन क्षेत्र, वैशाली मे किशोरियों (N=150) का कक्षा के आधार पर वितरण

क्र.सं.	कक्षा (Class)	उत्तरदाताओ की संख्या	प्रतिशत(%)
1.	10 th	54	36
2.	11 th	49	32.67
3.	12th	47	31.33
	कुल संख्या	150	100

तालिका 2 के अनुसार, सबसे अधिक 36% (54) किशोरियाँ 10वीं कक्षा से हैं, इसके बाद 11वीं कक्षा से 32.67% (49) और 12वीं कक्षा से सबसे कम 31.33% (47) किशोरियाँ शामिल हैं।

तालिका 3 : किशोरियाँ (N=150) के यौन एंव प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओ के समाधान मे समाज कार्य की भूमिका

क्र.सं.	चर	समस्या	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत(%)
1 .	यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी जानकारी	क्या समाज कार्यकर्ता द्वारा स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान की जाती है?		
		हाँ	90	60
		कुछ हद तक	40	26.67
		नहीं	20	13.33

2 .	स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान	क्या समाज कार्यकर्ता स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में सहायता करते हैं?		
		हाँ	85	56.67
		हाँ कुछ हद तक	45	30
		नहीं	20	13.33
3 .	परामर्श एवं मार्गदर्शन	क्या समाज कार्यकर्ता किशोरियों को आवश्यक परामर्श प्रदान करते हैं?		
		हाँ	80	58.67
		कुछ हद तक	42	28
		नहीं	20	13.33
4 .	स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच	क्या समाज कार्यकर्ता किशोरियों को स्वास्थ्य केंद्र तक पहुँचने में सहायता करते हैं?		
		हाँ	80	53.33
		कुछ हद तक	45	30
		नहीं	25	16.67
5 .	सामाजिक भ्रांतियों का समाधान	क्या समाज कार्यकर्ता यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य से जुड़ी भ्रांतियों को दूर करने में सहायता करते हैं?		
		हाँ	92	61.33
		कुछ हद तक	38	25.33
		नहीं	20	13.33

तालिका 3 के अनुसार किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका अत्यंत सकारात्मक और प्रभावी रही है। आधे से अधिक किशोरियाँ (53% से 61%) समाज कार्यकर्ताओं द्वारा दी जाने वाली जानकारी, परामर्श, स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच और भ्रांतियों के निवारण में मिलने वाली सहायता से पूरी तरह सहमत हैं, जिसमें सर्वाधिक योगदान सामाजिक भ्रांतियों को दूर करने (61.33%) और स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान करने (60%) में देखा गया, जबकि केवल 13% से 16% किशोरियों ने ही समाज कार्य के प्रभाव को नहीं माना।

तालिका 4 : किशोरियों (N=100) के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य में सुधार हेतु समाज कार्य आधारित उपाय

क्र. सं.	चर	उपायसुझाव/	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत (%)
1 .	परामर्श सेवा	किशोरियों के लिए नियमित परामर्श सेवा उपलब्ध होनी चाहिए।		
		आवश्यक	115	76.67
		कुछ हद तक आवश्यक	25	16.67
		आवश्यक नहीं	10	6.67
2 .	सामाजिक भ्रांतियों का निवारण	मासिक धर्म एवं प्रजनन स्वास्थ्य से जुड़ी भ्रांतियों को दूर करने के लिए सामुदायिक कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।		
		आवश्यक	125	83.33
		कुछ हद तक आवश्यक	15	10
		आवश्यक नहीं	10	6.67
3 .	परिवार की सहभागिता	माता-पिता को किशोरियों के स्वास्थ्य संबंधी विषयों पर जागरूक किया जाना चाहिए।		
		आवश्यक	18	68.67
		कुछ हद तक आवश्यक	22	14.67
		आवश्यक नहीं	10	6.67
4 .	स्वास्थ्य सेवाओं से जोड़ना	किशोरियों को स्वास्थ्य केंद्रों एवं विशेषज्ञों से जोड़ा जाना चाहिए।		
		आवश्यक	122	81.33
		कुछ हद तक आवश्यक	18	12
		आवश्यक नहीं	10	6.67

तालिका 4 के अनुसार आंकड़ों के से स्पष्ट है कि अधिकांश प्रतिभागियों ने इन सभी उपायों का पुरजोर समर्थन किया है, जिसमें सामाजिक भ्रांतियों के निवारण हेतु सामुदायिक कार्यक्रमों (83.33%) और विशेषज्ञों व स्वास्थ्य केंद्रों से जोड़े जाने (81.33%) को सबसे प्राथमिक आवश्यकता माना गया है, साथ ही नियमित परामर्श (76.67%) और माता-पिता की जागरूकता (68.67%) को भी किशोरियों ने बेहद जरूरी बताया है, जबकि सभी मदों में केवल 6.67% उत्तरदाताओं ने ही इन उपायों को आवश्यक नहीं माना है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

वर्तमान अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 14-19 वर्ष की किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य सुधार में समाज कार्य की भूमिका अत्यंत प्रभावी और सकारात्मक रही, 60% से अधिक प्रतिभागियों ने सामाजिक भ्रांतियों को दूर करने और सटीक स्वास्थ्य जानकारी प्रदान करने में समाज कार्यकर्ताओं के योगदान को सराहा। इस प्रभाव को और अधिक मजबूत बनाने तथा स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच का विस्तार करने के लिए ग्रामीण व स्थानीय स्तर पर नियमित सामुदायिक जागरूकता अभियानों का आयोजन किया जाना आवश्यक है, जिससे इस विषय से जुड़ी वर्जनाएं समाप्त हो सकें। इसके साथ ही, किशोरियों को स्थानीय स्वास्थ्य केंद्रों और चिकित्सा विशेषज्ञों से सीधे जोड़ने, स्कूलों व सामुदायिक केंद्रों में नियमित परामर्श सेवाएँ उपलब्ध कराने और माता-पिता व परिवार को भी इन कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से शामिल करने की आवश्यकता है, ताकि किशोरियों को एक सहयोगी और जागरूक पारिवारिक वातावरण मिल सके।

संदर्भ सूची :

1. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय। (2014)। राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम। भारत सरकार। https://nhm.gov.in/nhm/index4.php?lang=1&level=0&lid=173&linkid=152
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन। (2018)। किशोरों के लिए अनुकूल स्वास्थ्य सेवाएँ: पर्यवेक्षण एवं स्व-मूल्यांकन जाँच सूची तथा उपयोगकर्ता मार्गदर्शिका। विश्व स्वास्थ्य संगठन। https://www.who.int/publications/i/item/9789290226475
3. पॉपुलेशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया। (2021)। पीयर-लेड इंटरवेंशन और किशोरी समूह: नवादा और दरभंगा, बिहार में किशोर प्रजनन स्वास्थ्य का सुदृढ़ीकरण। पॉपुलेशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया।

4. नदीम, एम., कुमार, एस., एवं सिंह, ए. के. (2021)। रोहतास, बिहार में ARSH क्लीनिकों में आने वाली किशोरियों के बीच प्रजनन स्वास्थ्य के संबंध में स्वास्थ्य-खोज व्यवहार। इंडियन जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन, 46(3), 312-316।
5. पॉपुलेशन काउंसिल। (2022)। बिहार में किशोरों और युवा वयस्कों के जीवन को समझना (UDAYA): किशोरियों के बीच यौन और प्रजनन स्वास्थ्य ज्ञान और पहुँच। पॉपुलेशन काउंसिल।
6. रॉय, ए., एवं प्रकाश, आर. (2023)। ग्रामीण बिहार में किशोरी स्वास्थ्य सेवाओं का संवर्धन: एक समाज कार्य दृष्टिकोण। सोशल वर्क क्रॉनिकल, 12(1), 45-58।
7. विश्व स्वास्थ्य संगठन। (2025)। किशोरों में प्रारंभिक गर्भावस्था एवं खराब प्रजनन परिणामों की रोकथाम संबंधी दिशानिर्देश। विश्व स्वास्थ्य संगठन। https://www.who.int/teams/maternal-newborn-child-adolescent-health-and-ageing/adolescent-and-you
8. राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन। (2026)। किशोर स्वास्थ्य। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार। https://www.nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=2&lid=221&sublinkid=818
9. राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन। (2026)। राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम के लिए दिशा-निर्देश। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार। https://nhm.gov.in/guidelines/index1.php?lang=1&level=3&lid=153&sublinkid

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 232-234

हिंदी सिनेमा में नारी शोषण : 2000 से 2026 तक

रिशु सिंह, शोधार्थिनी
प्रो. एन. सत्यनारायण, मार्गदर्शक,
आंध्र विश्वविद्यालय।

हिंदी सिनेमा भारतीय समाज का दर्पण रहा है। यह न केवल मनोरंजन का माध्यम है, बल्कि सामाजिक मूल्यों, लिंग संबंधों और सत्ता संरचनाओं को भी आकार देता है। 2000 से 2026 के लगभग ढाई दशकों में हिंदी सिनेमा में महिलाओं के चित्रण और उनके साथ व्यवहार में कई परतें दिखाई देती हैं। एक ओर वस्तुकरण (Objectification), मेल गेज और हिंसा का रोमांटिकाइजेशन जारी रहा, तो दूसरी ओर महिलाओं की एजेंसी, सहमति और प्रतिरोध की कहानियाँ भी उभरकर आईं। यह लेख इसी द्वंद्व को समझने का प्रयास है।

2000–2010 : मेल गेज और वस्तुकरण का चरम :

2000 के दशक की शुरुआत में हिंदी सिनेमा में महिलाएँ अक्सर हीरो की कहानी के सहायक तत्व के रूप में दिखाई दीं। आइटम सॉन्ग्स, कम कपड़ों में नृत्य और शरीर पर केंद्रित कैमरा एंगल्स आम थे। "मैं तो तंदूरी मुर्गी हूँ यार" जैसे गीत महिलाओं को वस्तु के रूप में प्रस्तुत करते थे। फिल्मों में स्टॉकिंग को रोमांस का हिस्सा बनाया जाता था। पुरुष पात्र महिलाओं का पीछा करते, उनका मजाक उड़ाते और अंत में उन्हें "जीत" लेते थे। यह पैटर्न दर्शकों में सामान्य लगने लगा।

इस अवधि में महिला यौनिकता को भी मेल गेज से ही देखा गया। जिस्म (2003), मर्डर (2004) जैसी फिल्में महिला इच्छा को दिखाती थीं, लेकिन अक्सर उसे बाजारू तरीके से पेश करती थीं। कास्टिंग काउच और सेट पर महिलाओं के शोषण की चर्चा उद्योग के अंदर चुपके से होती थी, लेकिन सार्वजनिक रूप से बहुत कम बात की जाती थी। महिलाओं को या तो "आदर्श पत्नी–माँ" या "आकर्षक वस्तु" की श्रेणी में बाँध दिया जाता था।

2010–2020 : प्रतिरोध की शुरूआत और #MeToo :

2010 के दशक में धीरे–धीरे बदलाव दिखाई देने लगा। कहानी (2012), क्वीन (2014), पिंक (2016) और लिपस्टिक अंडर माय बुर्का (2016) जैसी फिल्मों ने महिलाओं को अपनी कहानी का केंद्र बनाया। ये फिल्में सहमति, स्वतंत्रता, यौन इच्छा और पितृसत्ता के खिलाफ महिलाओं की आवाज उठाती थीं। 'पिंक' ने साफ कहा कि "नहीं" का मतलब "नहीं" ही है, चाहे कपड़े या व्यवहार कुछ भी हो।

2018 में #MeToo आंदोलन ने उद्योग को हिला दिया। कई अभिनेत्रियों और तकनीशियनों ने यौन उत्पीड़न के आरोप लगाए। कुछ नामों पर अस्थायी प्रतिबंध लगे, लेकिन ज्यादातर आरोपी समय के साथ वापस काम पर लौट आए। इस आंदोलन ने स्क्रीन पर भी असर डाला। Section 375 जैसी फिल्में कानूनी और नैतिक जटिलताओं पर बात करने लगीं। फिर भी, व्यावसायिक सिनेमा में टॉक्सिक मर्दानगी का असर कम नहीं हुआ।

'कबीर सिंह' (2019) ने हिंसा और नियंत्रण को प्रेम का रूप देकर बड़ी सफलता हासिल की। यह दिखाता है कि दर्शक अभी भी ऐसी छवियों को स्वीकार करते थे।

2020–2026 : दोहरी तस्वीर :

2020 के बाद की अवधि सबसे दिलचस्प और विरोधाभासी रही। एक तरफ 'थप्पड़' (2020) ने घरेलू हिंसा के सामान्यीकरण को चुनौती दी। एक थप्पड़ को लेकर पत्नी का रिश्ता छोड़ना समाज के लिए नई बात थी। 'डार्लिंग्स' (2022) ने डार्क कॉमेडी के जरिए घरेलू हिंसा और महिलाओं के प्रतिरोध को दिखाया। 'गंगूबाई काठियावाड़ी' (2022) ने सेक्स वर्कर्स के शोषण और उनके संघर्ष को केंद्र में रखा। 'मिसेज' (2024) और 'लापता लेडीज' जैसी फिल्मों ने घरेलू श्रम, पितृसत्ता और महिलाओं की चुप्पी पर बात की।

दूसरी तरफ, 'एनिमल' (2023) जैसी फिल्मों ने टॉक्सिक मर्दानगी, महिलाओं के प्रति हिंसा और कब्जे वाली लव स्टोरी को बड़े पैमाने पर पेश किया। फिल्म व्यावसायिक रूप से बहुत सफल रही, लेकिन आलोचकों ने इसे महिलाओं की गरिमा के खिलाफ बताया। 2024–2026 में भी कुछ बड़े बजट की फिल्मों में महिलाओं को दृश्य वस्तु के रूप में पेश करने के आरोप लगे। आइटम नंबर और शरीर पर फोकस वाले गीत अभी भी व्यावसायिक फॉर्मूले का हिस्सा बने हुए हैं।

ओ विमेनिया! रिपोर्ट (2025) के अनुसार, 2024 में विश्लेषण की गई फिल्मों और सीरीज में महिलाओं की एजेंसी अभी भी कमजोर है। थिएटरिकल फिल्मों में केवल 19 प्रतिशत ही महिला एजेंसी के मानदंड पूरे कर पाईं, जबकि स्ट्रीमिंग में यह आंकड़ा बेहतर (47 प्रतिशत) रहा। पीछे की कुर्सियों पर (निर्देशन, सिनेमैटोग्राफी, लेखन आदि) महिलाओं की भागीदारी 13 प्रतिशत के आसपास अटकी हुई है। हिंदी सिनेमा अन्य भाषाओं से बेहतर है, लेकिन पर्याप्त नहीं।

स्क्रीन पर बनाम वास्तविकता :

स्क्रीन पर महिलाओं का शोषण दो रूपों में दिखता है– एक तो कहानी के अंदर (हिंसा, वस्तुकरण, नियंत्रण), दूसरा उद्योग की संरचना में (कास्टिंग काउच, असमान वेतन, असुरक्षित कार्यस्थल)। #MeToo के बाद कुछ पोश कमेटियाँ बनीं, लेकिन जवाबदेही अभी भी अधूरी है। कई आरोपी वापस मुख्यधारा में लौट आए। महिलाओं द्वारा निर्देशित या लिखी गई फिल्में बेहतर प्रतिनिधित्व देती हैं, लेकिन उनकी संख्या कम है।

सकारात्मक संकेत और आगे की राह :

पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं की आवाज तेज हुई है। अभिनेत्रियाँ अब कैमरा एंगल्स, सहमति और कार्य स्थितियों पर खुलकर बोलती हैं। OTT प्लेटफॉर्म ने महिलाओं की जटिल कहानियों को जगह दी है। मर्दानी सीरीज, आर्या जैसी रचनाएँ महिलाओं को मजबूत और निर्णायक भूमिका में दिखाती हैं। फिर भी, बड़े व्यावसायिक सिनेमा में "हीरो–देवीकरण" का रुझान मजबूत है। दर्शक और निर्माता दोनों की जिम्मेदारी है कि वे ऐसी कहानियों को बढ़ावा दें जो महिलाओं को वस्तु नहीं, बल्कि इंसान के रूप में देखें।

निष्कर्ष :

2000 से 2026 तक हिंदी सिनेमा में नारी शोषण की कहानी एक सीधी रेखा नहीं, बल्कि उतार–चढ़ाव वाली रही है। वस्तुकरण और हिंसा का रोमांटिकाइजेशन अभी भी मौजूद है, लेकिन प्रतिरोध, एजेंसी और आत्म–सम्मान की कहानियाँ भी मजबूत हुई हैं। सिनेमा समाज को प्रभावित करता है और समाज से प्रभावित होता है। जब तक उद्योग में महिलाओं की भागीदारी पीछे की कुर्सियों पर नहीं बढ़ेगी और दर्शक टॉक्सिक छवियों

को बिना सवाल स्वीकार करते रहेंगे, तब तक यह चक्र जारी रहेगा। हिंदी सिनेमा को महिलाओं की गरिमा का सम्मान करने वाला माध्यम बनना अभी बाकी है– लेकिन दिशा सही होने के संकेत साफ दिख रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- भारतीय जन जीवन और हिन्दी सिनेमा – डॉ. जयकृष्णन जे.।
- हिन्दी सिनेमा का बदलता रूप – दिलचस्प।
- टॉकीज सिनेमा का सफर – अजय ब्रह्मात्मज और मयंक शेखर की बातचीत।
- हिन्दी सिनेमा और उसका अध्ययन – संपादक : डॉ. रमा।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 235-242

From Governance Reform to Knowledge Transformation : Evaluating the Impact of the Modi Government's Education and Digital Policies on Multidisciplinary Research in India

Riya Saxena
Research Scholar,
School of Arts and Humanities, Career Point University, Kota, Rajasthan, India.

Abstract :

Since 2014, the Modi government has pursued a twin-track strategy of governance reform and digital expansion whose cumulative effect on India's research ecosystem has been substantial yet unevenly examined. This paper evaluates how the National Education Policy (NEP) 2020, the restructuring of higher education governance through bodies such as the University Grants Commission and the newly constituted Higher Education Commission of India framework, and the establishment of the Anusandhan National Research Foundation (ANRF) under the ANRF Act, 2023, have interacted with flagship digital initiatives — Digital India, SWAYAM, DIKSHA, the National Digital Library, and e-Shodh Sindhu — to reshape the conditions for multidisciplinary research in Indian higher education institutions. Employing a qualitative, document-based policy analysis supplemented by secondary data on enrolment, funding architecture, and institutional accreditation, the study traces a shift from siloed, discipline-bound research administration toward an integrated knowledge ecosystem oriented around cross-domain missions such as ANRF's Mission for Advancement in High-impact Areas (MAHA) and the Partnerships for Accelerated Innovation and Research (PAIR) programme. The paper argues that governance reform has provided the institutional scaffolding — credit-based flexibility, Multidisciplinary Education and Research Universities (MERUs), and a unified national research foundation — while digital public infrastructure has supplied the connective tissue that allows researchers across the natural sciences, social sciences, and humanities to collaborate at scale.

At the same time, the analysis identifies persistent structural constraints: uneven state-level readiness, the digital divide between well-resourced and resource-poor institutions, a continuing STEM-centric bias in funding allocation, and capacity gaps in humanities and social science research

infrastructure. The paper concludes with policy recommendations for deepening multidisciplinary convergence, particularly the need to mainstream social sciences and humanities within ANRF's mission architecture and to extend digital research infrastructure equitably across tier-two and tier-three institutions such as those in Rajasthan.

Keywords : NEP 2020, Anusandhan National Research Foundation, Digital India, multidisciplinary research, higher education governance, knowledge economy

1. Introduction :

India's higher education and research landscape has undergone one of its most consequential transformations in the post-independence period over the last decade. Two parallel and mutually reinforcing streams of policy action define this period: first, a sustained programme of governance reform culminating in the National Education Policy (NEP) 2020, which replaced the thirty-four-year-old National Policy on Education of 1986; and second, an aggressive expansion of digital public infrastructure under the Digital India mission, which has progressively extended into the domains of teaching, learning, and research. While these two streams are often analysed separately — the former as an exercise in educational governance and the latter as a technology policy — this paper contends that their combined effect is best understood as a single, if uneven, project of knowledge-system transformation, whose clearest expression is the push toward multidisciplinary research.

The idea of multidisciplinarity is not new to Indian higher education policy discourse, but NEP 2020 elevated it from an aspirational value to a structural mandate, requiring institutions to move away from rigid single-stream colleges toward large, multidisciplinary universities offering flexible, credit-based curricula. This structural reorientation was subsequently reinforced by the creation of the Anusandhan National Research Foundation (ANRF) under the ANRF Act, 2023, which explicitly frames cross-domain, multi-institutional collaboration as a funding priority rather than an incidental outcome. Simultaneously, the expansion of digital learning and research infrastructure — platforms such as SWAYAM, DIKSHA, the National Digital Library of India, and e-Shodh Sindhu — has lowered the transaction costs of interdisciplinary collaboration, enabling researchers across geographically and institutionally dispersed centres to access shared resources, co-author across disciplines, and participate in mission-mode research programmes.

This paper asks a central question: has the combination of governance reform and digital expansion under the Modi government produced a measurable shift toward genuine multidisciplinary research capacity in Indian higher education, or has it primarily reformed the architecture of governance without a commensurate transformation in research practice, particularly in the social sciences and humanities? The paper situates this inquiry within the broader literature on policy implementation gaps in Indian federalism, while offering a structured account of the specific instruments — NEP

2020, ANRF, and Digital India — through which this transformation has been attempted.

2. Literature Review :

Scholarship on NEP 2020 has largely converged on the observation that the policy advances global trends of digitalisation, internationalisation, and multidisciplinary flexibility, while carrying substantial implementation risk in the form of uneven state readiness, fiscal constraints, and limited teacher-training capacity. Reviews of the 2020–2025 implementation period note the adoption of the National Curriculum Framework (2023), the phased rollout of the Four-Year Undergraduate Programme (FYUGP) with multiple entry and exit points, and the expansion of digital learning through DIKSHA, PM eVidya, and SWAYAM as the principal markers of on-the-ground change, even as researchers caution that structural reform at the policy level has outpaced capacity-building at the institutional level.

A parallel body of literature addresses the research-governance dimension. Analyses of the ANRF Act, 2023 situate the Foundation as a response to India's persistent gap between its high global rank in scientific publication volume and its comparatively weak performance in patenting and translational research. The Foundation's mission-mode programmes — including the Mission for Advancement in High-impact Areas (MAHA), covering sub-missions in electric mobility, medical technology, and two-dimensional materials, and the Partnerships for Accelerated Innovation and Research (PAIR) scheme, which links premier institutions such as the IITs and IISc with state public universities in a mentorship model — are frequently cited as the clearest institutional attempt to operationalise multidisciplinary, multi-institutional research at scale. More recently, the announcement of the Research, Development and Innovation (RDI) Scheme, anchored by the Department of Science and Technology and operationalised through ANRF, signals an effort to mobilise long-term, low-interest capital for translational and applied research beyond the traditional grants-in-aid model.

A comparatively thinner strand of literature examines the digital infrastructure dimension of this transformation. Existing work on Digital India's education vertical documents the expansion of platforms for content delivery and credential verification but offers less systematic evidence on how such infrastructure has altered the practice of collaborative, cross-disciplinary research, particularly outside the STEM disciplines. This gap is significant because it is precisely in the social sciences and humanities — fields historically organised around single-author, discipline-bound scholarship — that a shift toward digitally enabled, multidisciplinary collaboration would represent the most meaningful test of the policy architecture's transformative claims. This paper positions itself within that gap.

3. Research Objectives :

The study is guided by the following objectives :

1. To examine the governance-reform architecture introduced through NEP 2020 and the ANRF Act, 2023, with specific reference to their multidisciplinary research provisions.
2. To assess the role of Digital India-linked infrastructure (SWAYAM, DIKSHA, National Digital Library, e-Shodh Sindhu) in enabling cross-disciplinary and multi-institutional research collaboration.
3. To evaluate the extent to which these reforms have translated into measurable shifts in multidisciplinary research practice, with particular attention to the relative position of the social sciences and humanities.
4. To identify structural constraints — institutional, fiscal, and digital — that continue to limit multidisciplinary convergence, and to propose policy responses.

4. Research Methodology :

This paper adopts a qualitative, document-based policy analysis design. Primary sources include the text of the National Education Policy 2020, the Anusandhan National Research Foundation Act, 2023, official communications of the Department of Science and Technology and the Ministry of Education, and publicly available programme documentation for ANRF's MAHA, PAIR, and RDI schemes. These are read alongside secondary sources — peer-reviewed policy reviews, government progress reports, and institutional ranking data (including QS World University and Subject Rankings) — to triangulate claims about implementation and outcomes. The analysis follows a thematic framework organised around three axes: (i) governance restructuring, (ii) digital infrastructure expansion, and (iii) observable shifts in multidisciplinary research practice. Given the document-based nature of the enquiry, the paper does not claim causal attribution but offers a structured, evidence-anchored interpretation of policy design and its plausible institutional effects, appropriate to a conference-length contribution intended to open a broader research agenda.

5. Governance Reform : NEP 2020 and Institutional Restructuring :

The governance dimension of this transformation rests on two pillars. The first is NEP 2020's structural redefinition of the higher education institution itself. The policy mandates that all higher education institutions transition into multidisciplinary universities or degree-granting colleges by 2040, with at least one major institution in every district by 2030, and establishes Multidisciplinary Education and Research Universities (MERUs) as flagship models under schemes such as PM-USHA. The Four-Year Undergraduate Programme, with its multiple-entry, multiple-exit structure and credit-based flexibility, operationalises this at the curricular level by dismantling the rigid science-arts-commerce stream divisions that had long constrained cross-disciplinary study in Indian universities,

including institutions such as Career Point University, Kota, which have restructured their undergraduate credit matrices accordingly.

The second pillar is the reorganisation of the research funding and governance architecture through the Anusandhan National Research Foundation Act, 2023. ANRF subsumed the Science and Engineering Research Board and was constituted as an apex body with the Prime Minister as ex-officio chair of its Governing Body, explicitly mandated to provide high-level strategic direction to research not only in the natural and engineering sciences but also at their interface with the humanities and social sciences. This is a notable departure from the SERB-era model, which was structurally confined to the natural and engineering sciences. In its first two years of operation, ANRF has rolled out programmatic instruments — the MAHA and PAIR schemes — explicitly designed around multi-institutional and multidisciplinary collaboration, alongside a hub-and-spoke mentorship model intended to correct regional research imbalances by pairing premier institutions with state public universities. Most recently, the Prime Minister's announcement of a Rs. 1 lakh crore Research, Development and Innovation (RDI) Scheme, to be operationalised through ANRF, signals a shift toward patient, non-grant capital for translational research, extending the funding architecture beyond the traditional grants-in-aid model.

6. Digital Policy Architecture and Research Infrastructure :

Where governance reform has supplied institutional scaffolding, Digital India's education-linked infrastructure has supplied connective capacity. Platforms such as SWAYAM and DIKSHA, originally conceived for content delivery, have progressively been positioned as vehicles for credit-recognised, cross-institutional learning, allowing students and early-career researchers to draw on courses outside their home discipline without institutional relocation. Research-specific digital infrastructure — the National Digital Library of India and the e-Shodh Sindhu consortium for scholarly journal access — has narrowed, though not eliminated, the resource gap between well-endowed central institutions and resource-constrained state and private universities, a gap that bears directly on the capacity of humanities and social science scholars, who have historically had weaker access to subscription-based research databases than their science and engineering counterparts.

The digital dimension also underwrites ANRF's own operating model: proposal submission, peer review coordination, and multi-institutional consortium formation for PAIR and MAHA submissions are conducted through centralised digital platforms that would be administratively unworkable at national scale under a purely paper-based system. In this sense, digital infrastructure functions less as a parallel policy track and more as the operational substrate on which the governance reforms described above are implemented.

7. From Reform to Transformation : Impact on Multidisciplinary Research :

Read together, the governance and digital tracks point toward an emergent, if still incomplete, shift in the practice of research in Indian higher education. Four trends are discernible.

First, institutional consolidation. The mandated transition toward multidisciplinary universities and the credit-based FYUGP structure have created the administrative preconditions for cross-disciplinary faculty collaboration and joint course design, evident in the curriculum restructuring undertaken by universities aligning their programmes with NEP 2020 and UGC Curriculum Framework conventions.

Second, mission-oriented funding convergence. ANRF's MAHA and PAIR programmes explicitly require multi-institutional and, in several sub-missions, cross-disciplinary participation as a condition of funding, marking a deliberate policy choice to use financial incentives to induce collaboration that voluntary academic culture alone had not produced.

Third, digitally enabled regional integration. The hub-and-spoke model linking IITs and IISc with state public universities, combined with digital consortium access to journals and libraries, has begun to narrow — without closing — the research-capacity gap between metropolitan and non-metropolitan institutions, a development of direct relevance to universities in states such as Rajasthan.

Fourth, and more tentatively, disciplinary convergence at the science–society interface. ANRF's explicit statutory mandate to fund the interface between natural sciences and humanities/social sciences represents the clearest formal recognition yet that questions of climate, health, digital governance, and social equity require research designs that cross the science–society divide; however, the evidence available at this stage suggests that implementation in this specific interface remains at an early and comparatively under-resourced stage relative to the natural sciences and engineering missions.

8. Challenges and Critical Reflections :

Despite this architecture, three constraints limit the depth of transformation. First, implementation unevenness across states persists, driven by fiscal capacity, teacher-training infrastructure, and varying administrative readiness to adopt credit-based multidisciplinary curricula, a concern repeatedly flagged in independent reviews of the 2020–2025 implementation period. Second, a STEM-centric allocative bias remains visible in early ANRF funding rounds and mission design, with the science–humanities interface occupying a comparatively marginal position relative to engineering and technology missions, despite its statutory inclusion. Third, the digital divide continues to differentiate institutions by resource endowment: while flagship digital infrastructure exists at the national level, its effective utilisation depends on local bandwidth, device access, and library subscription budgets that remain uneven across tier-one, tier-two, and tier-three institutions, a distinction of particular relevance for universities located outside major metropolitan research hubs.

9. Conclusion and Policy Recommendations :

This paper has argued that the Modi government's education and digital policies constitute a coherent, if incompletely realised, project of knowledge-system transformation. NEP 2020 and the ANRF Act, 2023 have supplied the institutional and funding architecture for multidisciplinary research, while Digital India's education and library infrastructure has supplied the connective capacity that allows this architecture to function at national scale. The clearest evidence of transformation lies in mission-mode, funding-incentivised collaboration under ANRF and in the institutional consolidation mandated by NEP 2020; the clearest evidence of an implementation gap lies in the continued marginal position of the humanities and social sciences within this architecture, and in the persistence of state-level and institution-level unevenness in digital and fiscal capacity.

Three recommendations follow. First, ANRF's mission-mode programming should be extended with dedicated, appropriately resourced calls at the science–humanities interface, rather than treating this interface as a residual category within STEM-oriented missions. Second, digital research infrastructure investment should be explicitly weighted toward tier-two and tier-three institutions, including state private universities such as those in Rajasthan, to prevent the consolidation of research capacity in a small number of already well-resourced centres. Third, state governments should be provided dedicated implementation and capacity-building support — rather than policy guidance alone — to translate the credit-based, multidisciplinary curricular architecture of NEP 2020 into functioning cross-departmental research collaboration at the institutional level. Realising the full transformative potential of this decade's reforms will depend less on further governance redesign than on the equitable and sustained operationalisation of the architecture already in place.

References :

- Anusandhan National Research Foundation. (2024). About ANRF. Government of India. https://anrfonline.in/ANRF/About
- Anusandhan National Research Foundation Act, 2023, No. 25 of 2023, Acts of Parliament, 2023 (India).
- Department of Science and Technology. (n.d.). Anusandhan National Research Foundation (ANRF). Government of India. https://dst.gov.in/anusandhan-national-research-foundation-anrf
- IMPRI India. (2025). Anusandhan National Research Foundation: Policy update. https://www.impriindia.com/insights/policy-update/anusandhan-national-research-foundation/
- India Bioscience. (2025, December). Anusandhan National Research Foundation (ANRF) & RDI Fund: An overview. https://indiabioscience.org/columns/opinion/anusandhan-national-research-foundation-anrf-rdi-fund-an-overview

- Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.
- Ministry of Education. (2025). Higher education under NEP 2020: Reimagining India's academic landscape [Report]. Press Information Bureau. https://static.pib.gov.in/WriteReadData/specificdocs/documents/2025/jul/doc2025729593701.pdf
- NEP 2020 to NEP 2025: A review of policy shifts and structural reforms. (2025). ResearchGate. https://www.researchgate.net/publication/392179175
- University Grants Commission. (2022). Curriculum and Credit Framework for Undergraduate Programmes. Government of India.
- India Science, Technology & Innovation Portal. (n.d.). Anusandhan National Research Foundation (ANRF). https://www.indiascienceandtechnology.gov.in/

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 243-247

Pedagogical Practices and Knowledge Creation in Multidisciplinary Higher Education

Dr. Ruqqia Hashmi

Abstract :

This article explores how pedagogical practices and knowledge creation intercourse withgues in multidisciplinary higher education where the teaching process is not the delivery of prerecorded information but an interactive process that entails structuring and negotiating as well as the co-production of knowledge within the classroom. This process can be particularly significant in multidisciplinary environments as learners will need to interact with numerous different perspectives, conceptual frameworks, and ways of inquiring. It proposes in the paper that dialogue, problem-based learning, conceptual integration, and reflective discussion are some of the pedagogical principles that could change classrooms where knowledge is received to knowledge creation platforms. It also proposes that teachers are at the core of influencing such processes, through facilitating inquiry, brokering between disciplines and empowering students to engage more actively in intellectual work. Simultaneously, the paper underlines that effective knowledge production takes its value based on pedagogical design that would allow collaboration, critical thinking, and synthesis of concepts. In the conclusion of the paper, it was concluded that multidisciplinary higher education can best be conceptualized as knowledge work in which pedagogy is perceived as knowledge work, students and teachers develop knowledge when they collaborate.

Keywords : Pedagogy; creation of knowledge; multidisciplinary higher education; teacher agency; classroom talk; interdisciplinary learning.

Introduction :

Students are increasingly being expected to take on complex problems which cannot be easily compartmentalized as far as single disciplines are concerned. This has made multidisciplinary learning become a prominent aspect of modern day universities. Nonetheless, provision of multidisciplinary education can not be effective only due to the fact that different subjects are put together. Its actual worth is determined by the way that teaching is structured; the way that the students are encouraged to think, challenge and relate thought to different disciplines. It is here that pedagogy is put in focus.

Recent studies indicate that the interdisciplinary and co-creative learning classrooms require

a lot of reliance on the manner in which teachers arrange classroom interaction and intellectual participation [1][2].

The paper will argue that pedagogical practices do not have a secondary role to play on knowledge creation; rather they are the conditions under which knowledge is created within higher education. When the process of teaching is structured as a knowledge-building process, classes should be places where meaning and concepts are negotiated, and new understanding is used in the process of interaction. This will be critical in multidisciplinary settings, where the classroom should facilitate flexibility, comparison and integrating concepts. The paper formulates a theoretical proposition that pedagogy is to be defined as knowledge (instead of a mere delivery) work [3][4].

Pedagogy as knowledge work :

Pedagogy is more than content explanation. It consists of structuring learning spaces, ordering of ideas, constructing questions and providing reflection and discussion space. In this respect, pedagogy determines the type of knowledge that will become apparent, and how a student will interact with this knowledge. Knowledge creation starts when the students are not merely exposed to information, but they are also challenged to analyze, interpolate and make connections between the information, and larger intellectual and social tracts.

The concept of knowledge creation in education has been prepared in the literature on knowledge building and classroom discourse whereby classrooms are viewed as communities that are involved in collaborative inquiry [4]. These methods will focus on the idea that when students are challenged to provide ideas, assumptions and refine explanations by engaging in conversation they are more likely to learn. Pedagogy thus plays an epistemic role: pedagogy not only facilitates learning, but is also involved in the generation of knowledge. The role is all the more important in multidisciplinary higher education since students need to cross disciplinary logics, and they need to make sense of concepts that might at first seem disjointed [2][3].

Multidisciplinary higher education :

Multidisciplinary higher education is a learning space in which the knowledge of varied faces of disciplines converge to shed some light on intricate problems. In contrast with an exclusively disciplinary instruction, multidisciplinary learning fosters a comparison of methods, discovery of relations and construction of a more general intellectual perspective of the students. Such education is particularly useful in case it comes to social, technological, environmental and cultural issues that cannot be considered through the prism of a single analytical approach. Nonetheless, this kind of education could be successful only when the learning activities are geared towards integration as opposed to fragmentation.

The recent literature on interdisciplinary teaching reveals that methods of approaching learning differ considerably and need a well-planned approach through pedagogy [1][5]. On the same note, studies on transdisciplinary learning affirm to the relevance of co-learning and co-creation among students and educators [6]. These are studies which imply that multidisciplinary education is not merely a curriculum set up but a pedagogical procedure. It is also up to teachers to create learning experiences that assist students to transition across concepts, disciplines and types of reasoning without losing either the depth or coherence of the learning process. Its difficulty is to maintain rigor of discipline and at the same time make synthesis and connection a possibility.

Teacher as mediator :

Teachers are placed at a pivotal role in knowledge making as they are the middle ground between the curriculum and the student, between disciplinary content and understanding in the classroom. This mediation is particularly challenging in multidisciplinary situations. The teacher should not just share with students ideas that they have to learn but must also show them how these pertain to each other. This demands intellectual adaptability, pedagogical nimbleness and the capability to steer inquiry and not to shut the door too soon.

The interdisciplinary teaching and teacher expertise literature suggests that teachers require more specialized types of knowledge in order to teach interdisciplinarily [7][5]. The teachers should create tasks, questions and in such ways that students can give their feedback to the common ground. It implies that one of the necessary conditions of knowledge creation is the teacher agency. Passive transmission paradigm of teaching is not applicable in multidisciplinary classrooms and the type of interaction that has to be done. In comparison, learning as a collaborative process in which a teacher is a mediator becomes richer in ideas and concepts and reflective.

Pedagogical practices that create knowledge :

Multidisciplinary higher education involves several pedagogical practices, which are particularly effective to create knowledge. To begin with, discussion and dialogue enable students to market ideas, challenge logic and exposure to other ideas. Dialogue provides a change in the classroom through the one-way channel to a place of intellectual exchange. Second, problem-based learning motivates students to solve real or simulated problems, in which they have to make use of a variety of disciplinary tools. This assists learners to view knowledge as applied, interrelated and changing in response to circumstance [8][9].

Third, conceptual integration will be needed in cases where students are to cross-fields. This can be facilitated by clearly connecting theories, procedures, and illustrations across the boundaries

of fields in the eyes of the teachers. Fourth, reflective writing and discussion can assist students in solidifying their knowledge as well as integrating personal learning with larger conceptualizations of learning. Fifth, cooperative learning allows students to cooperate with other students (with diverse backgrounds) in order to develop knowledge. The recent researches on co-creation in higher education support the concept that learning will be enhanced by involving students in the creation of knowledge, instead of simply receiving it [2][4].

Implications for higher education :

The pedagogy as knowledge creation concept has significant implications to higher education. It puts less importance on content coverage, and more on intellectual involvement. It also has implications to the measurement of success, as the purpose is not only the recall but to think between ideas and build arguments and engage in intellectual work. This is particularly significant in the multidisciplinary environment since students have to cultivate the habits of comparison, synthesis and reflection.

The curriculum design and teacher development are implications of this approach as well. Pedagogies which promote interaction, inquiry and co-constructing understanding should be supported in universities. Educators must be given institutional credits on the intellectual effort in coming up with such learning environments. Recent interdisciplinary pedagogy research indicates that interdisciplinary teaching and learning can be helped by the fact that teaching practice is coherent with a joint knowledge production [10][11]. In this regard, pedagogy is no clerkish aspect of higher education, but it is a fundamental device according to which knowledge makes sense.

Conclusion :

In this paper, we have made the argument that multidisciplinary higher education knowledge creation is centered on the practices of pedagogy. It is important that teaching should not be perceived as merely passive transmission of pre-existing knowledge, but rather as a dynamic engagement of knowledge work, which orchestrates enquiry, facilitates conversation and achieves conceptual synthesis. The role is even more prominent in the context of multidisciplinary settings, in which the learner will have to witness a variety of views and ways of thinking. Educators thus cannot just be mere conveyors of knowledge; they are more likely to be mediators and facilitators of knowledge.

The central argument of the paper is that multidisciplinary learning, tailored to promote collaboration, critical thinking and synthesis of intellectual knowledge and practice, converts into a powerful tool of learning. With a pedagogical approach that views it as process of building knowledge, the universities can establish more participatory, reflective and generative of intellectual classroom. [2][3][4].

References :

- Akkerman, S. F., & Bakker, A. (2025). Variation in approaches to interdisciplinary teaching and learning: A phenomenographic investigation. *Higher Education Research & Development*. https://doi.org/10.1080/13562517.2025.2589315 [1]
- Co-creation in higher education: A conceptual systematic review. (2025). *Higher Education*. https://doi.org/10.1007/s10734-024-01364-1 [2]
- Interdisciplinary pedagogies in higher education. (2017). In *Interdisciplinary higher education* (Oxford University Press). [10]
- Knowledge-building and classroom discourse. (2026). *Education 3-13*. https://doi.org/10.1080/19463014.2026.2682223 [12]
- Knowledge building: Aligning education with needs for knowledge creation in the digital age. (2024). *Instructional Science*. https://doi.org/10.1007/s11423-020-09914-x [13]
- Pedagogical content knowledge (PCK) in higher education: A systematic scoping review. (2024). *Studies in Higher Education*. https://doi.org/10.1080/0742051X24001409 [11]
- Teachers' approaches to interdisciplinary teaching and learning. (2025). *Teaching in Higher Education*. https://doi.org/10.1080/1360144X.2025.2552280 [5]

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 248-253

वैश्विक ज्ञान–निर्माण, सतत शिक्षा एवं अकादमिक उत्कृष्टता हेतु भाषा, शिक्षक एवं अनुसंधान का समन्वित दृष्टिकोण

Dr. Sadhana Ranchhod Tank
Kapadia N.M.M.S. Arts and S.N.S.B.S. Commerce College, Sankheda.

प्रस्तावना :

जब भी मानव सभ्यता ने कोई नया युग देखा है, उसके पीछे ज्ञान की निर्णायक भूमिका रही है। कृषि क्रांति, औद्योगिक क्रांति और सूचना क्रांति के बाद आज विश्व ज्ञान क्रांति के युग में किसी राष्ट्र की शक्ति केवल उसके प्राकृतिक संसाधनों से नहीं, बल्कि उसके ज्ञान–संसाधनों, अनुसंधान क्षमता और शिक्षा व्यवस्था से निर्धारित होती है। इसलिए विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और शिक्षकों की भूमिका पहले की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। ज्ञान का निर्माण किसी एक व्यक्ति या संस्था का कार्य नहीं है। यह भाषा, संस्कृति, अनुभव, अनुसंधान और संवाद की सतत प्रक्रिया से विकसित होता है। यदि भाषा विचारों को अभिव्यक्ति देती है, तो शिक्षक उन विचारों को दिशा देता है ।

वर्तमान समय में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल तकनीक, मुक्त ज्ञान संसाधन, अंतरराष्ट्रीय शोध सहयोग तथा बहुभाषिक शिक्षाने ज्ञान की पारंपरिक अवधारणाओं को चुनौती दी है। आज केवल जानकारी प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है, भारत जैसी बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक सभ्यता के लिए यह चुनौती और भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह अपनी भाषाई और सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखते हुए वैश्विक ज्ञान–व्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभाए। भारतीय ज्ञान परंपरा, लोकज्ञान, दर्शन, साहित्य और वैज्ञानिक विरासत तभी विश्व समुदाय तक प्रभावी रूप से पहुँच सकती है, जब भाषा, शिक्षक और अनुसंधान के बीच जीवंत संबंध स्थापित हो। इसी संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है 'क्या वर्तमान शिक्षा व्यवस्था भाषा, शिक्षक और अनुसंधान को समन्वित रूप में विकसित कर रही है, या ये तीनों अभी भी अलग–अलग इकाइयों के रूप में कार्य कर रहे हैं? इस प्रश्न का उत्तर केवल शिक्षा सुधार से नहीं, बल्कि शिक्षा–दर्शन के पुनर्विचार से जुड़ा हुआ है।

यह शोध–पत्र इसी पुनर्विचार की दिशा में एक विनम्र प्रयास है, जिसका उद्देश्य वैश्विक ज्ञान–निर्माण, सतत शिक्षा और अकादमिक उत्कृष्टता के लिए एक समन्वित वैचारिक आधार प्रस्तुत करना है।

1. अध्ययन के उद्देश्य :

इस शोध–पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. वैश्विक ज्ञान–निर्माण की अवधारणा का समकालीन परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करना।
2. भाषा, शिक्षक एवं अनुसंधान के अंतर्संबंध का अध्ययन करना।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में इनके समन्वय की संभावनाओं का मूल्यांकन करना।

4. सतत शिक्षा एवं अकादमिक उत्कृष्टता के लिए एक समन्वित वैचारिक मॉडल प्रस्तुत करना।

5. वैश्विक शिक्षा व्यवस्था के लिए नीतिगत सुझाव देना।

2. संशोधन-पद्धति :

प्रस्तुत शोध गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन। द्वितीयक स्रोतों NEP–2020, UNESCO, OECD, UGC, शोध–पत्रों एवं पुस्तकोंका आलोचनात्मक विश्लेषण कर वैश्विक ज्ञान–निर्माण, सतत शिक्षा एवं अकादमिक उत्कृष्टता के संदर्भ में भाषा, शिक्षक एवं अनुसंधान की समन्वित भूमिका का अध्ययन करना है, अध्ययन में राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के दिशा–निर्देशों, राष्ट्रीय अनुसंधान प्रतिष्ठान की अवधारणा, तथा शिक्षा, भाषा एवं अनुसंधान से संबंधित राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय विद्वानों की पुस्तकों एवं शोध–पत्रों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। भाषा, शिक्षक और अनुसंधान का प्रभावी समन्वय किस प्रकार शिक्षा की गुणवत्ता एवं वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रभावित करता है। यह अध्ययन वैचारिक है, इसलिए इसमें क्षेत्रीय सर्वेक्षण या सांख्यिकीय परीक्षण सम्मिलित नहीं हैं।

3. वैश्विक ज्ञान-निर्माण : बदलती अवधारणा और समकालीन परिप्रेक्ष्य :

आज किसी भी राष्ट्र की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता का निर्धारण उसके प्राकृतिक संसाधनों से अधिक उसकी बौद्धिक पूँजी अनुसंधान क्षमता और नवाचार पर निर्भर करता है। पूर्व में ज्ञान का स्वरूप अपेक्षाकृत स्थानीय और विश्वविद्यालय अपने–अपने भौगोलिक क्षेत्रों तक सीमित थे। इंटरनेट, डिजिटल तकनीक, मुक्त अभिगम, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा अंतरराष्ट्रीय शोध–सहयोगने ज्ञान की सीमाएँ समाप्त कर आज एक देश में किया गया अनुसंधान कुछ ही क्षणों में विश्वभर के शोधकर्ताओं तक पहुँच जाता है। परंतु वैश्वीकरण का अर्थ केवल ज्ञान का आदान–प्रदान नहीं है, भारतीय संदर्भ में आयुर्वेद, योग, भारतीय गणित, दर्शन, लोकज्ञान, जनजातीय ज्ञान तथा पर्यावरणीय परंपराएँ ऐसे उदाहरण हैं, जिन्होंने वैश्विक विमर्श को समृद्ध किया है। किंतु इनकी अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति तभी संभव हुई जब इन्हें शोध, दस्तावेजीकरण और बहुभाषिक प्रस्तुति के माध्यम से विश्व के समक्ष रखा गया।

अतः वैश्विक ज्ञान–निर्माण का वास्तविक अर्थ केवल नवीन जानकारी उत्पन्न करना नहीं, बल्कि स्थानीय अनुभवों को वैश्विक विमर्श से जोड़ना है। यही समावेशी ज्ञान–व्यवस्था भविष्य की शिक्षा का आधार बनेगी।

4. ज्ञान-निर्माण का आधार- भाषा :

मनुष्य जिस भाषा में सोचता है उसी भाषा में उसकी कल्पना, तर्क और सृजनशीलता सर्वाधिक विकसित होती है। इसलिए भाषा का प्रश्न केवल भाषाई नहीं, बल्कि बौद्धिक और शैक्षिक प्रश्न भी है। भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं हैय वह विचार, संस्कृति, स्मृति और ज्ञान की संवाहिका है। आज अंग्रेजी वैश्विक संपर्क की प्रमुख भाषा है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि मातृभाषाएँ ज्ञान–विज्ञान की भाषा नहीं बन सकतीं। विश्व के विकसित देशों जापान, जर्मनी, फ्रांस, चीन, फिनलैंड और दक्षिण कोरियाने अपनी मातृभाषाओं में उच्च शिक्षा और अनुसंधान को विकसित करके यह सिद्ध किया है कि वैज्ञानिक उत्कृष्टता का संबंध भाषा की शक्ति से है, किसी एक वैश्विक भाषा से नहीं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा तथा भारतीय भाषाओं के प्रयोग को विशेष महत्त्व दिया है। इसका उद्देश्य केवल भाषाई संरक्षण नहीं, बल्कि विद्यार्थियों में गहन समझ, तार्किकता और सृजनात्मक चिंतन का विकास करना है। भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण शोध, अनुवाद, डिजिटल सामग्री और अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन को प्रोत्साहित करना समय की आवश्यकता है।

5. ज्ञान का शिल्पकार, परिवर्तन का निर्माता– शिक्षक :

भारतीय ज्ञान परंपरा में गुरु को 'आचार्य' कहा गया है अर्थात् जो स्वयं आचरण द्वारा ज्ञान का प्रकाश फैलाए। आधुनिक संदर्भ में भी शिक्षक की यही भूमिका प्रासंगिक है। शिक्षक का व्यक्तित्व ही विद्यार्थियों में शोध, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीज बोता है। यदि भाषा ज्ञान का आधार है, तो शिक्षक उस ज्ञान का सृजनात्मक शिल्पकार है। आज शिक्षक ज्ञान–निर्माता, नवप्रवर्तक, शोधकर्ता, मार्गदर्शक और सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में स्थापित हो रहा है। डिजिटल युग में सूचना प्रत्येक विद्यार्थी के हाथ में उपलब्ध है। ऐसी स्थिति में शिक्षक का महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि और अधिक बढ़ गया है। आज आवश्यकता सूचना देने वाले शिक्षक की नहीं, बल्कि विवेक, मूल्य, आलोचनात्मक चिंतन और अनुसंधान–दृष्टि विकसित करने वाले शिक्षक की है। वर्तमान वैश्विक शिक्षा व्यवस्था में वही विश्वविद्यालय उत्कृष्ट माने जाते हैं जहाँ शिक्षक कक्षा और प्रयोगशाला, अध्यापन और अनुसंधान, स्थानीय समाज और वैश्विक विमर्श इन सभी के बीच सशक्त संवाद स्थापित करता है। इसलिए शिक्षक का दायित्व अब केवल पाठ्यक्रम पूर्ण करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों को प्रश्न पूछना, तर्क करना, शोध करना और समाज की वास्तविक समस्याओं के समाधान खोजने के लिए प्रेरित करना है।

6. अकादमिक उत्कृष्टता की प्राणशक्ति– अनुसंधान :

अनुसंधान किसी भी शिक्षा व्यवस्था का प्राणतत्त्व रहा है बिना अनुसंधान के शिक्षा केवल स्थापित तथ्यों की पुनरावृत्ति बनकर रह ही जाती है। वास्तविक शिक्षा वहीं प्रारम्भ होती है जहाँ प्रश्न जन्म लेते हैं और उत्तर खोजने का साहस विकसित होता है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विश्वविद्यालयों की प्रतिष्ठा उनके भवनों से नहीं, बल्कि उनके शोध, नवाचार, सामाजिक प्रभाव और ज्ञान–सृजन से निर्धारित होती है। यही कारण है कि विकसित राष्ट्र अपने सकल घरेलू उत्पाद का बड़ा भाग अनुसंधान एवं विकास पर व्यय करते हैं।

अनुसंधान का उद्देश्य केवल शोध–पत्र प्रकाशित करना नहीं बल्कि समाज की जटिल समस्याओं का समाधान, नीतिगत सुधार, सांस्कृतिक संरक्षण, वैज्ञानिक नवाचार और मानवीय जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि हो। विशेष रूप से भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनुसंधान का दायित्व और भी व्यापक है। भारतीय भाषाओं में निहित लोकज्ञान, मौखिक परंपराएँ, जनजातीय साहित्य, सांस्कृतिक विरासत तथा क्षेत्रीय ज्ञान–संपदाका वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण आज वैश्विक आवश्यकता बन चुका है। यदि इन विषयों पर गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान नहीं होगा, तो मानव सभ्यता की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर धीरे–धीरे लुप्त हो सकती है। इसलिए आवश्यक है कि अनुसंधान केवल विश्वविद्यालय की औपचारिक आवश्यकता न रहे, बल्कि समाज, संस्कृति और मानवता के प्रति उत्तरदायित्व का माध्यम बने।

7. भाषा–शिक्षक–अनुसंधान समन्वय मॉडल (LTRS Model) : एक मौलिक वैचारिक प्रतिपादन :

इस शोध–पत्र का केंद्रीय प्रतिपादन यह है कि भाषा, शिक्षक और अनुसंधान स्वतंत्र इकाइयाँ नहीं, बल्कि ज्ञान–निर्माण की परस्पर आश्रित त्रयी हैं। यदि इन तीनों के बीच सृजनात्मक समन्वय स्थापित हो जाए, तो शिक्षा व्यवस्था केवल ज्ञान का प्रसार नहीं करती, बल्कि नवीन ज्ञान का निर्माण भी करती है। इसी आधार पर प्रस्तुत शोध–पत्र 'भाषा–शिक्षक–अनुसंधान समन्वय मॉडल' प्रस्तावित करता है।

इस मॉडल के अनुसार :

- भाषा विचार, संस्कृति और ज्ञान की आधारभूमि तैयार करती है।

- शिक्षक उस ज्ञान को संदर्भ, दिशा और मानवीय संवेदनशीलता प्रदान करता है।
- अनुसंधान उस ज्ञान को सत्यापन, विस्तार और नवाचार के माध्यम से समाजोपयोगी बनाता है।

इन तीनों के समन्वय से चार प्रमुख परिणाम प्राप्त होते हैं –

- वैश्विक ज्ञान–निर्माण
- सतत शिक्षा
- अकादमिक उत्कृष्टता
- सामाजिक नवाचार

यह मॉडल स्पष्ट करता है कि यदि इनमें से किसी एक घटक की उपेक्षा की जाती है, तो सम्पूर्ण शिक्षा–व्यवस्था असंतुलित हो जाती है। उदाहरणार्थ –

- भाषा की उपेक्षा से ज्ञान का लोकतंत्रीकरण बाधित होता है।
- शिक्षक की उपेक्षा से शिक्षा यांत्रिक हो जाती है।
- अनुसंधान की उपेक्षा से विश्वविद्यालय केवल परीक्षा–केंद्र बन जाते हैं।

अतः भविष्य की शिक्षा–नीति का उद्देश्य इन तीनों के समन्वित विकास पर आधारित होना चाहिए।

8. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), डिजिटल युग और वैश्विक ज्ञान-निर्माण : अवसर एवं सावधानियाँ :

इक्कीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने शिक्षा और अनुसंधान के स्वरूप में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। आज शोध–सामग्री का विश्लेषण, भाषा–अनुवाद, आँकड़ों का वर्गीकरण, शैक्षिक सामग्री का निर्माण तथा वैश्विक सहयोग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सरल हो गया है। AI ने ज्ञान तक पहुँच को लोकतांत्रिक बनाया है और अनुसंधान की गति को तीव्र किया है। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि AI ज्ञान का स्रोत नहीं, बल्कि ज्ञान का सहायक उपकरण है। उसमें मानवीय संवेदना, नैतिक निर्णय, सांस्कृतिक चेतना और मौलिक अनुभव का अभाव होता है। इसलिए यदि शिक्षा केवल AI–आधारित सूचना तक सीमित हो जाएगी, तो आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता और मानवीय विवेक कमजोर पड़ सकते हैं। भविष्य की शिक्षा का लक्ष्य कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षण और अनुसंधान में सहयोगी बने, परन्तु निर्णय, व्याख्या, मूल्यांकन और नैतिक उत्तरदायित्व शिक्षक और शोधकर्ता के हाथों में ही रहें। भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव 'विवेक' को ज्ञान का सर्वोच्च रूप मानती रही है। इस दृष्टि से AI का उपयोग तभी सार्थक होगा, जब वह मानवीय बुद्धि का विकल्प नहीं, बल्कि उसका सहयोगी बने।

9. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, सतत विकास लक्ष्य और वैश्विक शिक्षा का भविष्य :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था को वैश्विक मानकों के अनुरूप विकसित करने का एक दूरदर्शी दस्तावेज है। इसमें बहुभाषिक शिक्षा, शोध, नवाचार, भारतीय ज्ञान परंपरा, डिजिटल शिक्षा तथा शिक्षक–सशक्तीकरण को विशेष महत्त्व दिया गया है। दूसरी ओर, संयुक्त राष्ट्र का सतत विकास लक्ष्य सभी के लिए समावेशी, समान एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने की बात करता है। दोनों दस्तावेजों का तुलनात्मक अध्ययन स्पष्ट करता है कि शिक्षा का भविष्य केवल रोजगार–केंद्रित नहीं, बल्कि ज्ञान–केंद्रित, मूल्य–केंद्रित और शोध–केंद्रित होना चाहिए। यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति की अवधारणाओं को प्रभावी रूप से लागू किया जाए, तो भारत वैश्विक ज्ञान–निर्माण में अग्रणी भूमिक निभाने के लिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालय अनुसंधान को संस्थागत संस्कृति बनाएँ, भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता का अकादमिक लेखन विकसित करें तथा

अंतरराष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करें।

10. प्रमुख चुनौतियाँ :

वैश्विक ज्ञान–निर्माण तथा सतत शिक्षा के मार्ग में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इनका समाधान किए बिना अकादमिक उत्कृष्टता प्राप्त करना कठिन है।

1. **भाषाई असंतुलन :** उच्च शिक्षा एवं शोध में अंग्रेजी पर अत्यधिक निर्भरता के कारण भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण शोध एवं वैज्ञानिक लेखन अपेक्षाकृत सीमित है।
2. **शोध की गुणवत्ता :** अनेक संस्थानों में शोध प्रकाशनों की संख्या बढ़ी है, किन्तु उनकी गुणवत्ता, मौलिकता एवं सामाजिक उपयोगिता अभी भी चिंता का विषय है।
3. **शिक्षकों का निरंतर व्यावसायिक विकास :** बदलती तकनीक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा नई शिक्षण पद्धतियों के अनुरूप सभी शिक्षकों का नियमित प्रशिक्षण आवश्यक है।
4. **डिजिटल असमानता :** ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों में डिजिटल संसाधनों और इंटरनेट की सीमित उपलब्धता गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती है।
5. **अनुसंधान हेतु अपर्याप्त संसाधन :** वित्तीय सहायता, आधुनिक प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग के सीमित अवसर शोध की गति को प्रभावित करते हैं।
6. **अकादमिक नैतिकता :** साहित्यिक चोरी (Plagiarism), कृत्रिम बुद्धिमत्ता के अनुचित उपयोग तथा शोध–नैतिकता से जुड़े प्रश्न उच्च शिक्षा के लिए गंभीर चुनौती हैं।

इन चुनौतियों का समाधान केवल नीतियों से नहीं, बल्कि विश्वविद्यालयों की अकादमिक संस्कृति में परिवर्तन से संभव है।

11. नीतिगत सुझाव :

वैश्विक ज्ञान–निर्माण और अकादमिक उत्कृष्टता को सुदृढ़ करने हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं :

1. भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता के शोध एवं प्रकाशनों को प्रोत्साहन दिया जाए।
2. प्रत्येक उच्च शिक्षण संस्थान में अनुसंधान एवं नवाचार प्रकोष्ठ को सक्रिय बनाया जाए।
3. शिक्षक प्रशिक्षण को शोध, डिजिटल दक्षता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता से जोड़ा जाए।
4. स्थानीय ज्ञान, लोक–संस्कृति और भारतीय ज्ञान परंपरा पर अंतर्विषयी अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाए।
5. विश्वविद्यालयों के बीच अंतरराष्ट्रीय शोध–सहयोग एवं संयुक्त प्रकाशनों को प्रोत्साहित किया जाए।
6. शोध की गुणवत्ता का मूल्यांकन केवल संख्या से नहीं, बल्कि सामाजिक प्रभाव और मौलिक योगदान के आधार पर किया जाए।
7. शिक्षा में AI के उपयोग हेतु स्पष्ट नैतिक दिशानिर्देश विकसित किए जाएँ।
8. विद्यार्थियों में अनुसंधान, नवाचार और सामाजिक उत्तरदायित्व की संस्कृति विकसित की जाए।

12. निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध–पत्र का मूल प्रतिपादन यही है कि भाषा विचारों की आधारभूमि तैयार करती है, शिक्षक उन

विचारों को मानवीय दिशा प्रदान करता है और अनुसंधान उन्हें नवीन ज्ञान में रूपांतरित करता है। जब ये तीनों घटक परस्पर सहयोग करते हैं, तभी वैश्विक ज्ञान–निर्माण, सतत शिक्षा और अकादमिक उत्कृष्टता का मार्ग प्रशस्त होता है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल सूचना का प्रसार नहीं, बल्कि ज्ञान का सृजन, उसका मानवीय उपयोग और समाजोपयोगी रूपांतरण है। इस उद्देश्य की प्राप्ति भाषा, शिक्षक और अनुसंधान के समन्वित विकास के बिना संभव नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020, सतत विकास लक्ष्य तथा भारतीय ज्ञान परंपरा तीनों इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि भविष्य की शिक्षा बहुभाषिक, शोधोन्मुख, समावेशी और मानवीय मूल्यों पर आधारित होगी। कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे नवीन साधन इस यात्रा को गति दे सकते हैं, किन्तु शिक्षा का वास्तविक केंद्र सदैव मानव, भाषा और ज्ञान ही रहेंगे।

अतः यह कहा जा सकता है कि यदि भारत अपनी भाषाई विविधता, शिक्षक–शक्ति और अनुसंधान संस्कृति को एकीकृत कर सके, तो वह केवल ज्ञान का उपभोक्ता नहीं, बल्कि वैश्विक ज्ञान–निर्माण का नेतृत्वकर्ता बन सकता है।

संदर्भ सूची :

1. Shulman, L. S. (1987). Knowledge and Teaching. Harvard Educational Review, 57(1), 1–22.
2. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.
3. UNESCO. (2021). Reimagining Our Futures Together: A New Social Contract for Education.
4. OECD. (2023). Education at a Glance.
5. UGC. (2023). Guidelines for Higher Education Institutions.
6. National Research Foundation. (2023). Policy Framework.
7. Nussbaum, M. (2010). Not for Profit: Why Democracy Needs the Humanities.
8. NCERT. (2022). Learning Outcomes and School Education.
9. AICTE. (2022). Innovation and Research Guidelines.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 254-256

केरल की जनजातीय ज्ञान परंपरा

डॉ. संजीव कुमार. के
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
एम. इ. एस कल्लडी. कॉलेज (ओटोणमस) मन्नाटकाड, पालकाड, केरल।

किसी भी व्यक्ति के ज्ञान का स्रोत केवल पुस्तकों और विश्वविद्यालयों तक ही सीमित नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक संपर्कों तथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही परंपराओं और संस्कृतियों से भी प्राप्त होता है। भारत के आदिवासी समुदाय सदियों से समृद्ध पारंपरिक ज्ञान का संरक्षण करते आ रहे हैं और इसे पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाते रहे हैं। यह ज्ञान उनकी भाषाओं, रीति–रिवाजों, कृषि पद्धतियों, पारंपरिक औषधीय ज्ञान, लोककथाओं, लोकगीतों तथा उनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में सुरक्षित है। केरल राज्य में रहने वाले आदिवासी समुदाय अपनी विशिष्ट भाषा और संस्कृति के माध्यम से स्थानीय ज्ञान के वाहक हैं। आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में वन क्षेत्रों में रहने वाले इन समुदायों का ज्ञान–संपदा और अनुभवजन्य ज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है।

भाषा केवल संचार का माध्यम ही नहीं है, बल्कि किसी समुदाय की एकता, परंपरा और संस्कृति को संरक्षित करने का भी माध्यम है। भारत में अनेक आदिवासी समुदाय हैं, जो अपनी विविध सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखे हुए हैं। किसी भी समुदाय की भाषा को समृद्ध बनाने में उस समुदाय के लोगों की जीवन–शैली महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। केरल में आधिकारिक आँकड़ों के अनुसार 36 आदिवासी समुदाय हैं। इनमें से 5 समुदाय विशेष रूप से आदिम जनजाति (Primitive Valuerable Tribal Groups) के रूप में वर्गीकृत हैं। इनमें चोलनायक्कर, काट्टुनायक्कर, काडर, कुरुमर और अरनाडर शामिल हैं। इनके अलावा कुरिच्यर, कुरुमर, इरुलर, मुदुगर, पणियार आदि अन्य आदिवासी समुदाय भी यहाँ प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करके निवास करते हैं।

केरल की आदिवासी भाषाएँ अनेक विशिष्टताओं से समृद्ध हैं। अधिकांश आदिवासी भाषाएँ द्रविड़ भाषा परिवार से संबंधित हैं। इन भाषाओं पर मलयालम, तमिल और कन्नड़ का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट और स्वतंत्र भाषा होती है। पणिया भाषा (पणिया समुदाय), कोरगा भाषा (कोरगा समुदाय) तथा मुदुगा भाषा (मुदुगर समुदाय) इसके प्रमुख उदाहरण हैं। एक–दूसरे के निकट रहने वाले जनजातीय समुदायों की भाषाओं में कई समानताएँ देखने को मिलती हैं। उदाहरण के लिए, केरल के पालक्काड जिले के अट्टाप्पाडी क्षेत्र में रहने वाले इरुलर, मुदुगर और कुरुम्बर समुदायों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं में काफी समानता पाई जाती है। फिर भी उनके उच्चारण तथा सांस्कृतिक अर्थ–संरचना में भिन्नता दिखाई देती है। प्रत्येक जनजाति की अपनी समृद्ध शब्दावली भी विद्यमान है। इस शब्द–संपदा में ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनका अन्य भाषाओं में सटीक अनुवाद करना संभव नहीं है।

आदिवासी साहित्य आज भी मुख्यतः मौखिक परंपरा में ही सुरक्षित है। लोकगीत, वीरगाथाएँ, कहावतें और रीति–रिवाज इसके प्रमुख साहित्यिक रूप हैं। इन साहित्यिक रूपों में प्रकृति, कृषि, जलवायु परिवर्तन तथा सामाजिक जीवन का चित्रण मिलता है। जनजातीय रीति–रिवाजों के अंतर्गत प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्यों में गाए जाने वाले गीतों में उनके जीवन–जीने का तरीका, खेती–बाड़ी तथा सुख–दुःख का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है।

दैनिक जीवन में इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली प्रायः प्रत्येक जनजाति में भिन्न होती है।

- **पिता** – शब्द के लिए 'अप्पन' (उराली जनजाति), 'अप्पा' (मुडुगा जनजाति), 'अय्या' (पलियार जनजाति), 'अप्पा' (मलप्पुलयन जनजाति) शब्द का प्रयोग करता है।
- **दादा** – शब्द के लिए 'मुत्थप्पन' (उराली जनजाति), 'अच्चा' (मुडुगा जनजाति), 'पाट्टन' (पलियार जनजाति), 'ताता' (मलप्पुलयन जनजाति) शब्द का प्रयोग करता है।
- **नानी** – शब्द के लिए 'मुत्थियम्मा' (उराली जनजाति), 'अच्ची' (मुडुगाजनजाति), 'पाट्टी' (पलियार जनजाति), 'पाट्टी' (मलप्पुलयन जनजाति) शब्द का प्रयोग करता है।

मुडुगा जनजाति – "अक्र" –वह रो रही है।

"न्क्का" –वह हँस रही है।

"ब्न्त" –वह गिर गई।

विवाह के समय दूल्हे के परिवार द्वारा दुल्हन के पिता को दी जाने वाली धनराशि को वधू–मूल्य कहा जाता है। इसे मुडुगा जनजाति के लोग 'भरियप्पणकेट्ट्रात्' तथा कुरुम्बर जनजाति के लोग 'परिसप्पणम्' कहते हैं। भाषा के प्रयोग में इस प्रकार के अनेक शब्द–रूप देखने को मिलते हैं।

औपचारिक शिक्षा से वंचित रहने के बावजूद आदिवासी समुदाय अपनी पारंपरिक ज्ञान–परंपरा को अनुभवों के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित करता है। यह ज्ञान–संपदा प्रकृति के साथ लंबे समय तक सह–अस्तित्व में रहने से प्राप्त हुई है। पारंपरिक कृषि तथा बीज संरक्षण के क्षेत्र में इनकी विशेष दक्षता है। जैविक खेती और बीज संरक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए कुरिच्या समुदाय के किसान चेरुवयल रामन को पद्मभूषण से सम्मानित किया गया है। वन क्षेत्रों में निवास करने के कारण उन्हें औषधीय पौधों की पहचान तथा उनसे औषधियाँ तैयार करने का भी अच्छा ज्ञान है। चोला नायक्कर जनजाति में साँप के काटने पर उपयोग की जाने वाली औषधि को 'आवूमद्द' कहा जाता है। इसी प्रकार, काट्टुनायक्कर जनजाति में हाथियों को वश में करने के लिए प्रयुक्त औषधि को 'आनमद्द' कहा जाता है।

केरल की आदिवासी भाषा और साहित्य केवल किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण, कृषि तथा स्वास्थ्य के क्षेत्रों में ज्ञान की नई संभावनाओं के द्वार खोलता है। इसी संदर्भ में शिक्षकों की संभावनाएँ और उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती हैं। शिक्षक केवल ज्ञान प्रदान करने वाले नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने वाले भी हैं। लुप्त होती आदिवासी भाषाई संपदा, पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ, औषधीय ज्ञान तथा लोक साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल करके आने वाली पीढ़ी में सांस्कृतिक पहचान और स्वत्वबोध का विकास करने में शिक्षक समुदाय महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। केरल के आदिवासी लोकसाहित्य, इतिहास, चिकित्सा विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान आदि का बहुविषयक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, अनेक आदिवासी समुदायों द्वारा अपनाई जाने

वाली पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ तथा शहद संग्रह की विधियाँ अध्ययन के महत्वपूर्ण विषय हैं।

भारत सरकार की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) आदिवासी समुदायों की समग्र शिक्षा पर विशेष बल देती है। यह नीति मातृभाषा में शिक्षा, सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण तथा आर्थिक सहायता जैसे विषयों को प्राथमिकता प्रदान करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में जनजातीय भाषाओं और संस्कृतियों में निहित पारंपरिक ज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल करने का निर्देश दिया गया है। जनजातीय समुदायों की लोककलाएँ, पारंपरिक औषधीय ज्ञान, हस्तशिल्प कौशल तथा साहित्य आदि को भारतीय ज्ञान परंपरा का अभिन्न अंग बनाने का प्रयास किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) में परिकल्पित अनेक पहलें केरल में समग्र शिक्षा केरल (SSK) के माध्यम से आदिवासी क्षेत्रों में पहले से ही संचालित की जा रही हैं। इसका मुख्य उद्देश्य भाषा संबंधी कठिनाईयों के कारण बच्चों के विद्यालय छोड़ने की समस्या को रोकना है। इसके लिए 'गोत्र बंधु' (Mentor Teacher) की नियुक्ति की जाती है। इनके माध्यम से जनजातीय विद्यार्थियों को अपनी मातृभाषा में संवाद करने और अध्ययन को बेहतर ढंग से समझने का अवसर प्राप्त होता है।

विश्वविद्यालयों तथा अनुसंधान संस्थानों में आदिवासियों को केवल अध्ययन का विषय न मानकर ज्ञान के स्रोत के रूप में स्वीकार करते हुए उन पर अनुसंधान किया जाना चाहिए। इससे भारतीय ज्ञान परंपरा और अधिक समृद्ध तथा सुदृढ़ होगी।

सहायक ग्रंथ :-

1. केरल की जनजातीय विरासत (केरलत्तिन्टे गोत्रवर्ग पैतृकम्) – डॉ. आर. गोपीनाथन।
2. केरल की जनजातीय जातियाँ (केरलत्तिले गोत्रवर्ग विभागंगल्) – एस. रामनुण्णि।
3. केरल का अफ्रीका (केरलत्तिले आफ्रिका) – के. पानूर।
4. केरल के आदिवासी : कला और संस्कृति (केरलत्तिले आदिवासिकल् कलयुम् संस्क्कारवुम्) – मनोज मातिरप्पल्ली।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 257-263

प्रेमचंद युगीन कॉरपोरेट सस्कृति और पूंजीवाद का नवीनीकरण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सरिता सिंघल
शोधार्थी, लॉर्ड्स यूनिवर्सिटी।

सारांश (Abstract)

'साहित्य अपने समय का इतिहास होता है परंतु महान साहित्य अपने समय का भविष्य वक्ता भी होता है'। उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का साहित्य इसी श्रेणी में आता है। प्रेमचंद का कालखंड (1880–1936) भारतीय इतिहास में एक बड़े आर्थिक संकट का दौर था। यह वह काल था जब हिंदुस्तान की पारंपरिक संपत्ति और कृषि पर आधारित व्यवस्था खंडित हो थी और उसकी जगह ब्रिटिश औपनिवेशिक के पनाह में आधुनिक औद्योगिक पूंजीवाद इसी प्रारंभिक उभार मशीनीकरण की आहट और इंसानी रिश्तों के बाजारीकरण को बहुत गहराई से महसूस किया था। 21वीं सदी का कॉरपोरेट पूंजीवाद अचानक पैदा नहीं हुआ बल्कि इसकी जड़े औपनिवेशिक भारत के उसे संक्रमण काल में है जहां सामंती व्यवस्था की जगह आधुनिक औद्योगिक पूंजीवाद ले रहा था। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में न केवल बदलते ग्रामीण जीवन को दर्ज किया बल्कि शहरों में पनप रही शुरुआती कॉरपोरेट संस्कृति और उनके नए चेहरों (नवीनीकरण) को भी बहुत बारीकी से रेखांकित किया है। प्रेमचंद केवल एक मूक दर्शक नहीं थे, वे प्रगतिशील लेखक संघ के अध्यक्ष थे। वे मानते थे कि साहिका का मुख्य उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था को बदलना और पूंजीवाद, साम्राज्यवाद व सामंतवाद के खिलाफ आवाज उठाना है।

आज 21वीं सदी में जब हम कॉरपोरेट पूंजीवाद बहुराष्ट्रीय कंपनीयो और डिजिटल बाजार के चरम रूप को देखते हैं तो इसकी बुनियादी कड़ियां हमें प्रेमचंद की रचनाओं में साफ बिखरी मिलती हैं। प्रेमचंद युग का आर्थिक परिदृश्य और आज का कॉरपोरेट युग दो अलग–अलग कालखंड होने के बावजूद एक गहरे अंतर संबंध जुड़े है।

प्रेमचंद काल (1918–1936) समाज में शुरुआती कॉरपोरेट संस्कृति औद्योगिकीकरण और पूंजीवाद के उभार को केंद्र में रखकर लिखे जाने वाले शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य प्रेमचंद के साहित्य में औद्योगिकीकरण और आरंभिक पूंजीवाद के स्वरूप का विश्लेषण करना है जिससे हम यह समझ सकते हैं कि तत्कालीन भारतीय समाज सामंतवाद से कॉरपोरेट व पूंजीवादी व्यवस्था की ओर किस प्रकार परिवर्तित हो रहा था। प्रेमचंद ने कॉरपोरेट संस्कृति के प्रारंभिक पद चिह्नों को पहचान लिया था जिसका वर्णन उन्होंने अपने उपन्यासों (जैसे रगभूमि, गोदान) और कहानियों के माध्यम से तत्कालीन मिल मालिकों, निर्देशकों और प्रबंधको के व्यवहार में उभरती कॉरपोरेट संस्कृति और प्रबंध नीति को रेखांकित करना है।

पूंजीवाद के नवीनीकरण का अध्ययन के तहत यह समझना की वैश्विक और ब्रिटिश नीतियों के प्रभाव मे भारतीय पूंजीवाद कैसे खुद को पारंपरिक सांचे से निकाल कर एक संगठित, आधुनिक और कॉरपोरेट ढांचे में ढाल रहा था।

श्रम और पूंजी के अंतर विरोध का मूल्यांकन करने के लिए हमें पूंजीवादी व्यवस्था में यह देखना होगा की मजदूर, कामगारों और किसानों के शोषण के नए तरीकों (जैसे बंधुआ मजदूरी से वेतन भोगी मजदूरी की ओर बदलाव) का आलोचनात्मक विश्लेषण करना। इसके साथ ही सामंतवाद और पूंजीवाद के गठजोड़ को समझना, मानवीय मूल्यों पर कॉरपोरेट सस्कृति के प्रभाव को प्रेमचंद की दृष्टि से परखना। प्रेमचंद युगीन कॉरपोरेट प्रवृत्तियां की तुलना आज के 21वी सदी के उत्तर–पूंजीवादी और नव–उदारवादी कॉरपोरेट जगत से करते हुए प्रेमचंद के दृष्टिकोण की समकालीन प्रासंगिकता सिद्ध करना।

निष्कर्ष –

प्रस्तुत शोध आलेख के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मुंशी प्रेमचंद सिर्फ सामंतवाद और ग्रामीण चेतना के चितेरे नहीं थे, बल्कि वह अपने युग के बढ़ते औद्योगिकीकरण, उभरती कॉरपोरेट संस्कृति और पूंजीवाद के बदलते स्वरूप के सबसे प्रखर आलोचक और दृष्टा थे। उनका साहित्य तत्कालीन संक्रमणकलीन भारतीय समाज का एक जीवंत दस्तावेज है। प्रेमचंद ने रंगभूमि (जॉन सेवक के माध्यम से) और गोदान (श्री खन्ना के माध्यम से) जैसी कृतियों मे यह दिखाया कि पूंजीवाद अब केवल व्यक्तिगत साहूकारी या जमीदारी तक सीमित नहीं था। इसका नवीनीकरण हो चुका था। इस नए कॉर्पोरेट ढांचे ने पारंपरिक किसानों को भूमिहीन मजदूर में बदल दिया। निष्कर्षतः प्रेमचंद के युग में पूंजीवाद के सामंतवाद को पूरी तरह खत्म नहीं किया बल्कि अपने फायदे के लिए नवीनीकरण किया प्रेमचंद की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उन्होंने 21वीं सदी के शुरुआती दशकों में पूंजीवाद के जिस कॉरपोरट चरित्र, विज्ञापन संस्कृति और कॉरपोरेट राजनीतिक गठजोड़ का चित्रण किया था। वह आज 21वीं सदी के वैश्वीकरण और नव–उदारवादी दौर में और अधिक प्रचंड रूप में हमारे सामने मौजूद हैं।

मुख्य शब्द – प्रेमचंद, पूंजीवाद का नवीनीकरण, कॉरपोरेट–संस्कृति, औद्योगिक विकास, रंगभूमि, गोदान जॉन सेवक, मिस्टर खन्ना।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रेमचंद काल 1906 से 1936 के बीच लिखा गया। प्रेमचंद का साहित्य इन 21 वर्षों का सामाजिक, सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें उस समय के समाज–सुधार आंदोलनो, स्वाधीनता संग्राम और प्रगतिवादी आंदोलनो के सामाजिक प्रभावों का स्पष्ट चित्रण है। उनमें दहेज, अनमेल विवाह, पराधीनता, लगान, छुआछूत, जाति–भेद, विधवा–विवाह, आधुनिकता, स्त्री–पुरुष समानता आदि उस दौर की सभी प्रमुख समस्याओं का चित्रण मिलता है। आदर्श उन्मुख यथार्थवाद उनके साहित्यिक की मुख्य विशेषता है। हिंदी कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में 1927 से 1936 तक के कालखंड को प्रेमचंद युग या प्रेमचंदीय काल कहा जाता है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में शोषण के विविध आयाम आते हैं। यह पूंजीपति मजदूरो का दैहिक, आर्थिक, नैतिक, संपत्ति शोषण करने में पीछे नहीं रहते हैं। प्रेमचंद लिखते हैं– 'धन लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है। कुलीनता व शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है, वह देवता

स्वरूप है। उनका अंतःकरण कितना ही काला क्यों ना हो। साहित्य, संगीत व कला सभी धन की दहलीज पर माथा टेकने वालों में है। यह हवा इतनी जहरीली हो गई है की इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है। डॉक्टर और हाकिम है कि वह बिना लंबी फीस लिए बात नहीं करता। वकील और बैरिस्टर है कि वह मिनटों को अशर्फियों में तोलते है। गुण और योग्यता की सफलता उसके आर्थिक मूल्य के हिसाब से मानी जा रही हैं।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यास मंगलसूत्र (जो की अधूरा रह गया था) में पूंजीवादी व्यवस्था के दुर्गुणों का चित्रण किया है। साथ ही इस व्यवस्था का विरोध करने की भावनाएं भी व्यक्त की है। मंगलसूत्र के देव कुमार जो सामाजिक मर्यादा एवं नैतिक आदर्शों के समर्थक थे, कभी भी धन एकत्र करने के बारे में नहीं सोचते थे। उनका विचार था कि जिस राष्ट्र में तीन–चौथाई प्राणी भूखे मरते हैं वहां किसी एक को धन कमाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है, चाहे इसका उसमें सामर्थ्य हो।

समाज की न्याय व्यवस्था का पक्षपाती रूप दर्शाते हुए प्रेमचंद देवकमार से कहते हैं एक गरीब आदमी किसी खेत में बाले नोच कर खा लेता है, कानून उसे सजा देता है। दूसरा आदमी दिनदहाड़े दूसरों को लूटता है और उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है। कुछ आदमी तरह–तरह के हथियार बांध कर आते है और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमा कर अपना गुलाम बना लेते हैं। लगान और टैक्स और महसूल कितने ही नामो से उसे लूटना शुरू करते हैं, और आप लंबा–लंबा वेतन उड़ाते हैं। शिकार खेलते हैं, नाचते हैं, रंगरलिया मनाते हैं। क्या यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार? क्या यही न्याय है? लोगों को नई सभ्यता के प्रति जागृत करते हुए एवं विश्वास दिलाते हुए प्रेमचंद लिखते हैं..... पर सच्चाई है जो सारे अंधकार को चीरकर दुनिया में अपनी ज्योति का प्रकाश फैला रही है।

वास्तव में इतने सशक्त शब्दों में अंधकार को चीरकर मजदूरों के राज के आगमन की सूचना प्रेमचंद अपने उपन्यासों के द्वारा दे देते हैं।

पूंजीवादियों पर करारा वार करते हुए उन्होंने एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है कि, यह आशा करना की पूंजीपति किसानों की हीन दशा से लाभ उठाना छोड़ देंगे, कुत्ते से चमड़े की रखवाली की आशा करना है। इस खूंखार जानवर से अपनी रक्षा करने के लिए हमें स्वयं सशस्त्र रहना पड़ता है।

वस्तुतः प्रेमचंद ने अपने समकालीन साम्राज्यवाद और सामंतवाद (जिसमें जमीदार वर्ग मुख्य रूप से आता है) के गठजोड़ को बहुत अच्छी तरह से जान लिया था। इन्हीं सम्मिलित शक्तियों की शोषणकारी–दमनात्मक नीतियों के कारण देश की जनता गुलामी के पाश में जकड़ी हुई थीं। प्रेमचंद लगातार अपनी रचनाओं में न केवल विदेशी वरन् देसी शोषकों का भी समान रूप से पर्दाफाश करते हैं। जमींदार, कारिंदे, महाजन, सूदखोर पुलिस वकील अधिकारी वर्ग जो जनता से प्रत्यक्षतः जुड़े हैं, वे ही विदेशी शोषण के माध्यम या बिजोलिया है। अतः वह जनता के दुश्मन नंबर एक है। इसे संघर्ष किए बिना संघर्ष का अंत होना लगभग असंभव सा था। वे भारत में अंग्रेजी शासन के आगमन के फलस्वरुप उत्पन्न हुए नए वर्गों (सामंतवादी ताकते) से वाकिफ थे। इसलिए मजदूर किसानों से एक होकर इन शक्तियों के विरोध में संघर्ष करने का आह्वान करते हैं।

साम्राज्यवाद के पक्ष पोशाको के असली स्वरूप को चित्रित करते हुए प्रेमचंद सामंत वर्ग अर्थात जमीदारों की अच्छी खबर ली है। प्रेमचंद जी मजदूर गरीबों और किसानों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हमारी लड़ाई केवल अंगेजी सत्ताधारियो से नहीं बल्कि हिंदुस्तानी सत्ताधारियों से भी है। यहां प्रेमचंद जी का तात्पर्य केवल

साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्ति न होकर समस्त शोषणकारी शक्तियों से मुक्ति है।

21वी सदी के शुरुआती तीन दशक हिंदुस्तान मे केवल राजनीतिक हलचल के नहीं बल्कि गहरे आर्थिक बदलाव के वर्ष थे। ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के संरक्षण में भारत में आधुनिक उद्योगों, बैंकों, मिलों और प्रशासनिक बोर्डों का जाल बिछ रहा था। मार्क्सवादी शब्दावली में कहे तो यह आदिम पूंजी संचय से औद्योगिक पूंजीवाद की ओर संक्रमण का काल था।

प्रेमचंद समकालीन विश्व की आर्थिक हलचलों और मार्क्सवादी चेतना से भली–भांति परिचित थे। उन्होंने भाप लिया था कि भारत का पारंपरिक जमीदार और साहूकार अब पुराना पड़ चुका है। पूंजीवाद खुद को बचाने और बढ़ाने के लिए एक नया आधुनिक और पश्चिमी मुखौटा ओढ़ रहा था। यही पूंजीवाद का नवीनीकरण है, जिसके गर्भ से आधुनिक कॉरपोरेट संस्कृति का जन्म हुआ।

पूंजीवाद का नवीनीकरण –

पूंजीवाद का नवीनीकरण को सरल भाषा में हम पारंपरिक पूंजीवादी व्यवस्था में सुधार करने और उसे समकालीन वैश्विक चुनौतियों के अनुकूल बनाने की प्रक्रिया मान सकते हैं।

प्रेमचंद युगीन पूंजीवाद में 20वी सदी के शुरुआती दशकों (1916–1936) में भारतीय समाज विशेष कर ग्रामीण भारत में पैर पसार रही औपनिवेशिक पूंजीवादी व्यवस्था और उसके कारण उत्पन्न हुए गहरे शोषण को चित्रित करता है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य मे इस बात को बखूबी दिखाया है कि कैसे ब्रिटिश राज, सामंतवाद (जमींदारी प्रथा) और उभरते हुए पूंजीवाद ने मिलकर आम इंसान का जीना मुश्किल कर दिया था।

मुंशी प्रेमचंद ने उपन्यासों और कहानियों के आधार पर उसे दौर के पूंजीवाद को समझने के लिए हमें त्रिकोणीय शोषण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विनाश एवं ऋणग्रस्तता, मानवीय संवेदनाओं का बजारीकरण, औद्योगिक पूंजीवाद, मजदूर वर्ग और सामाजिक विद्रूपताएं एवं मध्यवर्ग का पतन आदि के विषय में जानना होगा।

त्रिकोणीय शोषण के अंतर्गत प्रेमचंद युगीन पूंजीवाद अकेला नहीं था, बल्कि वह तत्कालीन व्यवस्था के अन्य शोषण अंगों के साथ मिलकर कार्य कर रहा था। जिसमें पहले है विदेशी शासक जो नीतियां बनाकर देश की संपत्ति बहार भेज रही थी। दूसरी सामंतवादी ताकते जो किसानों से जबरदस्ती लगान वसूलते थे। तीसरी है पूंजीवादी वह सूदखोर वर्ग जो ऊंची ब्याज दरों पर कर्ज देकर निर्धन किसानों की जमीन और जिंदगी दोनों हड़प लेते थे।

ग्रामीण व्यवस्था का विनाश और ऋण ग्रस्तता के तहत प्रेमचंद ने चित्रित किया है कि कैसे पूंजीवादी नीतियों के कारण पारंपरिक ग्रामीण उद्योग नष्ट हो गए। कृषक पूरी तरह से खेती और उसे पर मिलने वाले कर्ज पर निर्भर हो गए। उनके कालजयी उपन्यास गोदान (1936) का मुख्य पात्र 'होरी' इसी पूंजीवादी और महाजनी व्यवस्था के चक्रव्यूह का शिकार बनता है। एक गाय खरीदने की इच्छा और व्यवस्था के कर्ज के बोझ के तले दबकर अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है।

मानवीय संवेदनाओं का बाजारीकरण में पूंजीवाद केवल आर्थिक व्यवस्था नहीं बदल रहा था, बल्कि मानवीय रिश्तों को भी निगल रहा था। प्रेमचंद ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'कफन' में दिखाया है कि अत्यधिक गरीबी और पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण ने घीसू और माधव जैसे इंसानों को इतना संवेदनहीन बना दिया कि वे बहू के कफन के पैसे से अपनी भूख मिटाने के लिए शराब और पूरियां खरीद लेते हैं। यहां पूंजीवाद इंसानी मर्यादा

को पूरी तरह खत्म कर देता है।

औद्योगिक पूंजीवाद और मजदूर वर्ग के सन्दर्भ में प्रेमचंद ने केवल गाँवों के महाजनी पूंजीवाद को ही नहीं, बल्कि शहरों में बढ़ रहे औद्योगिक पूंजीवाद को भी अपने लेखन का विषय बनाया। प्रेमचंद के उपन्यास रंगभूमि (1925) में जॉन सेवक नाम का एक उद्योगपति सूरदास की जमीन पर सिगरेट का कारखाना लगाना चाहता है। यह उपन्यास पूंजीपतियों और भूमिहीन श्रमिक जनता के बीच के वर्ग–संघर्ष को बहुत साफ तरीके से दिखाता है। भले ही प्रेमचंद के समय आज जैसी बड़ी टेक कंपनियाँ या कॉरपोरेट ऑफिस नहीं थे, लेकिन उन्होंने अपने उपन्यासों (रंगभूमि, गोदान, कर्मभूमि) में यह साफ दिखा दिया था कि पूंजीवादी व्यवस्था जब भी संकट में आती है, वह स्वयं को नया स्वरूप देकर (नवीनीकृत होकर) आम जनता को नए तरीके से ठगना शुरू कर देती है। आज की कॉरपोरेट संस्कृति इसी प्रेमचंद युगीन महाजनी व्यवस्था का एक चमकीला और डिजिटल संस्करण है। पूंजीवाद वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत पूंजीकार बदलते समय, औद्योगिक क्रांति और वैश्विक परिस्थितियों के अनुसार अपने स्वरूप, नीतियों और शोषण के तरीकों को अपडेट करता रहता है।

प्रेमचंद काल में पूंजीवाद का चेहरा जमींदार, महाजन (साहूकार) और मिल मालिक हुआ करते थे, जो सीधे तौर पर किसानों और मजदूरों का शारीरिक व आर्थिक शोषण करते हैं, जबकि नवीनीकृत पूंजीवाद ने कॉर्पोरेट संस्कृति का रूप ले लिया है। अब शोषण लाठी या सीधे टैक्स से नहीं, बल्कि लुभावने विज्ञापनों, क्रेडिट कार्ड, ईएमआई और और वर्कहॉलिक कल्चर के जरिये होता है। आधुनिक कर्मचारी स्वयं तो स्वतंत्र समझता है, लेकिन वह कॉर्पोरेट सिस्टम के जाल में फंसा होता है।

पूंजीवाद का नवीनीकरण कानूनी और प्रशासनिक आड़ में इस तरीके से हो रहा है कि आम जनता को महसूस ही नहीं होता जैसे की आंदोलन शोषण लाठी या बंदूक के बल पर नहीं, बल्कि अदालत के नियमों, कॉन्ट्रैक्ट (अनुबंधों) और कॉर्पोरेट कानूनों के माध्यम से होने लगा था।

आजकल पूंजीवाद ने परोपकारिता का मुखौटा इस तरह से धारण कर रखा है कि नया पूंजीपति, समाज सेवक, शिक्षाविद और दानी होने का ढोंग करता है ताकि जनता में उसका विरोध न हो। प्रेमचंद रंगभूमि उपन्यास में लिखते हैं – साधुता जब क्रूरता का स्वांग भरती है, तो वह और भी भयंकर हो जाती है। यह पंक्ति आधुनिक पूंजीवाद के उस चेहरे को बेनकाब करती है जो बाहर से सभ्य और भीतर से शोषक है। रंगभूमि और कॉर्पोरेट संस्कृति का उदय प्रेमचंद केवल एक कथाकार नहीं, बल्कि अपने समय के प्रखर सामाजिक–आर्थिक विश्लेषक थे। जब भारत में आधुनिक औद्योगिक पूंजीवाद अपने पैर पसार रहा था, तब प्रेमचंद ने इसके भविष्य के क्रूर रूप को पहचान लिया था। रंगभूमि एक ऐतिहासिक दस्तावेज है जो 1925 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास बनारस के पांडेपुर गाँव की पृष्ठभूमि पर आधारित है, जो आज के समय में कॉर्पोरेट, भूअधिग्रहण, विस्थापन और पूंजीवादी विस्तार की पहली प्रामाणिक साहित्यिक चेतावनी है।

मुंशी प्रेमचंद ने रंगभूमि और गोदान में पूंजीपतियों और मजदूरों की समस्या को प्रमुख रूप से उठाया है। रंगभूमि के प्रमुख पूंजीपति जॉन सेवक हैं तथा गोदान के मिस्टर चंद्र प्रकाश खन्ना हैं। एक तम्बाकू का कारखाना खोलते हैं तो दूसरे की शक्कर की मिलें हैं। प्रेमचंद ने अपने इन दो उपन्यासों में पूंजीपतियों की योजनाओं, उनके पीछे औद्योगिक नैतिकता के दुष्परिणामों की ओर चेताया गया है। जमीन पर से एकाधिकार युक्त देखकर अधिकांश जमींदारों ने पूंजीपतियों के रूप में जगह–जगह बड़े–बड़े कारखाने खोलने प्रारम्भ किये। जिससे उनकी पूंजी

सुरक्षित रह सके और समस्त आधुनिक साधनों के माध्यम से वे मजदूरों का शोषण करके अधिक से अधिक लाभ कमा सकें। रंगभूमि और गोदान में तम्बाकू और शक्कर के कारखानों को प्रतीक मानकर पूंजीवादी मनोवृत्ति को प्रेमचंद ने हमारे समक्ष रखा है और यह बताया है कि ऐसे पूंजीपति से जनता का कोई लाभ नहीं हो सकता।

प्रेमचंद उद्योगों और उद्योगीकरण के विरोधी नहीं थे पूंजीवादी औद्योगिक प्रक्रिया के कट्टर विरोधी थे। तम्बाकू और शक्कर के उत्पादक कारखानों के माध्यम से उन्होंने पूंजीवादी वर्ग का नग्न–चित्रण करके उनकी मनोवृत्तियों के प्रति नफरत को पैदा किया है। इसी पूंजीपतियों के शोषण के फलस्वरूप गोदान में गोबर किसान से मजदूर बन जाता है वह किसानी छोड़ कर खन्ना की मिल में नौकरी करता है, किन्तु वहाँ उसको मानसिक एवं आत्मिक सन्तोष नहीं मिलता बल्कि उसका नैतिक पतन अवश्य हो जाता है। गोदान (1936) में प्रेमचंद पूंजीवाद को और अधिक विकसित रूप में दिखाते हैं। यहाँ सामंती जमींदार (रायसाहब) खुद पूंजीवादी व्यवस्था के सामने लाचार नजर आते हैं। पूंजीपतियों द्वारा स्थापित इन औद्योगिक केंद्रों में मजदूरों के नैतिक पतन पर विवेचना करते हुए प्रेमचंद ने रंगभूमि में दिखलाया है। कि सूरदास की यह आशंका पूर्णरूपेण सत्य थी कि सिगरेट के कारखाने के लिए जमीन देने से मजदूर बस्ती में आकर बस जाएँगे और वह तरह–2 के अनाचार फैलाएँगे। पूंजीपति मजदूरों का शैक्षिक शोषण ही नहीं करते थे, बल्कि इसमें मजदूरों का नैतिक पतन भी होता था। पूंजीपति विकास की आड़ में विनाश को बुलावा देते हैं जैसे जॉन सेवक तर्क देता है कि कारखाने से देश का विकास होगा, सबको रोजगार मिलेगा और आधुनिकता आयेगी।

प्रेमचंद जी दिखाते हैं कि कैसे कारपोरेट संस्कृति विकास के नाम पर स्थानीय संस्कृति व यहाँ की आजीविका को निगल जाती है। आज के कॉरपोरेट जगत में लेबर यूनियन को कुचलने की जो रणनीतियाँ अपनाई जाती हैं। 'प्रेमचंद' ने उसका खाका 1936 में खींचा था। मजदूर आंदोलन और कॉरपोरेट रणनीति के तहत जब खन्ना की शुगर मिल में मजदूर वेतन वृद्धि के लिए हड़ताल करते हैं, तो खन्ना इन्हें डराने के लिए पुलिस का सहारा लेते हैं और मजदूरों में फुट डाल देते हैं। इस नवीनीकृत पूंजीवाद के अंतर्गत को दिखाते हैं कि कॉरपोरेट संस्कृति में मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन इस प्रकार किया है कि मनुष्य केवल एक इकॉनोमिक यूनिट या संसाधन बनकर रह जाता है।

कफन कहानी का घीसू और माधव या गोदान का होरी इसी निर्मम मशीनरी के पुर्जे हैं। पारस्परिक समाज में शोषक और शोषित के बीच एक मानवीय संवाद (चाहे ही वह क्रूर हो) संभव था, लेकिन कॉरपोरेट संस्कृति में शोषक अदृश्य हो जाता है। होरी को यह समझ ही नहीं आता की उसके विनाश के पीछे साहूकार दातादीन है, या बैंक का मैनेजर खन्ना, या फिर पूरी औपनिवेशिक व्यवस्था।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता हैं कि प्रेमचंद केवल एक कथाकार नहीं, बल्कि एक द्रष्टा, आर्थिक समीक्षक थे। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से उस कॉरपोरेट संस्कृति और नवीनीकृत पूंजीवाद की शिकायत शिनाख्त कर ली थी, जो आज 21वीं सदी के वैश्वीकरण के दौर में पूरी दुनिया को संचालित कर रही है। आज जब हम उद्योगों के लिए किसानों की जमीन लेने के भूअधिग्रहण, श्रम कानूनों में बदलाव और बड़े कॉरपोरेट घरानों के एकाधिकार को देखते हैं, तो प्रेमचंद के जॉन सेवक और मिस्टर खन्ना हमारे सामने साक्षात रूप में खड़े दिखाई देते हैं। इसलिए प्रेमचंद का साहित्य आज के कॉरपोरेट युग को समझने का सबसे प्रामाणिक टूलकिट है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. प्रेमचंद, रंगभूमि, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
2. प्रेमचंद, गोदान, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद।
3. शर्मा, राम विलास, प्रेमचंद और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. सिंह, नामवर, प्रेमचंद की नीली आँखें, राजकमल प्रकाशन।
5. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत (1885 – 1947), राजकमल प्रकाशन (आर्थिक परिप्रेक्ष्य के लिए)

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 264-273

Effect of Art integration in science subject to Critical thinking, Creative thinking and Academic achievement of middle-staged students

Shivani Chandel
Dr. Raj Kumar, Supervisor
CPU KOTA (RAJASTHAN)
Reg. No. : K25168

Abstract -

The present study aims to examine the effect of art integration in science subject to critical thinking, creative thinking and academic achievement of middle-staged students. Art is a creative expression of individuality. Art Integrated Learning (AIL) originated as an initiative of NCERT following the recommendations made in the National Curriculum Framework 2005. Our new policy NEP-2020 recommends art integration in science and other subjects. So, it has become essential to investigate that when Art is integrated with education, it really helps the child apply art –based enquiry, investigation and exploration, critical thinking and creativity for a deeper understanding of the concepts. An experimental method with sample of 30 students of middle-stage selected through random sampling from government school of middle-aged students was used taken from Faridabad district for study.

Data were collected by using tools of art integrated lesson- plan questionnaire. Two groups from sample were taken for as control group and experiment group. Independent variables are teaching methods. Dependent variables are creativity, critical thinking and academics of students. Controlled variables are grade, board of school and age of students. For data analysis mean, standard deviation, t-test, ANOVA was used to compare controlled and experiment group from sample. The findings revealed that art integration has positive impact on students' creativity, critical thinking and academic achievement of student. The study concludes that art integration help in holistic development of students. This study helps in positive implication of art integration in science subject and NEP-2020.

Keywords - Art – integration, science pedagogy strategy, Variables, learning outcome, student - centered curriculum, NEP-2020.

Introduction -

Art education is not only a subject, but it is a way of learning also. It encourages creativity and artistic development of the students. For this, the child's efforts and experiences regarding art education should be appreciated and encouraged. There should not be any burden of perfection on the students, let them free for their exploration and experiences. Arts integration is a pedagogy whereby students engage in learning subject matter through the arts. The arts are integral in opening avenues of expression, communication, reflection, risk taking, imagination, and determination. Child's abstract knowledge can be modified in concrete understanding by the use of art in science subject. Art provides a medium for expression of views and thoughts of the students. On the basis of these expressions, art is divided into two major parts- visuals art and performing art. Art integrated learning is experiential in nature and makes all children respond with their imagination and emotional strengths. The needs of children will vary with age, social context and ability. Science basically deals with the experiential learning in which all three aspects of development- cognitive, affective and psycho motor involve in learning process. If art is integrated into science learning, then students have to pass through certain processes like observation, imagination, exploration, thinking, experimentation, creation, recreation and expression etc. so holistic development of the child takes place. AIL as already stated, effectively enhances all three domains of learning of the student/learner. The importance and effects of Art Integrated Learning is growing in terms of study and research i.e. cognitive, socio-emotional, and psychomotor. Some people think that the integration of artistic elements into science education compromises the "purity" of science. So, there are some questions which are needed to be found or research that art integration effect academic improvement of students, their creativity and critical thinking.

This research is done in Haryana state having sample of Faridabad district for experimental study as here experiment method is used to see the effect of art integration in science subject in middle staged students.

Literature Review - A study done by Benegal (2010) And Objective of his study was to assess that arts lead to dramatic changes in the brain such as strengthening the 'attention network'. Major findings of this study were-Brain areas involved in music are also active in processing language, auditory perception, attention, memory and motor control suggesting that art education is a much-needed way of promoting balanced mental development in today's knowledge-based world.

Bresler (2011) studied arts integration with high school teachers who experienced profound changes in their self-images as teachers after collaborations with peers during an AI project. Liu and Lin (2014) discovered that students in AI classes showed more divergent thinking, autonomy, and curiosity about science. Cremin and colleagues (2015) found that preschool students who were

enrolled in AI programs asked more questions that drove scientific inquiries.

Jakobson and Wickman (2015) found that students in AI programs learned in both cognitive and aesthetic manners. Students in AI programs were able to effectively demonstrate their learning through non-written products

NCERT in its Art Integrated Learning Guidelines (2019) stated that Art Integrated Learning (AIL) is a framework of experiential learning that provides an equitable environment for all students to learn at their own pace and they can construct their own knowledge with the support of art integrated activities provided to them.

The National Policy of Education (2020) states that "Art Integration is a cross-curricular pedagogical approach that utilizes various aspects and forms of art and culture as the basis for learning of concepts across subjects.

Central Board of Secondary Education (2020) has recommended about the Partnership for 21st Century Skills (P21) Framework identified a set of Four Learning Skills known as Four Cs which includes Critical thinking, Creativity, Collaboration and Communication2)

Ramalingam (ASER Report -2020) Achievement Motivation - Achievement motivation is the need for excellence and significant accomplishment, despite what rewards may be offered after the achievement has been met.

CBSE curriculum mandates : Starting in the 2025–2026 academic session, India's Central Board of Secondary Education (CBSE) has made art-integrated projects mandatory for students in classes I through X. This aligns with the country's National Education Policy (NEP) 2020, which promotes art-integrated education for a more holistic and joyful learning experience. So, from literature review we can conclude that art integration makes learning student -centred and more joyful and experiential.

Methodology -

Research Method : Quasi Experimental Research Method will be used in the present study and the Two group Nonequivalent pretest post-test design will be used in the present study.

Population : Multi-Level Mixed Method Sampling will be used by the researcher. Mixed Method Sampling involves combining probability and non-probability sampling techniques in creative ways to answer research questions. Population of the Study will be 9th and 10th Grade Students of govt. School from Faridabad and Palwal Haryana state.

The Sample : In the proposed research approximately 500 Students of 9th class and 10th will be selected as sample of the present study.

Sampling Technique : The researcher will employ Stratified Sampling technique of probability sampling to decide the sample on proportionate bases. Sampling will be used for assigning the Sections

as Experimental and Control group. school and class selection by random sampling .class section by intact sampling. Assign section as control and experimental group in which experiment group- 15 and control group -15. So total number of samples is 30 students.

Hypothesis -

1. There will be no significant effect of academic achievement in art integration in science teaching middle aged students.
2 There will be no significant effect of art integration in science teaching on critical thinking of middle-aged students.
3. There will be no significant effect of art integration in science teaching on creative thinking of middle-aged students.

Tools-Lesson plan, Questionnaire :

- **Independent Variable :** Teaching method- Art Integrated Method and Conventional Method
- **Dependent Variables :** Critical thinking, Creative Thinking and Academic Achievement
- **Controlled Variables :** Age, Grade, Board
- **Descriptive Statistics :** Mean, Standard Deviation Inferential Statistics : Analysis of Covariance (ANOVA) will be used for comparison between control and experimental group differences by controlling covariate effect.

t-test will be used to test whether there is difference between the meaning of two groups is statistically significant or not. Differences in academic achievement were also ascertained by 't'-Test and two-Way ANOVA.

Procedure - For data collection-- Data was collected from Government school of Faridabad with samples of 30 students of 9th class. One group of 15 students was experimental group and other group of 15 students was control group of 9th class. Pretest was done on 30 students. Then Experimental group was taught with art integrated method and control group with conventional method of teaching. Experimental group done art integrated activity. After that post-test was done of both groups -experiment and control group. One group of 15 students was experimental group and other group of 15 students was control group of 9th class. Pretest was given for the students. Then Experimental group was taught with art integrated method and control group with conventional method of teaching. Experimental group done art integrated activity. After that post-test was done of both groups -experiment and control group.

Data Analysis - Total marks-30 of post test
Question of critical thinking-05 (marks-05)
Question of creativity -01 (marks-05)
Total questions-25-(marks-30)

Total number of students-30

Hypothesis 1 - There will be no significant effect of academic achievement in art integration in science teaching middle aged students.

Markes obtained by two groups (Total Markes -30)

Experimental Group	
Serial no of Student	Markes Obtained
1	27
2	27
3	26
4	26
5	25
6	24
7	22
8	22
9	21
10	21
11	20
12	20
13	19
14	19
15	17

Control Group	
Serial no of Student	Markes Obtained
1	22
2	20
3	19
4	17
5	15
6	15
7	13
8	14
9	14
10	12
11	12
12	10
13	10
14	9
15	9

The data is treated as two separate groups (Left Column vs. Right Column) of n-15 students each.

Metric	Group 1 (Left)	Group 2 (Right)
Count (N)	15	15
Sum	336	201
Mean {X}	22.4	13.4
Standard Deviation (SD)	3.22	4.08

Independent Samples t-Test -There is a statistically significant difference between the mean scores of Groups 1 (Mean = 22.4, SD = 3.22) and Group 2 (Mean = 13.4, SD = 4.08), $t(28)=6.71, p<0.0001$. critical t value at 0.05 level (two tailed-2.048). So, t value $6.71>2.048$. Therefore, the hypothesis stating that there is no significant difference between the two groups is rejected. Conclusion: There is a statistically highly significant difference between the means of the two group.

Anova Summary Table :

Source	SS	df	MS	F	p-value
Between Groups	7.5	1	7.5	14.45	0.0007
Within Groups	14.52	28	0.519	14.45	0.0007
Total	22.02	29			

Conclusion- Reject the null hypothesis. The difference between the two-group means is statistically highly significant.

Hypothesis -2- There will be no significant effect of art integration in science teaching on critical thinking of middle-aged students. There are 5 question-5 marks

Experimental Group	
Serial no	Markes Obtained
1	5
2	5
3	4
4	4
5	4
6	4
7	4
8	3
9	3
10	3
11	3
12	3
13	3
14	3
15	3

Control Group	
Serial no	Markes Obtained
1	4
2	3
3	3
4	3
5	3
6	2
7	2
8	2
9	2
10	2
11	2
12	2
13	2
14	1
15	1

Descriptive Statistics :

Metric	Group 1 (Left)	Group 2 (Right)
Count (N)	15	15
Sum	336	201
Mean {X}	3.6	2.27
Standard Deviation (SD)	0.74	0.8

Result - t = 4.73 df = 28 Since $p < 0.05$, reject the null hypothesis (H0). Two-Tailed Test: Two-Tailed Test: 2.048 t (28) = 4.73, $p < 0.001$. t value 4.73>2.048.

CONCLUSION - Reject Null Hypothesis. The difference between the two groups is statistically significant. So, there is significant difference between experiment group and controlled group.

Anova Summary Table :

Source	SS	df	MS	F	p-value
Between Groups	13.27	1	13.27	22.34	0.0001
Within Groups	16.23	28	0.594	22.34	0.0001
Total	29.9	29			

Verdict : Reject the null hypothesis. The variance between these two groups is significantly greater than the variance within the groups.

Hypothesis 3 There will be no significant effect of art integration in science teaching on creative thinking of middle-aged students. To assess creativity of student one question with 5 marks was given. Score obtained were below-

Experimental Group	
Serial no of Student	Markes Obtained
1	5
2	5
3	4
4	4
5	4
6	4
7	4
8	4
9	3
10	3
11	3
12	3
13	3
14	3
15	3

Control Group	
Serial no of Student	Markes Obtained
1	4
2	4
3	3
4	3
5	3
6	3
7	3
8	3
9	2
10	2
11	2
12	2
13	2
14	2
15	2

Statistics :

Metric	Group 1 (Left)	Group 2 (Right)
Count (N)	15	15
Sum	55	40
Mean {X}	3.67	2.67
Standard Deviation (SD)	0.72	0.72

Independent Samples T-Test =- t-Value : 3.78 – Degrees of Freedom (df) : 28 – Standard Error: 0.264 – p-Value : 0.0007 (Highly Significant) t value 3.78 > 2.048

Group 1 (Blue) is heavily weighted toward higher scores, with its peak frequency sitting at a score of 3 and extending up to 5.

Group 2 (Orange) is shifted systematically lower, with its peak frequency sitting at a score of 2 and topping out at 4.

This clear visual separation explains why your t-test yielded a highly significant result (t = 3.78, p = 0.0007\)), mathematically proving these two distributions are not matching

Hypothesis Conclusion -

Null Hypothesis (There is no significant difference between the two groups): FALSE (Rejected)

Conclusion : There is a statistically highly significant difference between the means of the two groups. It means that art integration method has significant effect on creativity of students.

ANOVA–

Values	Between Group (Treatment)	Within Groups (Errors)
SS	7.5	14.67
df	1	28
MS	7.5	0.524
F	14.32	14.32
p	0.0007	0.0007
Total: SS = 22.17, df = 29		

Conclusion - Reject Null Hypothesis. The variance between the two groups is significantly greater than the variance within the groups.

By these data analysis we can conclude that there is difference between both groups in creativity, critical thinking and academic achievement of middle-aged students.

So, art integration significantly affects creativity, critical thinking, and academic achievement of middle-aged students.

Conclusion -

So, this study concluded that art integration in science helps in holistic development of students as recommended by NEP-2020. Areas for art integration in science focus on fostering deeper understanding through experiential learning by connecting abstract concepts to tangible artistic expressions like models, portfolios, or performances. Key applications include enhancing student engagement, cultivating critical thinking and creativity, developing problem-solving skills. Students from experiment group score more marks in critical thinking questionnaire and total marks of test as compared to control group. Out of 30 marks one question of 5 marks was of creativity question in which student had to draw cell structure and its organelles with labelling. Experiment group which was taught by art integration method were good in creativity as they learn cell structure by making 3D project or diagram and role play of different organelles. But control group scored less in creativity question. This proves that art integration is needed to develop creativity among students. From 30 marks critical question were of 5 marks and 7students out of 15 students score more than 4 marks in experiment group but only 1 student have 4 marks in control group of 15 students from sample size of 30 students. This shows art integration method have positive impact on experiment group in their critical thinking. Out of 30 marks of test, all student from experiment group scored more than 20 marks and 2 students from controlled group scored more than 20 marks. So, we can conclude that art integration has positive impact on students that's why NEP-2020 recommended it in school curriculum. For implications of new policy, rules and recommendations it's needed to investigate, experiment and examine that policy. So, this study helps in implications of art integration in science subject in NEP-2020 by investigating it by use experiment method and also recommend that art integration should be used to teach science subject to boost students' interest, creativity, critical thinking and academic achievements.

References -

- Art Integrated Learning Guidelines. (2019, September). Retrieved from NCERT : https://ncert.nic.in/pdf/notice/AIL-Guidelines-English.pd Art Integration towards Experiential Learning. (2019).
- Beane, J. A. (2016). Curriculum integration: Designing the core of democratic education.

New York: Teachers College Press.

- Bequette, J. W., & Bequette, M. B. (2012). A place for art and design education in the STEM conversation. Art Education, 65(2), 40–47.
- Cohen, L., Manion, L., & Morrison, K. (2013). Research methods in education. New York: Routledge. Creswell, J. W. (2013). Research design: Qualitative, quantitative, and mixed methods approach (4). Los Angeles: Sage Publications
- Dori, Y. J., & Sasson, I. (2013). A three-attribute transfer skills framework–part I: Establishing the model and its relation to chemical education, Chemistry Education Research and Practice, 14(4), 363–375.
- Hetland, L., & Winner, E. (2001). The arts and academic achievement: What the evidence shows. Arts Education Policy Review, 102(5), 3–6.
- Kolb, A. Y., & Kolb, D. A. (2012). Experiential learning theory. In N. M. Seel (Ed.), Encyclopedia of the sciences of learning (pp. 1215–1219). New York: Springer US
- Learning Outcomes at Higher Secondary Stage. (2019). Retrieved August 29, 2021, from National Council of Educational Research and Training
- Moore, C., & Linder, S. M. (2012). Using dance to deepen student understanding of geometry. Journal of Dance Education, 12(3), 104–108.
- National Education Policy. (2020). Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
- Research and Practice, 17(2), 225–228. van der Veen, J. (2012). Draw your physics homework? Art as a path to understanding in physics teaching. American Educational Research Journal, 49(2), 356–407.
- Winner, E., Goldstein, T. R., & Vincent-Lancrin, S. (2013). Educational research and innovation art for art's sake? The impact of arts education. OECD Publishing

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 274-278

अष्टांग हृदय के द्वितीय अध्याय 'दिनचर्या' का आधुनिक जीवनशैली के संदर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन (भोडकी ग्राम के विशेष सन्दर्भ में)

Dr. Shivkaran Nimal
ASSISTANT PROFESSOR,
SPC GOVERNMENT COLLEGE, BHIM.

शोध सारांश :

आर्यावर्त में भारतीय ज्ञान परम्परा की लम्बी प्रणाली प्रचलित रही है। जिसमें अनेक विषयों पर विस्तृत ग्रन्थ लिखे गये है। वेदों की परम्परा में आयुर्वेद भारतीय ज्ञान परंपरा की एक प्राचीन स्वास्थ्य–विज्ञान प्रणाली है, जिसमें रोगों की चिकित्सा के साथ ही स्वास्थ्य संरक्षण को विशेष महत्व दिया गया है। आचार्य वाग्भट द्वारा रचित अष्टांग हृदयम् आयुर्वेद का प्रमुख ग्रंथ है। इसका दूसरा अध्याय दिनचर्याध्याय दैनिक जीवन के शारीरिक, मानसिक एवं आचरणगत अनुशासन से संबंधित है। इस अध्याय में ब्राह्ममुहूर्त में जागरण, शारीरिक शौच, दन्तधावन, अंजन, अभ्यंग, व्यायाम, उद्वर्तन, स्नान तथा सद्वृत्त संबंधी सिद्धांतों का वर्णन मिलता है।

आधुनिक युग में अनियमित जीवनचर्या, शारीरिक निष्क्रियता, मानसिक तनाव, डिजिटल उपकरणों का अत्यधिक उपयोग तथा निद्रा–जागरण की अव्यवस्थित आदतें स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। इस शोध पत्र में भोडकी ग्राम की 40 साल पूर्व की जीवनशैली के अवलोकन को भी आधार बनाया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य दिनचर्या के प्रमुख सिद्धांतों का अध्ययन करना, ग्राम में विकसित स्वस्थ जीवन शैली तथा स्वास्थ्य संरक्षण और आधुनिक निवारक स्वास्थ्य–विज्ञान के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्द : अष्टांग हृदयम्, वाग्भट, दिनचर्या, आयुर्वेद, स्वास्थ्य संरक्षण, आधुनिक जीवनशैली।

प्रस्तावना –

'स्वस्थे शरीरे स्वस्थं मनः'।

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निवास होता है। हालाँकि "स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है"। यह हमारे जीवन का मूलमंत्र कहा जाता है। प्राचीन काल से ही यह कहा जाता रहा है, इसी के साथ यह भी कि पहला सुख नियोगी काया, दूजा सुख घर में माया। परन्तु आज के युग में धन ने पहला स्थान ले लिया है, कारण समय के साथ बदलती हुयी मानसिकता ने, धन को ही सब कुछ मान लिया है। मानव जीवन में स्वास्थ्य का संबंध केवल रोग की अनुपस्थिति से नहीं है, बल्कि व्यक्ति की दैनिक आदतों, शारीरिक सक्रियता, स्वच्छता, विश्राम तथा मानसिक संतुलन से भी है। भारत में आयुर्वेद में स्वस्थ जीवन के लिए अनेक सिद्धांत विकसित किए। आचार्य वाग्भट कृत अष्टांग हृदयम् आयुर्वेद का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके सूत्रस्थान का द्वितीय अध्याय दिनचर्याध्याय व्यक्ति के दैनिक जीवन के संगठन और स्वास्थ्य–संरक्षण से संबंधित है। इस अध्याय में

दैनिक जीवन के प्रारंभ से लेकर शरीर की देखभाल, व्यायाम, स्नान तथा सदाचार तक अनेक विषयों का क्रमबद्ध वर्णन मिलता है। आधुनिक जीवन शैली में खान–पान पर अधिक ध्यान न दिए जाने के कारण मनुष्यों को अनेक बीमारियों का सामना करना पड़ता है। आज शहरों में नही अपितु ग्रामीण क्षेत्रों में फास्टफूड का चलन अधिक हो गया है. आज के समय में अपने आप को स्वस्थ रखना एक बड़ी चुनौती है, जिसका समाधान हमे आयुर्वेद सहित अनेक ग्रंथो में मिल सकता है।

अष्टांग हृदय और दिनचर्या अध्याय :

अष्टांग हृदयम् आयुर्वेद साहित्य का प्रमुख ग्रंथ है। इसमें स्वास्थ्य संरक्षण, रोगोत्पत्ति, निदान और चिकित्सा से संबंधित विषयों का व्यवस्थित विवेचन किया गया है। सूत्रस्थान का द्वितीय अध्याय दिनचर्या शीर्षक से जाना जाता है। आरंभिक श्लोकों में जागरण, शौच, दन्तधावन और नेत्र–देखभाल जैसे विषय हैं। इसके बाद अभ्यंग, व्यायाम और स्नान का वर्णन मिलता है तथा आगे सद्वृत्त और सामाजिक–नैतिक आचरण संबंधी निर्देश आते हैं। इस प्रकार दिनचर्या को केवल शरीर की सफाई तक सीमित नहीं किया जा सकता। यह व्यक्ति के शारीरिक व्यवहार, इन्द्रिय–देखभाल, गतिविधि और आचरण के समन्वय की व्यापक अवधारणा है।

शोध समस्या –

वर्तमान जीवनशैली में अनियमित निद्रा, शारीरिक निष्क्रियता, तनाव तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा जैसी समस्याएँ देखी जाती हैं। दूसरी ओर अष्टांग हृदय दैनिक जीवन के लिए अनुशासन और संतुलन पर आधारित एक व्यवस्थित पद्धति प्रस्तुत करता है।

शोधपत्र के अध्ययन के उद्देश्य –

1. अष्टांग हृदय के द्वितीय अध्याय में वर्णित दिनचर्या की अवधारणा का अध्ययन करना।
2. प्रातःकाल जागरण के सिद्धांत का आधुनिक जीवनशैली के संदर्भ में अध्ययन करना।

शोध पद्धति –

प्रस्तुत शोध–पत्र वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक शोध–पद्धति पर आधारित है। जिसके प्राथमिक स्रोत अष्टांग हृदयम्, सूत्रस्थान, द्वितीय अध्याय – दिनचर्याध्याय और उपलब्ध संस्कृत पाठ एवं टीका परंपराएँ है। इस शोध पत्र में 40 साल पूर्व भोडकी ग्राम की जीवनशैली के अवलोकन को भी आधार बनाया गया है.

ब्रह्ममुहूर्त में जागना –

अष्टांग हृदय के दिनचर्याध्याय का आरंभ निम्न श्लोक से होता है :

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
शरीरचिन्तां निवर्त्य कृतशौचविधिस्ततः।१।

जिसका शाब्दिक अभिप्राय है कि स्वस्थ व्यक्ति को आयु एवं स्वास्थ्य की रक्षा के लिए ब्राह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। इसके पश्चात शरीर की आवश्यकताओं और शौच आदि की प्रक्रिया संपन्न करनी चाहिए। इस श्लोक में दिन की शुरुआत स्वास्थ्य–सजगता से करने का विचार निहित है। पर्याप्त एवं नियमित निद्रा के बाद एक स्थिर निद्रा–जागरण क्रम अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण है। इसी नियम की यदि 40 साल के पूर्व में ग्राम भोडकी के सदर्भ में देखा जाये तो हम कह सकते है कि ग्राम के लोग 4 बजे से ही नित्यकर्म हेतु जाग जाते थे, एक से दो किलोमीटर पैदल चलकर शोच हेतु जाते थे, जिससे उनके शरीर में दिनभर उर्जा बनी रहती थी, बीमार

कम होते थे. वर्तमान में इसकी महत्ती आवश्यकता है।

दन्तधावन का सिद्धांत :

अष्टांग हृदय में दाँतों की सफाई के लिए विशेष प्रकार की वनस्पतियों की टहनियों का उल्लेख मिलता है :–

अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिजम्।

प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् ।२।

इस श्लोक में अर्क, न्यग्रोध, खदिर, करंज तथा ककुभ आदि उपयुक्त वृक्षों की कोमल टहनियों से दन्तधावन का उल्लेख है। यहाँ महत्वपूर्ण सिद्धांत मुख एवं दंत–स्वच्छता है। वर्तमान में अनेक कम्पनियों के दन्त मंजन का इस्तेमाल किया जाता है। ग्रामीण जीवन में भी इसका प्रचलन पूर्णतया हो गया है। परन्तु 40 साल पूर्व लोग बबुल, नीम का ही दातुन प्रयोग में लाते थे, जिनसे उनका मुख और दांत दोनों स्वस्थ थे, आज अनेक रोग उत्पन्न हो रहे है।

अंजन और नेत्र–स्वास्थ्य :

दिनचर्या अध्याय में नेत्रों की देखभाल के लिए अंजन का उल्लेख मिलता है। एक श्लोक में कहा गया है :–

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत्।

चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् श्लेष्मतो भयम्। ५।

शास्त्रीय दृष्टि से इसका संबंध नेत्रों की सुरक्षा और देखभाल से है। आज के युग में बिजली का उपयोग सर्वाधिक हो रहा है, ऐसा लग रहा है कि बिना बिजली के जीवन शून्य हो गया है, आज तकनीकी उपकरणों के बिना जीवन की कल्पना करना बेकार लगता है। परन्तु आँखों के ऊपर जो प्रभाव हुआ है, उससे अनेक रोग उत्पन्न हो गये है। यदि ग्राम के सन्दर्भ में देखा जाये तो कह सकते है, बहुत ही कम घरो में बिजली की व्यवस्था थी। जिसके कारण लोग शाम को जल्दी ही अपने कार्यो से निवृत होकर, जल्दी ही सो जाते थे, जिससे अनेक रोगों से बचे रहते थे। आज देर रात तक जागना और मोबाइल टीवी देखने के कारण अनिंद्रा, मानसिक रोग बढ़ गये है। ग्राम के अंतर्गत देखा जाये तो कह सकते है कि लोग पहले शुद्ध घी से दीपक की लौ से अंजन तैयार कर इसे प्रयोग में लाते थे।

व्यायाम का सिद्धांत :

'लाघवं कर्मसामर्थ्य ----- व्यायामा दुप्जयापते'।

दिनचर्या अध्याय में व्यायाम को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अध्याय के श्लोक 10 से आगे व्यायाम के लाभ, मात्रा, सीमाएँ और अति–व्यायाम से होने वाली हानियों पर चर्चा की गई है। कहा गया है कि व्यायाम करने से कार्य की शक्ति बढती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है स्थुलता का क्षय होता है, शरीर हष्ट पुष्ट होता है। **'शरीरायासजनकं कर्म व्यायाम उच्यते'** मतलब जिससे शारीर में थकावट पैदा हो उसे ही व्यायाम कहा जाता है। (अष्टांग संग्रह) खेलना भी एक प्रकार से श्रेष्ठ व्यायाम माना गया है। शास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार व्यायाम को व्यक्ति की क्षमता के अनुसार नियंत्रित रखने की बात की गई है। यह विचार वर्तमान में भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि व्यायाम की मात्रा और तीव्रता व्यक्ति की आयु, क्षमता और स्वास्थ्य–स्थिति के अनुरूप होनी चाहिए। ग्राम के सन्दर्भ में कुश्ती, हल्दडा, चक्कर ताड़ी, खो–खो, बालीवॉल, आदि खेलों की मूल भावना भी यही थी। अष्टांग

ह्रदय का यही संदेश है कि – शरीर की सक्रियता जरूरी है, परन्तु अतिरेक से बचना चाहिए।

मध्यम मार्ग और संयम :

दिनचर्या अध्याय के आगे के भाग में संयम और संतुलन की अवधारणा महत्वपूर्ण है। एक श्लोक में कहा गया है :–

'अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम्।
नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः' ।३०।

इसका सामान्य आशय जीवन के व्यवहारों में मध्यम मार्ग अपनाने तथा व्यक्तिगत स्वच्छता और सुसज्जित जीवन पर ध्यान देने से है। अत्यधिक भोजन, अत्यधिक निष्क्रियता, अत्यधिक कार्य या अत्यधिक व्यायाम – सभी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए संतुलन और संयम को स्वस्थ जीवन की आधारभूत अवधारणा माना जा सकता है।

वर्तमान में स्वस्थ दिनचर्या की महत्ता –

इस ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय से हम निम्न प्रकार से सीख ले सकते है :–

- हर व्यक्ति को समय पर जागने और सोने की आदत बना लेनी चाहिए, पर्याप्त नींद लेने से अनेक बीमारियों से बचा जा सकता है।
- हर दिन की शुरुआत हल्के फुल्के व्यायाम से या फिर कम से कम से एक दो किलोमीटर पैदल चलने से की जाये, ताकि शरीर स्वस्थ रह सके।
- नियमित रूप से नीम या बबूल से दांतो और मुख की सफाई की जानी चाहिये।
- मोबाईल के बिना भी जीवन चल ही रहा था, परन्तु आज उसकी सख्त आयश्यकता मालूम पड़ती है, जिसके कारण अनेक बीमारियों का जन्म हो रहा है। इसलिय हमे मोबाइल उपवास या रात को देर रात तक इसे चलाने से बचना चाहिए।
- अधिक से अधिक अपने आस पास की उत्पादित वस्तुओ का प्रयोग करना चाहिए।
- फास्टफूड का प्रयोग कम करना चाहिए।
- अपने शरीर के अनुसार कुछ न कुछ पारम्परिक खेल खेलने चाहिये, जैसे कबड्डी, खो–खो, गिली डंडा, हलधड़ा आदि।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता :

किसी सिद्धांत को केवल उसकी प्राचीनता के आधार पर पूर्णतः वैज्ञानिक घोषित करना उचित नहीं है। उसी प्रकार किसी प्राचीन ज्ञान को बिना अध्ययन के अस्वीकार करना भी शोध की दृष्टि से उचित नहीं है। परन्तु यदि हम अनुभव के आधार पर कुछ सिद्धांतो को अपना सकते है, जैसे ग्राम के 40 साल पूर्व के जीवन में जिन सिद्धांतो को हमने अपना रखा था, उन्हें आज भी अपना सकते है। जिस प्रकार से ग्राम की जीवन शैली में नियमितता के तौर पर कहा जा सकता है कि जल्दी जागना और जल्दी सोना की आदत से शरीर स्वस्थ रहता था, तो फिर इसे अपनाने में कोई हर्ज नही है। नीम और बाबुल के दान्तुन से मुह और दांतों की बीमारिया कम होती थी, तो इसे अपनाया जा सकता है।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष –

प्रस्तुत अध्ययन से निम्न प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त होते हैं :–

1. अष्टांग हृदय का दिनचर्याध्याय दैनिक स्वास्थ्य व्यवहार का एक व्यवस्थित शास्त्रीय ढाँचा प्रस्तुत करता है और अध्याय में दैनिक जीवन की शुरुआत से लेकर व्यक्तिगत स्वच्छता, शरीर की देखभाल, व्यायाम, स्नान और सदाचार तक व्यापक विषयों का वर्णन है।
2. नियमित जीवन–पद्धति आधुनिक जीवनशैली की अव्यवस्था को कम करने में उपयोगी सिद्धांत हो सकती है और दन्तधावन का सिद्धांत आधुनिक मौखिक स्वच्छता की आवश्यकता के साथ वैचारिक समानता रखता है।
3. व्यायाम को व्यक्ति की क्षमता के अनुसार करने का सिद्धांत संतुलित शारीरिक सक्रियता के आधुनिक विचार से तुलनात्मक रूप से संबंधित है।

निष्कर्ष –

अष्टांग हृदय के सूत्रस्थान का द्वितीय अध्याय, दिनचर्याध्याय, भारतीय आयुर्वेदिक परंपरा में स्वास्थ्य संरक्षण की एक महत्वपूर्ण अवधारणा प्रस्तुत करता है। इसमें दैनिक जीवन को नियमित, स्वच्छ, सक्रिय और संतुलित बनाने पर बल दिया गया है। अध्याय में प्रातः जागरण, दन्तधावन, नेत्र–देखभाल, अभ्यंग, व्यायाम और स्नान के साथ–साथ आगे सदाचार एवं संतुलित व्यवहार के सिद्धांत भी सम्मिलित हैं। वर्तमान जीवनशैली की चुनौतियों 'विशेष रूप से शारीरिक निष्क्रियता और अनियमित दैनिक व्यवहार' के संदर्भ में दिनचर्या का मूल संदेश महत्वपूर्ण दिखाई देता है। विशेषकर नियमितता, व्यक्तिगत स्वच्छता, संतुलित शारीरिक सक्रियता और आत्म–देखभाल जैसे सिद्धांत आधुनिक निवारक स्वास्थ्य की दिशा में उपयोगी वैचारिक आधार प्रदान करते हैं। आयुर्वेदिक सिद्धांतों और आधुनिक विज्ञान के बीच संबंध स्थापित करते समय वैज्ञानिक सावधानी आवश्यक है। शास्त्रीय ज्ञान का अध्ययन मूल ग्रंथों, टीकाओं, आधुनिक वैज्ञानिक प्रमाणों और व्यक्ति–विशिष्ट परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए। ग्राम भोडकी के 40 साल पूर्व के जीवन के अवलोकन के आधार पर भी कहा जा सकता है, कि प्रातःकाल की दिनचर्या आयुर्वेद के सिद्धांतों के अनुसार थी, जिसके लोग लम्बे समय तक स्वस्थ जीवन जीते थे। उसे फिर से अपनाने की आवश्यकता है। अष्टांग हृदय की दिनचर्या केवल प्राचीन दैनिक नियमों का संकलन नहीं है, बल्कि स्वास्थ्य–सजगता, संयम, नियमितता और संतुलित जीवन की व्यापक अवधारणा प्रस्तुत करती है।

संदर्भ सूची –

1. वाग्भट। अष्टांग हृदयम्। सूत्रस्थान, द्वितीय अध्याय–दिनचर्याध्याय।
2. गुप्त, अत्रिदेव। अष्टांग हृदयम् : विद्योतिनी हिंदी व्याख्या। चौखम्बा प्रकाशन।
3. त्रिपाठी, ब्रह्मानंद। अष्टांग हृदयम्। चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
4. World Health Organization. WHO Guidelines on Physical Activity and Sedentary Behaviour. Geneva : WHO, 2020.
5. Ashtanga Hridayam, Sutrasthana, Chapter 2 : Dinacarya Adhyaya—संस्कृत पाठ एवं अध्याय–संरचना के लिए उपलब्ध डिजिटल पाठ–स्रोत।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 279-284

भारत में स्थानीय स्वशासन की संवैधानिक संरचना एवं मध्य प्रदेश में उसका क्रियान्वयन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

शुभम ब्रह्मवंशी, पीएच.डी. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान
सामाजिक विज्ञान अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश।
डॉ. के. आर. कुमेकर, मार्गदर्शक
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय डिग्री कॉलेज, सनावद, मध्य प्रदेश।

सारांश :

स्थानीय स्वशासन को लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की उस संस्थागत व्यवस्था के रूप में समझा जा सकता है जिसमें शासन से जुड़े कुछ निर्णय और सार्वजनिक सेवाओं का प्रबंधन नागरिकों के निकट किया जाता है। भारत में इसे स्पष्ट संवैधानिक आधार 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के बाद मिला। 73वें संशोधन के फलस्वरूप पंचायतों के लिए संविधान का भाग–IX तथा 74वें संशोधन के फलस्वरूप नगरपालिकाओं के लिए भाग–IX-A जोड़ा गया। इन संशोधनों ने स्थानीय निकायों के निर्वाचन, प्रतिनिधित्व, राज्य निर्वाचन आयोग, राज्य वित्त आयोग तथा स्थानीय नियोजन के लिए संवैधानिक ढाँचा उपलब्ध कराया। इस अध्ययन में भारत की स्थानीय स्वशासन व्यवस्था की संवैधानिक रूपरेखा को आधार बनाकर मध्य प्रदेश में उसके व्यावहारिक स्वरूप का परीक्षण किया गया है। अध्ययन वर्णनात्मक–विश्लेषणात्मक है और संविधान, सरकारी दस्तावेजों, राज्य के संबंधित कानून तथा प्रकाशित शोध–साहित्य जैसे द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। मध्य प्रदेश में ग्रामीण शासन ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत और जिला पंचायत के त्रिस्तरीय ढाँचे में संचालित होता है, जिसका प्रमुख वैधानिक आधार मध्य प्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993 है। शहरी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के नगरीय निकाय स्थानीय सेवाओं और विकास संबंधी दायित्व निभाते हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संवैधानिक व्यवस्था ने स्थानीय प्रतिनिधित्व और भागीदारी के लिए मजबूत आधार बनाया है, परंतु वित्तीय निर्भरता, कार्यों एवं कर्मचारियों का अपूर्ण हस्तांतरण, प्रशासनिक क्षमता तथा स्थानीय सहभागिता जैसी समस्याएँ अभी बनी हुई हैं। मध्य प्रदेश में महिला नेतृत्व, डिजिटल प्रणालियों, सामाजिक अंकेक्षण, प्रशिक्षण और स्थानीय आय–स्रोतों को सुदृढ़ करना इस व्यवस्था की कार्यक्षमता बढ़ाने में उपयोगी हो सकता है।

मुख्य शब्द : स्थानीय स्वशासन, पंचायती राज, नगरीय स्थानीय निकाय, संवैधानिक विकेन्द्रीकरण, ग्राम सभा, मध्य प्रदेश, स्थानीय लोकतंत्र।

1. प्रस्तावना :

लोकतंत्र की प्रभावशीलता का आकलन केवल संसद या राज्य विधानसभाओं के चुनावों से नहीं किया

जा सकता, यह भी देखना आवश्यक है कि नागरिक अपने आसपास के निर्णयों को प्रभावित करने के कितने अवसर पाते हैं। पेयजल, स्वच्छता, सड़क, स्थानीय बाजार, प्राथमिक सेवाएँ, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सामुदायिक संसाधनों से जुड़े निर्णय नागरिकों के दैनिक जीवन पर सीधा असर डालते हैं। इसलिए स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं से परिचित संस्थाओं को योजना तथा सेवा–प्रदाय में भूमिका देना लोकतांत्रिक व्यवस्था को जमीनी स्तर तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम है।

स्वतंत्रता के बाद भारत में स्थानीय शासन को मजबूत करने के लिए अनेक समितियों, योजनाओं और प्रशासनिक प्रयासों का सहारा लिया गया। संविधान का अनुच्छेद 40 राज्य को ग्राम पंचायतों के संगठन और उन्हें स्वशासन के लिए आवश्यक शक्तियाँ देने की दिशा प्रदान करता है। इसके बावजूद लंबे समय तक पंचायतों की प्रभावशीलता राज्य–स्तरीय कानूनों और प्रशासनिक प्राथमिकताओं पर निर्भर रही। 73वें और 74वें संशोधनों ने इस स्थिति में मूलभूत परिवर्तन करते हुए स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक संरक्षण दिया। इस प्रकार स्थानीय शासन को भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक संस्थागत स्तर प्राप्त हुआ, जिसके संचालन में निर्वाचन, प्रतिनिधित्व और वित्तीय व्यवस्थाओं की संवैधानिक भूमिका निर्धारित हुई।

मध्य प्रदेश इस अध्ययन के लिए इसलिए उपयोगी उदाहरण है क्योंकि यहाँ पंचायती राज व्यवस्था के साथ ग्राम स्वराज की धारणा को भी राज्य के विधिक ढाँचे में अभिव्यक्ति मिली है। दूसरी ओर, शहरीकरण के विस्तार ने नगरीय निकायों के सामने जल, स्वच्छता, अपशिष्ट प्रबंधन, यातायात और नियोजन जैसी जिम्मेदारियों को अधिक जटिल बनाया है। इसलिए केवल संवैधानिक प्रावधानों का वर्णन पर्याप्त नहीं है, यह देखना भी आवश्यक है कि ये प्रावधान राज्य में संस्थागत क्षमता, संसाधनों और नागरिक भागीदारी के स्तर पर किस रूप में परिणत होते हैं।

2. अध्ययन के उद्देश्य :

1. भारत में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा एवं संवैधानिक विकास का अध्ययन करना।
2. 73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के प्रमुख प्रावधानों का विश्लेषण करना।
3. मध्य प्रदेश में ग्रामीण एवं नगरीय स्थानीय स्वशासन की संस्थागत संरचना का अध्ययन करना।
4. स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व, जनभागीदारी और डिजिटल शासन की भूमिका का विश्लेषण करना।
5. स्थानीय स्वशासन के समक्ष वित्तीय, प्रशासनिक एवं संस्थागत चुनौतियों की पहचान करना।
6. मध्य प्रदेश में स्थानीय स्वशासन को अधिक प्रभावी बनाने हेतु सुधारात्मक सुझाव प्रस्तुत करना।

3. शोध पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध–पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक सर्वेक्षण के स्थान पर द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। भारतीय संविधान, पंचायती राज मंत्रालय के आधिकारिक दस्तावेज, मध्य प्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, नगरीय शासन से संबंधित सरकारी सामग्री तथा स्थानीय शासन पर प्रकाशित शोध–पत्रों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन का विश्लेषणात्मक केंद्र यह प्रश्न है कि संवैधानिक मान्यता प्राप्त होने के बाद स्थानीय संस्थाओं को वास्तविक स्वायत्तता और प्रभावशीलता किस सीमा तक प्राप्त हुई है।

4. भारत में स्थानीय स्वशासन की संवैधानिक संरचना :

73वें संविधान संशोधन, 1992 ने पंचायतों के लिए संविधान में भाग–IX का समावेश किया और ग्राम, मध्यवर्ती तथा जिला स्तर की पंचायत व्यवस्था को संवैधानिक पहचान दी। पंचायतों से जुड़े विषयों को ग्यारहवीं अनुसूची में स्थान मिला। इसके बाद 74वें संशोधन ने नगरपालिकाओं के लिए भाग–IX-A जोड़ा और नगरीय निकायों से संबंधित विषय बारहवीं अनुसूची में निर्दिष्ट किए। इस प्रकार ग्रामीण और शहरी दोनों प्रकार के स्थानीय निकायों के लिए संविधान में पृथक संस्थागत आधार निर्मित हुआ।

संवैधानिक संशोधनों की उपलब्धि केवल पंचायतों और नगरपालिकाओं को मान्यता देने तक सीमित नहीं रही। इनके माध्यम से नियमित चुनाव, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए प्रतिनिधित्व, महिलाओं के लिए न्यूनतम आरक्षण, राज्य निर्वाचन आयोग और राज्य वित्त आयोग जैसी व्यवस्थाओं को संवैधानिक आधार मिला। जिला योजना समिति तथा महानगर योजना समिति जैसे प्रावधान स्थानीय और क्षेत्रीय योजनाओं के बीच समन्वय स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण हैं।

हालाँकि किसी विषय को संवैधानिक अनुसूची में सूचीबद्ध कर देना अपने आप में सत्ता के प्रभावी विकेन्द्रीकरण का प्रमाण नहीं है। वास्तविक स्वायत्तता इस बात से तय होती है कि राज्य का कानून स्थानीय निकाय को संबंधित कार्य करने के लिए कितना निर्णय–अधिकार, कितना वित्त और कितने मानव संसाधन उपलब्ध कराता है। इसलिए स्थानीय शासन के अध्ययन में Devolution का अर्थ केवल कानूनी जिम्मेदारी सौंपना नहीं, बल्कि निर्णय लेने की वास्तविक क्षमता नीचे के स्तर तक पहुँचाना भी है।

5. मध्य प्रदेश में पंचायती राज एवं ग्राम स्वराज :

मध्य प्रदेश में ग्रामीण स्थानीय शासन की प्रमुख वैधानिक आधार–व्यवस्था मध्य प्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, 1993 है। राज्य की पंचायत व्यवस्था में ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत और जिला पंचायत त्रिस्तरीय संरचना का निर्माण करती हैं। यह संरचना स्थानीय आवश्यकताओं को ग्राम स्तर से लेकर जिला स्तर तक योजना एवं क्रियान्वयन की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास करती है।

ग्राम पंचायत स्थानीय स्तर पर विकास एवं नागरिक सुविधाओं से जुड़े अनेक कार्यों में भूमिका निभाती है। जनपद पंचायत मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों के बीच समन्वय तथा विकास कार्यक्रमों में सहयोग करती है, जबकि जिला पंचायत व्यापक ग्रामीण विकास योजनाओं के समन्वय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस संरचना का लोकतांत्रिक आधार ग्राम सभा है, जिसके माध्यम से स्थानीय समुदाय पंचायत के कार्यों और प्राथमिकताओं के संबंध में भागीदारी कर सकता है।

मध्य प्रदेश की पंचायत व्यवस्था में ग्राम स्वराज की अवधारणा स्थानीय संस्थाओं को केवल सरकारी कार्यक्रमों को लागू करने वाली एजेंसी मानने के बजाय समुदाय की भागीदारी और स्थानीय निर्णय के मंच के रूप में देखने की संभावना प्रस्तुत करती है। इस दृष्टि से ग्राम सभा, पंचायत और समुदाय के बीच संबंध महत्वपूर्ण हो जाता है। व्यवहारिक उपलब्धि, हालांकि, उपलब्ध वित्त, प्रशासनिक सहयोग, स्थानीय कौशल और नागरिकों की सक्रियता जैसे कारकों से प्रभावित होती है।

6. ग्राम सभा, महिला प्रतिनिधित्व और डिजिटल शासन :

स्थानीय स्वशासन की वास्तविक गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण आधार निर्वाचित निकाय और नागरिक समुदाय के बीच बना संवाद है। ग्राम सभा इस संवाद को संस्थागत रूप देने वाला प्रमुख मंच है। जब बैठकें

नियमित हों, संबंधित सूचनाएँ पहले से उपलब्ध हों और नागरिकों की राय को निर्णय में महत्व मिले, तब स्थानीय योजनाओं की प्राथमिकता तय करने तथा सार्वजनिक धन के उपयोग पर निगरानी रखने की क्षमता बढ़ सकती है।

स्थानीय संस्थाओं में महिलाओं की उपस्थिति ने प्रतिनिधित्व के सामाजिक दायरे को व्यापक किया है। मध्य प्रदेश में पंचायत राज संस्थाओं के लिए महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देने की व्यवस्था 2007 के राज्य संशोधन से संबंधित है। इसका महत्व केवल निर्वाचित महिलाओं की संख्या तक सीमित नहीं हैय यह स्थानीय नेतृत्व की संरचना में अधिक संतुलित भागीदारी का अवसर भी देता है। हालांकि इस अवसर को प्रभावी नेतृत्व में बदलने के लिए निर्वाचित प्रतिनिधियों को वित्तीय प्रबंधन, कानून, योजना, डिजिटल साधनों और प्रशासनिक प्रक्रियाओं का व्यावहारिक प्रशिक्षण देना आवश्यक है।

स्थानीय शासन में डिजिटल साधनों का विस्तार सूचना, अभिलेख–प्रबंधन और निगरानी को अधिक व्यवस्थित करने की दिशा में उपयोगी कदम है। मळतंउैंतंर जैसी प्रणाली पंचायत संबंधी प्रोफाइल, योजनाओं, कार्यों और लेखांकन की सूचनाओं को डिजिटल रूप में व्यवस्थित करती है। इससे योजनाओं की प्रगति और वित्तीय गतिविधियों को देखने के अवसर बढ़ सकते हैं। लेकिन इसका लाभ तभी व्यापक होगा जब इंटरनेट, डिजिटल कौशल और स्थानीय तकनीकी सहायता पर्याप्त रूप से उपलब्ध हों।

7. मध्य प्रदेश में नगरीय स्थानीय स्वशासन :

स्थानीय स्वशासन का दूसरा प्रमुख आयाम नगरीय स्थानीय निकाय हैं। शहरीकरण के विस्तार के साथ जलापूर्ति, स्वच्छता, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन, सड़क, सार्वजनिक स्वास्थ्य, नगरीय नियोजन और पर्यावरणीय प्रबंधन जैसी सेवाओं की माँग बढ़ती है। इन सेवाओं के स्थानीय प्रबंधन में नगर निगम, नगर पालिका परिषद और नगर परिषद जैसी संस्थाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

नगरीय निकायों की कार्यक्षमता केवल निर्वाचित परिषद पर निर्भर नहीं करती, इसमें प्रशासनिक मशीनरी, तकनीकी विशेषज्ञता, स्थानीय राजस्व, राज्य सरकार के साथ समन्वय और शहरी नियोजन संस्थाओं के बीच स्पष्ट कार्य–विभाजन भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए 74वें संविधान संशोधन की भावना के अनुरूप नगरीय निकायों को पर्याप्त कार्य एवं वित्तीय क्षमता प्रदान करना शहरी शासन की गुणवत्ता के लिए आवश्यक है।

मध्य प्रदेश के शहरी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ते यातायात, कचरा प्रबंधन, जल संसाधन, अनियोजित विस्तार और पर्यावरणीय दबाव यह दर्शाते हैं कि स्थानीय निकायों को केवल सेवा–प्रदाता के रूप में नहीं, बल्कि दीर्घकालिक स्थानीय नियोजन के संस्थान के रूप में मजबूत करना आवश्यक है।

8. प्रमुख चुनौतियाँ : संवैधानिक प्रावधान से वास्तविक विकेन्द्रीकरण तक :

पहली प्रमुख चुनौती वित्तीय स्वायत्तता की है। यदि स्थानीय निकायों की आय सीमित हो और वे उच्च स्तर की सरकारों के अनुदानों पर अधिक निर्भर रहें, तो स्थानीय प्राथमिकताओं के अनुसार स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता प्रभावित होती है। स्थानीय कराधान, शुल्क, संपत्ति कर, उपयोगकर्ता शुल्क तथा समयबद्ध वित्तीय हस्तांतरण को अधिक प्रभावी बनाना आवश्यक है।

वित्तीय प्रश्न के बाद दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि स्थानीय निकायों को सौंपे गए कार्यों के अनुरूप कर्मचारी और तकनीकी अधिकार भी मिले हैं या नहीं। केवल जिम्मेदारी निर्धारित कर देने से संस्था सक्षम नहीं बनतीय उसे कार्य पूरा करने के लिए आवश्यक मानव संसाधन, विशेषज्ञता और निर्णय की स्वतंत्रता भी चाहिए।

भारतीय स्थानीय शासन पर उपलब्ध अध्ययनों में भी वित्तीय संसाधनों और संस्थागत अधिकारों को स्थानीय सरकार की प्रभावशीलता से जोड़कर देखा गया है।

तीसरी चुनौती क्षमता निर्माण की है। पंचायत एवं नगरीय निकायों के निर्वाचित प्रतिनिधियों को बजट, लेखांकन, योजना निर्माण, ई–गवर्नेंस, सरकारी योजनाओं और सामाजिक अंकेक्षण की जानकारी होना आवश्यक है। विशेष रूप से पहली बार निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए नियमित और व्यावहारिक प्रशिक्षण जरूरी है।

चौथी चुनौती नागरिक भागीदारी और उत्तरदायित्व की है। ग्राम सभा या नगरीय वार्ड समितियाँ तभी प्रभावी होंगी जब नागरिकों को समय पर सूचना मिले और उनके सुझावों का निर्णय–प्रक्रिया में वास्तविक स्थान हो। सामाजिक अंकेक्षण, सार्वजनिक सूचना और डिजिटल डैशबोर्ड जैसे उपाय इस अंतर को कम कर सकते हैं।

पाँचवीं चुनौती स्थानीय शासन के राजनीतिक एवं प्रशासनिक संबंधों की है। स्थानीय निकायों को राज्य सरकार के साथ सहयोग की आवश्यकता होती है, लेकिन अत्यधिक प्रशासनिक निर्भरता उनकी स्वायत्तता को सीमित कर सकती है। इसलिए सहयोगात्मक लेकिन स्पष्ट उत्तरदायित्व वाला बहु–स्तरीय शासन मॉडल आवश्यक है।

9. सुधार की संभावनाएँ :

- स्थानीय निकायों को कार्य, वित्त और कर्मचारियों से संबंधित वास्तविक तथा स्पष्ट अधिकारों का हस्तांतरण किया जाए।
- राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों पर समयबद्ध कार्रवाई और स्थानीय राजस्व–संग्रह की क्षमता को मजबूत किया जाए।
- निर्वाचित प्रतिनिधियों, विशेषकर महिला एवं प्रथम बार निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए सतत क्षमता–विकास कार्यक्रम चलाए जाएँ।
- ग्राम सभा, वार्ड समितियों और सामाजिक अंकेक्षण को केवल औपचारिक प्रक्रिया न रखकर निर्णय एवं निगरानी का प्रभावी मंच बनाया जाए।
- eGramSwaraj जैसी डिजिटल प्रणालियों के उपयोग के साथ स्थानीय स्तर पर तकनीकी सहायता और डिजिटल साक्षरता बढ़ाई जाए।
- नगरीय निकायों के लिए वैज्ञानिक शहरी नियोजन, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और स्थानीय पर्यावरणीय प्रबंधन की तकनीकी क्षमता विकसित की जाए।
- स्थानीय निकायों के प्रदर्शन का मूल्यांकन केवल खर्च की गई राशि से नहीं, बल्कि सेवा–गुणवत्ता, नागरिक संतुष्टि, पारदर्शिता और विकास–परिणामों से किया जाए।

10. निष्कर्ष :

73वें और 74वें संविधान संशोधनों ने भारत में स्थानीय शासन को वैधानिक व्यवस्था से आगे बढ़ाकर संवैधानिक संस्थागत आधार प्रदान किया। पंचायतों और नगरपालिकाओं के लिए निर्वाचन, प्रतिनिधित्व तथा वित्तीय संस्थाओं की व्यवस्था ने स्थानीय लोकतंत्र की निरंतरता को मजबूत किया। इससे शासन–व्यवस्था में नागरिकों की भागीदारी को अधिक निकट के स्तर पर संस्थागत रूप देने का अवसर मिला।

मध्य प्रदेश में पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज की व्यवस्था ने ग्रामीण स्थानीय शासन को त्रिस्तरीय

संस्थागत ढाँचा प्रदान किया है। ग्राम सभा, महिला प्रतिनिधित्व और डिजिटल शासन जैसे तत्व स्थानीय लोकतंत्र को अधिक सहभागी और उत्तरदायी बनाने की क्षमता रखते हैं। दूसरी ओर, नगरीय स्थानीय निकायों के लिए शहरीकरण की बढ़ती चुनौतियाँ उनकी प्रशासनिक और वित्तीय क्षमता को मजबूत करने की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि संवैधानिक मान्यता स्थानीय स्वशासन के लिए आवश्यक आधार है, लेकिन अकेले इससे प्रभावी विकेन्द्रीकरण सुनिश्चित नहीं होता। इसके लिए 3F 'Functions, Funds और Functionaries' का संतुलित हस्तांतरण, प्रशिक्षित स्थानीय नेतृत्व, सक्रिय नागरिक सहभागिता और पारदर्शी प्रशासन साथ–साथ आवश्यक हैं। मध्य प्रदेश में आगे की दिशा ऐसी व्यवस्था विकसित करने की है जिसमें वित्तीय संसाधन, प्रशासनिक क्षमता, डिजिटल पारदर्शिता और ग्राम सभा अथवा वार्ड स्तर की भागीदारी एक–दूसरे को मजबूत करें। तभी स्थानीय निकाय योजनाओं के निष्पादन तक सीमित न रहकर स्थानीय लोकतंत्र और सहभागी विकास के प्रभावी केंद्र बन सकेंगे।

संदर्भ सूची :

- भारत सरकार, विधि एवं न्याय मंत्रालय. भारत का संविधान।
- Ministry of Panchayati Raj, Government of India. (1992). 73rd Constitutional Amendment Act, 1992.
- Ministry of Panchayati Raj, Government of India. Constitutional Provisions relating to Panchayati Raj.
- Government of Madhya Pradesh. (1993). Madhya Pradesh Panchayat Raj Avam Gram Swaraj Adhiniyam, 1993.
- Ministry of Panchayati Raj, Government of India. eGramSwaraj: Panchayat Enterprise Suite.
- Singh, M. N. (2023). Local Government, Constitutional Democracy and Federal Predicaments in India. Indian Journal of Public Administration, 69(3), 678–687. https://doi.org/10.1177/00195561231177014
- Dalal, R. S., & Dhillon, S. (2023). Decentralised Governance in India: An Evaluation in Context of Panchayati Raj Institutions. Indian Journal of Public Administration, 69(3). https://doi.org/10.1177/00195561231177038
- Upadhyay, M., & Rajasekhar, D. (2025). Local Government and Natural Resource Management in Madhya Pradesh, India: A Critical Institutional Analysis. The Journal of Environment & Development, 34(2), 467–491. https://doi.org/10.1177/10704965241300211
- Reddy, M. G., & Mohapatra, B. P. (2017). Decentralized Governance and Devolution of Funds to the Panchayats in India: A Critical Analysis of Two States. Journal of Asian and African Studies, 5(1). https://doi.org/10.1177/2321023017698259

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 285-290

भाषा से वैश्विक ज्ञान तक : शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान की बदलती भूमिका

सिंगराय मुण्डा
शोधार्थी, विश्वविद्यालय मुण्डारी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

सारांश :

मानव सभ्यता के विकास का मूल आधार है। किसी भी भाषा के निर्माण, रख–रखाव व सम्प्रेषण के माध्यम से यह पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण करने की यह सबसे अच्छा माध्यम है। वैश्वीकरण और डिजिटल युग के समय में ज्ञान की सीमाएं स्थानीय से वैश्विक स्तर पर काफी विस्तृत हो रही है। आज शिक्षक सूचना प्रदान करने मात्र नहीं रहा अपितु ज्ञान–सृजन, आलोचनात्मक चिंतन, नवाचार और अनुसंधान का मार्गदर्शक बन गया है। यही कारण है कि अनुसंधान भी किसी एक विषय तक सीमित न रहकर विभिन्न विषयों के पारस्परिक संबंधों को समझने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। इसे बहुविषयक अनुसंधान के रूप में देखा जाता है। बहुभाषिक व बहुभाषिक समाज में स्थानीय और जनजातीय भाषाओं में कमी वैश्विक ज्ञान–विमर्श को विविध और समृद्ध बनाती है। 'मुण्डारी' मुण्डा जनजाति की भाषाओं में निहित लोकज्ञान, प्रकृति बोध, मौखिक परम्पराएं, सांस्कृतिक स्मृतियां और सामाजिक अनुभव ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। आवश्यकतानुसार इन ज्ञान–पराम्पराओं का दस्तावेजीकरण, डिजीटलीकरण और बहुविषयक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए। इस आलेख में भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान के बदलते स्वरूप का विश्लेषण करते हुए वैश्विक ज्ञान सृजन के मातृभाषाओं एवं मुण्डारी भाषा की संभावनाओं पर विचार किया गया है।

बीज शब्द : भाषा, शिक्षक, ज्ञान, बहुविषयक, अनुसंधान, मुण्डारी, वैश्वीकरण।

प्रस्तावना :

ज्ञान ही मनुष्य के बौद्धिक क्षमता, सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विकास की आधारशिला है। मनुष्य ऐसे प्राणी है जिसमें अनुभवों को समझने, सुरक्षित रखने और दूसरों तक पहुँचाने के लिए भाषा का विकास गया। इस दृष्टि से भाषा केवल संचार के माध्यम तक सीमित नहीं है, बल्कि ज्ञान और संस्कृति के वाहक भी हैं। किसी समाज की भाषा में उस समाज का इतिहास, सामाजिक अनुभव, प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, लोगों का विश्वास, परम्पराएं और जीवन पद्धति संरक्षित रहती है।

21वीं सदी में वैश्वीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल संचार ने ज्ञान सृजन की प्रक्रिया को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। आज ज्ञान केवल विद्यालयों, विश्वविद्यालयों व पुस्तकालयों तक सीमित नहीं है।

इन्टरनेट, डिजिटल पुस्तकालय, ऑनलाइन पाठ्यक्रम, शोध पत्रिकाएं, डिजिटल अभिलेखागारों, सामाजिक व सांस्कृतिक मंचों पर ज्ञान के नए माध्यम बन गए हैं।

इस बदलते परिवेश में शिक्षक की भूमिका भी परिवर्तित हुई है। शिक्षक अब केवल पाठ्य–पुस्तकों पर आधारित जानकारी देने भर मात्र नहीं बल्कि विद्यार्थियों से सवाल जवाब करने, विश्लेषण करने, खोज करने और नए ज्ञान का निर्माण करने की क्षमता विकसित करने वाला मार्गदर्शक हैं। इसी प्रकार से आधुनिक युग में जटिल समास्याओं को समझने के लिए एक विषय का ज्ञान पर्याप्त नहीं है। पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, जनजातीय विकास भाषा संरक्षण, शिक्षा तकनीकी और सामाजिक परिवर्तन जैसे विषयों को समझने भाषा विज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास, शिक्षा, पर्यावरण अध्ययन जैसे अनेक क्षेत्रों के बीच संवाह आवश्यक है। यही बहुविषयक अनुसंधान को स्पष्ट करता है।

भाषा और ज्ञान सृजन का संबंध :

भाषा और ज्ञान का संबंध अत्यंत गहरा है। मनुष्य अपने अनुभवों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है और भाषा के माध्यम से ही ज्ञान को सामाजिक रूप प्रदान करता है। ज्ञान बनाने में केवल प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों में नहीं होता, अपितु समुदायों के दैनिक जीवन और लोक परंपराओं और अनुभवों से भी होता है। लोकगीत, लोककथाएं, कहावतें, मुहावरे, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएं तथा मौखिक इतिहास किसी समाज के सामूहिक ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोत है। विशेष रूप से जनजातीय समाजों के प्रकृति, कृषि, वनस्पति, औषधीय पौधे, मौसम, पशु–पक्षियों और सामाजिक संबंधों से संबंधित व्यापक परांपरिक ज्ञान मौखिक रूप में पीढ़ियों से संरक्षित रहा है।

इसलिए किसी भाषा के समाप्त होने का अर्थ केवल शब्दों का समाप्त होना नहीं है बल्कि उसके साथ जूड़े ज्ञान और सांस्कृतिक स्मृति के कमजोर होने का खतरा भी है। भाषा संरक्षण को ज्ञान संरक्षण के साथ जोड़कर देखना आवश्यक है।

वैश्विक ज्ञान व्यवस्था और भाषाई विविधता :

वैश्विक ज्ञान–व्यवस्था में कुछ प्रमुख भाषाओं का प्रभाव दिखाई देता है। वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य में अंग्रेजी का व्यापक उपयोग इसका उदाहरण है। यही कारण है कि इससे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान के आदान–प्रदान में सुविधा हुई है लेकिन दूसरी ओर छोटी और स्थानीय भाषाओं के ज्ञान संसाधनों को वैश्विक मंच तक पहुंचाने की चुनौती भी बनी हुई है।

भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषाई विविधता ज्ञान की शक्ति है। हिन्दी, अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के साथ–साथ अनेक जनजातीय भाषाओं में भी समृद्ध मौखिक एवं लिखित परंपराएं मौजूद हैं। इन भाषाओं पर उपलब्ध ज्ञान को आधुनिक शोध पद्धतियों और डिजिटल तकनीक से जोड़कर वैश्विक ज्ञान सृजन को अधिक समावेशी बनाया जा सकता है।

मातृभाषा में शिक्षा और विद्यार्थियों को अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से जोड़ने में महत्वपूर्ण भुमिका निभाती हैं। जब विद्यार्थी अपनी भाषा में प्रश्न करता है तो वह अपने अनुभवों को ज्ञान की प्रक्रिया से जोड़ सकता है।

ज्ञान सृजन में शिक्षक की बदलती भूमिका :

परंपरागत शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक को मुख्य रूप से ज्ञान प्रदान करने वाला माना जाता था। शिक्षक बोलता था और विद्यार्थियां सुनकर जानकारी ग्रहण करते थे। डिजिटल युग ने इस व्यवस्था को काफी हद तक बदल दिया है। आज के विद्यार्थियों में इन्टरनेट और डिजिटल माध्यमों से विभिन्न प्रकार के जानकारी ग्रहण करते हैं। इसलिए शिक्षक की जानकारी उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं रह गई है। आधुनिक शिक्षक विद्यार्थियों को यह सिखाना होगा कि उपलब्ध जानकारी में से विश्वसनीयता जानकारी की पहचान कैसे करें, उसका विश्लेषण कैसे करें और उसे नये ज्ञान में कैसे परिवर्तित करें।

शिक्षक की बदलती भुमिका को निम्न रूपों में समझा जा सकता है – शिक्षक एक नये मार्गदर्शक के रूप में शिक्षक विद्यार्थियों को सही मार्गदर्शन प्रदान करता है। वह विद्यार्थियों में जिज्ञासा और प्रश्नोत्तर करने की प्रवृत्ति विकसित करता है।

शिक्षक एक शोध कर्ता के रूप में शिक्षक विद्यार्थियों की समास्याओं की पहचान, शोध प्रश्न निर्माण, सामग्री संग्रह, विश्लेषण और निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया से परिचित करता है।

शिक्षक नवाचार कर्ता के रूप में आधुनिक शिक्षक नई शिक्षण तकनीकों, डिजिटल संसाधनों और रचनात्मक गतिविधियों का उपयोग करके विद्यार्थियों को सीखने के नए अवसर प्रदान करता है।

शिक्षक एक ज्ञान सृजक के रूप में शिक्षक स्वयं भी एक शोधकर्ता है। उसके अनुभव, अध्ययन और शोध समाज के लिए ज्ञान को निर्माण कर सकते हैं।

शिक्षक एक सांस्कृतिक सेतु के रूप में बहुभाषिक और बहु–सांस्कृतिक समाज में शिक्षक स्थानीय संस्कृति और वैश्विक ज्ञान के बीच से0तु का कार्य करता है।

बहुविषयक अनुसंधान : अवधारणा :

बहुविषयक अनुसंधान का सामान्य अर्थ है किसी समस्या या विषय को समझने के लिए एक से अधिक विषयों के ज्ञान और पद्धतियों का उपयोग करना। वर्तमान समय की अनेक समस्याएँ जटिल और बहुआयामी हैं। उदाहरणके लिए, जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा की समस्या को केवल शिक्षा के दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता। इसके लिए भाषा, समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, इतिहास, भूगोल और तकनीक को भी समझना आवश्यक है। इसी प्रकार मुण्डारी भाषा के संरक्षण का अध्ययन करते समय भाषा–विज्ञान के साथ इतिहास, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षा, साहित्य और डिजिटल तकनीक का सहयोग लिया जा सकता है। बहुविषयक अनुसंधान का उद्देश्य विभिन्न विषयों को अलग–अलग देखने के बजाय उनके बीच संबंध स्थापित करके किसी समस्या की व्यापक समझ विकसित करना है।

भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान का अंतर्संबंध :

भाषा, शिक्षक और अनुसंधान तीनों एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। भाषा ज्ञान को अभिव्यक्त करती है, शिक्षक ज्ञान को समझने और विकसित करने में सहायता करता है तथा अनुसंधान नए ज्ञान का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए यदि किसी शोधकर्ता को मुण्डारी लोककथाओं का अध्ययन करना है, तो केवल साहित्यिक दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं होगा। उसे मुण्डारी भाषा की संरचना, लोक–संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, इतिहास और

मौखिक परंपराओं का भी अध्ययन करना होगा।

यहाँ शिक्षक विद्यार्थियों को विभिन्न विषयों के बीच संबंध स्थापित करने के लिए प्रेरित कर सकता है। इस प्रकार भाषा ज्ञान का स्रोत बनती है, शिक्षक ज्ञान–सृजन की प्रक्रिया को दिशा देता है और बहुविषयक अनुसंधान ज्ञान की सीमाओं को विस्तृत करता है।

मुण्डारी भाषा के संदर्भ में वैश्विक ज्ञान-सृजन :

मुण्डारी भाषा भारतीय जनजातीय भाषाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। मुण्डा समुदाय की सामाजिक–सांस्कृतिक परांपराएँ, लोकगीत, लोककथाएँ, मिथक, कहावतें, कृषि–ज्ञान, प्रकृति–बोध और मौखिक इतिहास मुण्डारी भाषा के माध्यम से पीढ़ियों तक संचारित होते रहे हैं। मुण्डारी भाषा को वैश्विक ज्ञान–सृजन से जोड़ने के लिए अनेक स्तरों पर कार्य किया जा सकता है :–

- मुण्डारी के लोकसाहित्य और मौखिक परंपराओं का वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण किया जाए।
- मुण्डारी भाषा में उपलब्ध सामग्री का डिजिटल अभिलेखन किया जाए।
- मुण्डारी भाषा के शब्दकोश, व्याकरण, लोकसाहित्य और अन्य शोध–सामग्री को डिजिटल रूप में उपलब्ध कराया जाए।
- मुण्डारी भाषा पर भाषा–विज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र और शिक्षा के संयुक्त दृष्टिकोण से शोध किया जाए।
- नई पीढ़ी को मुण्डारी भाषा में शोध एवं लेखन के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

इस प्रकार मुण्डारी भाषा केवल सांस्कृतिक पहचान का माध्यम नहीं, बल्कि ज्ञान–सृजन का महत्वपूर्ण स्रोत भी बन सकती है।

डिजिटल युग और ज्ञान-सृजन :

डिजिटल तकनीक ने ज्ञान–सृजन और ज्ञान–वितरण की प्रक्रिया को तेजी से बदला है। अब शोधकर्ता डिजिटल पुस्तकालयों, ऑनलाइन जर्नल, ई–बुक, डिजिटल अभिलेखागारों और विभिन्न शैक्षणिक मंचों का उपयोग कर सकते हैं।

जनजातीय भाषाओं के लिए डिजिटल तकनीक विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है। मौखिक इतिहास, लोकगीत और लोककथाओं को ऑडियो–वीडियो के रूप में संरक्षित किया जा सकता है। पुराने दस्तावेजों को डिजिटल रूप में सुरक्षित किया जा सकता है।

कृत्रिम बुधद्धिमत्ता और भाषा–तकनीक के विकास से भाषाई संसाधनों के डिजिटलीकरण, मशीन अनुवाद, वाक्य–पहचान और डिजिटल शब्दकोश जैसे क्षेत्रों में भी नई संभावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। हालांकि इन तकनीकों का उपयोग भाषाई समुदाय की भागीदारी और सांस्कृतिक अधिकारों का सम्मान करते हुए किया जाना चाहिए।

बहुविषयक अनुसंधान की आवश्यकता :

आज की जटिल समस्याओं को समझने के लिए बहुविषयक अनुसंधान अत्यंत आवश्यक है। इसके प्रमुख कारण हैं :–

- जटिल समस्याओं की व्यापक समझ विकसित करना।

- विभिन्न विषयों के ज्ञान को एक–दूसरे से जोड़ना।
- नए शोध–प्रश्नों का निर्माण करना।
- नवाचार और रचनात्मकता को बढ़ावा देना।
- सामाजिक समस्याओं के व्यावहारिक समाधान खोजना।
- स्थानीय ज्ञान को आधुनिक विज्ञान से जोड़ना।
- वैश्विक और स्थानीय ज्ञान के बीच संवाद स्थापित करना।

प्रमुख चुनौतियाँ :

भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान के क्षेत्र में अनेक चुनौतियाँ भी हैं। सबसे पहली चुनौती भाषाई असमानता है। अनेक स्थानीय और जनजातीय भाषाओं में पर्याप्त शोध–सामग्री उपलब्ध नहीं है। दूसरी चुनौती डिजिटल संसाधनों की कमी है। तीसरी चुनौती प्रशिक्षित शोधकर्ताओं और तकनीकी विशेषज्ञों की कमी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों के शोधकर्ताओं के बीच सहयोग का अभाव भी बहुविषयक अनुसंधान में बाधा बन सकता है। कई बार शोध संस्थानों की कार्यप्रणाली विषय–विशेष तक सीमित रहती है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों, शिक्षकों, समुदायों और तकनीकी विशेषज्ञों के बीच सहयोग आवश्यक है।

संभावनाएँ :

इन चुनौतियों के बावजूद भविष्य में व्यापक संभावनाएँ मौजूद हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय भाषाओं, बहुभाषिकता, स्थानीय ज्ञान और बहुविषयक शिक्षा के महत्व पर बल दिया है। इससे भारतीय भाषाओं और स्थानीय ज्ञान–परंपराओं के अध्ययन के लिए नए अवसर उत्पन्न हुए हैं।

विश्वविद्यालयों में भाषा, साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, शिक्षा और तकनीकी विषयों के बीच संयुक्त शोध परियोजनाएँ विकसित की जा सकती हैं। मुण्डारी जैसी भाषाओं पर डिजिटल कॉर्पस, ई–शब्दकोश, डिजिटल लोकसाहित्य संग्रह और ऑनलाइन शिक्षण सामग्री विकसित की जा सकती है।

इस प्रकार स्थानीय ज्ञान को वैश्विक मंच तक पहुँचाने की दिशा में भाषा महत्वपूर्ण माध्यम बन सकती है।

निष्कर्ष :

वर्तमान वैश्विक परिवेश में ज्ञान–सृजन की प्रक्रिया निरंतर बदल रही है। भाषा, शिक्षक और अनुसंधान इस परिवर्तन के तीन महत्वपूर्ण आधार हैं। भाषा, ज्ञान और संस्कृति को संरक्षित एवं अभिव्यक्त करती है, शिक्षक ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया को दिशा देता है और बहुविषयक अनुसंधान ज्ञान की सीमाओं को विस्तृत करता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि ज्ञान को केवल एक विषय या एक भाषा तक सीमित न रखा जाए। स्थानीय भाषाओं और समुदायों के ज्ञान को भी वैश्विक ज्ञान–विमर्श में उचित स्थान दिया जाए। मुण्डारी जैसी जनजातीय भाषाओं में मौजूद लोकज्ञान, प्रकृति–बोध, मौखिक परंपरा और सांस्कृतिक अनुभव वैश्विक ज्ञान को नई दृष्टि प्रदान कर सकते हैं।

अतः भाषा से वैश्विक ज्ञान तक की यात्रा तभी सार्थक होगी, जब शिक्षक ज्ञान का उपभोक्ता नहीं बल्कि ज्ञान–सृजक बने, अनुसंधान विषयगत सीमाओं को पार करे और भाषाई–सांस्कृतिक विविधता को ज्ञान की शक्ति

के रूप में स्वीकार किया जाए। स्थानीय ज्ञान और वैश्विक ज्ञान के बीच संवाद स्थापित करना ही भविष्य के समावेशी और लोकतांत्रिक ज्ञान–सृजन की दिशा हो सकती है।

संदर्भ–सूची :

1. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय। (2020)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020। शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
2. Crystal, D. (2000). Language Death. Cambridge University Press.
3. UNESCO. (2021). UNESCO universal declaration on cultural diversity. UNESCO.
4. UNESCO. (2023). Global education monitoring report 2023. UNESCO.
5. भारतीय भाषाओं, जनजातीय भाषाओं एवं मुण्डारी भाषा से संबंधित प्रकाशित शोध–पत्र, पुस्तकें, शोध–प्रबंध एवं विश्वविद्यालयीय अध्ययन।

मो० नं० 9608637522

ई–मेल – singraymunda07011999@gmail.com

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 291-293

जायसी के पदमावत महाकाव्य में हिन्दू त्यौहारों की झलक

सुनील कुमार, शोधार्थी
डॉ० शान्त कुमार चतुर्वेदी, शोध निर्देशक एवं प्रभारी,
हिंदी विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ० प्र०

शोध सार :

भारत एक उत्सव धर्मों राष्ट्र है, यहाँ पर प्रत्येक क्षण मनुष्य उत्साह और उमंग के साथ जीवन जीने की प्रेरणा से ओत–प्रोत हैं। यहाँ पर मानव जीवन के जितने भी कार्य हैं, सभी में समरसता का संचार करने के लिए त्यौहारों की परिकल्पना की गई है। त्यौहार उत्साह के द्योतक हैं। प्रत्येक माह और ऋतु में कोई न कोई त्यौहार मनाया जाता है। फागुन महीना होली की हुड़दंग से युक्त है तो सावन माह रक्षा बन्धन और नाग पंचमी जैसे त्यौहारों का महीना है। कार्तिक माह दीवाली का पर्व है तो चौत्र माह नवरात्रि का उत्साह है यही विशिष्टता भारत को भिन्न और विविधता में एकता के रूप में परिलक्षित करता है।

बीज शब्द : पद्मावत, मलिक मुहम्मद जायसी, हिंदू त्योहार, होली, बसंत।

प्रस्तावना –

हिन्दी साहित्य में हिन्दू धर्म और हिन्दू रीति–रिवाजों तथा त्यौहारों का अत्यन्त सुन्दर ढंग से उल्लेख किया गया है। हिन्दी का भक्ति साहित्य हिन्दू धर्म का परिचायक और परिभाषिक साहित्य है। इस काल का साहित्य एक ओर समन्वय का साहित्य है वहीं दूसरी ओर इसमें मुस्लिम कवियों द्वारा हिन्दू त्यौहारों का विशद वर्णन करना एक अनोखी बात भी है, तथा हिन्दू धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा का परिचायक है। भक्ति काल की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत महाकाव्य में जो कथानक लिया है उसका सम्बन्ध हिन्दू धर्म, समाज, संस्कृति और सभ्यता से है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सर्वप्रथम 1540 ई0 में किया गया था। मलिक मुहम्मद जायसी सिकन्दर लोदी के समकालीन थे और तत्कालीन समाज मे प्रचलित सभी परम्पराओं से भली–भांति परिचित भी थे। पदमावत महाकाव्य जायसी के विस्तृत ज्ञान का सशक्त परिचायक है, सम्पूर्ण महाकाव्य 57 खण्डों (अध्यायों) में विभक्त है। जिसका 30वां खण्ड नागमती वियोग खण्ड है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने रानी नागमती कि विरह अवस्था का वर्णन बारहमासा शैली में किया है। इसके अन्तर्गत जो पद्धति अपनाई गई है उसमें हिन्दू त्यौहारों को बड़ी ही सुन्दर लिपि से उल्लेखित किया गया है।

जब सावन का महीना आता है तो पेड़ों पर झूले पड़ जाते है और उन झूलों में झूलती हुई स्त्रियां कजली गान करती हैं यह त्यौहार आज भी अपने मूल रूप में विद्यमान है इसका उल्लेख पदमावत महाकाव्य में इस प्रकार मिलता है।

'सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला, हरियरि भूमि, कुसुंभी चोला।

हिय हिंडोल अस डोलै मोरा, विरह झुलाई देह झकझोरा।।'

नागमती सावन के महीने में नागपंचमी त्यौहार को इसलिए नहीं मना पाती क्योंकि उसके पति उससे दूर हैं, जबकि उसकी अन्य सखियां अपने पतियों के साथ झूला झूल रही हैं। इस प्रकार कजली पर्व और झूला झूलने की प्रथा को पदमावत में जायसी ने वर्णित किया है।

भारतीय समाज में प्रमुख हिन्दू धर्म में प्रचलित त्यौहारों में से एक है होली का पर्व। यह पर्व उल्लास और उमंग का पर्व है। इस पर्व में होली दहन करने की प्रथा है और रात में फाग गाने की भी प्रथा है। जायसी ने होली दहन की परम्परा को नागमती के मुख से इस प्रकार कहलवाया है–

'यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन ! उड़ाव ।

मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाव।।'

इस दोहे में जायसी ने होलिका दहन के बाद धूल उड़ाने की प्रथा को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार फागुन मास में सम्पूर्ण प्रकृति उल्लास से परिपूर्ण हो जाती है और फाग गान शुरू हो जाता है। इस त्यौहार की यही एक विशेषता है, जिसका उल्लेख जायसी ने इन पंक्तियों में किया है–

'करहिं वनसपति हिये हुलासू, मो कह भा जग इन उदासू।

फागु करहिं सब चांचरी जोरी, मोहिं तन लाई दीन्ह जस होरी।।'

हिन्दुओं के प्रमुख त्यौहारों में से एक दीपावली है जो प्रकाश पर्व के नाम से जग विख्यात है। इस त्यौहार में दीपदान और लक्ष्मी गणेश की पूजा का विशेष महत्व है। जायसी ने पदमावत में दीपावली को देवारी के नाम से सम्बोधित किया है, कहीं–कहीं दीवाली खेलने की प्रथा भी है जिसका उल्लेख मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत में इस प्रकार किया है–

'सखि मानै तिउहार सब, गाई देवारी खेलि।

हौं का गावों कंत बिनु, रही छार सिर भेलि।।'

दीपावली का त्यौहार सम्पूर्ण संसार में मनाया जाता है। समस्त लोग अपनी मनोरथ की पूर्ति हेतु पूजा करते हैं और जब घोर अंधकार छाया होता है तब माटी के नन्हें–नन्हें दीप अपनी मद्धिम प्रकाश से उस वक्त अंधकार को दूर कर देते हैं–

'अबहुँ निठ्ठर! आउ एहि बारा। परब देवारी होई संसारा ।।

सखि झूकक गावै अंग मोरी। हौं झुरावं विधुरी मोरि जोरी ।।

जेहि घर पिऊ सो मनोरथ पूजा। मो कहँ विरह, सवति दुख दूजा।।'

इस प्रकार जायसी विरचित पदमावत महाकाव्य में हिन्दू त्यौहारों की जिस प्रकार से व्याख्या की गई है। उसमें उनकी मूल भावना ज्यों का त्यों निहित है, तथा जिस ढंग से इसका वर्णन किया गया है उसका महत्व भी इस बात पर निर्भर करता है कि हिन्दू धर्म के न होते हुए भी जायसी ने उस मूलतत्व को खोने नहीं दिया है, जिस पर त्यौहार का उल्लास और आनन्द टिका होता है।

सन्दर्भ :-

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सम्पादक), जायसी ग्रन्थावली, प्रथम संस्करण, 2007, पृ० सं०– 144, अनु प्रकाशन, जयपुर।
2. वही, पृ० सं0–147
3. वही, पृ० सं०– 1471
4. वही, पृ० सं0–1451
5. वही, पृ० सं0–145
6. द्विवेदी, हजारीप्रसाद – हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास।
7. वर्मा, रामकुमार – हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 294-297

झारखंडी भाषा के विकास में आकाशवाणी राँची का योगदान

सुषमा मिंज
सहायक प्राध्यापक, कुँड़ुख विभाग,
रामलखन सिंह यादव महाविद्यालय कोकर राँची, विश्वविद्यालय राँची झारखंड।

प्रस्तावना –

आकाशवाणी का अर्थ ही है जो वाणी आकाश में गूँज उठे और उसे विश्व के कोने कोने में सुना जाये। आकाशवाणी देश विदेश के कोने कोने में होने वाली समस्त घटनाओं के समाचार सुनाकर जन साधारण को अवगत कराती है। देश की वर्तमान परिस्थिति सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी सभी प्रकार की जानकारी हमें आकाशवाणी देती है। आज संचार माध्यम के बिना जीवन यापन मुश्किल हो गया है। यह सिर्फ संपर्क स्थापित करने का माध्यम नहीं है अपितु सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का सशक्त माध्यम है। देश के विकास में रेडियो, दूरदर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। सूचना शिक्षा और मनोरंजन की दृष्टि से रेडियो का प्रभाव व्यापक और प्रभावी रहा है। भारत में 23 जुलाई 1927 ई. को मुम्बई में पहला नियमित रेडियो प्रसारण की शुरूआत की गयी। आजादी से पहले 9 केन्द्र खोले गए, जिनमें पेशावर, लाहौर, लखनऊ, मद्रास, तिरूची, ढाका, कोलकाता, दिल्ली केन्द्र शामिल थे।

26 जनवरी 1948 ई. को पटना में आकाशवाणी केन्द्र खोला गया। यहाँ से गाँव–गाँव तक प्रसारण को पहुँचाने के लिए स्थानीय भाषाओं का प्रयोग किया जाने लगा। भोजपुरी में चौपाल कार्यक्रम शुरू किया गया। उत्तर बिहार की लोक भाषा को जगह मिली अपितु दक्षिण बिहार की स्थानीय भाषा उपेक्षित रही। वैसे तो अंगद महतो और जतरू उराँव आदि पटना केन्द्र जा कर गीत गाया करते थे लेकिन यह संतोषजनक नहीं था।

आकाशवाणी राँची की स्थापना –

समय की नजाकत और माँग को देखते हुए भारत सरकार ने 27 जुलाई 1957 ई को आकाशवाणी राँची की स्थापना की। स्थापना काल से ही 'देहाती दुनिया' के नाम से कार्यक्रम प्रसारण होने लगा। प्रारंभ में शाम 6:30 बजे से 7:30 बजे तक प्रत्येक दिन स्थानीय भाषा में कार्यक्रम का प्रसारण होता था। बाद में 2000 ई में समय में बदलाव किया गया। फिर यह शाम 6 बजे से 7 बजे तक किया गया, जो आज भी जारी है। आकाशवाणी राँची जब से बैठा उसी समय से झारखण्डी भाषाओं में कार्यक्रम होने लगा। झारखण्ड बनने के बाद 2000 ई से 'आदिवासी अखड़ा' कार्यक्रम प्रसारित होने लगा है। इसमें सोमवार को कुँड़ुख, मंगलवार को खड़िया, बुधवार को मुण्डारी, गुरूवार को संताली और शुक्रवार को हो भाषा में कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। शाम को 7:15 से 7:45 तक 30 मिनट कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। शनिवार को नागपुरी, कुँड़ुख, मुण्डारी, हो और संताली में क्षेत्रीय समाचार प्रसारित किये जाते हैं।

प्रति दिन हमारी दुनिया और खेतीबारी (किसानीवाणी) कार्यक्रम में कम्पीयर्स नागपुरी में कार्यक्रम प्रस्तुत

करते हैं। इस कार्यक्रम में नागपुरी के अलावे खोरठा, कुरमाली, पंचपरगनिया में गीत, नाटक, वार्ता, कहानी, कविता आदि का प्रसारण किया जाता है। झारखंड में प्रोटो–ऑस्ट्रोलॉयड, द्रविड़ और नाग या आर्य भाषा परिवार की भाषा बोली जाती है। प्रोटो–ऑस्ट्रोलॉयड परिवार में संताली, हो, मुण्डारी और खड़िया भाषा आती है जबकि द्रविड़ परिवार में कुँड़ुख भाषा आती है। छोटानागपुर की नागपुरी, खोरठा, कुरमाली और पंचपरगनिया नाग या आर्य भाषा परिवार की भाषा है।

आकाशवाणी राँची की स्थापना से झारखण्ड की इन सभी भाषाओं में कार्यक्रम प्रसारित होने लगा। झारखण्डी लोक भाषा के लिए आकाशवाणी राँची वरदान साबित हुआ। लोक भाषा साहित्य को नयी गति, दिशा मिला। नये साहित्य विधा के साथ नये नये साहित्यकार पैदा होने लगे। आकाशवाणी में लोकभाषा पद में बंधा हुआ था लेकिन आकाशवाणी राँची की स्थापना से गद्य को चहकने का मौका मिला। राँची से प्रसारित कार्यक्रमों में 60 प्रतिशत संगीत के लिए समय बंधा हुआ है। 7 घंटा गीत–संगीत के लिए तय है। संगीत को सृष्टि का सहोदर माना गया है। यह सिर्फ इंसान को नहीं बल्कि पशु को प्राण देता है। सुबह से लेकर रात तक गीत संगीत के कार्यक्रम होते रहते हैं। सोमवार से रविवार तक सुबह 10 से 10:15 बजे, दोपहर 1:15 से 1:45 बजे, शाम को 7:15 से 7:20 बजे तक नागपुरी, पंचपरगनिया, कुरमाली, खोरठा, संताली, कुँड़ुख, मुण्डारी, हो, खड़िया में लोकगीत प्रसारित किये जाते हैं। वहीं एफ. एफ. राँची से शाम 6:15 से 6:30 बजे तक झारखण्डी भाषा में गीत सुनाये जाते हैं। मंगलवार को 10 बजे 'गूँजे झारखंड' नाम से कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। समय समय पर लोकगीतों पर आधारित धारावाहिक प्रसारित किया जाता है। 'सूरक–सिंगार' कार्यक्रम को बहुत ही पसंद किया गया था। प्रमोद कुमार राय और शकुन्तला मिश्र ने प्रस्तुत किया था। हमारी दुनिया, खेतीबारी एक घंटे का होता था। इसमें दो नागपुरी गीत और एक कुरमाली, पंचपरगनिया और खोरठा में बजाये जाते हैं।

परिवार कल्याण कार्यक्रम –

स्थापना काल से सुबह 6:05 बजे कृषि वार्ता और 5 मिनट का कृषि लोकगीत प्रसारित किये जाते थे। 1980 के दशक में गीत को बंद कर दिया गया अब सिर्फ कृषि वार्ता प्रसारित होता है।

नागपुरी का हिन्दी रूपांतरण –

नागपुरी लोकगीतों को हिन्दी में रूपांतरित करके बजाया जाता था। इसमें यहाँ के जनजीवन की व्यवस्था के साथ लोकगीत बजाये जाते थे।

कचनार कार्यक्रम –

रात 8:15 से 8:30 बजे तक नागपुरी लोकगीत को भाव के साथ गीत प्रस्तुत किये जाते थे।

संगीत रूपक –

आकाशवाणी से संगीत रूपक कार्यक्रम का प्रसारण होता रहता है। रेडियो में किसी विषय, प्रसंग, घटना तथा तथ्य के नाटकीय प्रस्तुति को रूपक कहा जाता है। इसमें संगीत को जोड़ दिया जाये तो यह संगीत रूपक कहलाता है। 60 के दशक में पाण्डेय दुर्गानाथ राय ने कई संगीत रूपक लिखे थे। इसमें प्रमुख हैं – 'गहना नइ पिंधब' यह राष्ट्रीय भावना पर आधारित था, 'डहरू डहर देखालक' और 'डुमन मायक बात' यह परिवार कल्याण पर आधारित था।

लोक साहित्य पत्रिका कार्यक्रम –

माह के तीसरे शनिवार को 30 मिनट का यह कार्यक्रम होता था। इसमें 2 भाषा की कविता अवश्य शामिल

की जाती थी।

गूँजे झारखण्ड –

पहले गूँजे बिहार के नाम से यह कार्यक्रम प्रसारित किया जाता था। झारखण्ड बनने के बाद इसका नाम बदल कर 'गूँजे झारखंड' कर दिया गया। लोकगीतों का प्रसारण भाव के साथ मंगलवार को शकुन्तला मिश्र प्रस्तुत करती थी।

रंगारंग कार्यक्रम –

हमारी दुनिया कार्यक्रम में गाँव स्कूल में जा कर किये गए रिकॉडिंग को 'गाँव कर एक सांझ' और छउवा मनक 'रंगारंग' नाम से प्रसारित किया जाता था। महुआडांड़, खूँटी, गुमला, चैनपुर, तमाड़, बेड़ो, भरनो, रातू आदि जगहों पर रंगारंग कार्यक्रम प्रसारित किये जा चुके हैं।

इसी तरह जनजातीय भाषाओं के कार्यक्रमों को जगह दी जाने लगी। आकाशवाणी स्थापना काल से ही नागपुरी को अधिक महत्त्व दिया गया लेकिन बाद में महसूस किया गया जनजातीय भाषाओं को भी बढ़ावा देने की जरूरत है।

जनजातीय भाषा में कुँड़ुख भाषा शुरू से ही अपना स्थान बना लिया था। वेलफेयर सेंटर हॉल में जब आकाशवाणी केन्द्र की स्थापना दिवस मनाया जा रहा था, उस समय कुँड़ुख कलाकार जतरू उराँव ने कुँड़ुख लोकगीत गाया था। आगे चलकर अन्य जनजातियों की भाषाओं में प्रसारण की आवाज उठायी गयी। फलस्वरूप 1964 ई में मुण्डारी और संथाली भाषा में प्रसारण की अनुमति मिली। 1968 ई में खड़िया भाषा में प्रसारण की अनुमति मिली।

हमारी दुनिया और खेतीबारी कार्यक्रम को एक घण्टे का रखा गया। इसमें नागपुरी भाषा के अलावे जनजातीय भाषाओं को भी शामिल किया गया। इस कार्यक्रम में नागपुरी, खोरठा पंचपरगनिया, कुरमाली के साथ जनजातीय भाषाओं में गीत भी प्रस्तुत किये जाते थे। जनजातीय और क्षेत्रीय भाषाओं में गीत, वार्ता, कहानी, कविता, नाटक आदि प्रसारित किये जाते थे। सोमवार को कुँड़ुख वार्ता, मंगलवार को खड़िया भाषा में, बुधवार को मुण्डारी, शनिवार को संताली, रविवार को हो भाषा में जानकारी और गीत प्रसारित किये जाते थे।

15 नवम्बर 2000 ई. से जनजातीय भाषा में प्रसारण के लिए विशेष समय का निर्धारण किया गया। सोमवार से शुक्रवार तक शाम 7:15 से 7:45 बजे तक 'आदिवासी अखड़ा' कार्यक्रम के नाम से प्रसारण किया जाता है। इस कार्यक्रम में गीत, कविता, कहानी, वार्ता आदि का स्वतंत्र रूप से जीवंत प्रसारण किया जाता है। कम्पीयर्स अपनी भाषा में ही कार्यक्रमों की प्रस्तुति देते हैं। प्रत्येक शनिवार को नागपुरी, कुँड़ुख, मुण्डारी, संताली एवं हो भाषा में समाचार प्रसारित किये जाते हैं।

आकाशवाणी राँची की स्थापना से झारखण्डी भाषाओं को एक उड़ान मिली। भाषा के प्रति रूचि जगाने का काम किया। लोक साहित्य में चार चाँद लगाने का कार्य किया। नये–नये लेखक पैदा हुए। भाषायी, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना का संचार हुआ। साथ ही झारखण्डी भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान निभाया।

जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा साहित्य, संस्कृति के पोषण, संरक्षण संवर्धन में आकाशवाणी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। गीत–संगीत, वार्ता, नाटक, कहानी, कविता आदि प्रसारित कर झारखण्डी समाज में क्रांति की लहर ला दी। समाज से कुप्रथाओं को दूर करने का सार्थक प्रयास किया। कम्पीयर्स अपनी झारखण्डी भाषा में

किसी खास विषय में रोचक तरीके से प्रस्तुत कर लोगों के बीच कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाकर जन जागरूकता फैलाने का कार्य किया। सरकार के कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी देकर लाभ पहुँचाने का कार्य किया। समाज को अंधविश्वास से बाहर निकालने का कार्य करता रहा है। गाँवों में शिक्षा के प्रचार प्रसार, रोजगार के अवसर, कृषि की उन्नत खेती को बढ़ावा देने में अहम योगदान दिया। आकाशवाणी राँची अपने कार्यक्रम झारखण्ड की साझा संस्कृति को समाहित कर झारखण्डी समाज में एकता, शांति स्थापित करने में सराहनीय कार्य किया है। बीमार होने पर पहले डॉक्टर के पास जाना है, वैद्य ओझा के चक्कर में नहीं पड़ना है। आकाशवाणी राँची झारखण्डी कवि, लेखक, कलाकार एवं रंगकर्मियों को आर्थिक पोषण भी दिया। इससे झारखण्डी कला, संस्कृति, भाषा, साहित्य को पहचान दिलाने और संरक्षण में मदद मिली। इस तरह देखा जाये आकाशवाणी राँची झारखण्डी भाषा और समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। मनोरंजन के साथ–साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार एवं कृषि संबंधी जन जागरूकता फैलाने में अहम भूमिका निभाती रही है।

संदर्भ ग्रंथों की सूची :

1. भगत प्रो. महेश, कुँड़ुख़ कत्था–कत्थपंडी गहि कुन्दुरना अरा परदना (कुँड़ुख भाषा साहित्य का उद्‌भव और विकास), 2017, हिन्दराजी कुँड़ुख़ बकलुरिया खोड़हा, पृष्ठ – 95, 96, 97।
2. स्मारिका– आकाशवाणी राँची स्वर्ण तरंग, 2007–2008, आकाशवाणी क्लब आकाशवाणी राँची, पृष्ठ – 1, 2, 10, 12।
3. आदिवासी पत्रिका, 2007, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग झारखण्ड सरकार।

साक्षात्कार –

1. रोजलीन लकड़ा।
2. प्रमोद कुमार राय।
3. जोन खाखा।
4. विशेष सहयोग आकाशवाणी राँची केन्द्र के सभी पदाधिकारी, उद्‌घोषक एवं लाइब्रेरी।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 298-308

A Study on Operational Efficiency of Tamil Nadu Grama Bank : Challenges and Performances

Vaishnavi S.

Research Scholar, Department of Commerce, GTN Arts College,
Affiliated to Madurai Kamaraj University, Dindigul District, Tamil Nadu – 624005

Abstract :

Regional Rural Banks (RRBs) play an important role in promoting rural credit, financial inclusion and agricultural development in India. Tamil Nadu Grama Bank (TNGB), formed on 1 April 2019 through the amalgamation of Pallavan Grama Bank and Pandyan Grama Bank, is the sole Regional Rural Bank operating in Tamil Nadu. This study provides an updated assessment of the operational efficiency of Tamil Nadu Grama Bank with particular reference to the financial year 2025–26. The study is based entirely on secondary data obtained from the audited financial results of Tamil Nadu Grama Bank, official institutional sources, and recent information on Regional Rural Banks.

The latest results indicate a significant strengthening of TNGB's financial and operational performance. During FY 2025–26, the bank recorded a net profit of Rs. 622.79 crore, an operating profit of approximately Rs. 1,053 crore, and total business of about Rs. 57,966 crore. Gross Non-Performing Assets remained at a very low level of approximately 0.59%, while Net NPA remained at zero. The bank's capital adequacy ratio remained above the regulatory requirement at around 13.64%, and its branch network increased to 699 branches. The improvement in profitability, business volume, asset quality and branch outreach indicates continuing gains in operational efficiency after the 2019 amalgamation.

The study concludes that consolidation, technology adoption, improved credit management, business expansion and stronger financial discipline have contributed to the improved operational performance of TNGB. However, maintaining asset quality, strengthening deposit mobilisation, improving employee productivity and expanding digital banking remain important for sustaining efficiency in the coming years.

Keywords : Regional Rural Banks, Tamil Nadu Grama Bank, Operational Efficiency, Digital Banking, NPA, Profitability, Financial Inclusion, Rural Banking.

Introduction :

Regional Rural Banks were established to provide institutional credit to rural communities, particularly small and marginal farmers, agricultural labourers, rural artisans, micro-enterprises and other economically weaker sections. Their role has expanded from conventional agricultural lending to financial inclusion, digital banking, micro-enterprise financing and delivery of government-sponsored financial services. Tamil Nadu Grama Bank occupies a distinctive position in the rural banking structure of Tamil Nadu. The bank was formed on 1 April 2019 through the amalgamation of Pallavan Grama Bank and Pandyan Grama Bank and operates under the sponsorship of Indian Bank. Following the amalgamation, TNGB became the sole RRB serving Tamil Nadu, operating across 37 districts except Chennai.

The importance of evaluating TNGB's operational efficiency has increased because the bank has undergone substantial expansion in business volume, profitability, asset quality and digital banking services. Operational efficiency in banking is typically assessed through indicators such as asset quality (non-performing assets), capital adequacy, profitability, cost-to-income ratios, and productivity measures such as business per employee and business per branch. Given the socio-economic significance of RRBs in bridging the rural credit gap, an evaluation of TNGB's operational efficiency offers insight into whether policy-driven consolidation has achieved its intended objectives in Tamil Nadu specifically.

Review of Literature :

Sathrukanbabu and Muthumoni (2018) analyzed the performance of the erstwhile Pallavan Grama Bank over eleven years (2007–2008 to 2017–2018) and found that the bank's branch network expanded from 66 to 289 branches, net profit grew at a compound annual rate of 21.33%, and the net NPA ratio declined from 1.22% to 0.99% between 2016–17 and 2017–18. However, the study also noted a decline in per-employee business productivity of 9.09% over the same two years, pointing to staffing and workload pressures even during a period of overall financial improvement.

Earlier literature reviewed within RRB performance studies, including work on deposit mobilisation and lending performance (Selvakumar, 2006) and comparative pre- and post-amalgamation performance (Megha & Bhatia, 2013), consistently finds that consolidation tends to improve scale efficiencies and profitability in the medium term, even as it introduces short-term integration costs. Taken together, this literature suggests that TNGB's post-2019 performance should be read against both a national RRB benchmark and the bank's own pre-merger trajectory.

Statement of the Problem :

In Tamil Nadu, this evolution culminated in the formation of Tamil Nadu Grama Bank (TNGB) in 2019 through the merger of Pallavan Grama Bank and Pandyan Grama Bank. While consolidation

is expected to yield economies of scale, improved capital adequacy, and stronger governance, questions remain about whether these structural changes have translated into genuine gains in operational efficiency —that is, the bank's ability to convert its branch network, staff, capital, and technology into sustainable profitability, sound asset quality, and deeper financial inclusion. Now, TNGB serves as the sole RRB across the state's rural and semi-urban geography; it is important to assess whether its post-merger operational indicators — asset quality, profitability, credit deployment, and productivity — reflect genuine efficiency gains, and how these compare with both the pre-merger performance of its predecessor institutions and the national RRB average.

Recent Developments in Regional Rural Banking :

The RRB sector has undergone significant structural changes in recent years. Amalgamation, recapitalisation, technology adoption, improved governance, business diversification and strengthening of asset quality have become important components of the RRB reform process. The latest national-level developments indicate that RRBs have continued their turnaround following the consolidation and recapitalisation measures implemented by the Government of India. The Department of Financial Services has also highlighted technology adoption, business expansion, asset-quality improvement, cost rationalisation and governance as important elements of RRB sustainability.

Profile of Tamil Nadu Grama Bank :

Tamil Nadu Grama Bank was established on 1 April 2019 by amalgamating Pallavan Grama Bank and Pandyan Grama Bank. It is sponsored by Indian Bank and is headquartered in Salem. The bank operates throughout Tamil Nadu except Chennai. The institutional objective of TNGB is closely linked with rural financial inclusion and last-mile banking. Its services include agricultural loans, Kisan Credit Cards, SHG and JLG loans, MSME finance, deposits, digital payment services and other retail banking products. The bank's digital ecosystem includes NEFT, RTGS, NACH, AEPS, APBS, UPI-related services, internet banking and mobile banking, supporting the transition from branch-based banking towards technology-enabled rural banking.

Objectives of the Study :

The study has the following objectives :

- To examine the latest operational and financial performance of Tamil Nadu Grama Bank.
- To assess the operational efficiency of TNGB during FY 2025–26.
- To analyse changes in profitability, asset quality, capital adequacy and business growth.
- To examine the contribution of digitalisation and technology adoption to operational efficiency.
- To compare the latest performance with the previous financial year.
- To identify the major operational challenges faced by TNGB.
- To suggest measures for sustaining operational efficiency in the future.

Research Methodology :

The study follows a descriptive and analytical research design and is based entirely on secondary data. The principal data source is the audited financial results of Tamil Nadu Grama Bank for the year ended 31 March 2026. TNGB's official website now lists audited financial results for FY 2025–26 along with earlier years, enabling year-on-year comparison. Additional information has been obtained from Tamil Nadu Grama Bank officials, Indian Bank disclosures relating to its RRBs, NABARD, the Department of Financial Services, TNGB financial results and annual reports. The study uses percentage analysis, ratio analysis and comparative analysis to evaluate operational efficiency.

Major Operational Efficiency Indicators :

The operational efficiency of TNGB is evaluated through the following indicators :

- Business growth
- Net profit
- Operating profit
- Gross NPA
- Net NPA
- Capital adequacy ratio
- Credit deployment
- Branch expansion
- Employee productivity
- Digital banking adoption
- Financial inclusion

Key Pillars of Operational Efficiency :

- ***Credit-to-Deposit (CD) Ratio Management :***

RRBs in Tamil Nadu consistently demonstrate strong credit deployment relative to deposits, driven by aggressive support for agricultural crop loans, Kisaan Credit Cards (KCC), and Self-Help Group (SHG) bank-linkage programs.

- ***Digital Integration & CBS Adoption :***

The migration to Core Banking Solutions (CBS), paired with the adoption of UPI, NEFT/ RTGS, and mobile banking applications, has significantly lowered transaction costs per customer while expanding reach across remote villages.

- ***Financial Inclusion Drivers :***

Through Doorstep Banking and Business Correspondents (BCs), TNGB has optimised branchless banking networks. This model minimises capital expenditure while servicing low-ticket Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY) accounts and government pension/MGNREGA

disbursements.

- ***Asset Quality and Recovery Mechanisms :***

Operational efficiency in Tamil Nadu's RRBs is heavily tied to Non-Performing Asset (NPA) management. Leveraged partnerships with joint liability groups (JLGs) and SHGs have yielded higher recovery rates in micro-lending than individual smallholder loans.

Table 1: Major Performance Indicators of TNGB

Indicator	FY 2025–26	Interpretation
Total Business	Rs. 57,966 crore approximately	Strong expansion in overall banking business
Operating Profit	Rs. 1,052–1,058 crore approximately	Significant improvement in operating performance
Net Profit	Rs. 622.79 crore	Strong profitability
Gross NPA	About 0.59%	Very low level of stressed assets
Net NPA	0%	Strong asset-quality position
CRAR	About 13.64%	Adequate capital position
Branches	699	Continued expansion of rural/semi-urban outreach

The latest figures demonstrate that TNGB has continued to strengthen its financial position. Indian Bank's FY 2025–26 disclosure reports TNGB business of Rs. 57,966 crore, operating profit of approximately Rs. 1,058 crore, net profit of Rs. 614 crore on a pre-audit basis, gross NPA of 0.58%, zero net NPA, CRAR of 13.64% and 699 branches. The bank's subsequently reported audited net profit was Rs. 622.79 crore.

Digitalisation and Operational Efficiency of TNGB :

Digitalisation has become an important determinant of banking efficiency. NABARD's Tamil Nadu State Focus Paper 2025-26 reports that TNGB deployed 330 micro ATMs, with NABARD support, to improve digital transactions and last-mile banking access in more than 2000 villages. The initiative reportedly generated substantial monthly financial and non-financial transactions and increased rural banking touchpoints through branches and Business Correspondents. This indicates that digitalisation is not merely replacing traditional banking but is being used to extend banking services to customers who may have limited access to conventional branches. TNGB provides several technology-enabled services, including NEFT, RTGS, NACH, AEPS, APBS, internet banking and mobile banking. Therefore, digitalisation should be considered an important supporting factor behind the continuing improvement in TNGB's operational performance.

The expansion of digital banking can improve operational efficiency through :

- Reduction in transaction-processing costs.
- Faster delivery of banking services.
- Reduction in dependence on physical branch transactions.
- Improved access for rural customers.
- Greater transparency in transactions.
- Increased availability of banking services beyond traditional branch hours.
- Improved capacity to serve customers without proportional growth in manpower.

Performance of Tamil Nadu Grama Bank : FY 2025–26 :

Tamil Nadu Grama Bank (TNGB) has demonstrated significant improvement in its financial and operational performance during FY 2025–26. The bank, which was formed on 1 April 2019 through the amalgamation of Pallavan Grama Bank and Pandyan Grama Bank, now operates across 37 districts of Tamil Nadu, excluding Chennai.

The latest FY 2025–26 performance indicates that the benefits of post-amalgamation consolidation, expansion of banking business, improved asset-quality management and technology adoption have continued. According to the FY 2025–26 disclosures, TNGB's total business increased from Rs. 50,764 crore in March 2025 to Rs. 57,966 crore in March 2026, representing approximately 14% year-on-year growth. Operating profit increased from Rs. 731 crore to Rs. 1,058 crore, while the reported pre-audit net profit increased from Rs. 367 crore to Rs. 614 crore. The audited FY 2025–26 net profit was subsequently reported at Rs. 622.79 crore.

Table 2 : Recent Performance Trends

Indicator	FY 2024–25	FY 2025–26	Trend
Total Business	Rs. 50,764 crore	Rs.57,966 crore	Increased
Operating Profit	Rs.731 crore	Rs.1,052–1,058 crore	Increased significantly
Net Profit	Rs.367 crore*	Rs.622.79 crore	Increased significantly
Gross NPA	0.79%	About 0.59%	Improved
Net NPA	0%	0%	Maintained
CRAR	13.70%	13.64%	Broadly stable
Branches	675	699	Increased

Growth in Total Business : One of the most significant indicators of TNGB's recent performance is the growth in total business. The bank's business increased from Rs. 50,764 crore in FY 2024–25 to Rs. 57,966 crore in FY 2025–26, registering approximately 14.19% growth. This

expansion reflects increased mobilisation of deposits and growth in advances. It also indicates the continued relevance of TNGB in providing institutional credit to agricultural borrowers, small businesses, self-help groups and rural households.

Strong Asset Quality : Asset quality represents one of the strongest areas of TNGB's recent performance. Gross NPA declined from 0.79% in FY 2024–25 to 0.58% in FY 2025–26, while Net NPA remained at zero in both years. Maintaining zero Net NPA while expanding the loan portfolio indicates effective credit monitoring, recovery mechanisms and provisioning practices. For an RRB with significant exposure to agriculture and rural borrowers, maintaining such a low level of stressed assets is particularly important.

Expansion of Branch Network : The number of TNGB branches increased from 675 in March 2025 to 699 in March 2026. The expansion strengthens the bank's physical presence and supports its financial-inclusion mandate. Since TNGB operates across 37 districts excluding Chennai, its branch network remains an important mechanism for delivering agricultural credit, government benefits, deposits, remittances and other financial services to rural and semi-urban customers.

Profitability Performance : Profitability is one of the most important measures of operational efficiency. TNGB's net profit increased substantially during FY 2025–26. The audited result indicates a net profit of Rs. 622.79 crore, demonstrating the bank's improved ability to generate earnings from its expanding business operations. The improvement in profitability is significant because it indicates that growth has not merely occurred through balance-sheet expansion but has also translated into stronger bottom-line performance. The increase in operating profit further demonstrates improved operating capacity and income generation. Thus, profitability constitutes one of the strongest indicators of the bank's current operational efficiency.

Asset Quality and NPA Management : Asset quality is another critical component of operational efficiency. TNGB maintained zero net NPA during FY 2025–26, while Gross NPA remained below 1%. The latest disclosures place Gross NPA at approximately 0.58–0.59%. This is a particularly significant development because rural and agricultural lending is exposed to risks arising from crop failures, income fluctuations, natural calamities and borrower vulnerability. The maintenance of zero net NPA indicates strong provisioning, recovery mechanisms and credit-risk management. The bank's performance therefore suggests that expansion of credit has not resulted in a corresponding deterioration in net asset quality.

Capital Adequacy : Capital adequacy is essential for the long-term stability of an RRB. TNGB reported a CRAR of approximately 13.64% at the end of FY 2025–26. Although the ratio was slightly lower than the previous year's level, it remained at a comfortable level. Adequate capital provides the bank with the capacity to absorb unexpected losses while supporting continued business expansion.

Therefore, the capital position does not currently appear to constitute a major constraint on operational efficiency.

Business Growth and Credit Deployment : One of the most important developments during FY 2025–26 was the increase in TNGB's total business to approximately Rs. 57,966 crore, representing around 14% year-on-year growth. The increase demonstrates continued expansion in deposits and advances and indicates that TNGB has retained its role as an important rural credit institution. However, rapid credit expansion must be supported by adequate deposit mobilisation and effective liquidity management. Sustainable operational efficiency therefore requires the bank to balance credit growth with stable and low-cost deposit mobilisation.

Branch Expansion and Rural Outreach : TNGB's branch network increased to 699 branches by March 2026, demonstrating its continuing commitment to rural and semi-urban financial inclusion.

Branch expansion provides several efficiency benefits :

- Greater customer accessibility
- Improved agricultural-credit delivery
- Better financial inclusion
- Wider coverage of government schemes
- Increased deposit mobilisation
- Improved access to digital banking support

However, branch expansion should increasingly be complemented by digital channels so that additional business can be generated without a proportionate increase in operating costs.

Challenges Faced by Tamil Nadu Grama Bank (FY 2025-26) :

Despite the strong FY 2025–26 performance, TNGB faces several challenges that could affect the sustainability of its operational efficiency.

Maintaining Asset Quality During Rapid Credit Expansion : The decline in Gross NPA to 0.58% and continuation of zero Net NPA represent a strong performance. However, maintaining this position could become challenging as the bank expands its advances. Agricultural lending is exposed to risks associated with climate conditions, crop failures, fluctuations in agricultural income and other rural economic factors. Therefore, continued growth in credit requires strong credit appraisal, early-warning systems and effective recovery mechanisms.

Balancing Business Growth with Liquidity Management : The approximately 14% increase in total business during FY 2025–26 demonstrates strong growth. However, rapid expansion in advances needs to be supported by stable deposit mobilisation. The bank therefore needs to increase its low-cost and stable deposit base while ensuring that credit expansion does not create excessive liquidity or asset-liability-management pressure.

Human Resource and Employee Productivity : Expansion of business and branches increases the requirement for trained and technologically capable employees. Operational efficiency cannot be sustained only through growth in business volume. TNGB must also ensure adequate staffing, continuous employee training, digital skills development and appropriate workload distribution. Improving business per employee and profit per employee should therefore become important measures in future efficiency assessments.

Digital Literacy and Digital Divide : Although digital banking can reduce transaction costs and improve accessibility, sections of the rural population may still have limited digital literacy. The expansion of digital services therefore needs to be accompanied by financial and digital-literacy programmes. NABARD has specifically highlighted the need to improve financial and digital literacy among rural populations in Tamil Nadu.

Cybersecurity and Digital Fraud : Increasing dependence on digital banking creates additional operational risks. Cyber fraud, phishing, identity theft, unauthorised transactions and misuse of digital payment systems can undermine customer confidence. Consequently, TNGB needs continuous investment in cybersecurity, fraud monitoring, customer authentication and awareness programmes.

Competition from Commercial Banks and Fintech Platforms : TNGB operates in an increasingly competitive banking environment. Commercial banks, small finance banks, fintech companies and digital-payment platforms provide customers with increasingly convenient digital financial services. Therefore, TNGB needs to combine its traditional strength in rural outreach with competitive digital products, faster service delivery and customer-centric banking.

Cost Efficiency : Branch expansion supports financial inclusion but also increases fixed operating costs. The future challenge is to increase business and profitability without a proportionate increase in administrative and operating expenses. Greater use of mobile banking, micro-ATMs, Business Correspondents and other digital channels can help the bank achieve economies of scale.

Balancing Financial Inclusion and Commercial Efficiency : As an RRB, TNGB has both a developmental and commercial role. It must serve economically weaker sections, small farmers, SHGs and rural entrepreneurs while maintaining profitability and financial sustainability. This creates an inherent operational challenge : services must remain affordable and accessible without compromising the bank's financial performance.

Key Findings of the Study :

The major findings of the updated study are :

- ***Strong Profitability :*** TNGB recorded an audited net profit of Rs. 622.79 crore in FY 2025–26.
- ***Business Expansion :*** Total business increased to approximately Rs. 57,966 crore.
- ***Improved Operating Performance :*** Operating profit exceeded Rs. 1,000 crore.

- ***Excellent Asset Quality :*** Net NPA remained at zero and Gross NPA remained below 1%.
- ***Stable Capital Position :*** CRAR remained above 13%.
- ***Expansion of Outreach :*** The branch network increased to 699.
- ***Digital Transformation :*** Digital banking services continue to support cost-efficient delivery.
- ***Post-merger Improvement :*** The bank's recent performance indicates that the benefits of the 2019 amalgamation have continued to emerge.
- ***Financial Inclusion remains Central :*** Expansion continues to support rural, agricultural and small-business customers.
- ***Sustainability is the Next Challenge :*** Future efficiency will depend on maintaining asset quality while controlling costs and improving productivity.

Recommendations of the Study :

Based on the latest findings, the following measures are recommended :

- Strengthen deposit mobilisation to support continued credit growth.
- Maintain strict credit appraisal and recovery mechanisms to preserve the zero Net NPA position.
- Expand digital banking while retaining adequate physical support for digitally less-literate rural customers.
- Improve employee productivity through training, technology and appropriate staffing.
- Strengthen cybersecurity and customer awareness programmes.
- Increase data-driven credit monitoring using technology and analytics.
- Promote CASA deposits to improve the quality and stability of the deposit base.
- Expand MSME and agricultural finance carefully, with appropriate risk assessment.
- Measure branch-level efficiency using business per employee, business per branch and profit per employee.
- Conduct multi-year efficiency studies using DEA, regression and panel-data techniques to establish stronger empirical evidence.

Conclusions :

The latest FY 2025–26 evidence presents Tamil Nadu Grama Bank as a significantly strengthened Regional Rural Bank. The bank has achieved substantial growth in business volume and profitability while maintaining very strong asset quality. The audited net profit of Rs. 622.79 crore, total business of approximately Rs. 57,966 crore, Gross NPA below 1%, zero Net NPA, CRAR of approximately 13.64% and expansion to 699 branches collectively indicate a strong operational position. The findings suggest that the benefits associated with the 2019 amalgamation have continued beyond the initial post-merger period. Business expansion, improved profitability, technology adoption, credit-risk management and wider rural outreach appear to have contributed to the bank's improved efficiency.

At the same time, operational efficiency should not be measured only through profitability. The long-term sustainability of TNGB will depend on maintaining asset quality, strengthening deposit mobilisation, improving employee productivity, controlling operating costs, expanding responsible digital banking and managing cybersecurity risks. Thus, the FY 2025–26 performance indicates that Tamil Nadu Grama Bank has moved from a post-merger consolidation phase towards a stronger growth and efficiency phase. Future research should extend this analysis into a multi-year empirical framework covering FY 2019–20 to FY 2025–26. It should employ advanced efficiency techniques such as Data Envelopment Analysis (DEA), regression analysis and productivity ratios.

References :

- Department of Financial Services, Ministry of Finance, Government of India. (2026). *Annual Report 2025–26*.
- Indian Bank. (2026). *Annual Report / Regional Rural Banks: Performance of Tamil Nadu Grama Bank, FY 2025–26*.
- National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD). (2025). *Annual Report and publications relating to Regional Rural Banks*.
- Tamil Nadu Grama Bank. (2026). *Audited Financial Results for the year ended 31 March 2026*.
- Tamil Nadu Grama Bank. (2025). *Annual Report 2024–25*. Tamil Nadu Grama Bank.
- Tamil Nadu Grama Bank. (2026). *An Overview of Tamil Nadu Grama Bank*.
- Sathrukanbabu, R., & Muthumoni, A. (2018). Performance analysis of the Pallavan Grama Bank in Tamil Nadu and its role in issuance of rural and agricultural credit. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 5*(12), 487–495.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 309-312

पत्र–पत्रिका तथा पत्रकारिता का इतिहास एवं क्षेत्र

विकास उराँव
सहायक प्राध्यापक / शोधार्थी
कुँड़ुख़ विभाग, आर0एल0एस0वाई0 कॉलेज, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

भूमिका :

पत्रिका समाज का वह वस्तु है जो हमें हमारे समाज का पूर्व, भूत एवं वर्तमान जीवन शैली के वास्तविक रूपों के दर्शन कराती है अर्थात हम पत्र एवं पत्रिका को समाज का दर्पण भी कह सकते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि पत्रकारिता पूरे समाज का दर्पण है जिसमें समाज में घटित समस्त घटनाओं को पढ़ा, सुना जा सकता है या लेखनी के आधार पर काल्पनिक रूप से देखा भी जा सकता है। पत्रकारिता का सीधा अर्थ है प्रतिदिन की घटनाओं को यथात्थम विवरण प्रस्तुत करना। पत्रकारिता शब्द का शाब्दिक अर्थ फ्रेंच शब्द जर्नी या जर्नल से उत्पन्न है जिसका अर्थ दैनिक है। इसमें दिन प्रतिदिन के प्रमुख क्रियाकलापों का वर्णन मिलता है। समाचार पत्रों एवं विविधकालिक पत्रिकाओं के सम्पादन एवं लेखन और तत्संबंधी कार्यो को पत्रकारिता के अंतर्गत रखा गया है। इस प्रकार समाचारों का संकलन–प्रबंध प्रसारण सम्पादन कला ही पत्रकारिता कहलाती है और पत्रकारिता का प्रमुख अंग पत्रिका है। सामाजिक गतिविधियों से संबंध सभी साधन पत्र, पत्रिका, रेडियो, दूरदर्शन सभी इसी के अंतर्गत समाहित है।[1] यह सभी साधन जन चेतना मन चेतना तथा नवचेतना जागृत करने का सशक्त माध्यम है। पत्रकारिता अपनी बहुमुखी प्रवृत्तियों के कारण आज पाठकों, श्रोताओं एवं दर्शकों के बीच अपनी गहरी पैठ बना चुका है।

पत्रिका का इतिहास :

पत्रिका का इतिहास बहुत प्राचीन है। इसका प्रयोग लोग अपनी बातों को, सोच और विचारों को वर्तमान या वास्तविक दुनिया तक पहुँचाने में करते हैं। हम इसके पुरोधा देवर्षि नारद मुनि को मान सकते हैं तथा हनुमान जी तो जनसंचार के नायक थे। धृतराष्ट्र को महाभारत युद्ध का आँखों देखा हाल सुनाने वाले ''संजय'' पत्रकारिता के पुरोधा माने जाते हैं। बाइबिल में भी स्वर्ग की पुष्प–वाटिका में बाबा आदम और अम्मा हैवा का योगदान संचार का प्रारंभिक स्वरूप ही रहा है। भारतीय साहित्य में भी मेघ, हंस, तोता, कबूतर, कपि आदि को जन–संचार का माध्यम बनाकर साहित्य को सृजित किया गया है। मौर्य काल गुप्तकाल में राज्य के निर्देश, धार्मिक सूचनाएँ शिलालेख द्वारा जनसामान्य तक पहुँचाये जाते थे। संचार हेतु संवाददाता, खुपियान वीस, सवान हनवीस (जीवनी लिखने वाला), हरकारा (संदेशवाहक) संचार माध्यम के रूप में कार्यरत थे।

मनुष्य जीवन में भारत में पत्रकारिता का आरंभ जनचेतना तथा मनःचेतना के लिए राजा राम मोहन राय ने 1821 में बंगला साप्ताहिक 'संवाद कौमुदी' से की थी। इसके पूर्व ही आधुनिक युग की पत्रकारिता का जन्म 1780 में प्रकाशित हिके (Hickey) का कलकत्ता गजट कदाचित प्रथम प्रयास था। 1801 में 'हिन्दुस्तान

इंटेलीजेंस ओरिएंटल एंथोलाजी' नामक संकलन प्रकाशित हुआ। 1810 से मौलवी इकराम अली 'हिन्दोस्तानी' को प्रकाशित किया। 1816 में गंगाकिशोर भट्टाचार्य ने ''बंगाल गजट'' का प्रवर्तन किया पर हिन्दी पत्रकारिता का प्रथम चरण 1826 से 1873 को माना जाता है। हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदंत मार्तंड' के 'हरिश्चन्द मैगजीन', जो बाद में 'हरिश्चन्द चंद्रिका' नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिन्दी पत्रकारिता का दूसरा युग को भारतेन्दु युग भी कहते हैं। यह 1873 से 1900 तक चला। 1903 में 'सरस्वती' तथा 'सुदर्शन' के अवतरण के साथ हिन्दी पत्रकारिता का दूसरे युग का पटापेक्ष हो पाया।[1]

1921 में काशी से 'आज' तथा कानपुर से 'वर्तमान' नामक पत्रिका प्रकाशित हुए। 1921 में पत्रकारिता का अंदाज बदला, उसमें राजनैतिक विषय ज्यादा समावेश होने लगे तथा आधुनिक युग की शुरूआत हुई। 1921 के बाद साहित्य के क्षेत्र में अनेक नई विधाओं का जन्म हुआ और जनमानस को सजग करता रहा। आज पत्रकारिता जनचेतना का भी माध्यम बन गया है। लोकतंत्र रूपी महल चार स्तंभों पर टिकी हुई है जिसमें एक पत्रकारिता भी है। आज पत्र–पत्रिकाओं में विविध सूचनाओं, समाचारों को हम देखते हैं जिसके लिए हम प्राचीन प्रणालियों का समापन खड़ी बोली गद्य के प्रायोजनिक विस्तार पत्रकारिता की विशिष्ट भाषा के रूप में पत्रकारिता हिन्दी के विनियोग की अभिव्यक्ति अनुकूलता के साथ हुई।[2]

1947 ई० में देश स्वतंत्र हुआ। इसके बाद सामाजिक मूल्यों का भी पतन होना आरंभ हो गया। कई पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन सामाजिक मूल्यों को बचाने के लिए हुआ। उसमें यह एक 'प्रतीक' बनकर काम करना आरंभ किया। इसके पश्चात पत्रकारिता स्वार्थ को छोड़कर 'जन–चेतना' जागरूक करने का माध्यम बन गयी है। ''खंडित लोक विश्वास को यह पुनः अर्जित करके बुद्धिजीवी अपने समय की सांस्कृतिक चुनौतियों से लड़ सकती है और परवर्ती पीढ़ी को आदर्श दिशा दिखा सकती है इसी बिन्दु से पत्रकारिता की भूमिका सही राह पर पड़ेगी।''[3]

पत्रकारिता के क्षेत्र :

इस वर्तमान परिवेश में पत्रकारिता का क्षेत्र काफी वृहद हो चुका है। किसी विशेष सीमा क्षेत्र में इसे नहीं बाँधा जा सकता है। एक छोटे से गाँव से लेकर राज्य, राष्ट्र और अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र के समाचारों को विभिन्न माध्यम से कुछ समय में ही पूरे जगत में फैला देता है। यही कारण है कि हम आज किसी भी देश के समाचारों को देखकर, सुनकर तुरंत अवगत हो जाते हैं। समाचार का सिलसिला अनंत काल से चला आ रहा है जो आगे तक चलता ही रहेगा। और इसका क्षेत्र निरंतर वृहद होता रहेगा। सबसे पहले अकेला हिक्की गजट ने इस क्षेत्र की शुरूआत की थी परंतु आज इस क्षेत्र में लाखों की संख्या में इसके सहयोगी हैं जो इस पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना पाँव पसार रहे हैं। विश्व के सभी सामाजिक जीवन क्षेत्र में पत्रकारिता कार्यशील है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, विज्ञान, तकनीकी, भौगोलिक एवं कला सभी क्षेत्रों को पत्रकारिता ने अपने दायरे में ले रखा है।

- **आर्थिक –**

वर्तमान युग के अर्थव्यवस्था को इकोनोमिक टाइम्स, बिजनेस स्टैंडर्ड, फाइनांसियल एक्सप्रेस आदि से व्यापक जानकारी मिलती है जो खुद को पत्रकारिता से जोड़े रखता है। मुद्रा बाजार, शेयर बाजार, सोना–चाँदी के भाव की जानकारी हो या फिर सरकारी नीतियों से जुड़े समाचार सभी हमें पत्रकारिता से ही मिलते हैं। देश–विदेश की अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण जानकारी भी हमें पत्र–पत्रिका से मिलती रहती है।

- **राजनैतिक :–**

पत्रकारिता समाज के हित की आवाज है जिसे हम जनता का सांसद भी कह सकते हैं। राजनीति से संबंधित छोटी–बड़ी सभी प्रकार की जानकारी हमें पत्रकारिता के माध्यम से ही प्राप्त होती है। चाहे वह राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर की बाते क्यों न हो इन सभी की जानकारियाँ हमें सर्वप्रथम जनता के समक्ष पत्रकारिता के माध्यम से ही पहुँचता है फिर जनता की प्रतिक्रिया द्वारा उसे फिर कानून के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। राज्य स्तर पर विधान मंडल की खबरें तथा राष्ट्रीय स्तर पर संसद की खबरों से कभी–कभी समाचार भरे पड़े रहते हैं।

- **सामाजिक :–**

सामाजिक पत्रिकायें (Social Magazines) समाज–सुधार, संस्कृति, शिक्षा और समकालीन मुद्दों पर विशेष होता है और ये पत्रिकायें समाज को अपना वास्तविक्ता दिखाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। इन पत्रिकाओं में 'हंस' जो प्रेमचंद द्वारा स्थापित है यह सामाजिक यथार्थ और कथा साहित्य का प्रमुख केन्द्र है। 'सरिता' यह सामाजिक पारिवारिक मुद्दों और महिलाओं के अधिकारों पर केन्द्रित मासिक पत्रिका है। इसी तरह– वसुधा, अखंड ज्योति, ज्ञान गरिमा सिंधु, गृहशोभा, गृहलक्ष्मी। इन पत्रिकाओं में सामाजिक वास्तविक्ता तो दिखती ही है साथ ही घरेलू नोक–झोंक एवं परिवार में अच्छी संबद्धता को दर्शाती है।

- **धार्मिक पत्रिकायें :–**

पत्रिकाओं ने धार्मिक क्षेत्र को भी नहीं छोड़ा। समाज में ऐसे बहुत से पत्रिकायें हैं जो आज भी हमें दिखाई पड़ते हैं और इन पत्रिकाओं का अन्य छोटे–बड़े धार्मिक संरचनाओं एवं संगठनों द्वारा विमोचन किया जाता है। हिन्दी में कई लोकप्रिय धार्मिक और आध्यात्मिक पत्रिकायें मौजूद हैं जो सनातन धर्म, योग, ज्ञान और नैतिक मूल्यों पर ज्ञानवर्धक लेख, कथाएँ और विचार प्रकाशित करती है।

हिन्दी की कुछ प्रमुख एवं प्रसिद्ध धार्मिक पत्रिकाओं की सूची में सर्वप्रथम ''कल्याण'' आता है जो गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित होता है। यह भारत की सबसे प्रतिष्ठित और लोकप्रिय मासिक धार्मिक पत्रिकाओं में से एक है जिसमें अध्यात्म, धर्म, पुराण कथाये एवं संतों के लेख प्रकाशित होते हैं। 'अखंड ज्योति' पत्रिका जो आध्यात्मिकता–भारतीय जीवन एवं संस्कृति पर केन्द्रित है। 'योगदा' जो 1925 से परमहंस योगानंद द्वारा स्थापित पत्रिका है जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए प्राचीन ज्ञान प्रदान करती है। इसी प्रकार ऋृषि प्रसाद, धर्मयुग, धर्मायण, साधना पथ आदि पत्रिकायें हैं जो धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना को बढ़ावा देती है, ज्ञान विज्ञान के दर्शन कराती है।

- **बाल पत्रिकायें :–**

बाल पत्रिकायें हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला या अन्य चीनी, जापानीज सभी भाषाओं में देखने को मिलती है जो बच्चों के मानसिक विकास, नैतिक और भाषा ज्ञान को बढ़ावा देती है। ये पत्रिकायें – चंपक, नंदन, बाल भारती, चंदा मामा, लोट–पोट, नागराज, चाचा चौधरी आदि पत्रिकाओं के रूप में देखने को मिलते हैं।

वर्तमान समय में पत्रिका :–

आदि प्राचीन काल से अब तक आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक या बालकाल सभी क्षेत्रों के अलग–अलग पत्रिका प्रकाशित होते रहे हैं जो समाज को समृद्ध एवं सजग बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है परंतु इस वर्तमान समय में इसका उपयोग कम होता जा रहा है। इस युग में लोग दफ्तर, घर या

सफर करते या पैदल चलते वक्त भी खुद को व्यस्त रखते हैं। इसके लिए सबसे उपयुक्त वे इस युग के मोबाइल (Mobile) को मानते हैं जो मुट्ठि में समा जाने वाली चीज है जिसमें संसार की सारी पत्रिकायें सारी जानकारियाँ कुछ सेकेंडों में उपलब्ध हो जाती है। वास्तव में यह बहुपयोगी है परन्तु, प्राचीन से वर्तमान सभी पत्रिकाओं का स्थान ले रही है अर्थात यह उन सभी प्राचीन पत्रिकाओं को निगलती जा रही है, जिसका प्रभाव आज हम एक वर्ष के शिशु से लेकर बाल्यावस्था एवं युवावस्था तक देख सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ. अनुज तिवारी, आधुनिक पत्रकारिता, 2010
2. डॉ. अनुज तिवारी, जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता आमुख, 2010
3. डॉ. राकेश दयाल, पत्रकारिता एवं जनसंचार।
4. डॉ. मो० इलियास मजीद, झारखण्ड की पत्रकारिता और जनजातीय जनसंचार।
5. डॉ. संजय कुमार षाड़ंगी, नागपुरी साहित्य के विकास में पत्र–पत्रिकाओं का योगदान।

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 313-315

FUNCTIONAL AND STRUCTURAL CHANGES IN THE FAMILY SYSTEM: A SOCIOLOGICAL STUDY

Vishakha Gurjar, Reseracher
Dr. Rani Prabha Solanki, Associate Professor & Head
Department of Sociology, M. V. S. College. Udaipur (Raj.)

Abstract :

This dissertation investigates the structural and functional transformations within the modern family institution under the influence of urbanization, industrialization, and globalization. Grounded in structural-functionalist theory, the study analyzes the shift from traditional, extended family models to nuclear, dual-income, single-parent, and reconstituted units. Empirical and qualitative findings demonstrate that while economic and educational functions have shifted toward external formal institutions, the primary functions—emotional support, primary socialization, and identity formation—remain resilient.

1. Introduction & Theoretical Framework :

Background: The family serves as the fundamental building block of society. Sociological paradigms establish that changes in economic production directly affect domestic arrangements.

Theoretical Grounding :

- **Talcott Parsons (Structural Functionalism) :** Examines the "isolated nuclear family" as an adaptation to industrial society.
- **William J. Goode :** Analyzes global trends in family patterns driven by modernization.
- **Karl Marx & Friedrich Engels (Conflict Theory) :** Views structural family changes through economic relations and property ownership.
- **Research Problem :** Identifying how macro-societal shifts alter micro-level family dynamics, authority models, and functional expectations.

2. Structural Changes :

- Structural DimensionTraditional ModelContemporary Model
- Household Composition Joint / Extended multi-generational unitsNuclear, single-parent, cohabiting, or blended units
- Authority Pattern Patriarchal and centralized leadership Egalitarian and democratic decision-

making

- Mate SelectionEndogamous, parental arrangementIndividual choice, autonomous courtship
- Family SizeHigh fertility rate; multi-child householdsLow fertility rate; single-child or child-free units

3. Functional Changes :

- **Economic Function :** Shifted from a primary unit of production (agriculture, cottage industry) to a unit of financial consumption.
- **Educational & Caregiving Function :** Formal schooling, daycare centers, and elder-care facilities have replaced traditional domestic instruction and caregiving.
- **Socialization :** Primary socialization remains within the household, but secondary socialization is shared with digital media, peer groups, and educational systems.
- **Affective Support :** The psychological and emotional role of the family has intensified as an offset to external social stress.

4. Key Socio-Economic Drivers of Change :

- **Women's Economic Participation :** Higher workforce entry alters traditional gender roles, authority structures, and division of domestic labor.
- **Urbanization and Spatial Mobility :** Geographic displacement splits extended kin networks into localized nuclear households.
- **Technological & Cultural Factors :** Modern communication, individualized entertainment, and evolving legal frameworks reshape household communication and marital stability.

5. Research Methodology :

- **Research Design :** Mixed-methods (descriptive and analytical).
- **Data Sources :** Primary surveys/interviews paired with census and socio-economic secondary data.
- **Key Indicators :** Household headship, income contribution ratios, decision-making indices, and intergenerational co-residence rates.

6. Major Findings & Sociological Implications :

- Structural contraction (reduction in household size) does not equal complete functional disintegration; kinship networks persist virtually and financially.
- The redistribution of domestic authority toward egalitarian models improves individual agency, though it introduces role strain among working parents.
- Emotional stability and child socialization remain core domestic functions, requiring policy focus on work-life balance, parental leave, and social security for aging populations

References :

- Goode, William J. (1963). World Revolution and Family Patterns. Free Press.
- (Essential work analyzing how industrialization and modernization reshape global family structures).
- Parsons, Talcott, & Bales, Robert F. (1955). Family, Socialization and Interaction Process. Free Press.
- (Foundational text for structural-functionalist perspectives on the isolated nuclear family.)
- Murdock, George P. (1949). Social Structure. Macmillan.
- (Defines universal functions of the family system across cross-cultural contexts.)
- Burgess, Ernest W., & Locke, Harvey J. (1945). The Family: From Institution to Companionship. American Book Company.
- (Traces the transition of family from a formal institution to an affective partnership.)
- Engels, Friedrich. (1884). The Origin of the Family, Private Property and the State. Progress Publishers.
- (Marxist analysis of socio-economic factors driving structural changes in domestic units.)
- Madan, T. N. (1965). Family and Kinship: A Study of the Pandits of Rural Kashmir. Asia Publishing House.
- (Classic empirical study on domestic structure and kinship systems in India.)
- Kapadia, K. M. (1966). Marriage and Family in India. Oxford University Press.
- (Comprehensive sociological baseline for structural transitions in traditional Indian families.)
- Shah, A. M. (1998). The Family in India: Critical Essays. Orient Longman.
- (Deconstructs myths regarding joint vs. nuclear family structures in contemporary India.)
- Uberoi, Patricia. (2003). Freedom and Destiny: Gender, Family, and Popular Culture in India. Oxford University Press.
- (Examines modern shifts in marital practices, family authority, and cultural values.)
- Giddens, Anthony. (1992). The Transformation of Intimacy: Sexuality, Love and Eroticism in Modern Societies. Stanford University Press.
- (Focuses on democratic relationship models and individual autonomy in modern families.)
- Beck, Ulrich, & Beck-Gernsheim, Elisabeth. (1995). The Normal Chaos of Love. Polity Press.
- (Explores how individualization affects household dynamics, marriage, and child-rearing.)
- Cherlin, Andrew J. (2010). The Marriage-Go-Round: The State of Marriage and the Family in America Today. Vintage Books.
- (Analyzes high fluidity, cohabitation, and structural shifts in modern domestic units.)
- Ogburn, William F. (1929). "The Changing Family." Publications of the American Sociological Society, 23, 124–133.
- Nimkoff, Meyer F., & Ogburn, William F. (1955). "Technology and the Changing Family." American Journal of Sociology, 61(1), 20–28.
- Desai, Sonalde, & Andrist, Lester. (2010). "Gender Scripts and Age at Marriage in India." Demography, 47(3), 667–687.
- Thornton, Arland. (2001). "The Developmental Paradigm, Reading History Sideways, and Family Change." Demography, 38(4), 449–465.

शोध परिधि SHODH PARIDHI ISSN : 2349-9575
An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Impact Factor : 5.634
Sept. 2026
Vol. 13, Issue-1
Page No. : 316-323

'नेपाल की वह बेटी' उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागाध्यक्ष, संस्कृत, पत्रकारिता तथा हिंदी,
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू।

सार :

फ्रांसीसी दार्शनिक तथा समालोचक हिप्पोलाइट एडल्ट टेन (सन 1828–1893) से प्रतिपादित समाजशास्त्रीय मान्यता जाति, क्षण और पर्यावरण संबंधी विचार से साहित्य में सामाजिक समालोचना का क्षेत्र सशक्त और विस्तृत बना हुआ है। तेन ने अपनी कृति "हिस्ट्री ऑफ इंग्लिस लिटरेचर" (सन 1864) में साहित्य की समालोचना जाति, क्षेत्र और पर्यावरण के आधार में करने की अवधारणा प्रस्तुत की है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि समाज को साहित्य रचना करने की शक्ति के रूप में और साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में साहित्यकार व्याख्या करते हैं और अपनी कृति में अपने युग का चित्र उतारते हैं। प्रस्तुत लेख में 'नेपाल की वह बेटी' उपन्यास का सामाजिक अध्ययन किया गया है। इस उपन्यास की कहानी जंग बहादुर राणा के समय की है। उपन्यास का कथानक काल 1920 से 1923 तक का है और इसका क्षेत्र काली गंडकी घाटी का ग्रामीण पहाड़ी जीवन है। उपन्यास को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि राणा कालीन समय का समाज किस प्रकार का था? और वे किस प्रकार से जन समुदाय पर अत्याचार किया करते थे? इसका बिंब हमारे सामने आता है। प्रस्तुत शोध पत्र में 'नेपाल की वह बेटी' उपन्यास का समाजशास्त्रीय विश्लेषण हिप्पोलाइट एडल्ट तेन के त्रितत्व (जाति, क्षण और परिवेश) के आधार पर करना ही इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

शब्द कुंजिका : तरुणी, प्राज्ञिक, वीरंगना, तगाधारी ब्राहमण, सतीत्व, सौतन, उदात्त चरित्र।

1. विषय परिचय :

सामाजिक संरचना के आधार में पारिवारिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा भौतिक आदि विषय आते हैं। इन सबके मिश्रण से समाज का निर्माण होता है। इसी प्रकार एक ही रहन–सहन, धर्म, रीति रिवाज, संस्कृति आदि को वहन करने वाले मनुष्य का समूह ही समाज है। इसी समाज के मनुष्यों के संबंध तथा सामाजिक क्रियाकलाप जैसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संबंध का वैज्ञानिक तथा वस्तुपरक अध्ययन करने वाले समाज को समाजशास्त्र कहा जाता है। अर्थात समाज और इसकी संरचना के सटीक अध्ययन करने वाली विधा अथवा मानव समाज और संस्कृति के उत्पन्न, विकास आदि का विवेचन करने वाले साहित्य को समाजशास्त्र कहा जाता है। समाज के सामूहिक क्रिया कलाप, व्यवहार, सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनीतिक–आर्थिक अवस्था, साहित्यिक कृति में किस प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है? कहकर साहित्य को समाज का दर्पण मानते हुए साहित्य कृति का अध्ययन करने वाले शास्त्र के रूप में साहित्य का समाजशास्त्र दिखता है।

2. पूर्वकार्य एवं सीमांकन :

नेपाल के हिंदी उपन्यासों का अभी तक समाजशास्त्रीय आधार पर शोध कार्य नहीं हुआ है और शोधकर्ताओं के लिए यह सर्वथा नूतन विषय भी है। नेपाल के उपन्यासों का परिवेशगत विशेषता, गहनता, आयाम का स्वरूप और प्राज्ञिक विश्लेषण और मूल्यांकन न होने के कारण इस सर्वोत्तम और नवीन विषय पर यह शोधालेख है। अतः नेपाल के हिंदी उपन्यासों में से एक नेपाल की वो बेटी उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन में रिक्तता दिखने के कारण इस निर्दिष्ट विषय में आज तक शोध कार्य भी न होने के कारण प्रस्तुत शोध कार्य का औचित्य रहा है। प्रस्तुत शोध में नेपाल की वो बेटी उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है।

3. समाजशास्त्रीय अध्ययन :

प्रस्तुत है नेपाल की वो बेटी उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन

3.1. नेपाल की वो बेटी उपन्यास में प्रजाति :

वंशगत रीतिरिवाज, खानपान, रहन सहन आदि को प्रजाति कहा जाता है। इसे वंशगत परिचय भी कहा जाता है। गुप्तजी का कहना है कि मनुष्य के वंशगत आधार से शारीरिक बनावट, भाषा, रीतिरिवाज, खानपान, सांस्कृतिक परिचय, विचार, रहनसहन, संस्कारगत विशिष्टता दृष्टिकोण की मौलिकता के साथ स्थूल और सूक्ष्म भिन्नता प्रजाति के अभिलक्षण हैं (सन् 1981, पृ.41)। किसी भी साहित्य में जहाँ चरित्र का वर्णन होता है उसके माध्यम से जाति का बोध होता है। उस पात्र के द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश का पता चलता है, यही प्रजाति है।

इस उपन्यास की प्रधान नारी पात्र है हेमा। वह किसी राजवंश या अभिजात वर्ग की कुमारी नहीं, एक निर्धन गुरुंग किसान की अनपढ़ परंतु अनुपम सुंदरी बेटी है। उपन्यास के आरंभ में तरुणी विधवा के रूप में उससे पाठक का परिचय होता है। (कुंवर, बलभद्र, पृष्ठ 4) बलभद्र ठाकुर की नायिका हेमा न तो बिहारी की नायिका है, न सिनेमा की तारीका, ना सोसायटी गर्ल, वह है नेपाली वीरंगना।

प्रेम बहादुर और हेमा आपस में विवाह करना चाहते हैं उनके विवाह में बाधा है जात–पात की। परंतु हेमा जात–पात की, समाज की, परवाह न कर काली नदी पार कर अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है। परंतु जल्दी बिधवा बन जाती है और कुछ दिनों के बाद अपने मायके चली जाती है। वह षडयंत्र पूर्वक जिम्वाल से विवाह करने में बाध्य हो जाती है। पर उसे हमेशा घृणा करती है। एक दिन फिर हरिशंकर नामक लड़के के साथ विवाह कर लेती है।

जयशंकर जैसे पापी ब्राह्मण के विरुद्ध वह उत्तर जाती है। तगाधारी ब्राह्मण के पापों को देख उसे घृणा हो जाती है। विद्रोही हेमा सीना तानकर समाज की रुढ़ियों के विरोध में खड़ी हो जाती है। उपन्यास के अंत में जब उसका पति हरिशंकर राजा को चुनौती देकर उससे लड़ने को खड़ा होता है तो वीरांगना हेमा अपने पति के कंधे से कंधा मिलाकर राजा के हाथी पर आक्रमण करती है। युद्ध में उसका पति और सौत वीरगति पा जाते हैं और वह अपने पति और सौत की हत्यारे का गला घोट कर मारती है।

महेंद्र हमाल जमींदार था और उनकी कई पत्नियाँ थीं। उस समय एक से ज्यादा विवाह करने की प्रथा ही थी। राजा हरि बहादुर शाह से भी महेंद्र हमाम संपन्न था इसलिए राजा हरि बहादुर उससे जलता था। हमाल कर्ज देकर अपना आय बढ़ाता था और जुमली घोड़े में सवार होकर घूमता रहता था। एक दिन महेंद्र हमाल पुल बनाने के लिए पैसे इकट्ठे करने में हेमा के पिता के गांव में गया था। वहीं उसने हेमा को देखा। उम्र से साठ

का होने पर भी वह हेमा को पाना चाहता है।

हेमा का पिता मान बहादुर गुरुंग जाति का है। सीदा–साधा और अपने कर्तव्य में रत। हमाल जब उसकी बेटी पर गलत मनसाय के साथ मुखिया का सहारा लेता है तो सारी बातें सुनकर वह बहुत क्रोधित हो जाता है और अपनी जाति के बारे में कहता है – "हम चार थरी गुरुंग हैं मुख्या। घले जाति के जाँड रक्सी (शराब) से भले ही हम परहेज न रखें मगर फिर भी इन ऊँचे कहे जाने वाले बाहुन–ठाकुरों से चाल–चलन, खान–पान में हम कहीं ऊँचे हैं, कहीं सिरीष्ट हैं। इनसे हमारा ईमान ऊंचा है, चाल चलन अच्छा है (ठाकुर, बलभद्र पृष्ठ 27)।"

महेंद्र हमाल को मुखिया ने मन बहादुर की अस्वीकृति बात सुना दी तो वह उससे बदला लेना चाहता है, उसे बदनाम करना चाहता है, वह उसे फंसा कर समाज से कलंकित करना चाहता है। इसके लिए उसने एक सारकी को आदेश दिया और वह सार्की न चाहते हुए भी आदेश पालन में विवश था। उस सार्की (अछूत जाति) ने इससे पहले तीन चार शादियां की थी पर किसी से बच्चे नहीं हुए और पत्नी भी किसी दूसरे से भाग जाती थी। अबकी बार उसने अपने साले की जवान बेटी से विवाह किया था और उससे एक बेटा है पर वह बेटा उसका अपना न होकर जिम्वाल का था क्योंकि जिम्वाल उसकी सुंदर तरुणी पत्नी के सतीत्व से खेला करता था। यह रहस्य उससे छिपा न था पर वह विरोध नहीं कर सकता था। पर धनवान के सामने निमुखा गरीब क्या कर सकता। लेखक लिखते हैं, "धनवान को न जाति से हाथ धोना पड़ता है, न धर्म से, न धन से (ठाकुर, बलभद्र पृष्ठ 37)।"

उपन्यास में कुछ नारी पात्र हैं – हेमा, कुसुमा, पार्वती, और जयशंकर की मझली पत्नी। राणा कालीन युग में वैसे भी महिलाओं को भोग्या के रूप में देखा जाता था। समाज के सामंती वर्ग या अमीर वर्ग अगर किसी सुंदर युवती या महिला को देखें तो वह किसी भी तरह उसे प्राप्त करना चाहता है। और इस उपन्यास में भी इस प्रकार की घटना यत्र–तत्र दिखती हैं। हेमा बहुत सुंदर युवती है और उसे समाज के सामंती वर्ग या फिर अमीर वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं, उससे भोग करना चाहते हैं। परंतु हेमा यहां अबला न होकर के एक सबला पात्र हैं। सुंदर होते हुए भी वह बहुत ही वीरांगना है और अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझने में समर्थ हैं। बाध्यतावश वह विवाह तो जिम्बाल साहब से कर लेती है परंतु उसका दिल उसे कभी स्वीकारता नहीं है। वह उसे छोड़कर किसी दूसरे युवक के साथ भाग जाती है।

राजा हरि बहादुर शाह ने राजकुमार हरिशंकर को धमकी दे गया तो हरिशंकर ने अपनी पत्नियों से कहा – "मैं यह देखना चाहता हूं कि अम्मा की कौन माई का लाल अपनी मां की गोद से मुझे अलग फेंकने की हिम्मत करता है। और कौन हमारी राज रजवान मेरे बाप की जायदाद से मुझे भगाता है, मुझे अलग करता है या तो उस भगाने वाले को मटिया मेट कर दूंगा या खुद अपनी अम्मा की प्यारी गोद में लोट कर उसकी मिट्टी में मिल जाऊंगा।" इस प्रकार की बात से भी पता चलता है कि हरिशंकर एक साहसी, निडर पुरुष होते हुए भी अपने जमीन पर बेहद प्यार करने वाला इंसान है। सबके पास लड़ने की हिम्मत नहीं होती है परंतु हरिशंकर यहां लड़ने के लिए भी तैयार है।

उपन्यास के चरमोत्कर्ष में दुश्मनों के साथ हेमा का पति लड़ता है और वह भी अपने पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आती है। उसका पति और उसके सौतन वीरगति को प्राप्त हो जाते हैं और वह भी अपने पति और सौतन के हत्यारे को गला घोंटकर मार देती है। हेमा दोबारा विधवा हो जाती है। इस भरे पूरे संसार में वह अकेली रह गई। परंतु उसी समय मिला उसे एक धर्म भाई और उसका धर्म शिशु। जिसे पालने के लिए जीने

का अनुरोध उसकी कुसुमा मरते समय करके चली गई थी।

3.2. नेपाल की वो बेटी उपन्यास में पर्यावरण :

पर्यावरण का मतलब है परिवेश। साहित्य में पर्यावरण लेखक को साहित्य सिर्जना के लिए प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। पर्यावरण की अभिव्यक्ति पात्र के द्वारा या फिर सर्जक की अभिव्यक्ति से भी प्रस्तुत होता है। नेपाल की वो बेटी उपन्यास में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक, लैंगिक, स्थानीयपन, परदेश का रहन सहन जैसे पर्यावरण का चित्रण किया है।

नेपाल के सैकड़ों मील लंबे समस्त पश्चिमी भाग का ठेठ पहाड़ी ग्रामीण जीवन इस उपन्यास में चित्रित जीवन से भिन्न नहीं है। सामंती शासन एवं संस्कृति की वेडियों में जकड़ा हुआ वह जीवन जैसे जड़वत आज भी जहां का तहां मौजूद है।

राणा कालीन घटना को लेकर के लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। उपन्यास उच्च वर्ग के लोग या फिर सामंती लोग किस प्रकार से गरीब–दुखी जनता को कष्ट देते हैं ? इसके बारे में उन्होंने बहुत उत्कृष्ट ढंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। उपन्यास में महेंद्र हमाल, राजा हरि बहादुर शाह और मुखिया जयशंकर पंत जैसे अत्यंत पतित पात्र पाए जाते हैं और वही हरिशंकर और रूप बहादुर जैसे उदात्त चरित्र भी हैं। समाज में दोनों प्रकार के लोग होते हैं अच्छे हैं और बुरे। बुरे लोगों का आशय यह रहता है कि किस प्रकार से वे आर्थिक संपन्न बने रहे या उसे समाज में मान–सम्मान मिलता रहे या वह भोग विलास के साधनों का प्रयोग करते रहे तथा लड़कियों का उपयोग करते रहे। वह केवल अपने बारे में सोचता है। समाज में तो ये लोग सबके सामने उच्च नैतिकता और मर्यादायुक्त बातें करते हैं परंतु बंद कमरे में इनका अत्याचार या इनका व्यवहार घिनौना होता है। हरिशंकर का चरित्र स्वाभिमानी वीर युवक का चरित्र है जो परिस्थितियों से समझौता करना नहीं जानता है। वह समाज में अन्याय होता देख नहीं सकता है और किसी को नीचा दिखाना उसके लिए बहुत अपमान जैसा है। वह किसी भी अन्याय के सामने झुकने को तैयार नहीं होता है बल्कि वह प्रतिरोध करता है।

जिम्वाल महेंद्र हमाल गांव के मुखिया के यहां रुका हुआ था। मुखिया ने पूरे सम्मान के साथ मेजमान किया। ब्राह्मण ने हमाल को ज्युनार किया। (नेपाल में सामन्तओं के भोजन को आदर से ज्यूनार कहा जाता है। यह ज्यूनार जेवनार का बिगड़ा रूप है।) उस समय गरीब लोग या छोटे लोग अमीर लोगों को या सामंती लोगों को खूब चाकड़ी करके या फिर स्तुति गायन की तरह करते थे। यहां देखिए मुखिया हमाल से कह रहा है– "यह गरीब तो हमेशा हरदम प्रभु की सेवा में हाजिर है हजूर। हुकुम बक्शा जाए। जहां हजूर का पसीना वहां इस दास का खून। मुझ पर विश्वास बक्या जाए प्रभु गरीब परवर।"

हमाल सुंदर स्त्री को भोगना चाहता था। उसने जब से हेमा को देखा और उसे पता चला कि हेमा भरी जवानी में विधवा हो गई है तो वह उसकी जवानी से खेलना चाहता है और इसके लिए उसी के गांव के एक मुखिया से सहयोग लेना चाहता है। वह कहता है– "...अगर महेंद्र हमाल ने 9, 10 रख ही ली तो कौन सा बड़ा पुरुषार्थ कर लिया मुखिया ज्यू। नेपाल के तीन सरकारों प्रधानमंत्रियों को देखिए। राणा जंग बहादुर के छोटे राणा पद्मजंग के 108 थीं। और सैकड़ों जवान जवान केटियां (दासियां) सो अलग। स्वयं जंग बहादुर के महल में अनगिनत सुंदरियां थीं। नेपाल के हर हिस्से से हर पाँचवें वर्ष चुन चुन कर खूबसूरत नौजवान लड़कियां जबरन पकड़वा कर उन्हें महल में कैद कर जाया करती थीं। (ठाकुर, बलभद्र, पृष्ठ 21)।" इस बात से पता चल जाता है कि उस समय महिलाओं के लिए कितना खराब समय था। तब पुरुष प्रधान समाज होने के कारण महिलाओं

के ऊपर अत्याचार किया जाता था।

हेमा के प्रति जिम्वाल की कुदृष्टि से जब उसके पिता वाकिफ हो जाते हैं तो वह जिम्वाल को खबीश कहते हुए मुखिया के सामने कहते हैं – "इतना बूढ़ा हो गया है, मुझसे भी बड़ा है वह, कई जवान स्त्रियों के होते हुए भी फिर इस प्रकार से इच्छा रखना बहुत खराब है। हेमा के पिता आगे कहते हैं – "ऊंची जात का बनता है। ठकुरी कहलाता है। मगर सार्की, चमार, दमाई, दरजी, लोहार बगैर अछूत छोरियों को भी नहीं छोड़ता। दूसरा कोई अगर इसी काम में पकड़ा जाए तो उस पर पानी का मुद्दा लागू हो जाए। वह इहलोक परलोक दोनों से बिगड़ जाए। मगर यह बड़े कहे जाने वाले लोग, हुक्काम लोग यह सब करके भी बेदाग बचे रह जाए। भले और ऊंचे ही बने रह जाए। क्योंकि अड्डा अदालत उनके हाथ में है (ठाकुर, बलभद्र, पृष्ठ 25)।" इस वाक्य से पता चलता है कि उस समय धनी या सामंती या उच्च वर्ग के लोग गरीब लोगों को या निर्धन लोगों को अथवा अछूत लोगों को कितना सताते थे।

हेमा के पिता को पता था कि जिम्वाल बहुत खराब है। वह किसी युवती को पहले लेकर आता, कुछ महीनों तक उसके साथ मौज मस्ती करता फिर वह जिससे नाराज है उस पर उस युवती का आरोप लगाकर उसे पंचखत या जार घोषित करके दंडित करता है। जिम्वाल ने ऐसे कई कार्यो को अंजाम दिया था। इस प्रकार के कुकार्य करके वह संपत्ति जोड़ा करता था। सामंती लोगों को या उच्च वर्ग के लोगों को या धनी लोगों को किसी के प्रति कोई दया, ममता, करुणा, सहानुभूति नहीं थीं बस जैसे भी हो उसनी संपत्ति ज्यादा होनी चाहिए, खुद को भोग विलास करना चाहिए, खुद की जिंदगी आराम से बितना चाहिए। गरीब मरे या उन्हें दुख कष्ट मिले कोई परवाह नहीं।

जिम्वाल इतना खराब होता है कि वह मान बहादुर को फँसाना चाहता है। वह अपने ही जमीन पर रखे सारकी से उसके हाथ का छुआ शराब पीने के आरोप में उसको पतित या सार्की बनाना चाहता है। सीधा सादा धन बहादुर गुरुंग भी इस आरोप से भयभीत हो जाता है। वह मन ही मन सोचता है– "तो क्या वह सरेआम सारी जात–बिरादरी के सामने, सारे समाज के सामने, एक सार्की के हाथ की रक्सी (शराब) जानबूझकर पीने का अपराधी साबित किया जाएगा और इस अपराध में जेल जुर्माने के दंड भुगतने के अतिरिक्त अपनी जाति से बहिष्कृत भी किया जाएगा। वह चार थरिया गुरुंग न रहकर सार्की की निकृष्ट जाति में शामिल किया जाएगा (ठाकुर, बलभद्र, पृष्ठ 40, 41)।" हालांकि आज के दिनों में भी दूर दराज या गांवों में जाति को बहुत महत्व देते हैं लोग। फिर उस समय में तो जाति का इतना विकराल रूप था कि हर कोई ऊंची जात को महत्व देते थे।

3.3. नेपाल की वो बेटी उपन्यास में क्षण :

क्षण अर्थात् समय बोधक परिस्थिति। इसे युगचेतना से भी सम्बोधन किया जाता है। साहित्यिक कृति में भिन्न भिन्न युग के प्रभाव और विशेषताओं का अभिव्यक्त होता है। युगचेतना का प्रभाव लेखक में होता ही है। इसलिए उसकी कृति के पात्र लेखक के अनुसार ही अभिव्यक्त करते हैं। पाठक वर्ग में भी युग चेतना का प्रभाव पड़ता है।

नेपाल की वो बेटी उपन्यास में सामाजिक अवस्था तथा सांस्कृतिक चेतना के विकास का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत कृति में प्रयुक्त समाज मनोविज्ञान, सांस्कृतिक भूगोल के विशिष्ट चरित्र और मानवीय सभ्यता द्वारा जातिगत विषमता को चित्रण किया है। समाज में विकसित सम और विषम क्षणगत स्वरूप को संस्कृति, धर्म और संस्कार के द्वारा युगचेतना संरचना को प्रस्तुत किया गया है।

नेपाल की वो बेटी उपन्यास पढ़ने पर पता चलता है कि इसकी कथावस्तु राणा कालीन शासन व्यवस्था की है। वि.स. 1742 पृथ्वी नारायण शाह के अभिषेक से वि.स. 1846 गगन सिंह की हत्या तक नेपाल के इतिहास का गोरखा युग है और वि.स. 1846 से वि.स. 1951 तक राणा युग। गोरखा युग में भौतिक उन्नति के साथ–साथ नेपालियों के सभी मनवीय गुणों का विकास हुआ।

राणा युग में नेपाल का घोरतम पतन हुआ और उसका निम्नतम स्तर राणाशाही के संस्थापक जंग बहादुर के चरित्र में दिखाई देता है। और जंग बहादुर के चरित्र का वह विषय राणाशाही की समस्त परंपरा में व्याप्त था (ठाकुर, बलभद्र, पृष्ठ, थ)।

उस समय नेपाल की स्थिति कैसी थी यह उपन्यास पढ़ कर पता चलता है। साथ ही साथ विश्व में कहां क्या हो रहा है इसका भी जगह–जगह पर लेखक ने व्यक्त किया है।

और अब जेठी के साथ माइली भी हो चली, जैसे हिटलर के विरुद्ध ब्रिटेन और फ्रांस पोलैंड के साथ हो चले, मानो कुसुमा रूपी पोलैंड के बचाव में संयुक्त मोर्चा बनाती हुई माइली भी फटकार उठी– औरतों का चिड़ियाघर बनाना चाहते हो घर में? लाज शर्म धोकर पी गए।.....– अगर तुमने फिर भी बेशर्मी करने की ठान ही ली तो, कह देती हूं कि तुम्हारे मुंह पर कालीख पोत कर मैं घर से निकल जाऊंगी। नेपाल की वो बेटी के कथानक का काल है सन 1920–23 चंद्र शमशेर के कठोरतम शासन का काल। नेपाल का घोरतम पतन का काल (ठाकुर, बलभद्र, द)।

जंग बहादुर ने अंग्रेजी साम्राज्य के सहारे छल और हत्या से शासन हथियाने का जो नमूना चलाया था, उसके वंश के लोगों का आपसी बर्ताव भी उसके सांचें में ढले बिना नहीं रह सकता था (ठाकुर, बलभद्र, पृष्ठ, B)

उपन्यास के कथानक का काल सन 1920, 23 है और इसका क्षेत्र है पश्चिमी नेपाल के एक विशेष क्षेत्र काली गंडकी की उत्पत्ति का ग्रामीण पहाड़ी जीवन।

इस उपन्यास की नायिका है, हेमा। यह एक नायिका प्रधान उपन्यास है। प्रेम बहादुर के साथ उसका प्रेम होता है और वे दोनों गंधर्व विवाह कर लेते हैं। समाज में प्रेमी प्रेमिका का गंधर्व विवाह होता रहता है जो शुरू–शुरू में मायके वाले विरोध करते हैं परंतु धीरे–धीरे उन्हें अपनाते हैं। वह भी एक वीरांगना महिला है। एक जगह वह पार्वती पर अत्याचार होने पर अपने पति से कहती है – "लो जी! खून कर दो इस पापिष्ट का। गांव की बला टल जाए इसके चलते। चाहे हम सब बर्बाद ही हो जाए, हम सब का खून भले ही हो जाए, मगर एक पाप को तले गांव के सिर से इसके चलते कुछ भी हो जाए फिक्र नहीं परवाह नहीं।" हेमा बहुत ही ह्रदयवान महिला है। समाज द्वारा परित्यक्ता उस पतिता को वह सगी बहन की तरह उसे उठाकर अपने घर में लाती है। जयशंकर के कारण वह पपीता घोषित कर दी जाती है। जयशंकर जो एक ब्राह्मण है पर वह लड़की की अस्मिता पर हाथ उठाता है और बाद में उसे छोड़ देता है। ऐसी स्थिति पर वह जनेऊ धारी ब्राह्मणों को धिक्कारती है, उसका मानना है कि ब्राह्मण केवल जनेऊ धारण करने से नहीं होता बल्कि ब्राह्मणत्व को भी अपनाना चाहिए।

हेमा क्षमा मांगने वाले दुश्मन ही क्यों न हो उसे क्षमा दे देती है। जय बहादुर जो उसे मारने के लिए आया था परंतु मारने में असफल हो जाने पर वह हेमा के कदम पर गिर जाता है और अपनी जान का भीख मांगता है यह कहते हुए कि मेरे बाल बच्चों का ख्याल करके मुझे माफ कर दो बहन। तो बहन शब्द सुनते ही वह उसे प्राण दान दे देती है, इतना ही नहीं अपने हिस्से की रोटियां को भी उसे खाने के लिए दे देती है।

4. उपसंहार :

प्रस्तुत उपन्यास में समाज में विद्यमान सभी प्रकार के करतूत को पाठक के समक्ष परोसा गया है। इस उपन्यास में समाज के अंदर रहने वाले लोगों का यथार्थ चरित्र–चित्रण को सबके सामने लाने का सुंदर प्रयास किया गया है। यह उपन्यास नेपाल के पहाडी समुदाय पर केन्द्रित है और पहाडी समुदाय के संस्कृति, रहनसहन, संस्कार आदि का वर्णन लेखक ने किया है। नेपाल में विभिन्न बोली एवं जाति के लोग रहते हैं। पृथ्वीनारायण शाह ने कहा था नेपाल चार जात छत्तीस वर्ण की फूलबारी (बगीचा) है। यहाँ जातीय भेदभाव कायम है। आज की इक्कीसवीं शताब्दी में भी जातीय एवं वर्ण व्यवस्था कायम है तो राणाकालीन समय मे इसकी स्थिति कैसी थी होगी हम अनुमान लगा सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं सामन्तियों का समाज में दबदबा था। राणा वर्ग, सामन्ती वर्ग, उच्च या सम्पन्न वर्ग अगर किसी भी प्रकार का गलत कार्य करे तो वह गलत नहीं होता था। तत्काल इनके द्वारा पालित पोषित ब्राह्मण इनके गलत कार्य को चन्द्रायान करके शुद्ध कर देते थे। और दूसरी बात किसी की हिम्मत ही नहीं होती थी कि इनके गलत कार्य को गलत कहे।

ऐसा वही कर सकता था या तो वो राजा महाराजा की कृपा पात्र हो या फिर सामन्ती तथा राणा खानदान का हो। परन्तु गरीब, निर्धन या नीचले वर्ग एवं जाति के लोग करे तो उन्हें सजा दी जाती थी। गाँव से निकाल दिया जाता था, पतित करार किया जाता था, अपमान किया जाता था, कभी कभी तो मार दिया जाता था। गरीबों या निर्धनों की बहुबेटी इनके लिए उपभोग की सामग्री थीं। घर में सुन्दर पत्नी होते हुए भी ये तरुणी युवतियों को एक के बाद एक करके अपनी यौन चाहना को पूरा करने के लिए घर में लाते थे या फिर उनके साथ यौन लीला करके उन्हें बर्बाद कर देते थे। मोची, लुहार, दर्जी, सार्की को ये लोग अछुत मानते थे परन्तु इनकी कन्या के साथ मुँह में मुँह लगाकर यौन क्रीडा करते थे। इनका छुवा पानी नहीं चलता था पर इनका शरीर भोग विलास करने के लिए चलता था। इन्हीं सब विषयों का उद्‌गार है यह उपन्यास नेपाल की वो बेटी। अमीर और सामंती वर्ग किस प्रकार से समाज के गरीबों पर अत्याचार एवं शोषण करते हैं या किस प्रकार से महिलाओं पर कुदृष्टि से देखते हैं इसके बारे में लेखक ने पाठकों के सामने यथार्थ उजागर किया है। समाज में केवल कायर और जी हुजूर कहने वाले लोग नहीं रहते हैं। भले ही वे गरीब क्यों न हो परंतु साहसी एवं वीर पुरुष या महिलाएं समाज में होते हैं, जिसे लेखक ने हेमा और हरिशंकर के माध्यम से पाठक के समक्ष रखा है। उपन्यास में पीड़ा देने वाले, कष्ट देने वाले और फिर इसके बदले में प्यार करने वाले, मदद करने वाले, सहयोग करने वाले लोगों को दिखाया गया है। उपन्यास अत्यंत पाठनीय एवं सारगर्भित है।

संदर्भ सामग्री सूची :

1. ठाकुर, बलभद्र, नेपाल की वो बेटी, हिंदी भवन इलाहाबाद–जालंधर, 1959।
2. गुप्ता, विशम्भरदयाल (सन् 1989). साहित्य का समाजशास्त्र (दूसरा संस्करण) भारत : सीता प्रकाशन।
3. गौतम, कृष्ण (वि.स. 2058), एक चिहान उपन्यास : समाजशास्त्रीय दृष्टि, समष्टि, (काठमांडू : जेठ–असार), 88–93 ।
4. घिमिरे, मुकुंद (वि,स. 2058), "नासो कथा संग्रह को समाजशास्त्रीय अध्ययन" (अप्रकाशित स्नातकोत्तर शोध पत्र, कीर्तिपुर : नेपाली शिक्षण विभाग।)
5. जैन, निर्मला (सं.) (ई.सं. 2009), साहित्य का समाजशस्त्रीय चिंतन, हिंदी माध्यम कार्यांवयन निदेशालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय।

6. जोशी, चंडी प्रसाद (प्र.संस्क. वि.सं. 1972), हिंदी उपन्यास : समाजशास्त्रीय अध्ययन, कानपुर, अनुसंधान प्रकाशन।
7. तेन, हिप्पोलाइट एडल्ट (सन् १९७१). हिस्ट्री अफ इङ्लिस लिटरेचर (अनु. भी हाङ लाउन). वोलम न्युयोर्क : विलियम्स एच.एल. टिडी.।
8. पाण्डे, मेनेजर (सन् 1989). साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. भारत : चण्डिगढ : हरियाणा साहित्य अकादमी।
9. प्रधान, कृष्णचंद्र सिंह (वि,सं. 2054), साहित्य को समाजशास्त्र, समकालीन बोध र नेपाली उपन्यास (अप्रकाशित गोष्ठी पत्र, काठमांडू–नेपालगंज : नेपाल राजकीय प्रतिष्ठान)
10. राम, डॉ. राम प्रकाश (ई. स. 2006), फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डी. पी.एस. पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली।
11. सिंह, बच्चन (सन् 2007). साहित्य का समाजशास्त्र. इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन।
12. षीना, एन.बी. (ई.सं. 1989), 'समकालीन कहानी का समाजशास्त्रीय अध्ययन 2009' (अप्रकाशित विद्यावारिधि शोध ग्रंथ, हिंदी विभाग कोचिन विश्वविद्यालय विज्ञान एवं प्रविधि, कोची, केरला।
13. क्षेत्री, उदय (वि.सं. 2064), समाजशास्त्रीय दृष्टि में इन्द्रबहादुर राई का आख्यान को अध्ययन, (अप्रकाशित विद्यावारिधि शोध ग्रंथ, काठमांडू, त्रि.वि. मानविकी तथा सामाजिक शास्त्र।)

Shodh Paridhi
(ISSN 2349-9575)

नियम एवं शर्तें :

संपादकीय निर्णय : शोध पत्र की स्वीकृति या अस्वीकृति के संदर्भ में संपादक मंडल का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा। शोध पत्र स्वीकृत होने पर ईमेल द्वारा ही सूचित किया जाएगा।

शब्द एवं पृष्ठ सीमा : शोध आलेख की मानक सीमा अधिकतम 6 पेज होनी चाहिए। 6 पेज से अधिक होने पर रू. 80/- प्रति अतिरिक्त पेज का शुल्क देय होगा।

प्रेषण एवं मौलिकता : अपना शोध आलेख केवल आधिकारिक ईमेल (**Paridhi.shodh@gmail.com**) पर ही भेजें। आलेख पूर्णतः प्रूफ रीडिंग के साथ होना चाहिए। अशुद्धियों के लिए लेखक स्वयं जिम्मेदार होंगे। एक ही आलेख बार-बार भेजने पर वह अस्वीकृत कर दिया जाएगा।

शोध पत्र लेखन हेतु मुख्य नियम :

1. **पेज सेट-अप एवं मार्जिन :**
   - i. पेज साइज : **A4** साइज।
   - ii. मार्जिन : पेज के चारों तरफ (ऊपर, नीचे, बाएँ, दाएँ) 1 इंच (2.54 सेमी) का स्थान छोड़ें।
   - iii. इंडेन्ट (**Indentation**) : प्रत्येक पैराग्राफ की पहली पंक्ति को 0.5 इंच (Tab) आगे से शुरू करें।
2. **फॉन्ट एवं स्पेसिंग :**
   - i. अंग्रेजी फॉन्ट : **Times New Roman** (**12 pt.**) या **Arial** (**11 pt.**)।
   - ii. हिंदी/संस्कृत फॉन्ट : मंगल/**Unicode** (**12 pt.**) अथवा कृतिदेव 010 (**14 pt.**)।
   - iii. लाइन स्पेसिंग : पूरे आलेख में डबल स्पेसिंग (2.0) का प्रयोग करें।
3. **आलेख की संरचना (Paper Structure) :**
   - i. शीर्षक पृष्ठ (**Title Page**) : सबसे ऊपर शोध का शीर्षक (**Bold**), उसके नीचे लेखक का नाम, पद, संस्थान/विश्वविद्यालय का नाम और ईमेल।
   - ii. सारांश (**Abstract**) : शीर्षक के बाद 150 से 250 शब्दों में शोध का संक्षिप्त सारांश और उसके ठीक नीचे 3 से 5 मुख्य शब्द (**Keywords**) लिखें।
   - iii. मुख्य भाग (**Main Body**) : भूमिका (**Introduction**), शोध विधि (**Methodology**), निष्कर्ष (**Results & Discussion**) में विभाजित करें।
4. **पाठ-अंतर्गत संदर्भ (In-Text Citation) :**
   - i. पाठ के भीतर संदर्भ देते समय (लेखक का उपनाम, वर्ष) प्रारूप अपनाएँ।
     उदाहरण : 'शर्मा (2023) के अनुसार...' अथवा **"(Sharma, 2023)"**
   - ii. यदि उद्धरण (**Direct Quote**) ज्यों-का-त्यों लिया गया है, तो पृष्ठ संख्या भी जोड़ें।
     उदाहरण : **"(Sharma, 2023,). 45)**
5. **संदर्भ सूची (References List) :**
   - i. आलेख के अंत में प्रयुक्त सभी संदर्भों को **'References'** (या संदर्भ सूची) शीर्षक के अंतर्गत लिखें।
   - ii. सभी संदर्भों को लेखक के उपनाम के वर्णमाला क्रम (**Alphabetical Order : A to Z**) में व्यवस्थित करें।
   - iii. संदर्भ सूची में हेंगिंग इंडेंट (**Hanging Indent**) लागू करें (यानी संदर्भ की पहली पंक्ति सामान्य रहेगी और दूसरी/तीसरी पंक्ति 0.5 इंच अंदर खिसकी रहेगी)।
   - iv. उदाहरण (पुस्तक) : शर्मा, व. (2022). शोध कार्य एवं नैतिकता. गुप्ता पब्लिशर्स.
   - v. उदाहरण (जर्नल) : कुमार, आर.(2024). बहुभाषीय पत्रिकाओं का महत्व शोध परिधि, 11(1), 45-52

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./1 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अफीफा फातिमा शेक
सहायक प्राध्यापक, भाषा विभाग–हिंदी
एम.ओ.पी. वैष्णव कॉलेज फॉर विमेन (स्वायत्त), चेन्नई, तमिलनाडु, भारत।

for the paper titled

ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान का समन्वय

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 10-13

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./2 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० अहिल्या कुमारी
सहायक प्राध्यापक, विभाग – खोरठा
राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, कोकर, राँची।
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

खोरठा काव्य एवं लोकगीतों में संयोग श्रृंगार

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 14-18

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./3 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. आकांक्षा पाल
अतिथि सहायक प्राध्यापिका (गायन)
संगीत विभाग, सी0एम0पी0 डिग्री कालेज, प्रयागराज।

for the paper titled

भारतीय सांगीतिक परम्परा के वैश्वीकरण में भाषा एवं शिक्षक की बहुआयामी भूमिका

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 19-21

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./4 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अंजना खेर

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शासकीय माधव महाविद्यालय,
उज्जैन (म.प्र.)

for the paper titled

21वीं सदी में शिक्षक की बदलती भूमिका और ज्ञान सृजन की नई दिशाएँ

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 22-25

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./5 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

अन्तुला कुमारी
पीएच.डी. शोधार्थी, समाज कार्य विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

for the paper titled

कैंसर पीड़ित व्यक्ति के परिवार की गतिशीलता पर आधारित : एक अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 26-33

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./6 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Archana Dubey
St. Aloysius College, Jabalpur.

for the paper titled

Library Education for Sustainable Development : Empowering Knowledge, Innovation, and Inclusive Growth

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 34-40

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./7 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Asha Sisodiya

Professor, Department of Political Science,
PMCOE Government Nehru PG College, Agar Malwa.

for the paper titled

Multilingual Knowledge Societies : Language Policy, Education, and Inclusion

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 41-45

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./8 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. बी. मल्लिका

एम.ए., पी.जी.डी.टी., पीएच.डी.,
अतिथि शिक्षिका, हिंदी विभाग,
गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान (मानित विश्व विद्यालय), गांधीग्राम, तमिलनाडु।

for the paper titled

महाकवि भारतीयार की कृतियों में बाल-शिक्षा

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 46-50

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./9 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. आलपाटि भानु प्रसाद

हिन्दी प्राध्यापक, एस.आर.आर–सी.वी.आर शासकीय महाविद्यालय (स्वा), विजयवाडा।

for the paper titled

रोजी–रोटी का संघर्ष – अब्दुल बिस्मिल्लाह की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 51-54

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./10 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. भुनेश्वर महतो

सहायक प्राध्यापक, खोरठा विभाग,
राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, कोकर, राँची
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

खोरठा शिष्ट साहित्य का वर्गीकरण एवं उसकी विविध विधाओं का विकासात्मक अनुशीलन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 55-60

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./11 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. बीना गुप्त

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शासकीय मा. वि. टीकमगढ़ (म.प्र.)

for the paper titled

भारतीय उच्च शिक्षा में बहुविषयक अनुसंधान की संभावनाएं

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 61-63

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./12 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Deepika Raj
Research Scholar,
YBN UNIVERSITY, Ranchi.

for the paper titled

Impact of Digital Literacy Programs Conducted by Libraries in Rural Areas

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 64-74

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./13 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

धरमेन्द्र गोप

शोधार्थी, स्नातकोत्तर नागपुरी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड।

for the paper titled

नागपुरी गीतों में साहित्यिक चेतना : ज्ञान–सृजन में योगदान

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 75-80

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./14 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. दीप्ति लोदवाल

ग्रंथपाल,
शासकीय विधि महाविद्यालय, उज्जैन।

for the paper titled

हाइब्रिड पुस्तकालय : साहित्य और कला का संगम

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 81-87

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./15 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सोनम गुप्ता

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
आर्य कन्या डिग्री कॉलेज, प्रयागराज।

for the paper titled

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं सामाजिक क्षेत्रक व्यय : वर्तमान प्रासंगिकता

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 88-92

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./16 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

गणपत सिंह चौहान, शोधार्थी, विधि विभाग

डॉ. मीता चौधरी, शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य

विधि महाविद्यालय, जनार्दन राय नगर राजस्थान विद्यापीठ
(डीम्ड टू बी विश्वविद्यालय) उदयपुर।

for the paper titled

सीमा पार शराब तस्करी और आबकारी विभाग की भूमिका एवं चुनौतियाँ : राजस्थान–हरियाणा और गुजरात सीमाओं का तुलनात्मक अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 93-95

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./17 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. गीता परतेती
डॉ. बी. आर. अम्बेड़कर विश्वविद्यालय,
महू (इंदौर)

for the paper titled

भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली में सामाजिक न्याय की अवधारणा : चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 96-99

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./18 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

हेमा डी. एम, शोधार्थी

डॉ. सुमन कौशिक, मार्गदर्शक

सी. एम्. आर. विश्वविद्यालय, बेंगलुरु, कर्नाटक।

for the paper titled

ज्ञानचंद मर्मज्ञ के निबंधों में प्रकृति और मानवीय मूल्य : एक वैचारिक अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 100-104

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./19 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. हेमलता

सहायक प्रोफेसर

राजकीय महाविद्यालय सुल्तानपुर, फर्रुखनगर।

for the paper titled

ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : भाषा, शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 105-110

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./20 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

हेमलता पारस

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र,
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, आगर मालवा, मध्य प्रदेश।

for the paper titled

लोकज्ञान से डिजिटल ज्ञान तक : भारतीय समाज में ज्ञान-निर्माण के बदलते आयामों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 111-115

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./21 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

श्री जगदीश पावरा

सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खरगोन, म.प्र.।

for the paper titled

कृषि और ग्रामीण विकास में महिला सशक्तिकरण

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 116-120

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./22 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. जितेन्द्र कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,

रक्षा एवं स्त्रातजिक विभाग, दी0 द0 उ0 गो0 वि0 वि0, गोरखपुर।

for the paper titled

उच्च शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की भूमिका : चुनौतियाँ एवं समाधान

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 121-125

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./23 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. ज्योति पटेल

सहायक प्राध्यापक,
शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, टीकमगढ़ (म.प्र.)

for the paper titled

ज्ञान सृजन का वैश्विक पथ : बहुविषयक दृष्टिकोण

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 126-129

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./24 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

कमलेश चौधरी
शोध–छात्र, हिन्दी विभाग,
लॉर्ड्स यूनिवर्सिटी, अलवर (राज.)

for the paper titled

प्रेमचन्द के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा : स्वरूप, विकास एवं समालोचनात्मक मूल्यांकन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 130-137

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./25 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Krishna Rai Chouhan
Asst. Prof, Political Science
Raja Bhoj College, Mandideep, Raisen, Madhya Pradesh.

for the paper titled

Knowledge is Power : A way to Achieve Progress and Conquer all Disparities

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 138-142

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./26 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. कविता जोशी

सहायक अध्यापक,
द कपाड़िया एन. एम. एम. एस. आर्ट्स एण्ड धी एस. एन. एस. बी. एस.
कॉमर्स कॉलेज, संखेड़ा, छोटा उदेपुर, गुजरात।

for the paper titled

ज्ञान अर्थव्यवस्था : विकसित भारत 2047 की आधारशिला

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 143-146

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./27 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Lalita Saini
Assistant Professor, Pal College of Technology and Management, Haldwani, Kumaun University Nainital, (Uttarakhand)

for the paper titled

Artificial Intelligence with a Human Touch : Redefining Emotional Learning in Education 5.0

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 147-154

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./28 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. के. माधवी

एसोसिएट प्रोफेसर, मंच कला विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान।

for the paper titled

रस और आनंद

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 155-159

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./29 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

मधु हिंगर, पी.एच.डी शोधार्थी

डॉ. रानी प्रभा सोलंकी, एसोसिएट प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष,
HOD Sociology, Sociology, Janardhan Rai Nagar Rajasthan Vidhyapeeth, Pratap Nagar, Udaipur, Rajasthan.

for the paper titled

जैन पर्वों की प्रासंगिकता

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 160-165

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./30 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

कु. मनीता
शोधार्थी,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

for the paper titled

हिंदी भाषा और वैश्विक ज्ञान–सृजन सम्भावनाएँ और चुनौतियां

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 166-170

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./31 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. नीलू कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर,
रामलखन सिंह यादव कॉलेज, राँची।

for the paper titled

कुरमाली लोकगीतों में नारी अस्मिता एवं प्रतिरोध चेतना

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 171-177

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./32 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. निर्मलाबेन ईच्छुभाई पटेल
सहायक प्राध्यापिका, वी.न.द.गु.विश्वविद्यालय, सूरत. गुजरात।
डॉ. महेश एम. पटेल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री जे.बी.धारूकावाला महिला आर्ट्स ऐन्ड कोमर्स कॉलेज, वराछा, सूरत. गुजरात।

for the paper titled

हिंदी मंचित नाटकों में परंपरा, परिवर्तन और रंगमंचीय चेतना – एक अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 178-180

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./33 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Pooja Bisht

Assistant Professor,
Pal College of Technology and Management, Haldwani.

for the paper titled

Artificial Intelligence and the Future of Language Education: Transforming the Role of Teachers in Global Knowledge Creation

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 181-185

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./34 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

प्रमोद कुमार महतो, शोधार्थी

लेफ्टि० डॉ० अवध बिहारी महतो, शोध निर्देशक

जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, स्नातकोत्तर खोरठा विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

झारखंड की संस्कृति और पर्यावरण चेतना

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 186-188

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./35 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

प्रीति कनाडिया

फैकल्टी,
डॉ. बी. आर. अंबेडकर यूनिवर्सिटी महू, इंदौर।

for the paper titled

साइबर सुरक्षा और आपराधिक न्याय प्रशासन के लिए चुनौतियाँ

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 189-191

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./36 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Priya Singh
Assistant Professor, Department of Commerce and Management Studies.
Mahatma Gandhi Kashi Vidhyapith Varanasi.

for the paper titled

Factors Affecting Employee Retention Among Generation Z Employees in Startup

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 192-198

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./37 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

राधिका उराँव

सहायक प्राध्यापक / शोधार्थी, कुँड़ुख़ विभाग
राँची वीमेंस कॉलेज, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

कुँड़ुख़ निबंध साहित्य का सामान्य परिचय

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 199-202

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./38 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

राजीव कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर – हिंदी
जे.एस. हिन्दू पी.जी. कॉलेज अमरोहा (उ.प्र.)

for the paper titled

शिक्षा और शोध में मातृभाषा तथा क्षेत्रीय बोलियों की उपयोगिता

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 203-207

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./39 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. राम कुमार
सहायक प्राध्यापक, नागपुरी विभाग,
राम लखन सिंह यादव महाविद्यालय, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

भारतीय जनजातीय औषधीय चिकित्सा-पद्धति

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 208-212

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./40 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Raushan Kumar, Research Scholar
Prof. Mohammad Arif, Supervisor
Department of Political Science
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi- 221002

for the paper titled

भारत–नेपाल संबंध : समकालीन परिप्रेक्ष्य में नेपाल की रणनीतिक भूमिका में परिवर्तनों का मूल्यांकन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 213-217

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./41 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. रीजा. आर. एस

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
क्रिस्त्यन कॉलेज काट्टाकडा, तिरुवनन्तपुरम, केरल, केरल विश्वविद्यालय।

for the paper titled

डिजिटल और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में हिन्दी शिक्षण और शोध की नयी चुनौतियाँ

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 218-222

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./42 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

रेणु देवी

शोध छात्रा, समाज कार्य विभाग,
म. गा. काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

for the paper titled

किशोरियों के यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के समाधान में समाज कार्य की भूमिका का अध्ययन (वैशाली जिले के विशेष संदर्भ में)

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 223-231

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./43 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

रिशु सिंह, शोधार्थिनी

प्रो. एन. सत्यनारायण, मार्गदर्शक,

आंध्र विश्वविद्यालय।

for the paper titled

हिंदी सिनेमा में नारी शोषण : 2000 से 2026 तक

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 232-234

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./44 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Riya Saxena

Research Scholar,
School of Arts and Humanities, Career Point University,
Kota, Rajasthan, India.

for the paper titled

From Governance Reform to Knowledge Transformation : Evaluating the Impact of the Modi Government's Education and Digital Policies on Multidisciplinary Research in India

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 235-242

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./45 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Ruqqia Hashmi

for the paper titled

Pedagogical Practices and Knowledge Creation in Multidisciplinary Higher Education

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 243-247

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./46 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Sadhana Ranchhod Tank

Kapadia N.M.M.S. Arts and S.N.S.B.S. Commerce College,
Sankheda.

for the paper titled

वैश्विक ज्ञान–निर्माण, सतत शिक्षा एवं अकादमिक उत्कृष्टता हेतु भाषा, शिक्षक एवं अनुसंधान का समन्वित दृष्टिकोण

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 248-253

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./47 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. संजीव कुमार. के

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

एम. इ. एस कल्लडी. कॉलेज (ओटोणमस) मन्नाटकाड, पालकाड, केरल।

for the paper titled

केरल की जनजातीय ज्ञान परंपरा

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 254-256

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./48 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

सरिता सिंघल
शोधार्थी, लॉर्ड्स यूनिवर्सिटी।

for the paper titled

प्रेमचंद युगीन कॉरपोरेट सस्कृति और पूंजीवाद का नवीनीकरण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 257-263

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./49 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Shivani Chandel
Dr. Raj Kumar, Supervisor
CPU KOTA (RAJASTHAN)
Reg. No. : K25168

for the paper titled

Effect of Art integration in science subject to Critical thinking, Creative thinking and Academic achievement of middle-staged students

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 264-273

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./50 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Shivkaran Nimal
ASSISTANT PROFESSOR,
SPC GOVERNMENT COLLEGE, BHIM.

for the paper titled

अष्टांग हृदय के द्वितीय अध्याय 'दिनचर्या' का आधुनिक जीवनशैली के संदर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन (भोडकी ग्राम के विशेष सन्दर्भ में)

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 274-278

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./51 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

शुभम ब्रह्मवंशी, पीएच.डी. शोधार्थी, राजनीति विज्ञान

सामाजिक विज्ञान अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश।

डॉ. के. आर. कुमेकर, मार्गदर्शक

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय डिग्री कॉलेज, सनावद, मध्य प्रदेश।

for the paper titled

भारत में स्थानीय स्वशासन की संवैधानिक संरचना एवं मध्य प्रदेश में उसका क्रियान्वयन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 279-284

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./52 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

सिंगराय मुण्डा
शोधार्थी, विश्वविद्यालय मुण्डारी विभाग,
राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

भाषा से वैश्विक ज्ञान तक : शिक्षक और बहुविषयक अनुसंधान की बदलती भूमिका

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 285-290

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./53 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

सुनील कुमार, शोधार्थी

डॉ० शान्त कुमार चतुर्वेदी, शोध निर्देशक एवं प्रभारी,
हिंदी विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय,
चित्रकूट, उ० प्र०

for the paper titled

जायसी के पदमावत महाकाव्य में हिन्दू त्यौहारों की झलक

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 291-293

ISSN 2349-9575

Editor :
Sulaxna
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./54 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

सुषमा मिंज
सहायक प्राध्यापक, कुँड़ुख विभाग,
रामलखन सिंह यादव महाविद्यालय कोकर राँची,
विश्वविद्यालय राँची झारखंड।

for the paper titled

झारखंडी भाषा के विकास में आकाशवाणी राँची का योगदान

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 294-297

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./55 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Vaishnavi S.

Research Scholar, Department of Commerce, GTN Arts College,
Affiliated to Madurai Kamaraj University, Dindigul District,
Tamil Nadu – 624005

for the paper titled

A Study on Operational Efficiency of Tamil Nadu Grama Bank : Challenges and Performances

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 298-308

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./56 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

विकास उराँव

सहायक प्राध्यापक / शोधार्थी
कुँड़ुख़ विभाग, आर0एल0एस0वाई0 कॉलेज, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

for the paper titled

पत्र–पत्रिका तथा पत्रकारिता का इतिहास एवं क्षेत्र

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 309-312

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed & Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./57 **Dated :** 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

Vishakha Gurjar, Reseracher
Dr. Rani Prabha Solanki, Associate Professor & Head
Department of Sociology, M. V. S. College. Udaipur (Raj.)

for the paper titled

FUNCTIONAL AND STRUCTURAL CHANGES IN THE FAMILY SYSTEM : A SOCIOLOGICAL STUDY

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 313-315

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Impact Factor : 5.634

प्रेरणा साहित्य समिति, हापुड़ (उ.प्र.) एवं
विलक्षणा एक सार्थक पहल समिति, अजायब, रोहतक (हरियाणा)
द्वारा प्रकाशित

शोध परिधि
SHODH PARIDHI

An International Multidisciplinary, Multilingual, Refereed &
Peer-Reviewed Bi-Annual Research Journal

Ref. No. SP/2026/Spl./58 Dated : 30-09-2026

Certificate of Publication

is awarded to

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला

विभागाध्यक्ष, संस्कृत, पत्रकारिता तथा हिंदी,
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू।

for the paper titled

'नेपाल की वह बेटी' उपन्यास का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Published in Shodh Paridhi ISSN : 2349-9575
Volume-13, Special Issue-1 (Sept.-2026), Page 316-323

ISSN 2349-9575

Editor :
(Dr. Sulaxna Ahlawat)

Email : paridhi.shodh@gmail.com | Mob. No. : 9996571500